गिरिजानन्दन को
सस्नेह

सा रम्या नगरी, महान्स नृपतिः, सामन्तचक्रं च तत्,
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्, ताश्चन्द्राबिम्बाननाः,
उद्रिक्तः स च राजपुत्र-निवहः, ते बन्दिनः, ता कथाः—
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ।

—भर्तृहरि

प्रस्तावना

इतिहास कई दृष्टि से लिखा गया है और लिखा जा सकता है। कुछ लोग मनुष्य के इतिहास को विशिष्ट व्यक्तियो का जीवन चरित्र मात्र मानते है। कुछ इस मत का घोर विरोध करते हुए व्यक्तियो को कुछ भी महत्व न देकर नैसर्गिक विकास पर ही जोर देते है। किन्हीं का विचार है कि इतिहास भूगोल पर अवलंबित है। कोई समझते है कि विशिष्ट जन अपनी आकांक्षाओ की प्राप्ति में अपने मस्तिष्क के बल से सब प्रकार की प्रकृति-जनित बाधाओं को दूर कर इतिहास का निर्माण करते है। कोई आर्थिक आवश्यकता को सर्वोपरि मानते है और ऐतिहासिक घटनाओं को उसकी कसौटी पर कसते है। जहा तक मेरी समझ में आता है, सभी विचारो में कुछ न कुछ सार्थकता है, परन्तु कोई भी विचार वस्तु स्थिति का पूर्ण रूप से प्रतिबिंब नहीं माना जा सकता। इन सब विचारो के समन्वय में ही सत्य है।

ऐसा मत होते हुए अपने मित्र श्री पारसनाथ सिह की रचना का विशेष प्रकार से स्वागत करना मेरे लिए स्वाभाविक है। जब उन्होने अपनी पुस्तक के "प्रूफ" मेरे पास भेजने आरंभ किये और मुझ से कहा कि तुम इसकी प्रस्तावना लिखो, तो मुझे आश्चर्य हुआ। मै पारसनाथ जी को आज छत्तीस वर्षों से अच्छी तरह जानता हूँ, और इस बीच विभिन्न क्षेत्रो में मेरा उनका संपर्क रहा है। उनके कितने ही लेख मैंने पढ़े है और कितने ही स्थानों में मैंने उन्हे देखा है। उनके साहित्यिक और सामाजिक जीवन से--विशेषकर उनकी मधुर शिक्षाप्रद हास्यप्रियता से--मै अच्छी तरह परिचित रहा हूँ, पर मुझे यह नहीं मालूम था कि इतिहास में वे इतना रस रखते है और उन्होने इतने सूक्ष्म रूप से उन कुटुंबो की आंतरिक जीवन-प्रणाली का अन्वेषण किया है जिनका सम्बन्ध अंगरेजी शासन के

उद्गम और वैभव से रहा है। ऐसे कुटुंबों में मेरा और मेरी जन्म-नगरी काशी के अन्य लोगों का भी कुटुंब है, और इस कारण पारसनाथ जी की पुस्तक से अवश्य ही मैं विशेष प्रकार से आकृष्ट हुआ।

इन व्यक्तिगत बातों को यदि छोड़ भी दिया जाय तो मुझे यह पुस्तक इस कारण बहुत रुचिकर प्रतीत हुई कि इसमें मैंने देखा कि अपने देश का वास्तविक सामाजिक इतिहास दिया गया है, यद्यपि ऊपर से देखने से कतिपय व्यक्तिमात्र का ही निरूपण इसमें मालूम होता है। पारसनाथ जी ने हमें बतलाया है कि हमारे मानसिक दृष्टिकोण में स्वतंत्रता का कोई विशेष महत्व नहीं रहा है, और भौतिक इतिहास के प्रति हमारा कोई आकर्षण न रहने के कारण, इस अंग में हमारा ज्ञान भी बहुत कच्चा है। यह बात नितान्त सत्य है, और हम सब यही आशा कर सकते हैं कि स्वराज की प्राप्ति के बाद स्वतंत्रता के महत्व को हम समझेंगे और अपनी परम्परागत मनोवृत्ति को बदलकर अब अपने देश को किसी विदेशी के अधीन न होने देंगे। हम यह भी आशा करते हैं कि ज्ञान के विविध अंगों की दिन प्रति दिन उन्नति हमारे देश में होती जायगी और विद्वद्गण ऐतिहासिक भंडार को भी अपनी रचनाओं से पूरा करते रहेंगे।

पारसनाथ जी की पुस्तक हमें बतलाती है कि किस प्रकार से चन्द लोगों की व्यक्तिगत आकांक्षा ने विदेशी शासन को देश में स्थापित होने में सहायता पहुचायी है। साथ ही उन्होंने इधर के करीब ढाई सौ वर्षों का हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन का भी चित्र-चित्रण किया है। उन्होंने बड़ी सीधी साधी साधारण बोल चाल की भाषा में इन सब भावों को प्रदर्शित किया है जो मनुष्य का मनुष्य से संपर्क होने से उत्पन्न होते हैं। व्यक्तिगत राग द्वेष के कारण कितनी बड़ी बड़ी घटनाएं घटित हो सकती हैं, यह भी उन्होंने बतलाया है और हमारे कौटुंबिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिखलाया है। उनका इतिहास वास्तव में उपन्यास की तरह रोचक है, और मुझे आशा है कि बहुत से लोग इस पुस्तक को पढ़कर अपने इधर की शताब्दियों के पूर्वजों का हाल जानकर आगे के

लिए अच्छी शिक्षा पावेंगे। इस बात को कहने की विशेष आवश्यकता इस कारण है कि स्वराज-प्राप्ति के बाद जो ढाई वर्ष अब तक बीते हैं, उसकी घटनाओं को—विचार धाराओं और कार्य प्रणालियो को—देखकर मन में यही आशंका होती है कि वह वातावरण और वह भावना अब भी जोरों से मौजूद है जिसके कारण हम बार बार परतंत्र हुए हैं, और बार बार अपनी एकता को खोकर अनेकता के कुपरिणामो के शिकार बने रहे हैं।

मै अपने मित्र को पारसनाथ सिंह को बधाई देता हूँ कि विद्वान् होते हुए और भाषा पर पूरा अधिकार रखते हुए भी उन्होंने साधारणतः अपरिचित क्लिष्ट वाक्यों और शब्दाडंबर से अपने पाठकों की रक्षा की है। जो सुन्दर उपयुक्त नीति के श्लोक उन्होंने उद्धृत किये हैं उससे उनकी पुस्तक विशेषरूप से रोचक और उपयोगी हो जाती है। उन्होंने वास्तव म बड़ा परिश्रम कर और बहुत तह के भीतर पहुचकर हमें अपने को ही देखने का और पहिचानने का सुअवसर प्रदान किया है। हमें उनके प्रति कृतज्ञ होकर उनके श्रम से लाभ उठाना चाहिए। यदि हम अब भी न चेतेंगे तो हमारा भविष्य संकटमय रहेगा। साथ ही यदि हम समझदारी से आगे चलेंगे तो हम अवश्य उस लक्ष्य को प्राप्त करेंगे जिसके लिए राष्ट्र-पिता महात्मा गाधी जी ने अपना सारा जीवन लगाया और जिसकी खोज में उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी।

गवर्मेंट हाउस,
शिलांग,
१२ अप्रैल, १९५०

निवेदन

अठारहवी शताब्दी में जिस उथल-पुथल ने अंगरेज-जाति को बंगाल का अधीश्वर बना दिया उसके इतिहास से मुर्शिदाबाद के जगत्सेठ का नाम विशेष रूप से सम्बद्ध है। पलासी के युद्ध से प्रायः सौ वर्ष पूर्व इस व्यापारी परिवार की महत्वाकाक्षा इसे पटने ले गई थी। फिर प्रायः पचास वर्ष बाद उसने इसे मुर्शिदकुली खा के सम्पर्क में लाकर उसका अनन्य विश्वास-भाजन बना दिया था और धन के अतिरिक्त पद-प्रतिष्ठा की भी दृष्टि से इसे इतना ऊंचा उठा दिया था कि मुर्शिदाबाद की संस्थाओ में सबसे पहले इस घराने का ही नाम लिया जाता था और बिना इसकी सनद पाये कोई वहां की मसनद पर बैठने के लिए दिल्ली की सनद न पा सकता था।

मुर्शिदाबाद से दिल्ली तक जगत्सेठ-परिवार की ऐसी धाक जमने का कारण था उसका सारे तख्त का एक जबर्दस्त पाया होना। उसकी सेवाओ का महत्व या मूल्य आकने में तत्कालीन शासको ने भी धर्मान्धता नही दिखाई। फतहचन्द को जगत्सेठ की पदवी देने वाला मुहम्मद शाह था और बंगाल-बिहार के शासन-क्षेत्र में उसे विशेष रूप से ऊपर उठाने वाला अलीवर्दी खा। पर इससे भी पहले मुर्शिदकुली खा मानिकचन्द को,अपना मुकुट-मणि बनाकर उन्हें विशेष गौरव-शाली बना चुका था और आकाश चूमने वाली अट्टालिका का शिलान्यास कर चुका था। प्रथम जगत्सेठ फतहचन्द ने जो मान-महत पाया था वह साधन-सम्पन्नता के साथ अपनी राज-सेवाओ के बल पर। इन सेवाओ म एक यह थी कि मुगल-साम्राज्य पर विपत्ति-वर्षा होने के समय वह दिल्ली के लाल किले में करोड सवा करोड का भुगतान हुडी के जरिये ही करा सकते और रास्ते में खजाना लुट जाने की जोखिम से नवाब-नाजिम और बादशाह दोनो को बचा सकते थे। जगत्सेठ-परिवार सरकार का एक अभिन्न अंग बन गया था और संपृक्त होकर दोनों एक दूसरे के हानि-लाभ में अपना हानि-लाभ समझने लगे थे।

उधर पिछली शताब्दी में ही समय की गति बदल चुकी थी और ऐसी शक्तियाँ प्रबल होने लगी थीं जो एक दिन मुगल-साम्राज्य को नष्ट किये बिना न रह सकती थीं। अगर धर्मान्धता औरंगजेब के ही साथ मर मिटती तो बात बहुत न बिगड़ती, पर हुआ यह कि दिल्ली का धार्मिक दृष्टि-कोण तो बदला नहीं और दरबार में दोष एक से हजार हो चले। फिर भी दिल्ली की आंखें न खुल सकीं और उसकी कमजोरी दिन दिन बढ़ती ही गई। केन्द्र में शासन की क्षमता न रह जाने पर, विभिन्न प्रान्त निरंकुश अथवा—कानो के अधिक प्रिय शब्द में—स्वतत्र हो चले। पर जो बल एकता में था वह इस अनेकता में न आ सकता था, इसलिए शत्रुओ से काम पड़ने पर उन विभिन्न अंगो की स्वतत्रता देखते देखते विलीन हो गई और एक एक कर सभी परतंत्र हो गये।

इस देश के इतिहास में परतंत्रता कोई नयी वस्तु नहीं थी। फिर भी लोग इतना तो देख या समझ सकते थे कि विदेशी होते हुए भी फरासीसी या अंगरेज कितनी ही बातो में अफगानो या मुगलों से भिन्न थे। इनकी रीति-नीति न्यारी, सकल्प-साधन का सारा ढग न्यारा था। ये इस देश में किसी खलीफा के आदेश या गाजी बनने के उद्देश से नहीं आये थे। दिल्लीश्वर बनने के लिए अंगरेजो को पानीपत की चौथी लड़ाई लड़ने की कभी जरूरत न पडी। वे दिल्ली की ओर बढे भी तो मद्रास, कलकत्ता, बम्बई जैसे बंदरगाहों की ओर से—एक हाथ में तराजू और दूसरे हाथ में बंदूक लेकर माल की खरीद-बिक्री करते; देश-काल को जानते-पहचानते; यहां के सैनिक उपकरण का विशेष उपयोग करते और छल-बल से विभिन्न प्रान्तो को "पचतंत्र" के 'एकोदर, पृथग्ग्रीव' और असहत भारड-पक्षियो की तरह विनाश को पहुँचाते हुए। प्रान्तीय स्वतत्रता न तो केन्द्र के ही काम आ सकी न स्वय सुरक्षित रह सकी। और बगाल जैसे प्रान्त की लूट ने इंगलैंड को मालामाल कर दिया।

दिल्ली के रोग का इलाज करना-कराना जगत्सेठ का काम न था। उनका सम्बन्ध वाणिज्य-व्यापार के क्षेत्र से था जिसमें उन्होने अपने अनुभव, अध्यवसाय और व्यवहार-कुशलता से अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की और शैल-शिखर पर पहुँच गये। व्यापार के सिलसिले में ही ईस्ट इंडिया कंपनी की मानिकचन्द से जान-पहचान हुई। यह बात १७०६ से पहले की है। कासिमबाजार

में विदेशी व्यापारियो की फैक्टरियाँ या कोठियाँ थी और वह स्थान महिमापुर (मुर्शिदाबाद) के पास ही था। इस सामीप्य ने उन्हें जगत्सेठ-परिवार के लोगों से मिलते-जुलते रहने और व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर लेने का सुअवसर दे दिया। प्राय: प्रत्येक विदेशी कपनी के महाजन जगत्सेठ ही थे। वह टकसाल के इजारेदार थे और बगाल में चादी के सबसे बडे खरीदार। उधर बाहर से चाँदी लाने वालो में ईस्ट इडिया कपनी प्रमुख थी, इसलिए दोनो के बीच खरीद-बिक्री, लेन-देन से पारस्परिक सम्बन्ध का उत्तरोत्तर दृढ़ होना स्वाभाविक ही था।

अगरेज इस देश में पहुँचने से पहले और देशों में भी पहुँच चुके थे और दुनिया को देख कर दुनियासाज बन चुके थे। उनके मुक़ाबले में यहां के व्यापारी ही नहीं, शासक भी दुधमुहे बच्चे थे। शिक्षा और संस्कृति की बात पूछो जाय तो इतना ही कहना काफी होगा कि वे आखिर उस वृक्ष के फल-फूल थे जिसे आरोपित कर शेक्सपियर १६१६ में ही अपना जीवन-नाटक समाप्त कर चुका था। अगरेजो के हौसले और हिम्मत पर कौन निछावर न होता? एक बार क्लाइव को इधर की यात्रा करनी पड़ी तो पवन की प्रतिकूलता ने उसके जहाज को कहीं से कहीं पहुँचा दिया, जिसके कारण उसे मद्रास पहुँचने में ही प्राय: एक वर्ष लग गया। मेक्सिको की चादी को मुर्शिदाबाद या ढाके की मलमल को लन्दन पहुँचा देना कोई साधारण काम न था। इसके लिए जो साहस और सगठन-शक्ति चाहिए थी वह इस जाति में भरपूर थी। हमें इस बात का अभिमान हो सकता है कि क्लाइव के ही कथनानुसार मुर्शिदाबाद हर बात में लदन से टक्कर ले सकता था—साथ ही उसमें यह विशेषता थी कि लन्दन में एक भी परिवार धन की दृष्टि से जगत्सेठ की बराबरी का न था। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि लन्दन में ऐसे गुणों की पूजी थी जिनका विकास उसे एक दिन संसारमात्र का आर्थिक केन्द्र बनाने वाला था। ईस्ट इडिया कपनी का अपना निर्माण समवाय-सिद्धान्त की भित्ति पर हुआ था। इसी सिद्धान्त का अवलम्बन कर लन्दन के व्यापारियो ने १६९७ तक बंक आव इगलैण्ड की स्थापना कर ली और १७४२ तक उस बक की पूजी १२ लाख पौंड से बढ़ कर ९८ लाख पौंड हो चली। धीरे धीरे अगरेज अपनी गुण-गरिमा से ही प्रकृत जगत्सेठ बन बैठे—और

जगत्सेठ भी ऐसे जिनकी भुजाओं में बल था, जिनके तरकश में तेज तीर थे। इस देश में मुकाबला होने पर कौन ऐसी शक्ति हो सकती थी जो रजोगुण को तमोगुण पर—प्रकाश को अन्धकार पर विजय पा लेने से रोक सकती? वास्तव में गुणों का दुर्गुणों से हार खा जाना ही अप्राकृतिक या आश्चर्यजनक होता।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि बंगाल में राज्यक्रान्ति कराने वाले एक ओर सिराजुद्दौला और दूसरी ओर महताबराय थे। सिराजुद्दौला ने अपनी विवेकहीनता और दुर्व्यवहार से जगत्सेठ जैसे अपने नाना के शुभचिन्तक और मित्र को भी अपना शत्रु बना दिया और अपमान असह्य हो उठने पर महताबराय ने अंगरेजो की सहायता से उसकी जड़ खोद डाली। क्या महताबराय का यह कर्तव्य न था कि अपने मन को समझा-बुझा कर चुप बैठ रहते और अंगरेजों को आमन्त्रित कर राष्ट्र को पराधीनता का दुर्दिन देखने न देते? यहां दो बातें विशेष रूप से ध्यान में रखने की हैं। अगर वह कूटनीतिज्ञ थे भी तो पारदर्शी या दूरदर्शी न थे। षड्यंत्र करते-कराते हुए भी वह अगरेजो को पूरी तरह न पहचान सके और पलासी के युद्ध का परिणाम क्या होने जा रहा था, यह न समझ सके। वह यही माने बैठे रहे कि अगरेज एक दिन कलकत्ते लौट जायेंगे—वहां फिर वाणिज्य-व्यापार करने लगेंगे—और मीर जाफर की छत्रच्छाया में राज-काज पूर्ववत् ही होता रहेगा। उनकी सारी धारणा निर्मूल निकली। बंगाल का नवाब-नाजिम कंपनी के हाथ की कठपुतली बन गया और जगत्सेठ के हित की दृष्टि से तो कंपनी ने भस्मासुर का काम किया। उनके हाथ में न टकसाल का इजारा रहा, न वह सरकारी पोतदार रहे। भौंर में पड़ कर उनके घराने की नामी नाव एक दिन डूब जाने से न बच सकी। फिर "राष्ट्र", "राष्ट्रीयता" या "स्वाधीनता" ऐसे शब्द थे जो उस समय के भारतवासियों के लिए कोई अर्थ नहीं रखते थे। धर्म के नाम पर मिटने वाले हिन्दू नहीं तो मुसलमान मिल सकते थे, पर राष्ट्र या स्वदेश के नाम पर नहीं, कारण कि यह लोगो के लिए आकाश-कुसुम के समान था। इसकी वेदी पर साधारण बलिदान करने की भी शिक्षा न तो उस समय के नीति-शास्त्र में मिलती थी, न किसी जाति की परम्परा में। राष्ट्रीय एकता या स्वाधीनता और उसकी रक्षा के लिए स्वार्थ-त्याग की भावना के जन्म लेने में अभी बहुत देर थी। "शठे शाठ्यं समाचरेत्"—यह

शिक्षा महताबराय को अवश्य मिली थी और इसका पालन करना उन्होंने अपना परम कर्तव्य समझा। उनके या दूसरो के लिए अपने देश-काल से ऊपर उठ जाना या बीसवीं सदी में पहुँच जाना असंभव था।

इसमें संदेह नहीं कि बंगाल में अंगरेजी राज्य की स्थापना में जगत्सेठ से बहुमूल्य सहायता मिली, यद्यपि अठारहवीं शताब्दी में यह निश्चित था कि उस सहायता के बिना भी वह राज्य स्थापित होकर ही रहता। इतिहास की लीला को व्यापक दृष्टि से देखने वाले यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि मुगलों की अधोगति और विनाश में अंगरेजो का अभ्युदय और राज्यारोहण सन्निहित था। एक तो उनके प्रतिद्वंद्वियो में कोई भी उनकी बराबरी करने वाला न था; दूसरे, पलासी की लड़ाई का फैसला करनाल में और बक्सर की लड़ाई का फैसला पानीपत में ही हो चुका था। मीर जाफर ही नहीं, मीर कासिम भी मरने से पहले ही मर चुका था और क्षय तथा जय कराने वाला काल अंगरेज-मात्र को पुकार कर कह चुका था कि

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ, यशो लभस्व, जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ;
मयैवैते निहताः पूर्वमेव, निमित्तमात्र भव 'हैट'-धारिन् !

बगाल में पड़ने वाली नींव पर ही वह इमारत खड़ी हुई जो बढ़ते बढ़ते एक दिन आसमान चूमने वाली थी। यद्यपि उस विस्तार की कहानी इस पुस्तक की दृष्टि से विषयान्तर है, तथापि उसका भी उपक्रम शुजाउद्दौला के १७७५ में मर जाने से पहले ही हो चुका था। क्लाइव के प्रस्थान करने से पहले ही जगत्सेठ के घर का चिराग टिमटिमाने लगा था और वारेन हेस्टिंग्स के जाते जाते तो पछवां हवा का झोका उसे गुल कर चुका था।

कई शताब्दियों से हिंदू-जाति इतिहास लिखने-पढने की उपेक्षा करती आई है। इस कारण जगत्सेठ-वंश का कोई ऐसा वृत्तान्त नही मिलता जो उसका लिखा-लिखाया हुआ हो। अन्धकार में उसके इतिहास पर "मुता-खरीन" जैसे ग्रथ या ईस्ट इडिया कंपनी के कागजात से जो प्रकाश पड़ता है वह गनीमत है। यह बात निश्चित-सी है कि बाकी बातों की जिज्ञासा पूरी करने के लिए नयी सामग्री आज मुर्शिदाबाद में या अन्यत्र मिलने वाली नहीं।

मुसलमान लेखकों के लिए कोई हिंदू जगत्सेठ, ऐतिहासिक दृष्टि से, किसी खुदादाद खां लतीफ या मीर मुरतजा जैसे सरदार का पासंग भी नहीं हो कता था। इस परिवार में इतिहास-सम्बन्धी विरक्ति या उदासीनता न होती तो इसके लिए मुसलमान नहीं तो किसी हिंदू लेखक से अपना इतिवृत्त लिखवा जाना कुछ भी कठिन काम न होता। दिल्ली और मुर्शिदाबाद के बीच ——पलासी के युद्ध से पहले नहीं तो उसके बाद, कंपनी के राज्य-काल में—— कोई आनन्दराम मुखलिस या भीमसेन बुरहानपुरी या खुशहालचन्द इन सेठों को आसानी से मिल सकता था। "मुताखरीन" का लेखक गुलाम हुसैन इनके विषय में कुछ विस्तारपूर्वक अवश्य लिख जाता, अगर उसके शत्रु रामनारायण के मित्र होकर महताबराय वह अवसर भी न खो बैठते। इन बातों का नतीजा यह हुआ कि इस वंश का पूरा इतिहास कभी लिखा न जा सका और जो कुछ लिखा गया वह जहां-तहां बिखरी हुई ऐसी प्रासंगिक पंक्तियों के रूप में ही जिनसे उसका ढौल-ढांचा तो हमारी आंखों के सामने आ जाता है, पर उसकी पूरी तसवीर नहीं उतरती। अगर अनुमान या किंवदन्ती के ही आधार पर इतिहास का निर्माण हो सकता तो बात और होती, पर उस निर्माण के लिए जो उपादान चाहिए उसका नितांत अभाव न होते हुए भी वह परिमाणतः इतना स्वल्प है कि संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

उस स्वल्पता या अभाव के कारण, हम कितने ही प्रश्नों के उत्तर प्रामाणिक रूप से नहीं दे सकते। उदाहरणार्थ, हम इतिहास के आधार पर यह नहीं बता सकते कि अलीवर्दी खां के नाती को धूल में मिला देने पर महताबराय को कटिबद्ध करा देने वाली घटना वास्तव में क्या थी। वह भरे दरबार थप्पड़ या गाली जैसा उनका अपमान था? या सुन्नत की ही धमकी थी? या सिराजुद्दौला की बदमिजाजी के अलावा उसकी बदचलनी* भी थी? इस पुस्तक में इसका जो

---

* "और क्या कहूं मैं, रख बेगम का छद्मवेश,
करके दुरन्त मेरे अन्तपुर में प्रवेश,
कुल को, जो भारत-प्रदीप्त भानुसम है,
दे चुका कलंक-रूप कालिमा अधम है।"

—"पलाशिर युद्ध" (अनुवादक 'मधुप')

हीरानन्द साह

विद्यां वित्तं शिल्पं तावन्नाप्नोति मानवः सम्यक्
यावद् व्रजति न भूमौ देशाद्देशान्तरं हृष्टः।

जो मनुष्य कूप-मडूक बना रहता है, जो प्रसन्नचित्त रहकर देश-देशान्तर में भ्रमण नही करता, वह विद्या, हुनर और धन, इन तीनो में से कोई भी चीज अच्छी तरह हासिल नही कर सकता।

—पंचतंत्र

जगत्सेठ-वंश का जो इतिहास उपलब्ध है, उसका आरभ सन् १६५२ ई० (सवत् १७०९) से होता है।

उस साल हीरानन्द साह नामक एक मारवाडी नवयुवक ने अपनी जन्मभूमि नागौर से विदा ग्रहण कर पूरब की ओर प्रस्थान किया और बड़े लम्बे सफ़र के बाद पटने पहुच कर वही लक्ष्मी की आराधना आरंभ की।

इस घटना को हम उस वृक्ष का बीजारोपण कह सकते है जिसकी विशालता उसे एक दिन देश-विदेश मे प्रसिद्ध करने वाली थी।

नागौर इस समय जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है। उस समय गजसिंह[1] राठौर के पौत्र रायसिह इसके जागीरदार थे। उससे भी प्राचीन समय मे नागौर-नगर अहिछत्रपुर[2] के नाम से जागल देश की राजधानी रह चुका था।

हीरानन्द साह जैन धर्मावलम्वी ओसवाल थे। उनका सम्प्रदाय श्वेताम्वर था और गोत्र गेल्हडा। कौटिलीय 'अर्थशास्त्र' मे लिखा है—

"काम्भोज-सुराष्ट्र-क्षत्रिय-श्रेण्यादय.   वार्त्ता-शस्त्रोपजीविनः ।"
काभोज पूरब अफगानिस्तान का पुराना नाम है। सुराष्ट्र काठिया-वाड़ के अन्तर्गत है। कौटिल्य के वाक्य के अर्थ के सम्बन्ध मे विद्वानों में कुछ मतभेद है, पर जान पडता है कि अफगानिस्तान, काठियावाड, सिध, पजाब आदि के क्षत्रिय तथा कुछ अन्य निवासी शस्त्रधारी और व्यापारी दोनो ही होते थे। उस समय नही तो कुछ समय बाद मारवाड के क्षत्रियों के विषय मे भी यही कहा जा सकता था। हीरानन्द के पूर्वज क्षत्रिय थे। सोलहवी शताब्दी मे गिरिधरसिह नामक उनके पूर्वज जिनहससूरि द्वारा जैन-धर्म[3] मे दीक्षित हुए। गिरिधर के पुत्र का नाम गेलाजी था और गेलाजी ही गेल्हड़ा गोत्र के प्रवर्त्तक हुए। हीरानन्द के पिता करमचन्द थे, पितामह अक्षयराज और प्रपितामह सिहराज। मूलत. क्षत्रिय होते हुए भी इस परिवार ने धनुर्वाण का परित्याग कर दिया था और अब इसकी जीविका व्यापारमात्र रह गई थी। नागौर में व्यापार का क्षेत्र संकीर्ण था। महत्त्वाकांक्षा रखने वाले हीरानन्द ने, उसके बड़े क्षेत्र की तलाश में ही, पूरब की दिशा मे यह प्रस्थान किया था।

यह दिल्लीश्वर शाहजहां का राज्य-काल था। वह गुणो मे अपने पितामह अकबर की बराबरी करने वाला तो न था, पर साथ ही उसमें वे दोष भी न थे जिनसे भरपूर होकर उसका पुत्र औरगजेब मुगल-साम्राज्य की जड़ खोदनेवाला हुआ। हिन्दू-धर्म के प्रति उसकी भी कुदृष्टि रहती थी, पर वह औरगजेब की तरह धर्मान्ध न था। बाप मे बेटे की-सी स्वार्थपरता, कपट या क्रूरता न थी। शाहजहां के समय मे सर्वत्र शान्ति-सी रही और देश की खासी आर्थिक उन्नति हुई। दिल्ली का दबदबा अभी चारों ओर बना हुआ था, और सम्राट्

का ध्यान बराबर इस ओर रहता था कि राज-कर्मचारी प्रजा का शोषण करने न पावे। ऐसी नीति के फलस्वरूप, खेतीबारी को ही नही, उद्योग-धन्धों तथा कला-कौशल को भी प्रोत्साहन मिला और भारतवर्ष के देशान्तर्गत व्यापार के ही नही, विदेशी व्यापार के भी क्षेत्र का विस्तार हुआ। दिल्ली मे कोहनूर[४] और तख्तताऊस[५] को देखकर विदेशी यात्रियो को चकाचौध तो लगती ही, उन्हे यह भी स्वीकार करना पड़ता कि और देशो की तुलना मे, भारतवर्ष विशेष धनधान्य-पूर्ण और सुखी है। इस देश के राजनीतिक-गगन मे बादल उमडने वाले थे, शान्ति का स्थान अशान्ति, सुख-संपद् का स्थान दुख-दारिद्र्य ले लेने वाला था, पर उस अध्याय का आरभ होने मे—औरंगजेब के तख्त पर बैठने मे—अभी प्राय. छः साल की देर थी।

भाग्य-परीक्षा के लिए पटना-जैसा स्थान चुन कर हीरानन्द ने बुद्धिमत्ता दिखाई थी। बिहार-प्रान्त की राजधानी तो यह था ही, वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण था। यहा से बाहर जाने वाली वस्तुओ[६] मे शोरा, गुड, चीनी, छीट, लाह, सोहागा, कस्तूरी, अफीम और हल्दी प्रधान थी। पटने की छीट दूर-दूर तक मशहूर थी। वहा कस्तूरी भूटान से आकर बिकती और सोहागा तिब्बत से। विदेशी व्यापारियो की ओर से इधर शोरे की खरीदारी बड़े पैमाने पर होने लगी थी। डचो और फरासीसियों के बाद जब अंगरेज इस मैदान मे आये, तब उनको ईस्ट इडिया कपनी को अपने संचालको से आदेश मिला कि व्यापार मे जो पूजी लगे, उसका कम से कम आधा शोरे की खरीदारी मे लगाया जाय और यह खरीदारी पटने मे ही की जाय।

शोरा बारूद बनाने मे काम आता था और ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए इसका व्यापार बड़ा ही लाभप्रद था। बगाल और बिहार के तत्कालीन इतिहास मे अक्सर यह विवरण मिलता है कि शोरे से लदी नावे पटने से हुगली या कलकत्ते चली। पर बीच मे ही राज-महल के पास नवाब के कर्मचारियो ने उन्हे इस कारण रोक लिया कि कपनी ने न तो चुगी चुकाई थी, न अब भी चुकाने को तैयार थी। पहले तो कपनी की ओर से यह दलील पेश की गई कि वह चुगी चुकाने से बरी है, पर जब इससे काम न बना, तब कर्मचारियो की खुशामद कर परवाना हासिल करने की कोशिश की गई। जब यह भी बेकार साबित हुई, तब रुपया मगाकर महसूल चुकाया गया और शोरे को जल्द से जल्द बंदरगाह पहुचाया गया।

जगत्सेठ-वश का ईस्ट इंडिया कंपनी[७] से कुछ ही समय बाद घनिष्ठ सम्बन्ध होने वाला था, और अन्त मे यह कंपनी जगत्सेठो की तो बात ही क्या, मुर्शिदाबाद की मसनद से दिल्ली के तख्त तक राजसत्ता को अपने हाथ मे कर, इस देश मे सर्वेसर्वा बनने वाली थी। अपनी दीवार की नीव डालने के दिनो मे कंपनी ने इस धनाढ्य और प्रभावशाली परिवार से तरह-तरह की सहायता ली, पर पलासी के युद्ध के बाद जब उसकी स्थिति काफी मजबूत हो गई और जगत्-सेठ-वश की दशा दिनों-दिन हीन होने लगी, तब अंगरेजों को तोते की तरह आख फेर लेने देर न लगी!

पटने मे हीरानन्द साह के जीवन के प्राय. साठ बरस व्यतीत हुए। वहां पहुचकर उन्होने महाजनी के कारबार मे हाथ लगाया था और उसी व्यवसाय के मार्ग पर वह धैर्य, साहस तथा एकनिष्ठा से आगे बढ़ते गये थे। आरंभ मे उन्हे अनेक कठिनाइयों का सामना

करना पड़ा था, पर वह हिम्मत हारने या घबराने वाले न थे। कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करते गये, अपने कारबार को बढ़ाते और उसकी नीव को दिन-दिन मजबूत करते गये।

जिस समय हीरानन्द पटने आये थे, उस समय बंगाल की राजधानी राजमहल थी और वहां नाजिम के पद पर शाहशुजा था। अपने भाई औरंगजेब से लड़ाई में हारकर वह अराकान भाग गया और वही कही उसकी मृत्यु हो गई। उसके वाद यह पद मीर जुमला को प्राप्त हुआ, और १६६४ में उसकी मृत्यु हो जाने पर शाइस्ता खा को। इसने बंगाल में दो बार निजामत की—पहली बार १६६४ से १६७८ तक और दूसरी बार १६८० से १६८८ तक। बीच मे कुछ महीने आजम खा कोका नाजिम रहा और प्राय. एक बरस औरंगजेब का बेटा मुहम्मद आजम।

शाइस्ता खां की धार्मिक नीति औरंगजेब ही की-सी थी। उसने हिन्दुओं के कितने ही मदिरों का विध्वंस कर डाला और उनसे जजिया[८] कर वसूल करने मे ऐसी सख्ती दिखलाई कि बंगाल में लाखों हिन्दू उससे बचने के लिए मुसलमान हो गये। मुसलमान इतिहासकारों ने लिखा है कि शाइस्ता खां के शासन-काल मे चावल दो आने मन विकता था। गल्ला और दूसरी चीजे भी काफी सस्ती थी, इसमें संदेह नही।

शाइस्ता खां के शासन-काल के प्रारम्भ मे ढाका फिर एक बार बगाल की राजधानी हो चला था। प्रायः चालीस बरस बाद यह सेहरा मुर्शिदाबाद के सिर बँधा।

शाइस्ता खां की बदली हो जाने पर, बंगाल का नाजिम, कुछ महीनो के लिए, खांजहां बहादुर हुआ और उसके बाद इब्राहीम खां।

शोभासिह के विद्रोह के दमन मे इब्राहीम खां अयोग्य साबित हो चुका था, इसलिए १६९७ में औरंगजेब ने अपने पोते अजीमुश्शान को बंगाल का नाजिम बनाकर भेजा। इसके बगाल पहुचने के पहले ही शोभासिह राजा कृष्णराम की लड़की के खंजर का शिकार हो चुका था। रहीम खां के उपद्रव कुछ समय तक जारी रहे, पर अजीमुश्शान के बंगाल पहुच जाने पर वह भी लडाई मे मारा गया। कुछ ही साल बाद अजीमुश्शान को बिहार की निजामत भी मिल गई।

सन् १७११ (तदनुसार सवत् १७६८) मे हीरानन्द साह का शरीरावसान हुआ। तिथि थी माघ कृष्ण ४। वह सात पुत्र और एक कन्या छोड़ मरे। पुत्रो के नाम थे, गुलालचन्द, गोवर्द्धनलाल, मलूकचन्द, सदानन्द, मानिकचन्द, अमीचन्द और दीपचन्द। इनमें सबसे यशस्वी मानिकचन्द हुए। कन्या का नाम था धनबाई, जो आगरे के उदयचन्द को ब्याही थी। इस धनबाई के गर्भ से ही उत्पन्न बालक को प्रथम जगत्सेठ होने का गौरव प्राप्त हुआ।

सन् १६५२ मे हीरानन्द पटने आए थे और सन् १७११ में उनकी मृत्यु हुई। इन वर्षो के बीच इस परिवार का प्रधान कार्यक्षेत्र बगाल बन चुका था, जहां आनेवाले दिनों मे इसकी और भी उन्नति होने वाली थी और यह घराना उस प्रान्त के इतिहासरूपी चक्र का धुरा-सा बनने वाला था।

धन और सतति से सम्पन्न हीरानन्द के परमानन्द मे लीन होने से पहले भारतीय इतिहास के रगमंच पर भी कई महत्त्वपूर्ण घटनाए घट चुकी थी; और इतिहास के स्रोत को घुमाने-फिराने वाले कई महान् व्यक्ति भी दुनिया से कूच कर चुके थे। हिन्दू-जाति की पत रखने वाले छत्रपति शिवाजी स्वर्ग सिधार चुके थे; चिड़ियो मे बाज

से लड़ने की क्षमता पैदा कर सिक्ख गुरु गोविन्दसिंह वीर-गति को प्राप्त हो चुके थे; ताजमहल का निर्माता शाहजहां उसकी ओर आंसू भरे नेत्रो से देखते हुए कारागार मे प्राण त्याग चुका था और आततायी औरगजेब भी अपनी स्वार्थपरता, कुटिलता, धर्मान्धता और नृशसता से मुगल-साम्राज्य की कब्र खोदकर, ९१ साल की उम्र मे, सदा के लिए अपनी कब्र मे सो चुका था।

जिस समय हीरानन्द साह की जीवन-लीला समाप्त हुई,उस समय दिल्लीश्वर का पद बहादुरशाह को प्राप्त था। पहले उसका नाम मुहम्मद मुअज्जम था। औरगजेब के दो बेटे और थे—मुहम्मद आजम और कामबख्श। औरगजेब अच्छी तरह जानता था कि उसके मरने पर उसके बेटे राजपाट के लिए आपस मे लडे बिना न रहेंगे। मुअज्जम सब से बडा था, पर जो स्वय अपने बाप को कैद कर चुका था और अपने बडे-छोटे भाइयो को मौत के घाट उतार चुका था, उसके मुह मे कब जबान हो सकती थी कि अपने बेटो को पारस्परिक प्रेम या नीति-परायणता का उपदेश देता? सोच-विचार कर और इस आशा से कि बेटे उसकी बात मान लेंगे, वह मरने से पहले राज्य का उन तीनो के बीच बँटवारा कर गया। वह उसका वसीयतनामा कहा जाता है। इसके अनुसार सब से बडे मुअज्जम को १२,९३,९८,९१० रु० की आय के बारह* सूबे, सब से ऊची आकाक्षा रखनेवाले आजम को ११,७६,०६,३८५ रु० की आय के छ† सूबे और औरगजेब

* दिल्ली, काश्मीर, लाहौर, मुल्तान, सिंध, अजमेर, अहमदाबाद, उडीसा, बगाल, बिहार, इलाहाबाद और अवध।

† आगरा, मालवा, खानदेश, बरार, बीदर और औरगाबाद।

की उपपत्नी उदीपुरीमहल की कोख से जन्मे हुए कामबख्श को ५,४७,९१,६२५ रु० की आय के दो* सूबे मिलते। मगर मुअज्जम को छोड किसी को यह बँटवारा मजूर न हुआ। वह अपने हिस्से में से आजम को अहमदाबाद और अजमेर भी दे देने को तैयार हो गया, पर आजम ने जवाब मे उसे यही लिखा कि "फर्श से छत तक मुझे देकर बाकी छत से आसमान तक तुम अपने लिए रख लो। मुझे और कोई बँटवारा मजूर नही"। भाइयों मे लड़ाई होके ही रही। इसमें आजम और कामबख्श मारे गये और विजयी मुअज्जम हुआ जो आलमगीर या बहादुरशाह के नाम से तख्त पर बैठा। इसी का पुत्र अजीमुश्शान था जो अब प्राय अपने वृद्ध पिता के साथ रहने लगा। हीरानन्द साह के मरने के दूसरे ही साल बहादुर शाह की मृत्यु हुई, पर अपने दुर्भाग्य के कारण, उसके बाद अजीमुश्शान दिल्ली के तख्त पर न बैठ सका।

---

* बीजापुर और हैदराबाद।

काबुल में आय से व्यय अधिक था। वह इस फेहरिस्त में शामिल नही है।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ ३—"यद्यपि राव अमरसिंह मारवाड-नरेश गजसिंह के सब से बड़े पुत्र थे, पर स० १६९० वि० कृ० बैसाख मास में उन्होने अपने छोटे पुत्र यशवन्तसिंह को युवराज की पदवी और इन्हे देश-त्याग की आज्ञा दी थी। यह बादशाह शाहजहा के दरबार में गये, जिसने इन्हे अच्छा मनसब, राव की पदवी तथा नागौर की जागीर दी।"

"राव अमरसिंह और सलावत खा बख्शी में बीकानेर की सीमा के विषय में कुछ मनोमालिन्य हो गया था। बीमार होने के कारण या जैसा कि अमरसिंह के कवि 'बनवारी' का कथन है, छुट्टी से अधिक दिन व्यतीत करने पर किये गये जुरमाने के रुपये न देने के कारण सलावत खा बख्शी ने दरबार मे उसके लिए तकाजा किया, जिस पर इन्होनेरोष प्रकट किया। सलावत खा ने इस पर इन्हें गवार कहा, जिससे क्रुद्ध होकर इन्होने उसे मार डाला। दोहा यो है—

इत गंकार मुख तें कढी, उत निकसी जमधार ;
'वार' कहन पायो नही, कीन्हो जमधर पार।

"मआसिरल उमरा" के अनुवादक की पादटीका।

मूल पुस्तक के लेखक ने राव अमरसिंह के वृत्तान्त मे लिखा है कि शाहजहाँ ने उसके पुत्र रायसिंह को एक हजारी, सात सौ सवार का मनसब दिया और बाद को उसकी पदोन्नति भी हुई। औरगजेब का पक्षपाती होने के कारण यह तरक्की करता ही गया और एक दिन महाराज यशवतसिंह को चिढाने के लिए, औरंगजेब ने इसे राठौर-जाति का सरदार और जोधपुर का राजा भी बना दिया। इसके मरने पर औरगजेब ने इसके पुत्र इन्द्रसिंह को जोधपुर की राजगद्दी पर बहाल रक्खा, पर शान्ति स्थापित होते न देखकर कुछ ही समय बाद उसे यह सारी व्यवस्था बदलनी पडी। इन्द्रसिंह को मारवाड के बदले नागौर लेकर पुनर्मूषिक होना पडा।

(२) पृष्ठ ३— पडित गौरीशकर हीराचन्द ओझा लिखते है—

"वर्तमान सारा बीकानेर राज्य तथा मारवाड़-जोधपुर-राज्य का उत्तरी हिस्सा जिसमें नागौर आदि परगने हैं, प्राचीन काल में जागल देश कहलाता था।

"जागल देश की राजधानी अहिछत्रपुर थी, जिसको इस समय नागौर कहते हैं और जो जोधपुर-राज्य के उत्तरी भाग में है।

"जोधपुर-राज्य के नागौर-नगर को जागल देश की राजधानी अहिछत्रपुर मानने का पहला कारण तो यह है कि नागौर नागपुर का प्राकृत रूप है। नागपुर का अर्थ है 'नाग का नगर', अहिछत्रपुर का अर्थ है 'नाग है छत्र जिस नगर का'। नाग और अहि दोनों एक ही आशय (साप) के सूचक हैं। सस्कृत के लेखक नामों का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं। पुराणों में विशेष कर हस्तिनापुर नाम मिलता है, परन्तु भागवत में उसी के स्थान में गजसाह्वयपुर (भागवत १।८।४५, ४।३१।३०, ४।१०।५७) या गजाह्वयपुर (भागवत १।९।४८, १।१५।३८) नाम भी है। महाभारत में हस्तिनापुर के लिए नागसाह्वयपुर (७।१।८, १४।१६।२०) और नागपुर (५।१४७।५) नामों का प्रयोग भी मिलता है। क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनों ही एक ही अर्थ के सूचक हैं। दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० स० १२२६ फाल्गुन वदि ३ के बिजौलिया (उदयपुर-राज्य में) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामत का अहिछत्रपुर में राज्य करना लिखा है। (विप्रश्रीवत्सगोत्रेऽभूदहिछत्रपुरे पुरा . ..)। पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य में पाया जाता है कि वासुदेव (सामत का पूर्वज) शिकार को गया, जहा एक विद्याधर की कृपा से शाकभरी (साभर) की झील उसको नजर आई। इससे पाया जाता है कि सांभर की झील चौहानों की मूल राजधानी अहिछत्रपुर से बहुत दूर न थी। ऐसी दशा में नागौर ही अहिछत्रपुर हो सकता है।

"जागल देश की राजधानी अहिछत्रपुर (नागौर) के आस-पास छोटे-से प्रदेश का प्राचीन नाम सपादलक्ष था। नागौर के आसपास के इलाके (नागौर पट्टी) को वहा के लोग अब तक 'श्वाजक' या 'सवाजक' कहते हैं जो सपाद-लक्ष का ही लौकिक रूप है"।

नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (नवीन सस्करण)-भाग २—अक ३।

(३) पृष्ठ ४—"यद्यपि जैन-धर्म की स्थिति के ऐसे प्राचीन लिखित प्रमाण नही मिलते तो भी अजमेर जिले के वर्ली नामक गाव में वीर सवत् ८४ (वि० स० पूर्व ३८६, ईस्वी सन् पूर्व ४४३) का एक शिलालेख मिला है, जिससे अनुमान होता है कि अशोक से पूर्व भी राजपूताने मे जैन-धर्म का प्रचार था। जैन लेखको का यह मत है कि राजा सप्रति ने, जो अशोक का वशधर था, जैन-धर्म की वडी उन्नति की और राजपूताना व इसके आसपास के प्रदेशो में भी उसने कई जैन-मदिर वनवाये थे। विक्रमीय सवत् की दूसरी शताब्दी के मथुरा के ककाली टीले वाले जैन-स्तूप तथा इधर के कुछ अन्य स्थानो के मिले हुए प्राचीन शिलालेखो तथा मूर्त्तियो से पाया जाता है कि उस समय भी यहा जैन-धर्म का अच्छा प्रचार था। वि० सवत् की तेरहवी शताब्दी मे गुजरात के सोलकी राजा कुमारपाल ने अपने प्रसिद्ध विद्वान् गुरु हेमचन्द्राचार्य के उपदेश से जैन धर्म ग्रहण कर उसकी वहुत कुछ उन्नति की। उस समय राजपूताने के कई राजाओं ने हिंसा रोकने के लिए लेख भी खुदवाये, जो अव तक विद्यमान है। कुमारपाल के पूर्व से लेकर अव तक के सैकडो भव्य जैन-मदिर यहां विद्यमान है, जिनमें कई एक स्वय कुमारपाल ने वनवाये थे। "राजपूताने का इतिहास", ले०—प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा, पहली जिल्द ।

(४) पृष्ठ ५—प्रसिद्ध हीरा, जो प्राय ५००० वर्ष पहले दक्षिण भारत में गोदावरी के तल से प्राप्त हुआ था। इसका पूरा—विशेषत प्राचीन—इतिहास नही मिलता । अलाउद्दीन खिलजी ने इसे मालवा के हिन्दू राजा से जवरदस्ती ले लिया और तव से यह दिल्लीश्वरो के पास रहा। नादिरशाह इसे लूटकर ईरान ले गया, फिर कालचक्र इसे वरसो वाद १८१३ में भारतवर्ष लौटा लाया और यह पजावपति रजीतसिंह का मुकुटमणि हो गया । जव अगरेजो का आधिपत्य हुआ, तव वे इसे १८४९ मे अपने देश ले गये, और १८५० में यह रानी विक्टोरिया को भेंट किया गया। आरभ मे यह आज से कही भारी था। जान पडता है कि इसके कई टुकडे हो चुके है।

(५) पृष्ठ ५—मोर के आकार का राजसिंहासन, जिसे शाहजहा ने वनवाया

था और जिस पर वह पहली बार १२ मार्च १६३५ को बैठा था। यह सवा तीन गज लम्बा, सवा दो गज चौडा और पांच गज ऊँचा था। इसमे एक लाख तोला सोना लगा था और यह बहुमूल्य रत्नो से जटित था। सर यदुनाथ सरकार ऐतिहासिक शोध के आधार पर, इसमे लगे हुए सामान की कीमत एक करोड रुपये बताते है, जिसमें सोने की कीमत उस समय के भाव से १४ लाख थी। हा, मजूरी उस एक करोड के अलावा थी। साधारणत. तख्त ताऊस की कीमत प्राय. ९ करोड रुपये बताई जाती थी। इसे नादिरशाह १७३९ में ईरान लेता गया। आज भी यह वहीं मौजूद है, पर अपनी असली हालत में नही।

(६) पृष्ठ ५—इस देश से बाहर जानेवाली अन्य वस्तुओ में नील (रंग के काम के लिए), मिर्च, सोठ, घी, मोम और कपडे प्रधान थे। कपड़े सूती और रेशमी दोनो ही होते थे। छीट, मलमल, ताफ्ता, बाफ्ता—इनकी विदेशो में बराबर बड़ी माग रहती थी। बाहर से यहा आने वाली चीजो में मुख्य थी—चादी, तावा, सीसा, बनात, पारा, मूगा, काच के सामान, मसाला, कस्तूरी और सोहागा। कुछ हद तक हीरे का निर्यात होता था, और मोती का आयात। ईरान, अरब आदि देशो से प्राय. हर साल एक लाख घोड़े मगाये जाते थे। शाहजहा के समय में किसी-किसी ताजी घोडे की कीमत १५,००० रु० तक जा पहुँचती थी। कभी-कभी आजाने वाले सोने के अलावा तंबाकू और हब्शी गुलाम भी हमारे आयात में शामिल थे।

(७) पृष्ठ ६—ईस्ट इडिया कपनी उस व्यापारी सस्था का नाम था, जो पूरब के देशो के साथ—पर विशेषत भारतवर्ष के साथ—व्यापार करने के लिए अगरेजो ने कायम की थी। सब से पहले इस मैदान मे आने वाले पुर्त्तगीज थे। वास्को डि गामा नामक पुर्त्तगीज १४९८ में, अफ्रीका के दक्षिण होकर, समुद्र की राह, भारतवर्ष के पश्चिमी तट पर कालीकट पहुँचा था और अपने देश के साथ यूरोप के अन्य देशो का भी पथ-प्रदर्शक बन चुका था। प्राय. १०० बरस तक इस व्यापार-वृक्ष के मीठे फल अकेले पुर्त्तगीज खाते रहे।

पर उनकी नीति-रीति कुछ एसी हो चली—ईसाई-धर्म का बलपूर्वक प्रचार उसका ऐसा अभिन्न अग हो गया—कि वे अपनी उन्नति मे आप ही बाधक बन गये । फिर १६वी सदी के अन्त में और देशो का ध्यान इस दिशा में गया और वे भी कमर कस कर उन फलो के साझीदार होने के लिए मैदान मे आ डटे । इनमे मुख्य थे इगलैण्ड, हालैंड, डेनमार्क और फ्रास । अगरेजो से प्रतिस्पर्द्धा करने वाले प्रधानत डच (हालैण्ड) और फ्रेच (फरासीसी) साबित हुए । फ्रास सब के बाद मैदान में आया था और अगरेजो का सब से प्रबल प्रतिद्वंद्वी भी वही निकला । पर अन्त मे विजय-लक्ष्मी की कृपा अगरेजो पर ही हुई और फरासीसियो को मैदान छोड़ देना पडा।

अफ्रीका के दक्षिण होकर जिस समुद्र-पथ से जहाज भारतवर्ष पहुँच सकते है, उसका पता चलने से पहले, भारतवर्ष और यूरोप के बीच जो व्यापार होता था, वह खुश्की की राह से होता था । अगरेज इधर का माल पहले तो इटली के बन्दरगाह वेनिस से खरीद कर ले जाया करते थे, पर बाद मे पुर्त्तगाल के लिसबन नगर से यह सम्बन्ध स्थापित हुआ। फिर भी अगरेज इससे संतुष्ट न थे और भारतवर्ष तथा इधर के देशो से सीधा व्यापार करने के लिए पुर्त्तगीज का अनुसरण करने को उत्सुक थे । पर इसमें कई कठिनाइया थीं । इगलण्ड की रानी एलिजाबेथ के शासनकाल में उस देश की सर्वांगीण उन्नति हुई और उसके साहसी नाविको ने अपनी महत्त्वाकाक्षा पूरी करने के कई प्रयत्न किये । अन्त में एलिजाबेथ के मरने से प्राय. तीन वर्ष पूर्व सन् १६०० में एक कम्पनी सगठित हुई और उसे पन्द्रह साल तक भारतवर्ष के साथ व्यापार करने का कुछ शर्त्तो पर इजारा मिला । इस कपनी की पूजी ७२,००० पौंड थी । अगरेजो का पहला बेडा, जिसमें पाच जहाज थे, १६०१ में इधर भेजा गया । यह ईस्ट इडिया कपनी के व्यापार का श्रीगणेश था ।

इस व्यापार से अगरेजो को बडा लाभ होने लगा—हिस्सेदारो को १०० प्रतिशत तक मुनाफा मिलने लगा । इससे इंगलैंण्ड में कपनी को अधिकाधिक पूजी मिलने लगी । अपने अन्तिम दिनो में कंपनी की पूजी ६,०००,००० पौंड थी । इगलैण्ड की सरकार बराबर कपनी की पीठ पर रही,

इसकी सफलता का मूल कारण उसीं को समझना चाहिए । कपनी की पहली फैक्टरी* सन् १६१२ में सूरत म खुली । १६३९ में उसने एक हिन्दू राजा से मद्रास खरीद लिया और वहा एक किला भी बनवाया। १६६८ मे द्वितीय चार्ल्स से वम्बई शहर मिल गया । चार्ल्स का विवाह पुर्त्तगाल की राजकुमारी से होने पर उसे यह नगर दहेज मे मिला था । चूकि यहां की आबहवा बहुत खराव समझी जाती थीं, यह कपनी को कौडियो के मोल मिल गया । इगलैण्ड मे कपनी के शत्रु तथा विरोधी भी थे । जब-जब उसके इजारे की मीयाद पूरी होने लगती, तब-तब उसके विरुद्ध वहा एक आन्दोलन खडा हो जाता, पर सरकार की दयादृष्टि होने के कारण सारी कठिनाइया हल हो जाती । सत्रहवी सदी के अन्त मे, एक नई कपनी को सरकार को वीस लाख पौंड कर्ज देने की शर्त्त पर इस व्यापार में शामिल होने की इजाजत मिली । पर कुछ ही समय वाद दोनो कपनिया मिलकर एक हो गईं ।

यहा कपनी ने अपने व्यवसाय का आरभ सूरत में किया था, फिर उसने दिल्ली और आगरे से अपना सम्वन्ध स्थापित किया । सन् १६२० और १६३२ के बीच उसकी ओर से कई चेष्टाये पटने से भी सम्वन्ध जोडने की हुईं, पर स्थल-मार्ग से शोरा-जैसी भारी चीज को सूरत पहुँचाने मे इतना खर्च बैठता था कि इनमे कोई भी सफल न हो सकी और अन्त में उसे यह प्रयास ही छोड़ देना पडा । इससे पहले कंपनी की एक शाखा दक्षिण के मछलीबन्दर (मसुलीपट्टम्) में खुल चुकी थी । वही से १६३३ में आठ अंगरेज जलमार्ग से बगाल को भेजे गये । रास्ते में उडीसा पडता था, इसलिए ये पहले उसकी राजधानी कटक गये । वहा उस समय मुगल-सम्राट् का प्रतिनिधि आगा मुहम्मद जमा था । अगरेज व्यापारियो के नेता का नाम राल्फ कार्टराइट था । जब दरवार मे ये लोग आगा मुहम्मद के सामने पेश

*कपनी जहा अपना कारोबार करती, उस स्थान को अंग्रेजी में "फैक्टरी" कहते थे । वहा तरह-तरह के माल की खरीद-बिक्री हुआ करती; स्टाक रक्खे जाते और निर्यात की दृष्टि से सारी क्रियाएं पूरी की जाती—उदाहरणार्थ, रेशम की रंगाई ।

किये गये, तब उसने जूती उतार कर अपना एक पैर कार्टराइट की ओर बढा दिया। अभिप्राय यह था कि कार्टराइट पहले उसे चूम ले, फिर अपना आवेदन सुनावे। ईस्ट इडिया कपनी का मुख्य प्रतिनिधि बडे असमजस में पड गया, पर निरुपाय होकर उसे कदमबोसी करनी ही पडी। फिर उसने कपनी की ओर से व्यापार-सम्बन्धी सुविधाओं की याचना की। वे उसे बात की बात में मिल गईं। कुछ ही समय में हरिहरपुर तथा बालेश्वर में अगरेजो के कारखाने खुल गये। उडीसा में पैर जम जाने पर, कपनी बगाल की ओर बढी, और वहा उसकी पहली फैक्टरी १६५१ में हुगली नामक नगर में खुली। धीरे-धीरे और फैक्टरिया खुल गई—जैसे मुर्शिदाबाद के पास कासिमबाजार की फैक्टरी १६५७ में, ढाके की १६६८ में।

पहले बिक्री के माल पर ढाई रुपया सैकडा चुगी देने का नियम था। फिर यह नियम हुआ कि मुसलमानो से तो ढाई रुपया सैकड़ा ही लिया जाय, पर हिन्दुओ से इसका दूना। औरगजेब ने मुसलमान-मात्र को चुगी देने से बरी कर दिया। गैर-मुस्लिम व्यापारियो से चुगी के अलावा जजिया नामक कर भी वसूल किया जाता था। अगरेजो को सब मिलाकर साढे तीन रुपये सैकड़ा देना पडता था। १६८० मे औरगजेब ने एक फरमान-द्वारा यह नियम जारी किया कि सूरत बन्दरगाह में ईस्ट इडिया कपनी का जो माल उतरे, उस पर साढे तीन रुपये सैकडे के हिसाब से चुगी वसूल कर ली जाय, पर उसके बाद कपनी उस माल के लिए कही भी और किसी प्रकार के शुल्क या कर की देनदार न समझी जाय। उदाहरणार्थ, अगर माल को कपनी दिल्ली ले जाकर बेचे तो रास्ते में कोई उससे राहदारी या अन्य प्रकार का शुल्क तलब न करे। १६५० में अँगरेजो ने बगाल के नाजिम शाहशुजा को परितुष्ट कर, उससे अपने लिए यह रिआयत करा ली थी कि हर साल कपनी बतौर पेशकश कुल ३००० रु० दिया करेगी—उस प्रान्त में इसके अलावा कुछ भी सरकार को मागने का अधिकार न होगा।

इस सम्बन्ध में दो बाते ध्यान मे रखने की है। औरगजेब के फरमान में सिर्फ उस माल का जिक्र था, जो सूरत बन्दरगाह होकर इस देश मे आया

हो। उसका यह अर्थ कदापि नही हो सकता था कि माल चाहे और बन्दरगाह से भी प्रवेश करे तो वह सूरत होकर ही इस देश में आया हुआ समझा जाय और वह साढे तीन प्रतिशत चुगी का भी देनदार न हो। रह गई बगाल की बात। वहा भी प्रान्तीय शासक को ऐसा कोई अधिकार न था कि चुगी-सम्बन्धी भारत-व्यापी विधान की उपेक्षा या अवज्ञा कर, किसी के साथ मनमानी रिआयत कर सके।

शाहशुजा के समय मे कपनी का कारबार बहुत ही छोटे पैमाने पर था। जब उसकी वृद्धि हुई, तब बगाल के नाजिमो ने केन्द्रीय विधान के अनुसार उससे चुगी तलब करना शुरू किया। कपनी का सिद्धान्त था कि "यहा लेने को आये है, यहा देने नही आये"। वाद-विवाद, हीला-हवाला, अर्ज-मिन्नत, गुहार-दुहाई, धमकी-बन्दरघुडकी,—जब इनसे काम न निकलता तब वह प्रभावशाली व्यक्तियो से अपनी सिफारिश कराती। अधिकारियो की मुट्ठी गरम करने की भी भरपूर चेष्टा करती। पर जब इन युक्तियों से भी सफलता प्राप्त न होती, तब वह कही खम ठोकने और कही बन्दूक या तोप दागने लगती। ठठेरे की ऐसी बिल्ली से यहा के शासको को पहले कभी काम न पड़ा था।

१६८५ में बगाल का नाजिम शाइस्ता खा था। उस समय कपनी की फैक्टरी हुगली नगर मे थी। शाइस्ता खा ने कपनी से साढे तीन प्रतिशत के हिसाब से चुगी तलब की तो इसने देने से इन्कार कर दिया। इस पर उसने इसके कामकाज पर प्रतिबन्ध लगा दिया और इसके कर्मचारियों के साथ कुछ सख्ती से पेश आया। कपनी का एजेंट या गुमाश्ता जाब चारनक था। उसने नवाब को तुर्की-बतुर्की जवाब देने की कोशिश की, पर पर्याप्त शक्ति न होने के कारण वह अन्त मे बोरिया-बंधना उठाकर समुद्र की ओर चल दिया। हुगली से २४ मील दूर नदी के किनारे वह सुतानती नामक गाव में ठहरा, जो इस समय कलकत्ते के अन्तर्गत है, पर उसको निरापद न समझकर वह समुद्र की ओर सरकता ही गया और अन्त मे उसने मेदनीपुर जिले के हिजली नामक गाव के पास पहुचकर लगर डाला। पीछे यहा होने वाली

लड़ाई मे अंगरेज सस्ते छूट गये और उन्हे हुगली लौट जाने की इजाजत मिल गई । यह वात सन् १६८७ की है ।

अंगरेज अभी इस लायक तो न थे कि सम्राट् या किसी सूबेदार की सेना के आगे थोड़ी देर भी ठहर सकते, पर जलयुद्ध की वात और थी । समुद्र पर जहा चाहते, इस देश के शासकों के छक्के छुडा सकते थे। जाव चारनक फिर लौटकर हुगली न गया । इधर-उधर अपना समय विताने लगा । १६८८ में इंगलैण्ड से एक जहाजी वेड़ा आकर बंगाल की खाडी मे काफी उत्पात मचाने लगा । वालेश्वर (वालासोर), चटगाव-जैसे नगरो पर उसने आक्रमण किये और लोगों के साथ—विशेषत. वालेश्वर मे—बुरी तरह पेश आया । उधर इंगलैण्ड से एक वेड़ा लूटमार करने और उपद्रव मचाने के उद्देश से सूरत भी भेजा जा चुका था । इसने भी उधर आतंक फैला दिया ।

अंगरेजो के साथ पुर्तगीज , डच, फ्रेंच आदि जातियो के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि उनकी तुलना मे इस देश की नौसेना नही के बराबर थी और हमारी इस शक्तिहीनता से वे पूरा लाभ उठाते थे । दरियाई डकैती से अपने व्यापारियो या अन्य यात्रियो की रक्षा करने मे हमारे दिल्लीश्वर भी असमर्थ थे । सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ऐसे डकैत विशेषत. अगरेज ही चले थे। हज के उद्देश से जाने-आने वाले मुसलमान इन लुटेरो-द्वारा वराबर सताये जाते, इसका औरगजेब को विशेष दुःख होता। पर वह लाचार था, जानता था कि समुद्र पर उसका कोई बस नही चल सकता । वह चाहता तो अंगरेजो को कठोर से कठोर दड दे सकता था। एकाध वार उसकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई भी । अरव-सागर मे अगरेजो के जहाजी बेड़े ने जो लूटमार की थी, उसका वदला लिये विना वह न रह सका। सूरत के सारे अगरेज कैद कर लिये गये और जंजीरो से जकड़वन्द कर शहर मे कई रोज घुमाये गये । कंपनी की ओर से दो प्रतिनिधि सम्राट् की सेवा मे क्षमा मागने गये तो इन्हें भी सिपाहियों की हिरासत मे उसी प्रकार जकड़वन्द होकर जाना पडा। जव ये दरवार मे औरंगजेब के सामने पेश किये गये, तो इनके हाथ रूमालो से बंधे हुए थे । दोनो ने फर्श पर लेटकर सम्राट् का अभिवादन किया और कंपनी

की ओर से उस बेडे के कुकृत्यो के लिए पश्चात्ताप प्रकट कर क्षमा मागी। जब उन्होने डेढ़ लाख रुपये जुर्माने देना और कुछ दूसरी शर्तो की पाबन्दी करना मजूर किया, तब सम्राट् ने क्षमा-प्रदान कर यह आज्ञा दे दी कि अगरेज जिस तरह व्यापार करते आ रहे थे, उसी तरह करते रहे। यह घटना १६९० की है। औरगजेब जानता था कि अगर उसने और भी सख्ती की या अगरेजो का देश-निकाला कर दिया, तो इस देश के मुसलमानो के लिए हज की यात्रा बिलकुल बन्द हो जायगी।

बगाल के नाजिम इब्राहीम खा को भी हुक्म भेजा गया कि अगरेजो से हर साल बदस्तूर ३००० रु० पेशकश ही लिया जाय, उनसे किसी तरह की चुगी तलब न की जाय। अब मद्रास से जाब चारनक बगाल भेजा गया और उसने २४ अगस्त १६९० को फिर एक बार सुतानुती पहुँचकर वही कपनी की फैक्टरी खोली, और इस तरह वर्त्तमान कलकत्ते की नीव डाली।

सन् १६९६ में मेदिनीपुर जिले के शोभासिह नामक जमीदार ने उडीसा-निवासी अफगानो के सरदार रहीम खा से मिलकर बगावत कर दी और जहा-तहा लूट-मार शुरू कर दी। पहले तो उसने बर्दवान के जमीदार राजा कृष्णराम का घर-बार लूटा, फिर धावा कर हुगली जा पहुँचा और सरकारी किले पर भी कब्जा कर लिया। मौका पाकर डच, फरासीसी और अगरेज व्यापारियों ने नाजिम से अपने-अपने कारखानो को सुरक्षित करने के लिए किलेबन्दी करने की इजाजत मागी। इससे पहले उन्हें उस ओर ऐसी इजाजत कही नही मिली थी। इब्राहीम खा ने उनकी बातो मे आकर उनकी दरख्वास्तें मजूर कर ली। नतीजा यह हुआ कि डचो ने चिंचुरा (चिंसुरा) में, फरासीसियो ने चन्द्र (चन्दन) नगर मे और अगरेजो ने कलकत्ते में अपनी-अपनी किलेबन्दी शुरू कर दी। जलमार्ग से ही नही, स्थलमार्ग से भी, बगाल की राजसत्ता पर प्रहार या आक्रमण करने का अगरेजो को मौका मिल गया।

(८) पृष्ठ ७—जजिया-कर उन लोगो को देना पडता था, जो मुसलमान न थे, हालाकि कुछ मुसलमान धर्माचार्यो के मतानुसार हिन्दुओ के लिए इस्लाम

का विधान और ही था। सर यदुनाथ सरकार ने अलाउद्दीन खिलजी के काजी मुगीसुद्दीन का यह मत उद्धृत किया है—

"शरीअत के अनुसार हिन्दू खिराजगुजार है। हिन्दुओ को लूटने-मारने की हमे आज्ञा मिली हुई है। हम लोग इमाम हनीफा के अनुयायी है, पर उनके सिवाय किसी आचार्य ने यह नही कहा है कि बादशाह हिन्दुओ से जजिया लेकर ही सतोप करे। औरो के मतानुसार तो हिन्दुओ के लिए वस यही विधान है कि इस्लाम या मौत।"

अकबर ने इस कर को उठा दिया था, पर औरगजेव ने १६८० के लगभग इसे फिर लगाया। नियम था कि बच्चो, औरतो, गरीव बूढो-अन्धो तथा कुछ अन्य लोगो को छोडकर यह मुण्ड-कर प्रत्येक हिन्दू से वसूल किया जाय। करदाता तीन श्रेणियो मे विभक्त थे—(१) गरीव मजूर या किसान (२) मध्यम वर्ग के लोग, और (३) धनी। प्रथम श्रेणी मे वे हिन्दू समझे जाते थे जो सम्पत्तिहीन हो या जिनकी हैसियत २०० दिरम* से ऊपर न हो। द्वितीय श्रेणी वाले वे लोग थे, जिनकी हैसियत २०० और १०,००० दिरम के बीच थी। तृतीय श्रेणी के धनी वे हिन्दू थे, जिनकी हैसियत १०,००० दिरम से ऊपर थी। तीनो श्रेणियो के लिए जजिया-कर क्रमश १२, २४ और ४८ दिरम होता था—अर्थात् प्राय ३ रु० ५ आने, ६ रु० १० आने और १३ रु० ५ आने।

सर यदुनाथ सरकार लिखते है कि "गरीव से गरीव हिन्दू को जजिया के रूप मे ३ रु० ५ आने कर देना पडता था। सोलहवी सदी के अन्त मे औसत बाजार-भाव से ३ रु० ५ आने को ९ मन आटा मिल सकता था। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर सरकार किसी हिन्दू को जबरन मुसलमान न बनाती तो उससे इसकी कीमत जजिया-कर के रूप मे साल-बसाल वसूल करती जाती। गरीव से गरीव हिन्दू के लिए यह कीमत होती उसकी साल भर की पूरी खूराक।" बगाल में जो गरीव हिन्दू इस कर का भारी बोझ न उठा सकते, उन्हे मजबूर होकर मुसलमान हो जाना पडता।

* एक दिरम प्राय साढे चार आने के बराबर होता था।

मानिकचन्द

तारकमतिपृच्छन्तमर्थो बालमतिवर्तते,
अर्थोह्यर्थस्य नक्षत्रं, किं करिष्यन्ति तारकाः?
साधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् नराः यत्नशतैरपि,
अर्थैरर्थाः प्रवर्ध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव।

धन कमाने के लिए ग्रह, नक्षत्र आदि पर अत्यधिक भरोसा करना एक तरह का लड़कपन है। जो ऐसा करता है, लक्ष्मी उसके हाथ नहीं लगती। अर्थ दिलाने वाला नक्षत्र अर्थ आप ही है, गह या तारे कुछ नही कर सकते। सौ बार भी प्रयत्न करना पडे तो अर्थ-साधक सफलता प्राप्त कर के ही दम लेगा। अर्थ अर्थ ही के द्वारा वशीभूत किया जा सकता है, जैसे हाथी हाथियो के द्वारा।

—कौटिलीय "अर्थशास्त्र"

उम्र के लिहाज से मानिकचन्द हीरानन्द के पांचवे पुत्र थे, पर इतिहास के रंग-मच पर हम उन्ही को देख पाते है, उनके और भाइयों को नही। कारण स्पष्टत. यह है कि मानिकचन्द ढाक, और कुछ काल बाद, मुर्शिदाबाद जाकर पूरब भारत के राजनीतिक केन्द्र में पहुंच गये, जहा शासको को अपने व्यवहार और अपनी सेवाओं से संतुष्ट कर उन्हे धन और यश कमाने का अपूर्व अवसर मिल गया। उनके और भाई जहां रहे, राजा या राजनीति से प्राय. अलग रहे, इसलिए उन्हे मानिकचन्द की-सी न तो आर्थिक सफलता प्राप्त हो सकी न लोक-ख्याति।

बंगाल पर मुगल-वंश का आधिपत्य अकबर के समय मे हुआ। जब वहां अमन-चैन कायम हो गया तब शासन-सम्बन्धी स्थायी व्यवस्था की ओर ध्यान दिया गया। प्रान्त में शान्ति-रक्षा के लिए जिम्मेवार नाजिम बनाया गया और राजस्व-सम्बन्धी प्रबन्ध के लिए दीवान। चौकीदार, कोतवाल, फौजदार आदि तो नाजिम के मातहत रहे और पटवारी, कानूनगो, आमिल आदि दीवान के। थोडे मे कहा जा सकता है कि तलवार तो नाजिम के हाथ मे दे दी गई और कलम दीवान के। यो तो अपने क्षेत्र मे दीवान नाजिम से स्वतत्र था और उसका अनुशासन सीधे दिल्ली से हुआ करता था, पर तलवार और कलम के बीच उस समय प्रधानता तलवार की ही हो सकती थी। सिद्धान्त चाहे जो रहा हो, वस्तु-स्थिति यह थी कि दीवान को प्राय. नाजिम की ही इच्छा के अनुसार चलना पड़ता था और इधर जब से अजीमुश्शान बंगाल का नाजिम हुआ था तब से दीवान मिट्टी की मूर्त्ति-सा बन गया था और नाजिम ने आर्थिक क्षेत्र पर भी अपना अधिकार जमाना और राजस्व-सम्बन्धी मामलों मे भी दस्तन्दाजी करना शुरू कर दिया था। यह बात अधिकारो को विभक्त रखने की मुगल-परम्परा और औरंगजेब की अपनी नीति के प्रतिकूल थी।

अजीमुश्शान परले सिरे का लोभी था। उसने अगरेजों से कुल १६,००० रु० लेकर ही उन्हे सुतानुती, गोविन्दपुर और कलिकाता इन तीनो गांवो की जमीदारी दे दी थी। इन्ही की समष्टि का नाम पीछे कलकत्ता पडा। ऐसे हस्तक्षेप से ही सतुष्ट न रह कर उसने व्यापार मे भी हाथ लगाया। जो माल चटगाव बन्दरगाह मे उतरता वह उसकी ओर से खरीद लिया जाता, जिसे 'सौदा-य-आम' कहते। फिर वही माल मुनाफे पर 'सौदा-य-खास' के नाम से व्यापारियो

को बेच दिया जाता। खरीद-बिक्री के दाम बहुत कुछ उसकी मर्जी पर मुनहसर होते। ज्योही औरगजेब को इसकी सूचना मिली उसने अपने स्वाभाविक ढग से पोते को यह लिख कर तिरस्कृत किया कि "तेरा यह 'सौदा-य-खास' रिआया पर जुल्म है। मै इसे 'सौदा-य-खाम' (कच्चा) कहूगा। अपनी इस सौदागरी से तू अपने को 'सौदाई' (पागल) साबित कर रहा है।" अपनी नाराजगी जाहिर करने के लिए उसने अजीमुश्शान का मनसब भी घटा दिया। नाजिम फौरन व्यापार के क्षेत्र से अलग हो गया।

पर बंगाल मे एक ऐसे दीवान की जरूरत थी। जिसकी रीढ मजबूत हो और जो नाजिम से ऐसी बातो मे दबने वाला या उसकी हा मे हा मिलाने वाला न हो। इसलिए औरगजेब ने सन् १७०१ मे कारतलब खा को, जिसका असली नाम मुहम्मद हादी था, दीवान के पद पर नियुक्त कर वहा भेजा। यही कारतलब खा बगाल के इतिहास मे मुर्शिदकुली खा के नाम से मशहूर हुआ।

कहा जाता है कि मुहम्मद हादी का जन्म किसी ब्राह्मण-कुल मे हुआ था, पर बचपन मे अनाथ होकर वह एक ईरानी व्यापारी के हाथ मे पड गया और मुसलमान हो गया। फिर कुछ समय ईरान मे बिता कर वह भारतवर्ष लौटा और यहा सरकारी कर्मचारी हो गया। तरक्की करते करते वह उडीसा का दीवान हुआ। औरगजेब उसे अपना खैरख्वाह समझता था, इसलिए उसने उसे और भी ऊचा पद देकर बगाल का दीवान बना दिया।

कुछ समय से बगाल सरकार की आर्थिक अवस्था असतोषजनक हो रही थी। आय से व्यय का पूरा पड़ना कठिन हो रहा था। कर्मचारी या मनसबदार बगाल मे रहना पसन्द न करते। वहा की जलवायु

वदनाम थी। इसलिए प्रलोभन-स्वरूप उन्हे वडी वड़ी जागीरे दी जाती। नतीजा यह हुआ कि खास महाल कम रह गये और वगाल मे ववत के बजाय टोटा रहने लगा। केन्द्र अर्थात् दिल्ली से सहायता मिले बिना प्रान्तीय सरकार का काम चलना असभव हो गया। कार-तलब खा ने पहुचते ही पहला सुधार यह किया कि जागीरदारो की जो जमीन बगाल मे थी वह प्राय ले ली और उसके वदले उन्हे उड़ीसा में उससे घटिया जमीन दे दी। फिर उसने माल या खिराज की उगाही और सरकारी खर्च कम करने की ओर ध्यान देना शुरू किया। कुछ ही समय मे वहा खासी वचत होने लगी और 'भूखा' बगाल[1] अब सम्राट् की दक्षिण की लडाइयो मे उलझी हुई सेना के लिए प्रचुर परिमाण में आहार जुटाने लगा।

कारतलब खा द्वारा किये गये सुधारो का एक फल यह हुआ कि उसकी विभिन्न दलो से शत्रुता हो गई। स्वय अजीमुश्शान आग मे घी डालने का काम करने लगा। कुछ दुश्मनो ने एक दिन उस पर वार भी किया, पर वह खाली गया। दरबार मे कारतलब खा ने अजीमुश्शान को इसके लिए दोषी बताया और नाजिम ने अपने को निर्दोष साबित करने के लिए अपने गुरगो को बुला कर भला-बुरा कहा भी, पर बात इससे बनने वाली न थी।

कारतलब खां पर वार करने वाले खास सम्राट् के सैनिक थे जो वेतन नकद पाने के कारण 'नकदी' कहाते थे। दीवान ने उन सबको बरखास्त तो कर दिया, पर आखिर एक म्यान मे दो तलवारे कब तक रह सकती थी? अपने मित्रो और शुभचिन्तको से सलाह कर उसने यह निश्चय किया कि ढाका बगाल की राजधानी भले ही रहे, पर

दीवानखाना यहां न रहेगा। यह निश्चय कर, वह नाजिम से दूर रहने के विचार से, अपना दफ्तर उठा कर मखसूदाबाद[२] ले गया।

शासन की दृष्टि से इस नगर की भौगोलिक स्थिति मे बड़ी विशेषता यह थी कि यह बिहार या उड़ीसा से उतनी दूर न था जितनी कि ढाका। बंगाल पर आक्रमण का भय हो सकता था तो पश्चिम से ही। उस समय सकरी गली और तिलिया गढ़ी के बीच का रास्ता 'बंगाल का दरवाजा' कहा जाता था। यह राजमहल के पास था और इसकी रक्षा जितनी आसानी से मखसूदाबाद से हो सकती थी उतनी ढाके से नही। एक मुसलमान इतिहासकार ने लिखा है कि यह नगर 'आंख की पुतली' की तरह इस सारे प्रदेश के बीचोबीच था। कारतलब खा अभी बंगाल का नाजिम न बना था, पर ऐसे स्थान में दीवानखाना ले जाने मे उसने दूरदर्शिता दिखाई थी, इसमे संदेह नही।

जब औरंगजेब को सारी हकीकत मालूम हुई तो उसने अजीमुश्शान को लिखा कि "तुम्हें याद रखना चाहिए कि कारतलब खा मेरा कर्मचारी है। अगर तूने उसे कुछ भी नुकसान पहुचाया तो मै तुझे इसका दंड दिये बिना न रहूँगा।" साथ ही उसने अजीमुश्शान को ढाका छोड कर पटने रहने का हुक्म दिया। इससे पहले अजीमुश्शान को बिहार की भी निजामत मिल चुकी थी। उसने ढाका छोड कर पटने या अजीमाबाद को अपना मुकाम बनाया। बगाल मे उसका बेटा फर्रुखसियर अपने बाप के प्रतिनिधि-स्वरूप रहने लगा।

दीवान के साथ मखसूदावाद जाने वाले लोगो मे मानिकचन्द प्रमुख थे। उनकी अजीमुश्शान के साथ खूब बनती आई थी। पर कारतलब खां को इससे किसी प्रकार की ईर्ष्या नही हुई। ढाके मे ही

उसने उनके गुणों को अच्छी तरह पहचान लिया था। मानिकचन्द के गुणो का उपयोग राजस्द-विभाग में करने के विचार से उसने उनसे आग्रह किया कि आप भी अपना कार्य-क्षेत्र वदल दे। मानिकचन्द ने दूरदर्शी व्यवसायी होने के कारण यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनके विभव और अनुभव की उपयोगिता अर्थ के ही क्षेत्र मे हो सकती थी, रण के क्षेत्र मे नही। और जहा ऐसी उपयोगिता न हो सकती वहां उनकी उन्नति होने का कोई प्रश्न ही नही उठ सकता था। वहुत सभव है कि राजस्व-विभाग से उनका ढाके मे ही सम्वन्ध हो चला था। अव यह विभाग वहा से हट कर अन्यत्र जा रहा था। इसलिए भी उनका अपना यह सम्वन्ध वनाये रखने के लिए वहां जाना जरूरी था। अगर वह ढाका न छोडते तो वहते हुए स्रोत के साथ आगे न वढ कर किनारे अपनी जगह पडे या दलदल मे फसे रह जाते। फिर अजीमुश्शान ने इस पर कोई आपत्ति की हो ऐसा भी कोई उल्लेख नही मिलता। वल्कि वाद घटने वाली घटनाओ से जान पड़ता है कि उसकी आखे कभी फिरी नही और जव वह अपने पिता वहादुर शाह के शासनकाल मे काफी प्रभावशाली हो गया तव उसकी पृष्ठपोषकता से दिल्ली मे भी मानिकचन्द कम लाभान्वित न हुए।

१७०४ मे कारतलव खा सम्राट् से दक्षिण मे जा मिला। हिसाव-किताव, वचत की रकम और उपहारादि सव साथ लेता गया था। औरगजेव का कृपापात्र वह पहले से ही था, इस अवसर पर उसे मुर्शिदकुली खा की उपाधि मिली और वह वगाल तथा उड़ीसा दोनो का नायव नाजिम भी वना दिया गया। नाजिम और दीवान के अधिकार एक ही आदमी के हाथों मे रहने देना परपरा और औरगजेव की अपनी नीति के प्रतिकूल था। कुछ मुसलमान इतिहासकारो ने औरगजेव

को इस व्यतिक्रम के लिए कोसा भी है। पर याद रखना चाहिए कि औरंगजेब अब प्राय ८८ साल का हो चला था, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तिया अत्यन्त शिथिल हो गई थी और इस समय आर्थिक संकट[२] से उसकी रक्षा करने वाला था तो यही मुर्शिदकुली खा, जिसकी सेवाओं के लिए, मरने से पहले, इस प्रकार का विशेष पुरस्कार दे जाना सम्राट् की दृष्टि मे सर्वथा उचित था।

मुर्शिदकुली खा जमीदारों तथा अपने विभाग के कर्मचारियो के साथ वडी सख्ती से पेश आया करता। "रियाज" के लेखक का कहना है कि "नियत समय पर जब तक जमीदार, मुत्सद्दी, आमिल, कानूनगो तथा अन्य कर्मचारी अपना अपना हिसाब बेबाक न कर देते तब तक दीवानखाने से बाहर निकलने न पाते। खाने-पीने की कौन कहे, टट्टी-पेशाब की भी हाजत होने पर उन्हे हिरासत से छुटकारा न मिलता। चारो ओर जासूस यह देखते रहने के लिए तैनात रहते कि कही कोई सिपाही या पहरेदार किसी से कुछ लेकर किसी को बाहर तो निकलने नही देता। किसी किसी को तो बिना कुछ भी खाये-पिये हफ्तो उसी हाजत मे रहना पडता। जो इस पर भी हिसाब चुकता न करते वे बल्लो से औंधे लटका दिये जाते। किसी के तलवे खुरदरे पत्थरो से रगडे जाते तो किसी पर कोडो की मार पडती। दड देने मे दीवान जरा भी रहम या रिआयत करने वाला न था। अमानत मे खयानत करने वाले हिन्दू कर्मचारियों से जब कुछ भी मिलने की आशा न रह जाती तब वे मुसलमान बना कर छोड दिये जाते।"

पर केवल ऐसी तीक्ष्ण दड-नीति से ही काम चलना कठिन था। आर्थिक व्यवस्था के लिए कुछ और बातो की आवश्यकता थी, विशेषत मानिकचन्द जैसे सेठ-साहूकार के सहयोग की, जो वसूली के पैसे

पैसे का हिसाब रक्खे, जो लाख-करोड पर भी कभी हाथ न मारे और जिसमे इतनी आर्थिक शक्ति हो कि दीवान को बदनामी से बचाने के लिए दूसरो का बोझ अपने सिर पर उठा ले ।

दीवान मानिकचन्द को दो बडे सरकारी काम सौप चुका था, जिनमें एक का सम्बन्ध राजस्व की उगाही से था और दूसरे का टकसाल[४] के प्रवन्ध से। दोनो ही काम बडी जिम्मेवारी के थे और दोनों ही इस वश के लिए बड़े लाभदायक सिद्ध हुए।

मखसूदाबाद या मुर्शिदाबाद मे मानिकचन्द की कोठी, भागीरथी के तट पर, महिमापुर[५] नामक स्थान मे थी। हर साल वही, चैत्र रामनवमी को प्रान्त के विभिन्न भागो से आये हुए जमीदारो[६], पोतदारो और कारिन्दो का मेला-सा लगता। नियमानुसार जमीदारो को पिछले साल का बकाया चुका कर कुछ रकम नये साल के हिसाब मे, बतौर पेशगी, जमा करानी पडती। जिन्हे फारखती मिल जाती वे तो सही-सलामत अपने घर लौटते। जिन्हे न मिलती, उन्हे और ही कही जाने के लिए तैयार हो जाना पडता। कभी कभी इन्हे हाजत की ओर न जाकर एक ऐसे बडे हौज की ओर जाना पडता जो गलीज से भरपूर रहता और जिसे सरकारी कर्मचारी "वैकुठ" कहा करते। हा, जिसकी साख अच्छी होती वह मानिकचन्द की कोठी से कर्ज लेकर अपना हिसाब चुकता कर सकता और इस "वैकुठ" की यत्रणा भोगने से या और दड पाने से बच सकता था।

आय और व्यय का हिसाब हो जाने पर जो बचत रहती वह मुर्शिदाबाद से सम्राट् की सेवा मे भेजी जाती। यह काम निर्विघ्न पूरा करने के लिए बडी तैयारिया करनी पडती थी। सफर लम्बा होता, खजाना सिक्को के रूप मे छकडो पर भेजा जाता, सम्राट् तक

पहुचने मे महीनो लग जाते। "रियाज" के लेखक ने एक ऐसे अवसर का वर्णन करते हुए लिखा है—"साल तमाम होने पर, सिक्कों की जांच-पड़ताल और गिनती की गई, फिर आषाढ के महीने मे मुर्शिद-कुली खा ने बंगाल का खजाना रवाना किया। रुपयों और अशर्फियों की थैलिया दो सौ छकड़ों पर लादी गईं। उनकी रक्षा के लिए छः सौ घुडसवार और पाच सौ पैदल साथ किये गये। जो रकम भेजी गई वह १ करोड ३ लाख रुपया थी। पर यह बचत खालसा विभाग की थी। जागीरों तथा अन्य मदों से होने वाली आय इसके अलावा थी। हर साल ऐसे अवसरो पर दीवान की ओर से तरह तरह के उपहार भी सम्राट् और विशिष्ट पदाधिकारियों को भेजे जाते। इनमें हाथी, टागन, हिरन, भैसे, जंगली जानवरो की खाले, सीतलपाटी चटाइयां, चमडे के तरह तरह के सामान, सिलहट में बने हुए गगाजली कपड़े की मसहरियां, हाथी-दॉत, कस्तूरी, बाजे और विदेशी व्यापारियों से प्राप्त यूरोप में बनी हुई वस्तुएं प्रधान होती। दीवान सदल-बल इन सब को शहर की हद तक पहुचा कर लौट जाता और वाकयानवीस से यह बात उसके रोजनामचे मे दर्ज करा देता। जब खजाना दूसरे सूबे मे पहुचता तब उसकी सारी जिम्मेवारी उसके सूबेदार पर जा पड़ती और उसे नये छकड़े तथा नये सवार और पैदल साथ जाने के लिए देने पडते। इसी तरह कई मजिलो को तै कर खजाना सम्राट् के पास पहुचता।"

तत्कालीन शासन-प्रणाली मे इस बात की पूरो व्यवस्था थी कि एक पदाधिकारी पर दूसरे की रोक-टोक और नियंत्रण जरूर रहे। दीवान को अपने हिसाब-किताब पर प्रान्त के कानूनगो से सही भरानी पड़ती। बिना इसके दीवान का भेजा हुआ जमाखर्च ऊपर वालों को

मजूर न हो सकता था। जिस समय की यह बात है उस समय बगाल मे दो कानूनगो थे—दरब (दर्प ?) नारायण और जयनारायण। कहते है कि दीवान के जमाखर्च पर सही भरने के लिए दरव नारायण ने तीन लाख रुपये मागे। मुर्शिदकुली खा को दक्षिण जाना था। पर वह बिना कानूनगो से अपने हिसाब-किताब की तसदीक कराये प्रस्थान न कर सकता था। इसलिए उसने जयनारायण से तसदीक कराके अपना काम निकाल लिया। फिर बगाल लौटने पर उसने दरब नारायण पर कुछ झूठे अभियोग लगा कर उसे कैद कर लिया और उसकी ऐसी दुर्दशा कराई कि वह कैदखाने ही मे मर गया। फिर भी उसे इस बात की फिक्र थी कि सम्राट् का ऐसा खयाल न हो कि मुर्शिदकुली खां ने व्यक्तिगत कारणो से ही दरव नारायण के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया था। इसलिए उसने खुद सिफारिश कर दरव नारायण के वेटे शिवनारायण को वाप की जगह दिला दी। इससे दो वातो का पता चलता है। एक तो यह कि शासन-पद्धति के अनुसार दीवान भी अनियंत्रित या निरंकुश न रह सकता था। दूसरी यह कि औरगजेव की बड़ी इच्छा होते हुए भी राजस्व-विभाग का इस्लामीकरण न हो सका था।

जिस समय औरंगजेब ने अपने पिता के शासनकाल में, विद्रोही के रूप मे, दिल्ली पर चढाई की थी उस समय उसका अपना दीवान भगवानदास उर्फ दयानत राय था। केन्द्र मे नायव दीवान के पद पर रघुनाथदास था। औरंगजेब के तख्त पर वैठने पर, रघुनाथदास साम्राज्य भर का दीवान वना दिया गया। बाद उसे राजा की उपाधि भी प्राप्त हुई। जव तक महाराज यशवन्त सिह, राजा जयसिह और राजा रघुनाथदास जीवित रहे, औरगजेब की धर्मान्धता सकुचित-सी

वनी रही। पर एक-एक कर इनके संसार से विदा होते ही उसका नग्न नृत्य आरम्भ हो गया। फिर किसी हिन्दू को किसी प्रकार का उच्च पद न मिला। राजस्व-विभाग में हिन्दुओं की प्रधानता औरंगजेव को बहुत अखरती थी। उसने हुक्म जारी किया कि उस विभाग से जहां तक संभव हो हिन्दू बहिष्कृत कर दिये जाय। कितने ही हिन्दू करोड़ी वरखास्त कर दिये गये। कितने ही करोड़ी तथा अन्य कर्मचारी मुसलमान वन गये। पर अन्त मे औरगजेब को विवश हो कर हिन्दुओं को उस विभाग से हटाने की अपनी यह नीति त्यागनी पड़ी। वात यह थी कि आर्थिक क्षेत्र में कार्य-संपादन के लिए जो गुण आवश्यक हैं उनसे सम्पन्न मुसलमानों का मिलना कठिन था। मुर्शिदकुली खा कहा करता कि हिन्दू कुछ गवन भी कर ले तो उसे डरा-धमका कर उससे पूरी रकम वसूल की जा सकती है, पर मुसलमान से पाला पड़ने पर आंशिक सफलता की भी आशा दुराशामात्र ही हो सकती है। एक और मुसलमान शासक ने कभी कहा था कि मुसलमान चलनी के समान है जिसमे पानी की एक वूद भी नही ठहर सकती, पर हिन्दू इस्पंज है जिससे जव चाहो निचोड करपानी निकाल सकते हो। यही कारण है कि जहा रुपये-पैसे से सम्वन्ध होता वहां विशेषत. हिन्दू ही नियुक्त किये जाते थे। सरलश्कर, फौजदार, कोतवाल, थानेदार जैसे पदो से हिन्दू प्राय. दूर रखे जाते, पर दीवान, खजानची, कानूनगो, मजमुआदार (मजुमदार), शिकदार (सिकदर), कारकून, पटवारी जैसे पदो की जिम्मेवारी प्राय उन्हीं को सौपी जाती थी।

टोडरमल के समय से राजस्व-विभाग मे भी सारी लिखा-पढ़ी फारसी मे होने लगी थी। पर यह परिवर्तन हिन्दुओं की नियुक्ति के मार्ग में किसी प्रकार का वाधक नही हुआ था। वल्कि हिन्दू-समाज

के कुछ खास स्तरोंमें फारसी का ऐसा प्रचार हुआ था कि "आईने अकबरी" के अंगरेजी अनुवादक और संपादक मि० ब्लाकमैन के शब्दो में, अठारहवी सदी बीतते बीतते हिन्दू मुसलमानो के उस्ताद बन गये थे और उन्हें फारसी लिखाने-पढाने का काम प्राय वही करने लगे थे। उधर मुसलमानो का झुकाव विशेषत: सैनिक-वृत्ति की ओर रहता था। तह की बात यह थी कि हिन्दुओ की स्वतंत्रता हरने वाले मुसलमान यथासभव उन्हे अपंग बनाये रखना चाहते थे। हिन्दुओं के कंधों पर सरकारी सेना मे किसी प्रकार की बड़ी जिम्मेवारी सौपना उनकी नीति के प्रतिकूल था। इक्के दुक्के सम्राटों को छोड़ कर बाकी सबकी नीति यही रही कि जहा तक हो सके हिन्दू सेना-विभाग से अलग ही रखे जायं। हां, जहां कागजी घोड़े दौडाने की जरूरत पड़ती वहां उनका उपयोग अवश्य किया जाता। लिखने-पढने के काम में हिन्दू अपना सानी रखने वाले न थे और यह प्रयोजन उनके हाथो सिद्ध कराने मे, मुसलमान शासकों की दृष्टि से, किसी तरह का खतरा तो था ही नही, लाभ ही लाभ था।

हम ऊपर कह आये है कि मुर्शिदकुली खां ने टकसाल का काम भी मानिकचन्द को ही सौप दिया था। उन्हे एक प्रकार से इसका इजारा मिल गया था। उनके लिए सिक्कों की ढलवाई कम से कम रक्खी गई थी। उस समय पुराने सिक्को पर छीजन के लिए बट्टा कटता था। सिक्के की ढलाई के साल के और लेन-देन के स्थान के अनुसार बट्टा प्राय. उसी दर पर निर्भर करता जो मानिकचन्द की कोठी से समय समय पर निश्चित हुआ करती। चादी उन दिनों भी बाहर से आया करती और बगाल मे उसके सब से बड़े खरीदार मानिकचन्द ही थे।

मुर्शिदकुली खां के समय मे, जिस रुपये का बंगाल मे चलन था वह 'सिक्का' कहा जाता था। ईस्ट इडिया कम्पनी की मद्रास मे अपनी टकसाल थी और उसके ढले हुए सिक्के मद्रासी या 'आरकाटी' कहे जाते थे। जो रुपया प्रचलित या राइज माना जाता वह काल्पनिक था और इन तीनो रुपयो का पारस्परिक सम्बन्ध प्राय. यह था— ८६ 'सिक्के' = १०० प्रचलित = ९२ आरकाटी। पर इस पारस्परिक विनिमय-मूल्य मे कई कारणों से घटा-बढी हो सकती थी।

ईस्ट इडिया कंपनी बाहर से चांदी[७] लाकर यहां बेचती थी। उसका सब से अधिक उपयोग सिक्कों की ढलाई मे होता था और बगाल मे चादी बेचने की दृष्टि से परिस्थिति कंपनी के उतनी अनुकूल न थी जितनी कि वह चाहती थी। अव्वल तो उसकी मांग यह थी कि वहा भी उसे अपनी टकसाल खोलने की इजाजत दी जाय। यह मिलने वाली न थी। उसकी दूसरी मांग यह थी कि वह मुर्शिदाबाद की टकसाल मे अपनी चादी के सिक्के करा सके। इसके लिए उसे ढलवाई मानिकचन्द की अपेक्षा कही ऊंची देनी पडती और वह इतनी ऊंची दर देने के लिए तैयार न थी। उसकी तीसरी मांग यह थी कि आरकाटी रुपयों पर बगाल मे किसी प्रकार का बट्टा न कटे। पर आर्थिक परम्परा या पद्धति इसके प्रतिकूल थी और यह अपवाद चल न सका। कपनी और मुर्शिदाबाद-दरबार के बीच टकसाल-सम्बन्धी वाद-विवाद बना ही रहा और कपनी सारे फसाद की जड़ मानिकचन्द या उनके घराने को ही मानती रही। इस झगडे का अन्त तभी हुआ जब वरसों बाद कपनी का बंगाल पर आधिपत्य हो चला और मुर्शिदाबाद में टकसाल ही न रही।

कंपनी अपनी मद्रास की टकसाल मे ८९।। औंस अर्थात २३७।। तोले चादी के प्राय. २१८ आरकाटी* रुपये ढला सकती थी। ढलाई मे खर्च प्राय २ प्रतिशत के हिसाब से बैठता। यह काट कर उसे उतने रुपये मिल जाते। कपनी का कहना था कि उतनी चादी के बगाल में भी २२० नहीं तो २१९ 'सिक्के' अवश्य मिलने चाहिए। पर अगर वह उतनी चादी बगाल मे ले जाकर बेचती तो उसे २०९ सिक्कों से अधिक न मिलता। और अगर वह उसे बेचने के बजाय टकसाल मे ले जाकर उस चादी के 'सिक्के' कराती तो उसे खर्च कटने के बाद कुल २१२ सिक्के हाथ लगते। औरगजेब के मरने से पहले मद्रासी या आरकाटी रुपयो की कीमत कुछ ऊंची थी। बगाल के रुपये राइज के मुकाबले, कीमत मे ९ प्रतिशत ऊचे माने जाते थे। उस समय आरकाटी रुपये भी राजस्व के रूप मे बगाल से दाक्षिणात्य भेजे जा सकते थे। पर औरंगजेब के मरते ही परिस्थिति बदल गई। राजस्व का स्रोत फिर दिल्ली की ओर बहने लगा—बगाल मे आरकाटी रुपयो की पहले की तरह न माग रही न कीमत। जहा पहले १०० आरकाटी रुपये=१०९ बंगाल के रुपये राइज, यह भाव या निर्ख था, वहां अब यह भाव या निर्ख हो चला १०० आरकाटी=१०७ बगाल के 'रुपये' ('सिक्के' नही)। ईस्ट इडिया कपनी के डाइरेक्टर या सचालक कभी यह मानने को तैयार न हुए कि माग कम हो जाने पर उनके मद्रासी या आरकाटी रुपयो का मूल्य घट जाना स्वाभाविक था। वे यह कहते ही रहे कि इसकी तह मे किसी न किसी की कारसाजी या दगाबाजी थी।

* विल्सन, भाग १, पृष्ठ ३७६।

मानिकचन्द और कंपनी के सम्बन्ध का सूत्रपात कब हुआ, यह कहना कठिन है। निश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि यह १७०६ से पहले हो चुका था।

१७०४ मे कपनी को नई सनद हासिल करने के लिए अपने वकील को मुर्शिदकुली खां के पास भेजना पडा। इसका नाम राजाराम था। कंपनी पेशकश के तौर पर वही ३,००० रुपये देना चाहती थी। दीवान की मांग ३०,००० रुपये की थी। और शर्त्त यह थी कि यह सब का सब नकद मिलना चाहिए। राजाराम की वकालत का दीवान पर कुछ भी असर न पडा। कपनी ने निरुपाय होकर ३०,००० रुपये देना तो मजूर कर लिया, पर रुपये न भेजे। जान पड़ता है कि इस सम्बन्ध में कंपनी मानिकचन्द का भी दरवाजा खटखटा चुकी थी। कलकत्ते में कंपनी की जो प्रबन्धकारिणी-समिति या कौसिल थी, वह अपने १८ जुलाई १७०६ के लेखे मे लिखती है—

"मानिकचन्द सूचित करते है कि दीवान ने अपने पटने के नायब को लिखा है कि कपनी को पहले ही की तरह अपना कारबार करने दो। दीवान ने यह भी आश्वासन दिया है कि अगर कपनी ने ३०,००० रुपये पेशकश दे दिये तो उसे बगाल मे नि शुल्क व्यापार करने की सनद मिल जायगी।"

कासिमबाजार की फैक्टरी कुछ समय से बन्द पडी थी। वहां कंपनी की ओर से विशेषत: रेशम की खरीदारी हुआ करती थी। मानिकचन्द का पत्र मिलने पर कौन्सिल ने निश्चय किया कि नवाब की मांग पूरी कर कासिमबाजार मे कामकाज फिर से जारी किया जाय। इधर मानिकचन्द के सिफारिश करने पर दीवान ने अपनी मांग

मे ५,००० रुपये की कमी कर दी। कपनी की ओर से एक प्रतिनिधि मामला निबटाने के लिए कासिमबाजार भेजा गया। उसने लिखा कि दीवान पहले रुपये लेगा, फिर सनद देगा। कौसिल को यह मंजूर न था। उसनें अपने प्रतिनिधि को आदेश दिया कि एक हाथ से सनद लेना, दूसरे से रुपये देना। इसी समय औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। बात जहा की तहा रह गई। न रुपये दिये गये, न सनद ली गई। अपने प्रतिनिधि को कौसिल ने कलकत्ते वापस बुला लिया।

कंपनी ने शायद खयाल किया हो कि औरगजेब के मरनें पर मुर्शिदकुली खा को बगाल की निजामत से हाथ धोना पड़े और नये दीवान के साथ उसे नया सौदा करने का मौका मिल जाय। पर उसके दुर्भाग्य से ऐसी कोई क्रान्ति हुई नही। मुर्शिदकुली खां बहादुर शाह के समय मे भी पूर्ववत् दीवान बना रहा। मुश्किल यह हुई कि जहा वह पहले ३०,००० रुपये मांगता था, वहां अब ६०,००० रुपये मांगने लगा। कंपनी ने अपने कासिमबाजार के प्रधान की मार्फत फिर बातचीत शुरू की। जब नवाब को टस से मस होते न देखा तो कहलाया कि हम यहां होकर किसी भी हिन्दुस्तानी व्यापारी की नाव या जहाज को गुजरने न देंगे। एक ओर यह धमकी दी गई, दूसरी ओर किसी फतहचन्द साह* के साथ यह तै किया गया कि कासिमबाजार मे हमे जो माल खरीदना है उसे आप सवा छ रुपया सैकडा आढत पर खरीद कर कलकत्ते पहुंचा देगे। यह समझौता ही रहा। कपनी को फिर वही पुराना प्रसग छेडना पड़ा। दीवान ने ६०,००० रुपये मे से ७,५०० रुपये

---

* मानिकचन्द का भाजा इस काम में पडने का दुस्साहस नही कर सकता था।

कम कर दिये और ५२,५०० रुपये लेकर मुर्शिदाबाद से दिल्ली तक मामला निवटा देना मंजूर कर लिया। शर्त्त यह थी कि ज्यो ही वह सनद दे दे त्यो ही उसे ३०,००० रुपये मिल जायँ और बाकी २२,५०० रुपये तब मिलें जब वह बहादुरशाह से फरमान मंगा दे। कंपनी और भी छूट कराने की कोशिश करती, मगर नवाब का रुख देख कर उसे मोलचाल करने का साहस नही हुआ। नवाब की मांग पूरी कर उसने नई सनद ले ली और दिल्ली से भी इसकी बरकरारी का फरमान आ गया।

कंपनी के अंगरेज कर्मचारियों मे से कुछ मानिकचन्द की कोठी से भी लेनदेन का व्यवहार करने लगे थे। इन्ही मे एक चिट्टी था। यह कपनी का बख्शी था, पर मालिक की भी कुछ रकम गबन कर चुका था। उधर मानिकचन्द तथा कुछ अन्य व्यवसायियो का भी यह ऋणी था। कंपनी ने उसकी जायदाद जब्त कराके अपनी रकम वसूल कर ली और उसे इगलैण्ड भेज देना निश्चित कर लिया। पर वह जानती थी कि जब तक कम से कम मानिकचन्द की रकम वसूल नही हो जाती, चिट्टी जहाज पर पैर नही धर सकता। मानिकचन्द ने ७,००० रुपये लेकर उसे उऋण कर देने की स्वीकृति दे दी। उन्हें इतना मिल जाने पर ही चिट्टी १७१३ मे कलकत्ते से इगलैण्ड रवाना हो सका। औरों का पावना प्राय. डूब कर ही रहा।

अजीमुश्शान बंगाल, बिहार और उडीसा का नाजिम तो था ही, बहादुरशाह के सम्राट् होने पर उसे इलाहाबाद की भी निजामत मिल गई थी। वगाल और उड़ीसा का नायब नाजिम मुर्शिदकुली खा था। यह पद उसे औरगजेब-द्वारा ही मिल चुका था। जब अजीमुश्शान

अपने बाप की नाक का बाल हो चला तब विहार और इलाहाबाद के लिए भी नायब नाजिम नियुक्त करने की आवश्यकता हुई। बहादुर शाह ने विहार मे नायब नाजिम हुसैनअली खा को बनाया और इलाहाबाद में उसके बडे भाई सैयद अब्दुल्ला खां को। यही भारत के इतिहास मे "सैयद-बन्धु" के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ ही समय बाद ये दोनों भाई, इस देश के राजनीतिक रंगमंच पर, सम्राट्-रूपी मूर्त्तियों को तोड़ने और गढनेवालों के रूप मे आने वाले थे।

बहादुर शाह ६५ साल की उम्र मे आगरे के पास तख्तनशीन हुआ था। उसके बाद उसे दिल्ली जाने या कही महल मे रहने का मौका ही न मिला। बराबर दौरे पर ही रहा। अपने शासन-काल के पाचवें बरस मे वह सिक्खों के दमन के उद्देश से पंजाब गया। वही लाहौर के पास रावी नदी के किनारे उसकी मृत्यु हो गई। मरने से पहले वह पागल-सा हो गया था और एक दिन कुत्तों के कत्ले-आम का हुक्म जारी कर दिया था। अजीमुश्शान अपने बाप के साथ था। उसके और भाइयो के पडाव भी आस ही पास थे। पर वह बडा दीर्घसूत्री था। बहादुर शाह का सेनापति जुल्फिकार* खा उसके भाइयों से मिल गया था। अगर बाप के मरते ही वह जुल्फिकार को गिरफ्तार कर लेता और अपने भाइयों पर टूट पड़ता तो भारत का सम्राट् वह होता, न कि उसका भाई मुइजुद्दीन जो जहांदार शाह के नाम से तख्त पर बैठा। अजीमुश्शान रावी के तट पर होने वाली लडाई में—जिसमे उसके तीनो भाई उसके विरुद्ध थे—लडा वीरतापूर्वक, पर तब जब उस वीरता से कुछ भी बनने वाला न था। उसकी ढिलाई, सुस्ती,

* औरंगजेब के मशहूर वजीर असद खा का बेटा।

आज-कल करने की आदत से तंग आकर और पस्त-हिम्मत होकर बड़े बड़े सरदार, अपने सैनिको के साथ मैदान छोड़ कर, अपने अपने घर सिधार चुके थे। जहा आरभ मे उसकी ओर सत्तर हजार सैनिक थे वहां लड़ाई के अन्तिम दिन उसका साथ देने वाले सत्तर भी न रह गये थे। जिस हाथी पर वह सवार था उसको अचानक एक गोला जा लगा और चोट-चपेट ने उसकी यह हालत कर दी कि फीलवान तो नीचे जा पडा और दूसरो के लाख रोकने पर भी हाथी न रुका। अज़ीमुश्शान को अपनी पीठ पर लिये रावी नदी मे जा गिरा। बहुत तलाश करने पर भी उसके सवार की लाश का कही पता न चला। बगाल-बिहार मे बरसों निजामत करके उसने जो धन बटोरा था वह उसके साथ था। बहादुरशाह के साथ रहने के कारण उसके पक्ष-पातियों की कमी न थी। पर समयोचित कार्य न कर सकने के कारण उसे इन सब से हाथ धोना पड़ा और दिल्लीश्वर के पद से भी वचित होना पड़ा।

जहांदार शाह ने अपना मार्ग निष्कंटक करने के काम मे हाथ लगाया। खोजिस्ता अख्तर और रफीउलकद्र इन दो भाइयो को पहले तो उसने अपनी ओर मिला लिया था पर ये दोनो भी एक एक कर के मौत के घाट उतारे गये। अजीमुश्शान के बडे बेटे करीमुद्दीन की भी यही दशा हुई। बहादुर शाह के भाई आजम शाह तथा कामबख्श के बेटों को कठोर से कठोर कारादंड मिला। पुरस्कृत होने वालो में प्रधान था जुल्फिकार खा जिसे वजीर का पद प्रदान किया गया। लालकुवर* नाम की एक मुसलमानिन वेश्या या गायिका पर वह लट्टू

---

* कहा गया है कि यह तानसेन के वंश में थी।

हो चुका था। उसे अब 'इम्तियाज महल बेगम' की उपाधि मिली और उसके रिश्तेदारो का बोलबाला हो चला। जो कलावत कहाते थे और गाने-बजाने का काम किया करते थे वे मनसवदार वन बैठे। फिर लालकुवर के भाई को सूबेदार कहाने का हौसला हुआ। इच्छा प्रकट करते ही सम्राट् से इसकी स्वीकृति मिल गई और वह आगरे का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। पर जब नियुक्ति-पत्र वजीर के पास पहुंचा तब उसकी सहनशीलता जाती रही और उस पत्र पर मोहर लगाने से पहले उसने लालकुवर के भाई से अपनी दस्तूरी तलब की। रुपया-पैसा न माग कर उसने कहा कि दस्तूरी के रूप मे मुझे पांच हजार सितार और सात हजार तबले* मिलने चाहिए। जब लाल-कुवर ने बादशाह से इसकी फर्याद की तो जहांदार शाह ने जुल्फिकार खां को बुलवाया और इस मामले का जिक्र कर कहा कि यह मजाक खूब ही रहा। वजीर ने जवाब दिया—"जहापनाह ! यह मजाक न था, मैंने जो कुछ कहा वह सजीदगी से, खूब सोच-विचार कर। जब हुकूमत का काम गाने-बजाने वालो के सिपुर्द किया जा रहा है तब पुराने सरदार या उमरा आखिर करेगे क्या ? उनके रोटी-दाल चलने का भी तो कोई रास्ता होना चाहिए। मैंने यह तरकीब सोच निकाली है कि जिन लोगो से सल्तनत के इन्तजाम का पुश्तैनी पेशा छीना जा रहा है उन्हे खाने-कमाने के लिए सितार और तबले दे दिये जायं। उनके हक मे बेकारी से 'ता-ना री-री' कही अच्छी साबित होगी।" वजीर ने ऐसी लगती-चुभती बात कही थी कि लालकुवर के लाख मचलने पर भी उसका भाई सूबेदार न हो सका।

---

* "मुताखरीन" ।

जहांदार शाह को अब रग मे भंग की कुछ आशंका रह गई थी तो अजीमुश्शान के दूसरे लडके फर्रुखसियर से। जैसा कि हम पहले कह चुके है, वह बगाल मे रहता था। दिल्ली से मुर्शिदकुली खां और हुसैन अली खां दोनो के नाम परवाने भेजे गये कि फर्रुखसियर को जहां पाओ गिरफ्तार कर फौरन दिल्ली भेज दो। उधर लाहौर और दिल्ली से मिलने वाले समाचारों ने उसे किंकर्त्तव्यविमूढ कर दिया था। कभी सोचता था कि आत्महत्या कर लू, कभी यह कि कलकत्ते पहुंच कर समुद्र की राह कही भाग जाऊ। पर उसकी मा बड़ी हिम्मत वाली औरत* थी। उसने कहा कि "बेटा! समुद्र की परीक्षा करनी ही है तो वह समुद्र पानी का न होकर लडाई के मैदान का हो। उसी तूफानी समुद्र मे अपनी किश्ती चलने दे। खुदा की मेहरबानी होगी तो तेरी किश्ती पार लग जायगी। जिन्दगी आखिर है क्या? यह चन्द दिनों का खेल है, फिर दांव लगा कर खेलने से डरता क्यो है?" फर्रुखसियर राजमहल मे सपरिवार रहता था, पर वहाँ से इधर पटने आ गया था। वही उसको पिता की मृत्यु का समाचार मिला। उसको आशा थी कि हुसैन अली खा ऐसे गाढे दिन मे उसकी कुछ मदद जरूर करेगा। पर हुसैन अली खा ने कोरा जवाब दे दिया और यह भी कहलाया कि मै आप को गिरफ्तार नही करता, यही मेरी बडी मदद समझिए। पर फर्रुखसियर की मां इससे निराश होने वाली न थी। उसने ऐसी युक्ति रची कि हुसैन अली खा को फर्रुखसियर के पड़ाव पर जाना ही पडा। फिर तो वहा उसके सामने ऐसा नाटक खेला गया कि वह बात की बात मे द्रवीभूत हो गया। नाटक का आरम्भ फर्रुखसियर द्वारा अनुनय-विनय से हुआ। उसने अपनी दयनीय दशा का चित्र

---

* यह काश्मीर की रहने वाली थी और इसका नाम सेबुन्निसा था।

खीचते हुए हुसैन अली खा से दया की भिक्षा मांगी। ज्यों ही उसने अपना वक्तव्य पूरा किया, पर्दे की ओट औरते सिसकने और रोने-पीटने लगी। अन्त मे फर्रुखसियर की सब से छोटी लड़की बाहर निकली और हुसैन अली खा की गोद मे जा बैठी। अपना सिखाया-पढ़ाया हुआ 'पार्ट' इस खूबी से अदा किया कि हुसैन अली खा की भी आंखे आसुओं से तर हुए विना न रह सकी और उसने उसी दम फर्रुखसियर का पक्ष अपना लिया। उसकी सलाह से फर्रुखसियर ने पटने मे ही अपने आप को भारत का सम्राट् घोषित किया* और युद्ध का डका बजा कर, हुसैन अली खा विजय की प्राप्ति के लिए काफी बड़े पैमाने पर धन-जन जुटाने मे पिल पड़ा। उसके भाई अब्दुल्ला खां ने यह नाटक नही देखा था। इसलिए वह फर्रुखसियर की ओर से लडने के प्रस्ताव का विरोध करता गया। पर अन्त मे वह अपने भाई के आग्रह को टाल न सका या यो कहा जाय कि फर्रुखसियर की मा का जादू उस पर भी चले बिना न रह सका।

आर्थिक समस्या हल करने के लिए हुसैन अली खा ने शहर के सेठ-साहूकारो को बुलवाया और उनसे कहा कि, "आप लोग इस अवसर पर अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक सम्राट् की सहायता कीजिए। यह सहायता कर्ज समझी जायगी। जो रकम आप देगे वह सम्राट् के विजयी होने पर आप को लौटा दी जायगी। इस समय आप को ऐसी रसीदे दे दी जायगी जिन पर सम्राट् के हस्ताक्षर होगे।"

पर चन्दा जैसे आजकल दबाव से वसूल होता है वैसे ही उन दिनो भी होता रहा होगा। १३ अप्रैल १७१२ को कौसिल को पटने से

* यह 'अफजल खा के बाग में' सम्राट् घोषित हुआ था।

फर्रुखसियर के सम्राट् होने की सूचना मिली। पत्र में यह भी लिखा था कि, "डर है कि इस मौक़े पर पेशकश नजर करने के लिए हम लोगों की भी बुलाहट होगी। खबर मिली है कि डच और अंगरेज दोनों कंपनियों से चार-पाच लाख तक वसूल किया जायगा। कुछ समय से अपनी फैक्टरियों पर सिपाहियो और चोबदारों का पहरा है। बिना कुछ दिये छुटकारा नही होने का। पर हमारी कोशिश यह जरूर होगी कि हम सस्ते छूट जाय। हा, अगर जहादार शाह का बेटा अपनी सेना के साथ यहा आ धमका तो दोनों ओर से लूटमार होकर ही रहेगी और हमें यह शहर छोड़ देना होगा। पटने मे रहना हमारे लिए निरापद नहीं हो सकता।"

२६ अप्रैल को पटने के कर्मचारियों ने कौसिल को लिखा कि, "१९ ता० को राय कृपानाथ ने कहलाया कि फर्रुखसियर की इच्छा इस नगर के सभी धनी लोगो से मोटी रकम ऐंठने की है। इनकी एक सूची तैयार हो चुकी है। सब से पहला नाम ईस्ट इडिया कपनी का है, दूसरा है डच कंपनी का, फिर और सराफो और साहूकारों के नाम आते हैं। कृपानाथ की सलाह है कि हम अपनी रक्षा के लिए जो मुनासिब समझे करे—हम लोगो ने आपस मे सलाह-मशविरा किया और अपने वकील की भी सलाह ली। यह तै हुआ कि हम अपनी फर्याद नवाब हुसैन अली खा के कानो तक पहुचावे और उनसे कह दें कि अगर उसकी सुनवाई नही हुई तो हम यह शहर छोड देंगे।"

इसके बाद वकील जाकर नवाब से मिला और कंपनी की अर्जदाश्त दाखिल की। नवाब ने आश्वासन दिया कि कंपनी मेरा भरोसा रखे, जब मैं दरबार में जाऊंगा तब सब बाते ठीक करा दूगा। वकील

मेहता हृदयराम से मिला और कपनी की ओर से नवाब तथा अन्य पदाधिकारियों के लिए सब मिलाकर २५०० रुपये नजर पेश किये। हृदयराम ने कहा कि जो काम कराना है उसको देखते हुए रकम तो बहुत छोटी है, पर मुझसे जो कुछ बन सकेगा कंपनी की ओर से जरूर करुगा, यह आप विश्वास रखिए। अन्त मे नवाब की सिफारिश का नतीजा यह हुआ कि फर्रुखसियर ने कर्म-चारियों को आदेश दे दिया कि कोई कपनी के साथ नाजायज तौर से पेश न आवे और उसे डरा-धमका या सता कर उससे कुछ भी वसूल न करे। इस बीच मुर्शिदकुली खा के होश की दवा करने के लिए कई उपाय सोचे जा चुके थे। पटने मे रोज नई अफवाह उडती थी। कभी कहा जाता कि खुद हुसैन अली खा मुर्शिदाबाद भेजे जायगे, कभी यह कि उनकी जगह मिर्जा मुहम्मद रजा और मिर्जा जाफर। चाहे जो भेजे गये हो, किसी से कुछ न बन पडा। फर्रुखसियर की एक सेना जब हार खा चुकी तो दूसरी 'मुर्शिदकुली खां का खजाना या उसका सर' ले आने के लिए भेजी गई और कौंसिल को एक फरमान और हस्बुल्हुक्म द्वारा यह आदेश भेजा गया कि मुर्शिदकुली खा अगर भाग कर कलकत्ते पहुंचे तो तुम उसे सारी सपत्ति के साथ गिरफ्तार कर लेना। कौंसिल ने यह सोच कर कि ऐसे हुक्म के जवाब मे कुछ भी लिखना खतरनाक है, बात थोडे समय के लिए टाल दी। मुर्शिदकुली खा के विरुद्ध जो दूसरे सरदार भेजे गये उन्हे मुर्शिदाबाद पहुचने से पहले ही हतोत्साह होकर पटने लौट जाना पडा।

कुछ दिन बाद कौंसिल ने सोच-विचार कर पटने के कर्मचारियों को यह लिखना निश्चित किया कि, "जो कुछ माल खरीदा जा चुका है उसे तो नावो के जरिए यहा भेज दो और जितने रुपये की जरूरत

हो हुडियां करके वाजार से लो। ऐसे समय मे और माल खरीदने की जरूरत नही। जो फरमान और हस्बुलहुक्म आये है उनका जवाव फारसी में देना होगा। सभव है, वह रास्ते मे दीवान के हाथ लग जाय और हमारे मालिकों के लिए इसका नतीजा बहुत ही वुरा हो। इसलिए पटने वालो को यही लिख दिया जाय कि तुम उनकी पहुंच स्वीकार कर कंपनी की ओर से यह उत्तर दे दो कि 'श्रीमान् की आज्ञा शिरोधार्य है। अगर श्रीमान् का कोई भी शत्रु इधर होकर भागने की चेष्टा करेगा तो हम उसे आप के आज्ञानुसार यथाशक्ति रोके विना न रहेंगे।"

जुलाई १७१२ मे कौसिल को समाचार मिला कि पटने मे डच फैक्टरी के प्रधान मि० जेकव वान हूर्न की मृत्यु हो जाने पर फर्रुखसियर ने उसकी सारी संपत्ति यह कह कर जव्त करा ली थी कि वह लावारिस था और लावारिसी माल कानून के मुताविक वादशाह का है। पटने वालो ने कौसिल को लिखा कि "डच के साथ जो अन्याय हुआ है उससे हमे आशंका हो रही है कि कही हमारी भी एक दिन यही दशा न हो। पर नवाव की हम लोगो पर दयादृष्टि रहती आई है और वादशाह पर नवाव की वातो का प्रभाव भी पड़ता है–अंधकार मे आशा की एक किरण दिखाई देती है तो यही। हम लोगो का यही प्रयत्न रहता है कि सभी पदाधिकारियों को खुश रखे। मीठी वाते अधिक से अधिक करना और रुपया-पैसा कम से कम देना यही हमारी नीति है।" सितम्वर मे कौसिल को खबर मिली कि.—

"फर्रुखसियर को सैनिको का वेतन चुकाने के लिए २८ लाख रुपये की जरूरत थी। सैनिक अधीर होने लगे थे। इसलिए उसने अपने पास से एक लाख अशर्फियां दी और चार लाख की चांदी,

जिसके सिक्के ढाले गये। साथ ही उसने नवाब (हुसैन अली खा) से कहा कि मेरा इरादा अब धनिको को लूटने का है, उसमे से चौथाई भाग आप का होगा। नवाब को यह बुरा लगा और उसने अपनी सेना के साथ इलाहाबाद जाने की इजाजत मागी, पर उसे अभी तक कोई उत्तर नही मिला है। उधर पटने के अधिकाश धनिक नगर का परित्याग कर अन्यत्र चले गये है।"

कंपनी के भी कर्मचारी पटने से गंगा के उत्तर लालगंज सिंघिया चले गये थे। पर हुसैन अली खा अपनी बात का पक्का था। उसने कंपनी की किसी प्रकार की हानि न होने दी। हाजीपुर , सरैसा और बिसारा परगनो के आमिल शुक्रुल्ला खा के नाम एक हस्बुलहुक्म भेज कर उसने उसे आदेश दिया कि कपनी के कर्मचारियो को समझा-बुझा कर पटने लौटा लाओ। पटने मे उस समय रुपये की बडी टान थी। सिंधिया से कर्मचारियों ने कौसिल को लिखा कि कई कारणो से इस समय कलकत्ते माल भेजना युक्ति-सगत नही जान पड़ता। पर साथ ही उन्होंने यह सूचित किया कि नवाब पटने मे लोगों के जान-माल की हिफाजत को ओर पूरा ध्यान दे रहा है और हम लोगो की फैक्टरी पर भी उसने अपनी ओर से पहरा बैठा दिया है। कपनी कृतज्ञता-ज्ञापन-स्वरूप ६,५०० रुपये उसकी और उसके अधिकारियो की नजर कर चुकी थी।

फर्रुखसियर ने कई बार पटने को निचोड़ने की कोशिश की, पर हुसैन अली खां की दया से नागरिक बचते गये। अन्त मे उसे मजबूर होकर स्वय इस काम मे हाथ डालना पड़ा। जितने सेठ-साहूकार, जमीदार या अन्य सपत्तिशाली व्यक्ति थे सब को अपनी अपनी क्षमता के अनुसार, चन्दा देना ही पड़ा। डच कंपनी से दो लाख वसूल किये

गये। ईस्ट इडिया कम्पनी से भी उतना ही मागा गया, पर हुसैन अली खां की मेहरबानी से उसे २२,००० रुपये से अधिक न देना पड़ा।

बंगाल का खजाना हर साल बरसात मे दिल्ली भेजा जाता। इस साल जब वह इलाहाबाद पहुचा तब हुसैन अली खां के लिखने पर उसके भाई ने उसे स्वायत्त कर लिया। सारी रकम एक करोड़ के करीब थी। अब्दुल्ला खा उस समय तगदस्त था और अपने सैनिकों का वेतन चुकाने मे असमर्थ था। अनायास इतनी बड़ी रकम हाथ लग जाने से उसका अर्थ-सकट दूर हो गया। इसका कुछ हिस्सा फर्रुखसियर को भी सैनिक येय के लिए मिला*। कुछ ही समय बाद वह हुसैन अली खां के साथ इलाहाबाद पहुच गया और गगा-यमुना के संगम की तरह दोनो सैयद-बन्धुओं की सेनाओं का सगम हो जाने से फर्रुखसियर के पक्ष में आशातीत बल आ गया।

छोटी-मोटी लडाइयों के बाद आगरे के पास दोनों दलों के बीच महायुद्ध हुआ। इसमे जहांदार शाह को पीठ दिखानी पड़ी और मूछ-दाढी मुड़ा कर हिन्दू के वेष मे लालकुंवर के साथ दिल्ली भागना पड़ा। वहा किले मे न जाकर वह सीधे जुल्फिकार खां के घर गया। वह भी मैदान छोड कर वही आ पहुचा। इसकी तो इच्छा थी कि जहांदार शाह को काबुल, मुल्तान या दक्खिन की ओर ले जायं और वहां फौज इकट्ठी कर फिर फर्रुखसियर से लडे। पर बूढे बाप ने यह होने न दिया और कृतज्ञता के बजाय ऐसी कृतघ्नता दिखाई कि

* फिर भी, इतिहासकारो ने लिखा है कि "फर्रुखसियर के लश्कर के साथ चलने वालो में बगाल और पटने के कुछ महाजन थे जिनसे वह सवाई पर कर्ज लेता जा रहा था। सूद-सहित मूल चुका देने के अलावा, वह उन महाजनो को सम्मान-प्रदान करने के लिए भी प्रतिज्ञाबद्ध था"—अविंन।

जहादार शाह को वही गिरफ्तार करा लिया। पर इसका परिणाम वह न हुआ जो असद खां चाहता था।

जब बाप-बेटा फर्रुखसियर से मिलने गये तो इनाम-इकराम देना तो दर किनार, फर्रुखसियर ने असद खा को बिदा कर जुल्फिकार खा की वही हत्या करा डाली। इसके बाद जहांदार शाह की भी यही दुर्दशा हुई। लालकुवर उस समय उसके साथ ही थी। बाद को वह उस स्थान पर पहुचाई और नजरवन्द कर दी गई जो बेवाखाना या सुहागपुरा कहा जाता था। दूसरे दिन फर्रुखसियर ने राजधानी मे प्रवेश किया। जुलूस मे एक हाथी की पीठ पर जहादार शाह की लाश लदी हुई थी। उसी हाथी की पूछ से जुल्फिकार खा की लाश बधी लटक रही थी। हाथी पर एक जल्लाद भी सवार था। वह हाथ मे लम्बा बांस लिये था और उस बास के सिरे से लटकता हुआ जहांदार शाह का सिर कुछ दर्शको को रुला और कुछ को हसा रहा था। जुल्फिकार खा के बूढे बाप असद खा पर भी फर्रुखसियर रहम करने वाला न था। उसे भी सपरिवार इस जुलूस मे हाथी के पीछे पीछे चलना पड़ा। उसकी सारी सपत्ति जब्त कर ली गई और उसे अपना घर तक छोडना पडा।

फिर औरो की बारी आई। फर्रुखसियर के राजसिहासन पर बैठने के कुछ ही दिनो के भीतर कई सरदार तो फासी चढा दिये गये। किसी की जीभ काट ली गई तो किसी की आख निकाल ली गई। दिल्ली मे ऐसा आतक फैला कि जो कोई दरबार जाता उसे जिन्दा घर लौटने की आशा त्याग देनी पडती। आग मे तपा कर लाल की हुई लोहे की सलाइयो से जो लोग नेत्रविहीन कर दिये गये, उनमें एक आजम शाह का बेटा था, एक जहादार शाह का और एक था फर्रुख-

सियर का सगा छोटा भाई । पर इन कुकृत्यो मे सैयद-बन्धुओ का हाथ न था, यद्यपि अब्दुल्ला खा को वजीर का पद मिल चुका था और हुसैन अली खा को मीरबख्शी का। इनके लिए प्रधानत. जिम्मेवार था एक तूरानी सरदार जिसका नाम मीर जुमला था और जो ढाके मे काजी के पद पर रह चुका था। बगाल मे ही फर्रुखसियर पर इसका वशीकरण-मत्र चल चुका था और यद्यपि दिल्ली मे यह खवासो के दारोगा के ही पद पर था तथापि सम्राट् पर इसका ऐसा प्रभाव था कि उससे जो चाहता करा सकता था।

उधर मुर्शिदाबाद मे बहादुर शाह के मरने की खबर पहुचते ही, मुर्शिदकुली खा ने अजीमुश्शान को सम्राट् घोषित कर दिया था फिर जब उसे यह ख़बर मिली कि अजीमुश्शान की भी दुर्घटना से मृत्यु हो चुकी थी और उसके भाई आपस मे तख्त के लिए लड रहे थे तो वह असमजस मे पड़ गया। परिस्थिति डावाडोल थी और यह कहना कठिन था कि इनमे जीत किसकी होगी। इसलिए उसने अजीमुश्शान के मरने की खबर ही दबा दी और मुनादी करा दी कि जो कोई और किसी प्रकार का समाचार फैलावेगा वह कठोर दड का भागी होगा। पर व्यापारी-समाज को यथार्थ घटना से अवगत होते देर न लगी। ईस्ट इडिया कपनी से भी असलियत छिपी नही रह सकी। कौसिल को अप्रैल (१७१२) के आरंभ मे पटने से समाचार मिला कि १७ मार्च * को आजीमुश्शान मारा जा चुका था। ७ अप्रैल के कंपनी के लेखे मे लिखा है.--

"१ली अप्रैल को कासिमबाजार से भेजा हुआ मि० हेजेस का पत्र ५वी अप्रैल की शाम को मिला। वह लिखता है कि उधर तरह तरह

---

*प्राचीन पचाग-पद्धति के अनुसार ६ मार्च

की अफवाहे उड रही है, पर क्या सच है, क्या झूठ, यह कहना कठिन है। अजीमुश्शान के जीवित होने का लोगो को विश्वास दिलाने के लिए दीवान ने मानिकचन्द और फतहचन्द को खिलअते दी है। एक को हाथी और दूसरे को घोडे के साथ सरोपा मिला है। २७ मार्च को हेजेस दीवान से मिलने गया था। रात मे ८ से १० बजे तक दोनो की बाते होती रही। दीवान ने लाहौरीमल को बुलवाया और कहा कि सम्राट् अजीमुश्शान ने अपने नाम से ढलने वाले सिक्को के लिए जो इवारत भेजी है उसे पढ कर सुना दो। जब हेजेस चलने लगा तब नवाब ने कहा कि 'किसी बात की फिक्र मत करना, किसी तरह की गडबडी होने वाली नही।' हेजेस नवाब को नजर करने के लिए पाच अशर्फिया और नौ रुपये लेता गया था, पर नवाब को कुछ भी लेना मजूर न हुआ। हेजेस ने यह जानना चाहा कि दिल्ली से इधर कोई खबर नवाब को मिली थी या नही, पर उसने इस विषय मे कुछ भी नही कहा। इसका कारण स्पष्ट है। उसकी ओर से झूठ का प्रचार करने के लिए मानिकचन्द का मुह काफी है। यद्यपि दूसरे व्यापारी यह कहते नही, पर उनके पास तो लाहौर से पक्का समाचार आ गया है कि अजीमुश्शान और उसका बेटा करीम दोनो मारे जा चुके।"

आखिर सत्य पर परदा कब तक डाला जा सकता था? मुर्शिदकुली खा को एक दिन यह घोषित करना ही पडा कि दिल्ली के तख्त पर जहादार शाह बैठ चुके थे। पर वह पूरा साल भर भी उस पर न बैठ सका। ११ फरवरी १७१३ को उसकी हत्या हुई। उस समय उसकी अवस्था ५३ वर्ष से कुछ ऊपर थी।

मानिकचन्द और अजीमुश्शान का परिचय पुराना था। अजीमुश्शान १६९७ मे बगाल का नाजिम बना कर ढाके भेजा गया था।

मानिकचन्द वहां कब गये या अपनी कोठी उन्होने वहा कब खोली, इसका पूरा पता नही चलता, पर अनुमान किया जाता है कि दोनों घटनाएं आसपास की है। फिर जैसा कि हम देख चुके है, नियति के वशीभूत होकर, मानिकचन्द को ढाका छोड़ कर मुर्शिदाबाद जाना पड़ा और अजीमुश्शान् को पटने या अजीमाबाद। पर जान पडता है कि जुदाई होने पर भी मानिकचन्द का अजीमुश्शान से सम्बन्ध अच्छा ही वना रहा। बहादुर शाह के शासन-काल मे. अजीमुश्शान की सहायता से उन्होने दिल्ली मे भी अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली और बंगाल-सम्बन्धी मामलों मे वहा उनकी सम्मति को खास वजन मिलने लगा।

इसके बाद जब फर्रुखसियर ने बगावत का झडा उठाया और अपने को सम्राट् घोषित कर, धन-सग्रह करने लगा तब मानिकचन्द से उसे क्या मिला यह कहना तो कठिन है पर इतिहास मे कुछ ऐसे इशारे जरूर मिलते है जिनसे जान पडता है कि मानिकचन्द ने उसकी विशेप सहायता की। "रियाज" मे लिखा है कि, "जब फर्रुखसियर पटने से कूच कर बनारस* पहुचा तब उसने वहा भी नगरसेठ और दूसरे महाजनो से एक करोड रुपये लिये"। आगे चलकर "रियाज" का लेखक लिखता है, "नवाब जफर खा (मुर्शिदकुली खा) के सिफारिश करने पर

---

* ३० अक्टूबर १७१२ को फर्रुखसियर का पडाव मुगलसराय से कुछ आगे मिर्जापुर के आसपास था। उसने बनारस के महाजनो से चदा वसूल करना चाहा। उनके सौभाग्य से राय कृपानाथ भी लशकर के साथ थे। इन्हें हम पटने मे व्यापारियो की रक्षा करते देख चुके है। फिर वैसा ही प्रसग पडने पर इन्होने बनारस के व्यापारियो की भी रक्षा की और एक लाख पर ही सौदा तै करा दिया। मानिकचन्द से जो कुछ मिला वह इसके अलावा रहा होगा।

फर्रुखसियर ने नगरसेठ के चचा और मुनीम फतहचन्द को जगत्सेठ की उपाधि दी।" इसमे सत्य और असत्य का मिश्रण है। नगरसेठ से अभिप्राय मानिकचन्द से है, यह तो निश्चित है। यह भी निश्चित है कि पटने या बनारस में—संभवत दोनो जगह—फर्रुखसियर को मानिकचन्द की कोठियो से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई, यद्यपि यह सहायता प्रकट रूप से नही दी गई।"रियाज" ने फतहचन्द को मानिकचद का चचा बताया है और उन्हे फर्रुखसियर से जगत्सेठ की उपाधि मिलने की बात लिखी है। यह उसकी भूल है। हम आगे देखेगे कि वह मानिकचन्द के चचा नही, भाजा थे और उन्हे यह उपाधि बरसों बाद मुहम्मद शाह से मिलने वाली थी। हा, थोडी उम्र से ही वह कामकाज मे अपने मामा का हाथ बटाने लगे थे, इसलिए प्राय मानिकचन्द के 'मुनीम' समझे जाते थे। फर्रुखसियर से फतहचन्द को जगत्सेठ की उपाधि नही मिली, पर मानिकचन्द को 'सेठ' की उपाधि और पैर मे सोना पहनने का अधिकार जरूर मिला। यह फर्रुखसियर के तख्तनशीन होने के दो बरस बाद की बात है। मानिकचन्द को जिस फरमान द्वारा 'सेठ' की उपाधि मिली थी वह इस समय भी मौजूद* है। फर्रुखसियर ने उनकी स्त्री के लिए कोई बहुमूल्य आभूषण भेज कर भी उनके परिवार को सम्मानित किया।

मुर्शिदकुली खां की बात और थी। वह अजीमुश्शान से तो लड़-झगड चुका था ही, फर्रुखसियर का भी साथ देने से उसने साफ इन्कार कर दिया था। फिर भी उसे किसी प्रकार का दड नही मिला। कहना चाहिए कि फर्रुखसियर ने सम्राट् हो जाने पर आश्चर्यजनक क्षमाशीलता दिखाई और उसके समय मे मुर्शिदकुली खा को जफर खा नासिरी का

---

* मि० लिट्ल के कथनानुसार।

खिताव ही नही मिला, बल्कि वह नायब नाजिम से उडीसा प्रान्त का नाजिम बना दिया गया।

अचभे की इस वात के तीन कारण जान पडते है —

(१) अव्वल तो दिल्ली-दरबार की ऐसी हालत न रह गई थी कि वहा ऐसे प्रश्नो की ओर कोई ध्यान भी दे सकता। केन्द्र की कमजोरी वढ रही थी और इससे प्रान्तो का अनुशासन दिनोंदिन ढीला होता जा रहा था।

(२) मुर्शिदकुली खा बराबर दिल्ली की दलबन्दियों और झगड़ों से दूर रहता था। जो कोई सम्राट् हो उसकी आज्ञाओ का पालन करना और खर्च के वाद जो रकम वचे उसे नियमित रूप से दिल्ली पहुचा देना, थोड़े मे यही उसका सिद्धान्त था।

(३) मानिकचन्द और उनके बाद फतहचन्द जैसे धनाढच और प्रभावशाली सेठ उसके शुभचिन्तक और पृष्ठपोषक थे—इसने भी आपत्काल में बरावर उसकी रक्षा ही की।

विक्रम संवत् १७७१ (सन् १७१४) मे माघ शुक्ल १० को मानिकचन्द का शरीरान्त हुआ। उनके दो स्त्रिया थी, पर किसी से भी पुत्र न होने के कारण उन्होने अपने भाजे फतहचन्द को गोद ले रखा था। यही उनके उत्तराधिकारी और प्रथम जगत्सेठ हुए। मानिकचन्द की पहली स्त्री, पति के मरने के बाद २७ बरस तक जीवित रही। वड़ी परोपकारिणी थी और उनका अधिकांश समय नेम-धरम मे ही व्यतीत होता था।

महिमापुर के पास, मानिकवाग मे, स्तभ के रूप में मानिकचन्द का एक स्मारक निर्मित हुआ था। वरसों वाद वह उस उद्यान के साथ,

भागीरथी का मुखग्रास बन गया। पर वह जब तक कायम था, पास से गुजरने वालों को एक ऐसे कर्मवीर की याद दिलाया करता था जो अपने समय के व्यापारी-समाज में सचमुच 'सेठ' अर्थात् श्रेष्ठ था और जिसने यह श्रेष्ठता उथल-पुथल के समय में भी अपने गुणों के विकास से प्राप्त की थी। मरते समय उसे इतना संतोष जरूर था कि नाव की पतवार अब जिस नाविक के हाथ जा रही थी वह अनुभवहीन न था अर्थात् वह समुद्र को शान्त तथा क्षुब्ध दोनों अवस्थाओं में देख चुका था, हवा के रुख के अनुसार पाल तानना या समेटना थोड़ा-बहुत सीख चुका था।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ २५—बगाल को मुसलमान शासक जन्नत अर्थात् स्वर्ग कहा करते थे। इसका कारण था वहा की भूमि का उर्वर और शस्य-श्यामल होना। औरंगजेब बंगाल को स्वर्ग नही, नरक कहा करता था, यद्यपि वह इतना स्वीकार करता था कि यह नरक खाद्य-पदार्थों से भरपूर है।

अकबर के समय में बगाल १९ सरकारो या जिलो में विभक्त था। उसके बाद इसकी सीमा का क्रमश. विस्तार होता गया, आसाम, कूचविहार, त्रिपुरा आदि बगाल के ही अग बन गये। इसके फलस्वरूप सरकारो की सख्या बढ़ी, और उसके साथ राजस्व तथा अन्य मदो से होने वाली आय भी।

(२) पृष्ठ २६—कहा जाता है कि अकबर के शासन-काल मे मखसूस खा नामक किसी व्यापारी ने यहा एक सराय बनवाई और उसी के नाम पर यह स्थान मखसूसाबाद कहाने लगा। मखसूसाबाद या मखसूदाबाद या मकसूदाबाद ही पीछे मुर्शिदाबाद के नाम से विशेष प्रसिद्ध हुआ।

व्यापारिक दृष्टि से इसका महत्त्व बगाल में रेशम के व्यवसाय का प्रधान केन्द्र होने में था। सतरहवी शताब्दी मे ही विदेशी व्यापारी वहा पहुँच चुके थे और उसके आसपास अपनी फैक्टरिया या कारखाने खोल चुके थे। उस समय विशेष ख्याति कासिमबाजार की थी। अगरेज कासिमबाजार में रहते थे, डच कालकापुर मे, फरासीसी और अर्मनी सैदाबाद या फरासडागा में। आसपास के और स्थानो के नाम ब्रह्मपुर, अजीमगज, बड़नगर, भगवान-गोला, गिरिया, जगोपुर, काडी, किरीटकोना या किरीटेश्वरी, सैदापुर, रागामाटी आदि थे—जिनसे बगाल का इधर प्राय. ढाई सौ बरसो का इतिहास सम्बद्ध है।

आज भी मुर्शिदाबाद भागीरथी के तट पर स्थित है। भागीरथी गगा के प्राचीन स्रोत का नाम है। अब गगा वहा से कई मील पूरब होकर बहती है और बगाल मे प्राय. पद्मा कही जाती है। इधर प्राय. सवा सौ बरसो मे भागीरथी का मार्ग भी बदल चुका है। इसका एक नतीजा यह हुआ है कि इसके किनारे के कुछ स्थानों की जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से अहितकर हो गई है और

साथ ही उनका गौरव मिट्टी मे मिल चुका है । कासिमबाजार का उदाहरण देने लायक है । जब १८१३ के लगभग भागीरथी अपने पुराने मार्ग मे प्राय तीन मील पश्चिम हट कर बहने लगी तब जहा पहले नदी थी वहा 'खाल' हो जाने से कासिमबाजार में ऐसी महामारी फैली कि हजारो लोग काल-कवलित हो गये और सारा स्थान श्मशान-सा बन गया।

नवाबो का मुर्शिदाबाद भागीरथी के दोनो ओर था और पलासी के युद्ध के समय भी खास शहर का रकबा प्राय पच्चीस वर्ग मील बताया गया था। क्लाइव ने लिखा था—"विस्तार में, जनसख्या मे और ऐश्वर्य मे मुर्शिदाबाद लदन की बराबरी का है—अन्तर है तो इतना ही कि मुर्शिदाबाद के कुछ व्यक्तियो के पास इतनी धन-सम्पत्ति है कि उनकी बराबरी करने वाले लदन मे नही मिल सकते। अगर मुर्शिदाबाद के लोग अगरेजो को खूनखराबी पर आमादा हो जाते तो ईंट-पत्थरो से और छडी-लाठियो से ही उनकी हस्ती मिटा सकते थे।"

यह सब होते हुए भी, मुर्शिदाबाद न तो सुरक्षित ही कहा जा सकता था, न सुन्दर ही। किले की तो बात ही क्या, वहा शहरपनाह भी न थी। कुछ बरसो तक तो इससे कोई हानि नही हुई, पर मराठो की चढाइयो के समय नगर की रक्षा का प्रश्न बडा विकट हो गया। शहर भी किसी किते पर बसाया हुआ नही था। मुर्शिदकुली खा को तडक-भडक पसन्द न थी। बडी और खूबसूरत इमारतो के बनवाने की ओर कुछ ध्यान गया तो शुजाउद्दौला का। अलीवर्दी खा का प्राय सारा समय बगाल, बिहार और उडीसा मे लडते ही बीता। उसके बाद ऐसी क्रान्ति हुई कि मुर्शिदाबाद नाम-मात्र को राजधानी रह गया। १७९० मे तो यह बचा-खुचा गौरव भी उससे छिन गया।

(३) पृष्ठ २८—औरगजेब को अपने जीवन के शेष भाग मे, रुपये की बडी तंगी रहने लगी थी। प्राय. बीस बरस तक निरतर जारी रहने वाली दक्षिण की लड़ाई या लडाइयो के कारण अर्थाभाव बराबर बना ही रहता था। सैनिको का वेतन तीन तीन साल तक न चुकना साधारण-सी बात थी। इस समराग्नि मे उसने उस धन के भी काफी बडे अश की आहुति दे दी, जो अकबर के समय से आगरे और दिल्ली के किलो के तहखानो में, गाढ़े समय में काम आने के लिए,

जमा होता आया था। फिर भी पूरा न पडा। सैनिक इतने असतुष्ट रहने लगे कि उन पर पूरा अनुशासन या नियत्रण रखना असभव-प्राय हो गया। छावनो मे उपद्रव मचे ही रहते। कभी कोई सैनिक किसी वख्शी की इज्जत उतार लेता तो कभी कोई किसी के दो टुकड़े कर देता। कभी बागी सिपाहियो के जत्थे के जत्थे, दक्षिण की ओर पीठ कर, अपने अपने घर चल देते।

इलाके के इलाके वीरान और वरवाद हो चुके थे। पेड-पौधो की जगह कहीं कही दूर तक सिर्फ आदमियो और जानवरो की हड्डिया नजर आने लगी थी। अनुशासन दिन दिन शिथिल होता जा रहा था। अराजकता के वीज वोये जा रहे थे और जहा तहा अकुरो का उगना भी प्रारभ हो गया था। ऐसी स्थिति में औरगजेब का सहारा रह गया था तो वगाल, विहार, उडीसा-जैसे इने-गिने प्रान्तो का, जो दक्खिन से फैले हुए सक्रामक रोगो से अभी तक अछूते थे और जो औरगजेब की भूखी सेना के लिए वरावर थोडा-बहुत आहार जुटाते जाते थे। वादशाही लश्कर मे मुर्शिदकुली खा द्वारा भेजे गये खजाने की राह लोग वडी उत्सुकता से देखा करते थे।

(८) पृष्ठ २१— 'टकसाल किस जगह पर थी, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगो का ख्याल है कि यह पहले नदी के पश्चिम तट पर उच्छागज के आमने-सामने थी, फिर वहा से हटाकर उस स्थान पर लाई गई जहां इस समय (१९०५) निजामत इमामबाडा का एक अंश है। इसके पास ही टकसाल-घाट है। जगत्सेठ की समाधि कहाने वाली इमारत भी यहा से थोडी दूर पर दयावाग के पास थी। नदी के कटाव से अब इसका लोप हो गया है। सिक्को की ढलाई से जगत्सेठो का जो घनिष्ठ सम्बन्ध था उससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि टकसाल इस घाट और उस इमारत के आसपास ही थी।" (श्री पूर्णचन्द्र मजुमदार)

टकसाल म ढलने वाले सिक्को मे रुपया मुख्य था। यह शायद शेरशाह का चलाया हुआ था ओर अकबर के समय में इसके आकार-प्रकार में काफी सुधार हुआ। टकसाल-सम्बन्धी व्यवस्था ओर तत्कालीन सिक्को

का "आईने अकवरी" मे काफी वि तृा वर्णन है, जिससे कुछ वाते नीचे दी जाती है —

सोने के सिक्के प्राय २६ प्रकार के थे जिनमे मुख्य थे, मोहर, आफतावी, इलाही और जलाली। मोहरो में ११ माशा सोना होता था और उसकी कीमत होती ९ रुपया। चादी के कुछ सिक्को के नाम थे—जलाला (१ रुपया), दरव (॥)), चरन (।)), अप्ट (=)), दस (-)॥) और कला (-))। जलाला अर्थात् रुपया साढे ११ माशे चादी का होता। तावे के सिक्को में मुख्य था दाम, जिसे पहले पैसा या वहलोली कहा करते थे। दाम का आधा अधेला था, चौथाई पावला और आठवा भाग दमडी। हिसाव-किताव मे दाम ही इकाई का काम करता था और ४० दाम एक रुपये के वरावर माने जाते थे। इन सव सिक्को मे मुख्य तीन ही थे—सोने की मोहर, चादी का रुपया, और तावे का दाम।

अकबर के समय में एक तोला और दो सुर्ख या रत्ती चादी का मूल्य एक रुपया वैठता था। अर्थात् ९५० रुपये को ९६९ तोले, ९ माशे और ५ सुर्ख चादी खरीदी जा सकती थी। अगर कोई इतनी चादी टकसाल में ले जाकर इसके सिक्के कराता तो उसे वदले में १००६ रुपये मिलते और कुछ चादी वापिस मिलती जिसकी कीमत २७॥ दाम होती।

खर्च इस प्रकार बैठता —

	रुपये	दाम	जीतल
चादी की कीमत	९५०	०	०
कारीगरो की मजदूरी	२	२२	१२
कोयला, पानी	०	१०	१५
ढलवाई	५०	१३	०
	१००३	६	२

गरज यह कि सराफ को आय मे से व्यय निकाल देने के बाद साढे तीन रुपय को बचत होती ।

"आईने अकबरी" मे 'जलाला' के अलावा एक और रुपये का जिक्र है जिसे 'अकबरशाही' कहते थे। यह जलाला से कीमत मे १ दाम कम होता था। अगर इसका वजन दो सुर्ख या रत्ती कम होता तो इसके ३८ ही दाम मिलते। अगर वजन उससे भी कम होता तो सिक्का चादी माना जाता और उसी के मोल बिकता । शिराज-निवासी अजुद्दौला जब अकबर का अर्थ-मन्त्री हुआ तब उसने यह नियम चलाया कि मोहर का वजन ३ चावल और रुपये का वजन ६ चावल तक कम होने पर भी उनका वजन पूरा ही माना जाय—उन पर किसी प्रकार का बट्टा न कटे । पर अकबर को यह अनुचित प्रतीत हुआ, इसलिए फिर यही नियम हो चला कि सिक्के मे ठीक जितना सोना या चादी हो उसका मूल्य उसी के अनुसार माना जाय।

(५) पृष्ठ २९—जगत्सेठो का घर भागीरथी के पश्चिम तट पर महिमापुर नामक स्थान मे था। मुर्शिदाबाद गजेटियर मे लिखा है (१९१४)—

"इसी मकान में पलासी के युद्ध के तीन दिन बाद, वाट्स और वाल्श मीर जाफर और राजा दुर्लभराम से मिले थे और लेन-देन के बारे में बातचीत की थी। यही फिर २९ जून १७५७ को क्लाइव, वाट्स, स्क्राफ्टन, मीरन और दुर्लभराम एकत्र हुए थे और क्लाइव ने यह कहकर कि जो इकरारनामा हुआ था, उसमे अमीचन्द का कोई सरोकार न था, उनकी सारी आशाओ पर पानी फेर दिया था—उन्हें विक्षिप्त-सा बना दिया था। मकान का अधिकाश भागीरथी अपने पेट में डाल चुकी है। बचा-खुचा अश खडहर हो रहा है। जैन मन्दिर की भी यही दशा हुई है, उसके कुछ खभे और कुछ मेहराबे अब भी मौजूद है जिनकी बनावट देखते ही बनती है। १८०१ में हरखचन्द ने एक हिन्दू मन्दिर बनवाया था। इसका कुछ अश तो १८९७ के भूकप से नष्ट हो गया था फिर भी अधिकाश वर्तमान है। इसमे चीनी मिट्टी के पट लगे हुए है। जहा पहले टकसाल थी—या दूसरे मत के अनुसार जहा पहले जगत्सेठो की कोठी थी—वहा

घासपात से ढका हुआ भीटा और सगमरमर का एक हौज, वस यही दो चीजें रह गई है। थोडी ही दूर पर पीतल का कलश वाला एक गोलाकार मदिर है जिसे सतीचौरा कहते है । वहा कभी कोई स्त्री सती हुई थी।"

भागीरथी के इसी तट पर मुरादवाग, हीरा झील और मसूरगज थे। मंसूरगज का महल सिराजुद्दौला का वनवाया हुआ था। यही से वह पलासी के मैदान म गया था और वहा हार होने पर फिर यही लौटा था। यही उसका वह खजाना था जिसकी लूट का इस पुस्तक मे अन्यत्र उल्लेख है।

(६) पृष्ट २९— मि० मोरलैन्ड लिखते है:—"यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि राजस्व-विभाग ने खालसा गावो या परगनों का इजारा देने की प्रथा कव चलाई और जो भूमि-कर पहले सरकार-द्वारा वसूल होता था वह कब से इन इजारेदारो या ठेकेदारो के द्वारा वसूल होने लगा । जान पडता है कि इस प्रथा का प्रारभ कुछ प्रान्तो या प्रदेशो मे, शाहजहा के राज्यकाल के अन्तिम दिनो मे हुआ और औरगजेव तथा उसके वशजो के समय मे इसका प्रचार वढा। वगाल मे खालसा-विभाग के हाथ मे जव जमीन ज्यादा हो चली तव यह रिवाज वढा कि गाव के गाव या परगने कुछ लोगो को इस शर्त पर दे दिये जाते कि लगान वसूल करना न करना उनका काम होता—वे एक निश्चित रकम सरकार को साल-व-साल देते जाते। साधारणत यह रकम न घटाई जाती न वढाई जाती । और धीरे धीरे यह स्थायी या दवामी समझी जाने लगी। इस प्रकार इन इजारेदारो की स्थिति वही हो चली जो रजवाडो या नरेशो की थी और दोनो जमीदार कहे जाने लगे। पहले जमीदार उन नरेशो को ही कहते थे।"

लार्ड कार्नवालिस के दवामी या इस्तमरारी वन्दोवस्त ने कोई नई प्रथा नही चलाई। जो प्रथा चली आती थी—चाहे औरगजेव के समय से, चाहे शाहजहा के समय से, चाहे और प्राचीन काल से, चाहे ईस्ट इडिया कपनी का आधिपत्य हो जाने के वाद से—उसने उसी को वहाल रखा और गैर-कानूनी तौर से होने वाले उलट-फेर की गुजाइश मिटा दी । हा, जितने लोग जमीदारो की श्रेणी में आ गये, उनके अधिकार समान कर दिये गये और वे नरेशो के-से न

रहे। दरभगा, वेतिया, टेकारी, बर्दवान ये जमीदारिया कार्नवालिस-से पहले, कुछ तो वहुत पहले से—वर्तमान थी । इनमें कुछ जमीदार बडे शूर-वीर और निरतर लडते-भिडते रहने वाले भी थे। "मुताखरीन" के लेखक ने टेकारी के 'ब्राह्मण' जमीदार राजा सुन्दर सिह का वर्णन ऐसे ही लडाके के रूप में किया है । अब इनके वशज भी जमीदार ही चले, पर इनके अधिकार उन जमीदारो के-से न रहे जो अब 'नरेशो' की श्रेणी मे आ गये । उदाहरण के लिए, मैसूर के राजा एक समय 'जमीदार' ही कहे जाते थे। "मआसिरुल उमरा" के लेखक ने लिखा है–"(बीजापुरी) कर्णाटिक विस्तृत तथा उपजाऊ प्रान्त था। इसके आसपास बहुत सेजमीदारो की जमीन थी जो अपने अधिकार के अनुसार कर दिया करते थे। इन्ही में सेरिंगापत्तन का जमीदार मैसूरिया था, जो चार करोड रुपये कर देता था।" यह भी नही कहा जा सकता कि कार्नवालिस के समय में जमीदार वही माने गये जिनकी आय अपेक्षाकृत कम थी। बडी बडी आय वाले भी जमीदार बना दिये गये और नगण्य आय वाले भी 'नरेशो' या विशेष-अधिकार-सम्पन्न राजाओ की श्रेणी मे बने रहे । सच पूछा जाय तो अगरेज किसी सिद्धान्त के कायल न थे। उन्होने अपने प्रभुत्व के विस्तार और शासन की व्यवस्था के मार्ग में कम से कम विरोध या रुकावट की दृष्टि से जहा जो उचित समझा, वही किया।

शाहजहा के समय में सारे साम्राज्य की आय प्राय २० करोड थी। औरगजेब के समय में यह प्राय ३० करोड हो चली थी । आय-वृद्धि का प्रधान कारण था राज्य का विस्तार, विशेषत दाक्षिणात्य में। फिर औरगजेब के शासन-काल के पिछले दिनो मे जजिया-कर से भी काफी आमदनी होने लगी थी।

विहार या वगाल मे राजस्व-सम्वन्धी व्यवस्था का आधार प्राय: वह वन्दोवस्त था जो राजा टोडरमल अकबर के समय मे कर चुके थे। "मआसिरुल उमरा" के लेखक ने अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे लिखा था, "राजा टोडरमल के वनाये हुए नियम अब भी दफ्तरो मे जारी है। हिन्दुस्तान के प्राचीन राजाओ और सुलतानो के समय में, उपज का छठा भाग जमीन के लगान के रूप मे लिया जाता था। राजा टोडरमल ने भूमि के कई विभाग पहाडी, पडती, ऊसर, वजर आदि किये। उपजाऊ और अन-उपजाऊ खेतो की नाप करके (जिसे

रकबा कहते हैं) तथा उनकी नाप बीघा, बिस्वा और लाठा से लेकर हर प्रकार के खेत पर प्रति बीघा नकद और कुछ पर अन्न-कर, जिसे बटाई कहते हैं, लगाया।" (श्री ब्रजरत्नदास-कृत हिन्दी -अनुवाद से)।

राजा टोडरमल के किये हुये मालगुजारी के बन्दोबस्त के बारे में, मौलाना मुहम्मद हुसैन "दरबारे अकबरी" मे लिखते हैं —

"अब तक मालगुजारी और माल-विभाग का प्राय सारा प्रबन्ध अनिश्चित और अनियमित-सा था और मालगुजारी केवल कूत पर थी। प्रत्येक देहात की मालगुजारी प्राय वही थी, जो सैकडो वर्षों से बधी चली आती थी। बहुत-सी बाते ऐसी भी थी जो कही लिखी तक न थी, दफ्तर के मुशियो की जबानो पर ही थी। राज्यो के उलट-फेर ने सुप्रबन्ध और सुव्यवस्था का समय ही न आने दिया था। माल-विभाग मे सब से बडा दोष यह था कि एक अमीर को एक प्रदेश दे दिया जाता था। दफ्तरवाले उसे दस हजार की आय का बतलाते थे, और वह वास्तव में पन्द्रह हजार की आय का होता था। इतने पर भी वह प्रदेश जिसे दिया जाता था, वह रोता था कि यह तो पाच हजार की आय का भी नही है। विचार यह हुआ कि सब प्रदेशो की पैमाइश या नाप हो जाय और उसकी वास्तविक आय निश्चित कर दी जाय। पहले जमीन की नाप के लिए जरीब की रस्सी हुआ करती थी जो भीगने पर छोटी और सूखने पर बडी हो जाया करती थी, इसलिए बास मे लोहे के छल्ले पहना कर जरीबे तैयार की गई। प्रजा के लाभ के विचार से ५० गज के स्थान मे ६० गज की नाप स्थिर हुई। सारा देश, रेतीले मैदान, पहाडी प्रदेश, उजाड, जगल, शहर, नदिया, नहरे, झीले, तालाब, कूए आदि-आदि सभी नाप डाले गये। जमीनो के भेद-प्रभेद आदि भी लिख लिये गये। कोई बात बाकी न छूटी। जरा-जरा-सी बात लिख ली गई। बस यही समझ लो कि आजकल बन्दोबस्त के कागजो में जो जो विवरण देखने मे आते हैं, उनका आरम्भ अकबर के ही समय मे हुआ था, और उनकी सब बाते तब से अब तक प्राय ज्यो की त्यो चली आती हैं। उनमे कुछ सुधार भी अवश्य हुए हैं, पर बहुत अधिक नही। और ऐसा सदा से होता आया है।

"पैमाइश के उपरान्त उतनी उतनी जमीन एक एक विश्वसनीय आदमी को दे दी गई जितनी जमीन की आय एक करोड़ तिंगा (एक प्रकार का छोटा सिक्का) होती थी, और उसका नाम करोडी रख दिया गया। उस पर और भी काम करनेवाले आदमी नियुक्त हुए। इकरारनामा लिखा लिया गया कि तीन वर्ष के अंदर गैर-आबाद जमीन को भी आबाद कर दूंगा और रुपये खजाने में पहुँचा दूंगा, आदि आदि। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें उस इकरारनामे में सम्मिलित की गईं।

"पर अकबर जिस प्रकार चाहता था, उस प्रकार यह काम न चला, क्योंकि लोग इसमें अपनी हानि समझते थे। माफीदार समझते थे कि हमारे पास जमीन अधिक है और इसकी आय भी अधिक है। पैमाइश हो जाने पर जितनी जमीन अधिक होगी, वह हमसे ले ली जायगी। जागीरदार अर्थात् अमीर भी यही सोचते थे। ईश्वर ने मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी बनाई है कि वह किसी के अधिकार में नहीं रहना चाहता। इसलिए जमींदार भी कुछ प्रसन्न और कुछ अप्रसन्न हुए। जब तक सब लोग प्रसन्न होकर और एकमत से कोई काम न करें तब तक वह काम चल ही नहीं सकता। और फिर जब वे अपनी हानि समझ कर उस काम में बाधक हों, तब तो उस काम का चलना और भी कठिन हो जाता है। दुःख का विषय यह है कि करोडियों ने आबादी बढ़ाने पर उतना अधिक ध्यान नहीं दिया, जितना अपनी आय बढ़ाने पर दिया। उनके अत्या-चारों से खेतिहर चौपट हो गये। उनके घर उजड़ गये और बाल-बच्चे तक बिक गये, अन्त में वे लोग भाग गये। ये दुष्ट और पापी करोडी कहां तक बच सकते थे! इन्होंने तीन वर्ष तक जो कुछ खाया था, वह तो खाया ही था। पर फिर जो कुछ खाया, वह सब टोडरमल के शिकंजे में आकर उगलना पड़ा। तात्पर्य यह कि इतनी उत्तम और लाभदायक व्यवस्था भी इस गड़बड़ी के कारण अंत में हानिकारक ही सिद्ध हुई और जो उद्देश्य था, वह पूरा न हुआ। धन्यवाद मिलने के बदले उलटे जगह जगह शिकायतें होने लगीं और घर घर इसी का रोना मच गया। करोडियों की निंदा होने लगी और नियमों की हंसी उड़ाई जाने लगी।" (श्री रामचन्द्र वर्मा-कृत हिन्दी-अनुवाद से)

उत्तर दिया गया है वह कपनी के पास पहुँचने वाली रिपोर्ट के आधार पर। संभव न था कि पूरी और सच्ची बात कंपनी के कानो तक न पहुच पाती पर अगर ऐसे विषय पर तर्क-वितर्क की कोई गुंजाइश न रहती तो और भी अच्छा होता।

मानसिक गठन में अँगरेज तथा अन्य यूरोप-निवासी यहां के निवासियो से भिन्न थे। व्यापारी होते हुए भी वे अपने बही-खाते जलाकर आग तापने वाले न थे। राजनीतिक उद्देश से उन्होने भले ही कभी किसी बात पर हरताल लगा दी हो या कोई कागज नष्ट कर दिया हो, उनके विषय में साधारणतः यह कहना होगा कि वे इतिहास लिखने या उसकी सामग्री को सुरक्षित रखने से जी चुराने वाले न थे। उनका यही गुण पीढ़ी दर पीढ़ी इतिहास-विटप को सिक्त और परिपुष्ट रखता आया है और उन्ही की देखा-देखी कुछ हद तक हमारे यहां भी उसकी सिचाई होने लगी है। आज ईस्ट इडिया कपनी के ही कागजात से हम ऐसी बातें जान सकते है कि जगत्‌सेठ की कोठी में चांदी का मोल-भाव कैसे तै होता था—उन दिनो हुडी-हुडावन, ब्याज-बट्टे से संबन्ध रखने वाली समस्यायें क्या थीं—और महताबराय जैसा व्यक्ति कलकत्ते जाता तो उसकी मेहमानदारी पर कपनी का क्या खर्च बैठता और टाट से लेकर हाथी की झूल तक उसे क्या क्या सामान जुटाना पड़ता।

इस पुस्तक के कई पृष्ठ हुंडी-हुडावन, आढ़त, दलाली जैसे विषयो से संबंध रखते हैं। नेहरूजी ने अपनी "हिन्दुस्तान की कहानी" में लिखा है कि "महाजनी की व्यवस्था बहुत अच्छी तरह और देश भर में सगठित थी और बड़े बड़े व्यापारियों की हुडियां हिन्दुस्तान में सब जगह सकारी जाती थी और हिन्दुस्तान ही क्या, ईरान, काबुल, हैरात, ताशकद और मध्य एशिया की और जगहो में भी कबूल की जाती थीं। व्यापारी संगठन कायम हो गये थे और गुमाश्तो, माल पहुँचाने वालो, दलालो और बीच के व्यापारियों का जाल सा बिछा हुआ था। दर अस्ल तिजारत और व्यापार और माली मामलों में कारखानो की क्रान्ति (इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन) के जमाने से पहले तक, हिन्दुस्तान किसी भी मुल्क के मुकाबले में तरक्की कर चुका था।....अगर मुल्क में शान्ति और पायदार हुकूमत के लंबे दौर न गुजरे होते और आमद-रफ्त के रास्ते आने-जाने और तिजारत के लिए सुरक्षित न होते तो ऐसी तरक्की न

होती।" पर अब न तो पायदार हुकूमत रह गई थी, न तिजारत ही अपनी असली हालत में बहुत दिनो तक रह सकती थी। अलीवर्दी खां के होते हुए भी जगत्सेठ फतहचन्द, जमाने का रंग-ढंग देख कर, कह चुके थे कि "इस समय तो जान पड़ता है कि कोई सरकार है ही नहीं। शासक-वर्ग को न तो ईश्वर का भय है, न सम्राट् का। चाहे जैसे हो, लोगों से रुपया ऐंठना ही उनका एकमात्र कर्तव्य हो रहा है।"

जब अराजकता मिटी और अंगरेजों का राज्य हो जाने पर शान्ति और व्यवस्था का फिर लंबा दौर गुजरा भी तो उसके फलस्वरूप हमारी आर्थिक उन्नति न हो सकी, कारण कि विदेशी सरकार और भी तत्परता से लोगो का खून चूसने लगी और हमारे व्यापारियों की भी परंपरागत बुद्धि या कार्य-कुशलता इस देश के काम न आकर इंगलैण्ड के ही काम आने लगी। व्यापार या व्यापारियों के हुंडी-पुरजों में जो ताकत होती है वह, थोड़े में, पैदावार की ही ताकत कही जा सकती है। वह पैदावार अब दिन दिन कम होने लगी---अब इंगलैण्ड बगाल से मलमल न मंगा कर अपने ही कारखानो में महीन से महीन सूत की कताई और कपड़े की बुनाई करने लगा। औद्योगिक क्रान्ति से भी कही भयकर राजनीतिक क्रान्ति हो जाने से हमारे कारीगर भूखो मरने लगे---हमारा वाणिज्य-व्यवसाय चौपट होने लगा---हमारे बड़े-से-बड़े व्यापारी एक एक कर टाट उलटने लगे। जहां फतहचन्द बड़ी ही आसानी से एक करोड़ की दर्शनी हुंडी का भी भुगतान कर सकते थे वहां हरखचन्द से डेढ़ लाख से भी कम रुपये की हुंडी का भुगतान कई किस्तो में ही हो सका था। यह एक परिवार की ही नहीं, देशमात्र की साम्पत्तिक अवस्था में 'लाख से लोख' जैसे परिवर्तन की सूचना थी।

इस पुस्तक में सारे विषय के इतिहास पर हिंदी-भाषाभाषियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर, प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। जिन इतिहास-ग्रंथों या लेखो से इसके लिखने में सहायता ली गई है उनके नाम प्रायः यथास्थान दे दिये गये हैं। जगत्सेठो के वृत्तान्त---विशेषतः ईस्ट इंडिया कंपनी और उनके बीच लेन-देन---के सम्बन्ध में स्व० जे० एच० लिट्ल के अनुसंधान ने अंधे की लकड़ी का काम किया है। पर इन ग्रंथों या लेखों में कई इस समय दुष्प्राप्य

है और लेखक की समस्या हल हो सकी है तो कुछ मित्रो की उदारता से ही। इनम कलकत्ते के श्री विनायक लाल खन्ना, श्री ज्योतिष चन्द्र गुप्त और श्री रमेश चन्द्र ठाकुर विशेष उल्लेखनीय है। राजस्थान के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीराम शर्म्मा, सस्ता-साहित्य-मंडल के श्री मार्तंड उपाध्याय और भारती-भंडार के श्री वासुदेव उपाध्याय भी इस प्रयास में उसके सहायक हुए हैं। पुस्तक के आरंभ में हीरानन्द साह की कोठी का जो चित्र है वह टामस डेनियल नामक चित्रकार ने १७९५ में तैयार किया था। उसका फोटो पटने के प्रसिद्ध कलाप्रेमी और प्राचीन वस्तुओं के संग्रहकर्ता सेठ श्री राधाकृष्ण जी जालान के सौजन्य से प्राप्त हो सका है। इनका तथा अन्य सहायक मित्रों का लेखक बडा आभारी है।

काशी में माननीय श्रीप्रकाश जी का परिवार एक गुरुकुल के समान रहा है। स्वयं श्रीप्रकाश जी वहां किसी समय इतिहास के अध्यापक ही नहीं, छात्रों के पथप्रदर्शक और सहायक भी रह चुके हैं। बड़े गुरुभाई के आशीर्वचन के लिए उन्हें धन्यवाद देना तो एक प्रकार की धृष्टता होगी, पर उनके प्रोत्साहन से उसकी लेखनी को और भी बल मिलेगा, लेखक को यह आशा और विश्वास है।

पारसनाथ सिंह

विषय-सूची

जगत्सेठ

और

बङ्गाल में अँगरेजी राज्य की नींव
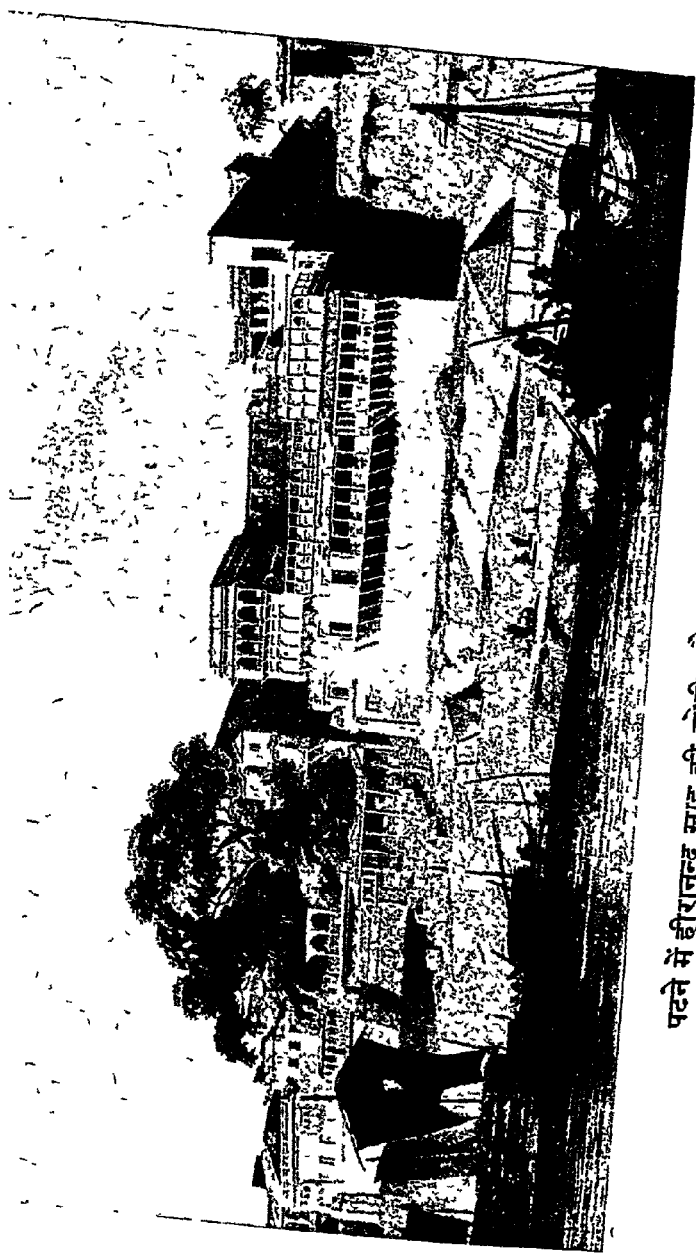
पटने में हीरानन्द साहु की कोठी और घाट—(प्राचीन चित्र से)

मुर्शिदकुली खा ने अपने शासन-काल मे बगाल की जमीन की फिर से नाप कराई और टोडरमल के किये हुए बन्दोवस्त मे कुछ हेरफेर किया।

(७) पृष्ठ ३४—भारतवर्ष अपना जो माल दूसरे देशो को भेजता या वेचता था उसके बदले खास कर सोना या चादी लेता था। यूरोप से यहा सोने की अपेक्षा चादी अधिक आती, कारण कि यहा चादी का मूल्य यूरोप से अधिक था। जहा एक औस सोना देने पर यहा प्राय ९ औस ही चादी मिल सकती, वहा यूरोप मे उसके वदले १० से १३ औस तक चांदी मिल जाती। हम टकसाल के प्रकरण मे अभी देख चुके है कि रुपये मे ११॥ माशा चादी होती और मोहर मे ११ माशा सोना। फिर भी अकवर के समय मे १ मोहर के ९ रुपये ही होते। अर्थात् ११ माशा सोना १०३॥ माशा चादी। अर्थात् १ माशा सोना = ९ माशा से कुछ ऊपर चादी।

अवुल फजल ने सोने के वारे मे लिखा है —

"यो तो हिन्दुस्तान मे सोने की आमद वाहर से भी होती है, पर यह इस देश क उत्तर के पहाडो और तिब्वत मे भी पाया जाता है। सलौनी क्रिया से यह गगा, सिंधु और दूसरी नदियो की रेत से भी प्राप्त किया जा सकता है, पर इस काम मे जो मेहनत-मजदूरी लगती है उसको देखते हुए यह नफे का नही कहा जा सकता।"

१४९३ मे अमेरिका का पता चलने पर, यूरोप मे सोना और चादी दोनो बहुत वडे परिमाण मे आने लगे। पहले तो वहा की आदि-निवासी इडियन जाति की लूट-खसोट से ये धातुए प्राप्त की जाती, फिर वहा पहुचने वाले स्पेन-निवासी, बोलोभिया, पेरू, मेक्सिको आदि मे खानो से इन्हे प्राप्त करने लगे। नतीजा यह हुआ कि यूरोप मे मुद्रा के काम आने वाली धातुओ का परिमाण सदियो तक बढता ही गया और इससे वहा दामो मे तेजी आती गई, वहा की आर्थिक उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी होती गई।

सन् १४९३ से लेकर १८०० तक अर्थात् ३०० सालों मे, ससार मे कितना

सोना हुआ पैदा और कितनी चांदी, और दोनों का पारस्परिक अनुपात क्या था यह नीचे की तालिका मे दिया गया है —

	खालिस सोना करोड़ औस	खालिस चादी करोड़ औंस	अनुपात
१४९३-१६००	२ ३	७४ ७	३२
१६०१-१७००	२·९	१२७ २	४४
१७०१-१८००	६·१	१८३ ३	३०
जोड़	११·३	३८५ २	

(१४९३ से १८०० तक का अनुपात ३४)

बराबर बराबर वजन के सोना-चादी के मूल्यो का जो अनुपात इससे पहले १—११ था वह चादी के उत्पादन मे वृद्धि के कारण १—१५ हो चला। प्राय: दो सौ साल तक दोनो का पारस्परिक अनुपात यही बना रहा।

कपनी जो चादी इस देश मे ला कर बेचती उसका कुछ अश सिक्को के रूप मे होता। ये सिक्के प्राय. ऐसे डालर होते जो स्पेन-निवासियो-द्वारा मेक्सिको तथा दक्षिण अमेरिका मे ढाले जाते। अमेरिका की चादी अगरेज व्यापारी इगलैण्ड ले जाते और वहा से उसे ढाके की मलमल या मुर्शिदाबाद के रेशम या बिहार के शोरे की कीमत चुकाने के लिए कलकत्ते पहुचाते । फिर जगत्सेठ की कोठी मे मोल-चाल शुरू होती । इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का क्षेत्र पुराने से नये ससार तक फैल चुका था।

फतहचन्द

सुप्रीतो देवश्चन्द्रगुप्तः समाज्ञापयति एष श्रेष्ठी चन्दनदासः पृथिव्यां सर्वनगरश्रेष्ठिपदमारोप्यताम् ।

बहुत प्रसन्न होकर महाराज चन्द्रगुप्त आज्ञा देते है कि सेठ चन्दनदास को ससारमात्र के नगरसेठ का पद प्रदान किया जाय।

—मुद्राराक्षस

(१)

फतहचन्द के पूर्वज पहले अहमदाबाद मे रहते थे। उनमे से पदमसी १६२७ मे खंभात जा बसा। उसके दो पुत्र थे—श्रीपति और अमरदत्त, और शायद दोनो ही जौहरी थे। शाहजहा बादशाह की कभी अमरदत्त पर कृपा हुई और वह उसे अपने साथ आगरे ले गया। वहा उसको जवाहरात की मुकीमी का ओहदा मिला। फिर यह मुकीमी उसके बेटों को मिली, जिनके नाम थे राय उदयचन्द और केसरीसिह। मानिकचन्द की बहन धनबाई का ब्याह इन्ही राय उदयचन्द से हुआ था। इनके चार पुत्र हुए—मित्रसेन, सभाचन्द, फतहचन्द और रायसिह। तीसरे पुत्र फतहचन्द सन् १७०० मे अपने मामा की गोद गये। उस समय वह पटने ही मे थे। इसके बाद वह प्राय. बराबर मानिकचन्द के ही साथ रहने और काम-काज मे उनका हाथ बंटाने लगे।

अपने राज्य-काल के पाचवे वर्ष मे फर्रुखसियर ने एक फरमान निकाल कर फतहचन्द को भी 'सेठ' की उपाधि से सम्मानित किया।

जैसा कि हम पिछले अध्याय मे देख चुके है, मुर्शिदकुली खा पर

उसकी यह कृपा हुई कि इसे जफर खां नासिरी का खिताब मिला और यह उड़ीसा का नाजिम कर दिया गया।

कंपनी को यह लाभ हुआ कि उसकी ओर से सरमन नामक अंगरेज कर्मचारी की अध्यक्षता में एक दूत-दल[1] के दिल्ली जाने पर, सम्राट् से उसे १७१७ मे मुंहमांगा वर मिल गया। अर्थात्

(१) यह निर्विवाद कर दिया गया कि कपनी बंगाल, बिहार और उड़ीसा इन तीनो प्रान्तो मे नि:शुल्क व्यापार कर सकेगी, उसे साल मे ३,००० रु० पेशकश के अलावा और कुछ भी देना न पड़ेगा।

(२) कंपनी को यह अधिकार दिया गया कि वह कलकत्ते के आसपास और जो गांव चाहती थी उन्हे जमीदारो से खरीद ले।

(३) यह हुक्म भी फरमाया गया कि अगर मद्रास की टकसाल में ढले हुए रुपये सूरत की टकसाल के रुपये-जैसे ही हों तो उन पर बट्टा न काटा जाय।

सरमन के कलकत्ते लौटने से पहले ही, कंपनी के प्रतिनिधि मुर्शिदाबाद जाकर दीवान को दिल्ली से मिले हुए आज्ञापत्रो की नकल दिखा आये थे। पर उनसे वह तनिक भी प्रभावित नही हुआ था। बल्कि उसने स्पष्ट शब्दों मे यह कह दिया था कि कपनी चाहे जो फरमान या हस्बुलहुक्म ले आवे, मै न तो उसे किसी और गाव का जमीदार बनने दूंगा, न उसे टकसाल मे घुसने दूगा। जो जमीदार पैसे के लिए अपना स्वत्व बेच देने को तैयार थे उन्हे दीवान के भ्रू-भग के कारण वैसा करने का साहस न हुआ। टकसाल का दरवाजा भी बद ही रहा। २७ अगस्त १७२१ को कासिमबाजार वाले कलकत्ते लिखते है —

"हमारी कोशिश तो जारी है, मगर वह दरवाजा खुलता नहीं दीखता। इधर हमने कुछ दरबारियो से सिफारिश करानी चाही तो

उन्होने यही जवाब दिया कि जब तक फतहचन्द पर नवाब की ऐसी मेहरबानी बनी हुई है, हम कपनी को किसी प्रकार का आश्वासन नही दे सकते। बात यह है कि फतहचन्द को टकसाल का इजारा-सा मिल गया है, फलत और कोई सराफ या महाजन, वहा ढलाई कराने के लिए, एक रुपये की भी चादी की खरीद या बिक्री नही कर सकता।"

९ नवबर १७२१ के कपनी के लेखे मे दर्ज है —

"दो पेटी चादी कुछ समय से कासिमबाजार मे पड़ी हुई थी। वहां वालो को अब मजबूर हो कर उसे बेच देना पडा है, २४० 'सिक्के' भर चादी के लिए २०७।) ('सिक्को') के भाव से। फतहचन्द को छोड कर और कोई टकसाल से फायदा नही उठा सकता, इसलिए चादी को और कोई सराफ छूने के लिए भी तैयार नही। उधर फतहचन्द से जरा भी ऊचा दाम मिलना असभव है। खबर मिली है कि हमारे पुराने ('सिक्को') का वजन मुहम्मद शाह के राज्य-काल के तीसरे वर्ष के बिलकुल नये (सिक्को') से किया गया, जिसके कारण हमे और भी कसर खानी पडी।"

कुछ ही दिन बाद फिर चादी की चर्चा की जाती है —

"दस पेटी 'डकाटून' सिक्के कासिमबाजार भेजे गए थे। वहां वाले लिखते है कि उनके दाम के बारे मे उन्हे फिर फतहचन्द से काफी हुज्जत करनी पडी। जहा वे फी डकाटून २।)६ पा० के हिसाब से बेचना चाहते थे, वहा फतहचन्द को २।)३ पा० से अधिक देना मजूर न था। अन्त मे हमारे कर्मचारियो ने मजबूर हो कर २।)४।। पा० के हिसाब से औने-पौने कर लिया। दूसरे व्यापारी इस समय चादी के खरीदार नही। कोई खरीद भी ले तो उसे फिर फतहचन्द के ही हाथ वह चादी बेच देनी पडेगी और यह सौदा उसके लिए महगा पडे बिना न रहेगा।"

ऊपर मुहम्मद शाह के सम्राट् होने का उल्लेख है। उसके तख्त पर बैठने से पहले फर्रुखसियर मारा[२] जा चुका था तथा दो और सम्राटों की अकाल-मृत्यु हो चुकी थी। उथल-पुथल का कारण यह हुआ कि फर्रुखसियर दिल्लीश्वर होते ही सैयद-बन्धुओं के नियंत्रण या अनुशासन से मुक्त होने का उपाय ढूढने लगा। जाहिरा तौर पर सैयद-बन्धुओं के प्रति सद्भाव रखते हुए भी वह दिल से उनका दुश्मन हो गया और यह बात उनसे छिपी न रह सकी। राजा और दोनो मन्त्रियों के बीच हो जाने वाली अनबन ने बढते-बढते एक दिन ऐसा रूप धारण किया कि उस आग में पहले तो स्वय फर्रुखसियर भस्मीभूत हो गया, फिर एक एक कर दोनो सैयद-बन्धु भी जल मरे। इनके मरने से पहले मुहम्मद शाह तख्त पर बैठ चुका था—पर ऐसे तख्त पर जो घुनता जा रहा था, जिसकी क्षीणता अदर ही अदर बढ़ती जा रही थी।

फर्रुखसियर और उन दोनों भाइयों के सम्बन्ध को कुछ से कुछ कर देने मे थोड़े से दरबारियों का बडा हाथ था। इनमें मुख्य थे मीर जुमला, * खानदौरां, निजामुल्मुल्क, अमीन खा—जो दरबार के तूरानी दल के अधिनायक और सैयद-बन्धुओं के घोर शत्रु थे। उस समय दिल्ली मे दलबन्दी जोरो पर थी। तूरानी, ईरानी, हिन्दुस्तानी और अफगान (पठान) यही उन दिनों के प्रधान दल थे। तूरानी मध्य एशिया के उस भू-भाग से आकर यहां बस जाने वाले थे जो मुगलों का जन्मस्थान माना जाता था। ईरानी सख्या मे कम होते हुए भी, अपनी शिक्षा और संस्कृति के कारण यहा के शासन-क्षेत्र मे विशेष स्थान रखते थे। ये लोग प्राय शीया-सम्प्रदाय के होते और तूरानी सुन्नी-सम्प्रदाय के।

* मीर जुमला के सम्बन्ध में पहले ही कुछ कहा जा चुका है। बाकी का परिचय फतहचन्द-सम्बन्धी प्रकरण के अन्त (टिप्पणी न० २) मे मिलेगा।

हिन्दुस्तानी दल मे हिन्दुओं के अलावा ऐसे मुसलमान भी होते थे जिनका सम्वन्ध न तूरान से था, न ईरान से—और न अफगानिस्तान से। अर्थात् ये लोग प्राय इसी देश के निवासी थे जो या तो स्वयं या जिनके पूर्वज मुसलमान वन चुके थे। हिन्दुस्तानी दल के हिन्दुओ मे राजपूत सरदारों की प्रधानता थी। उनके वाद नंवर आते थे खत्री, अग्रवाल, कायस्थ कर्मचारियो के। अफगानो का अपना दल अलग था। इस देश मे इनकी खासी वडी सख्या थी और ये लोग अरसे से जहां-तहा वसे हुए थे। पर धन का लोभ इनकी ऐसी वड़ी कमजोरी थी कि गाढे समय मे इनका पूरा विश्वास नही किया जा सकता था। मुसलमानो के और भी छोटे-मोटे दल थे। पर उनकी एक विशेपता यह थी कि हिन्दुओ के विरोध के प्रसग मे वे अपने पारस्परिक भेद-भाव को भूल जाते थे और प्राय. एक होकर उनका सामना करते थे।

सैयद-वन्धुओं के पूर्वज अरव से यहां आये हुए थे। उनके गांव का नाम वरहा या वारहा था जिसकी भौगोलिक स्थिति मेरठ और सहारनपुर के प्राय. वीचोवीच थी। वहुत दिनों से यहा रहने और यहा के लोगो में हिलमिल जाने के कारण ये भी हिन्दुस्तानी मुसलमान माने जाने लगे थे। इनका सम्प्रदाय शीया था और सुन्नी तूरानियों की तरह ये तअस्सुवी न थे। वजीर अब्दुल्ला खां का अपना दीवान रतनचंद नामक एक अग्रवाल था जिसे राजा की पदवी प्राप्त थी और जो दिल्ली के काफी प्रभावशाली व्यक्तियों मे था।

वारहा के सैयद नामी थे और वडे शूर-वीर तथा आत्माभिमानी होते थे। साथ ही वे अपनी फिजूलखर्ची के लिए वदन.म थे। प्राय वे मदवुद्धि भी होते। अठारहवी सदी मे 'वारहा का अहमक' यह एक कहावत हो चली थी। यह भी कहा जाता था कि "वारहा के सभी गधे वहादुर है" और "सभी वहादुर गधे है।"—अविन।

दिल्ली में होने वाली उथल-पुथल ने सल्तनत को और भी कमजोर बना दिया। जहा तहा अशान्ति की आग भडक उठी, सिक्ख, जाट, मराठा, राजपूत आदि जातिया उस आग को चारो ओर फैलाने लगीं। अनुशासन नाममात्र को रह गया, अराजकता ने और भी जोर पकड़ लिया। दिल्ली मे भी अव्यवस्था इतनी बढ चली थी कि न तो कोई अपनी जान को सुरक्षित समझता था, न अपने माल को।

संभव न था कि देश की राजनीतिक स्थिति इतनी खराब होते हुए भी उसकी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक रह सके। यह स्थिति औरंगजेब के समय से ही बिगडती आ रही थी। अशान्ति और अव्यवस्था का दौरदौरा होने पर पैदावार बढने के बजाय घटने लगती है, लोगों मे रुपये-पैसे या जिन्स को दबा कर बैठ रहने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है, वाणिज्य-व्यवसाय को पक्षाघात-सा हो जाता है। बहादुर शाह के मरने पर दिल्ली के तख्त की जो हालत हुई उसने कोढ मे खाज पैदा कर दी। जहांदार शाह के आदेश से दिल्ली-निवासियो को दीवाली साल में तीन बार मनानी पडी थी, हालाकि तेल का अभाव ऐसा था कि वह रुपये सेर बिकने लगा था। गेहूँ का भाव प्राय. ५) मन हो चला था, यद्यपि दरबार या महल मे इसकी किसी को फिक्र न थी और लालकुंवर को एक रोज यह बात मालूम हुई भी तो उसने यही कहा कि "नाज बेहद सस्ता हो रहा है। मेरी चले तो मैं भाव ४०) मन करा दूं।" फर्रुखसियर के शासन-काल में लोगो का कष्ट और भी बढा। उसके नाम से ढलने वाले सिक्कों पर जहां यह इबारत होती कि

सिक्का जद, अज फज्लेहक बर सीमोजर—

पादशाहे बहोबर—फर्रुखसियर !

(अर्थात् जल और स्थल के अधीश्वर फर्रुखसियर ने ईश्वर की कृपा से सोना-चांदी के सिक्के ढलवाये)

वहां लोग इन पंक्तियों को यह रूप देकर उसकी फबती उड़ाते कि

सिक्का जद बर गंदुमो मोटो मटर
पादशाहे दानाकश—फर्रुखसियर !

(अर्थात् दाना दाना खीच लेने वाले फर्रुखसियर बादशाह ने गेहूँ, मोट और मटर के सिक्के ढलवाये)

मुहम्मद शाह के राज्य-काल मे दिल्ली की दुरवस्था का वर्णन करते हुए अंगरेज इतिहासकार अर्विन फारसी ग्रथो के आधार पर लिखता है कि —

"निजामुल्मुल्क ने कई बिगड़ी बातो का सुधार करना चाहा। उनमें एक तो यह थी कि पेशकश देने के नाम से, बादशाह की मुट्ठी गरम कर, अयोग्य से अयोग्य व्यक्ति भी ऊंचे से ऊचा पद पा जाता। दूसरी यह थी कि शाहजादे, शाहजादिया और सरदार, जागीरो के रूप मे बड़े बडे इलाके लिये बैठे थे जिसके फलस्वरूप सरकारी आय दिन दिन घटती जा रही थी और खजाने मे इतना रुपया भी न होता कि समय पर किसी का वेतन चुक सके। किसी ने महीनो से कुछ नही पाया था तो किसी ने बरसो से। सम्राट् की सेवा मे जिनके बाल सफेद हो चले थे या जो प्रोत्साहन के सर्वथा योग्य थे उन्हे तो भोजन के भी लाले पड़ रहे थे, पर जो अयोग्य या निकम्मे थे वे गुलछर्रे उडा रहे थे। पुराने सरदारो को अपने अपने घर से गल्ला मंगा कर और उसका कुछ अश बेच कर, दिल्ली मे जीवन-निर्वाह करना पडता था। सभी चीजें महंगी हो रही थीं। गेहूँ रुपये को सात सेर से अधिक न मिल

सकता था। जब वजीर दरबार से लौटते तब लोग उन्हें घेर कर खड़े हो जाते। कोई गला फाड़ फाड कर कहता कि, "मैं महावत खां के खानदान मे हूँ" तो कोई चिल्ला उठता कि "मै अली मरदान खां का पोता हूँ।" चारों ओर से यह आवाज आने लगती कि 'फरियाद', 'फरियाद' और यह गोहार मच जाती कि "दामों को गिराइए— भूखों मरने से बचाइए"।

ऊपर कहा जा चुका है कि फतहचन्द को 'जगत् - सेठ' की उपाधि से सम्मानित करने वाला सम्राट् मुहम्मद शाह था। यह सम्मान उन्हें इसलिए प्रदान किया गया कि उन्होने दुष्काल में दिल्ली के नागरिकों को भूखो मरने और सम्राट् को कलंकित होने से बचाया था। इससे पहले फतहचन्द की कोठी की एक शाखा दिल्ली में स्थापित हो चुकी थी। कहा जाता है कि अन्न जुटाने और उसका समुचित वितरण कराने का काम उनकी अपनी देख-रेख में हुआ। जो लोग अर्थाभाव के कारण गल्ले का दाम चुकाने मे असमर्थ थे उन्हें उनकी कोठी से उधार भी मिला। दिल्ली का सकट टल गया और उसके आर्थिक जीवन का स्रोत फिर साधारण गति से बहने लगा। इसी पर प्रसन्न हो कर मुहम्मद शाह ने उन्हे 'जगत्-सेठ' और उनके पुत्र आनन्दचन्द को 'सेठ' की उपाधि से सम्मानित किया। इनाम के तौर पर खिलअत, गोशवारा और एक हाथी भी मिले। इस प्रकार पुरस्कृत *तथा सम्मानित हो कर फतह-

* इस सम्बन्ध में मुहम्मद शाह ने जो फरमान निकाला था वह अपने राज्य-काल के चौथे वर्ष में। उसमें इस बात का उल्लेख नही कि फतहचन्द ने कौन-सी ऐसी खैरख्वाही की थी। जिस संकट से उन्होंने राजा और प्रजा को उबारा था वह अन्न-संकट था या मुद्रा-संकट ? १७१९ में अन्न के अभाव के कारण दिल्ली-निवासियो को बहुत कष्ट उठाना पड़ा था, यह निश्चित है। पर

चन्द मुर्शिदाबाद लौट गये और प्राय १७२३ से उनकी कोठी का नाम 'फतहचन्द आनन्दचन्द' से बदल कर 'जगत्-सेठ फतहचन्द सेठ आनन्दचन्द' हो चला।

मुर्शिदकुली खा को औरगजेब ने बगाल का दीवान नियुक्त किया था। फिर वह बगाल और उडीसा का नायब नाजिम भी कर दिया गया। फर्रुखसियर के सम्राट् होने पर वह उड़ीसा का नाजिम हो चला। बगाल की निजामत फर्रुखसियर ने अपने बेटे फरखुन्दा बख्श* को दे दी, और उस बच्चे की अकाल-मृत्यु हो जाने पर, तूरानी सरदार मीर जुमला को। पर नायब नाजिम, मुर्शिदकुली खा ही रहा। सैयद-बन्धुओं की उस पर कुछ कड़ी नजर रहती थी और वह उन्हे अपनी विशेष उन्नति के मार्ग मे बाधक समझता था। इसलिए उनके पतन और

अगर उस समस्या का हल निकालने के लिए फतहचन्द पुरस्कृत हुए तो फरमान निकलने मे इतनी देर क्यो हुई? १७२१-२२ मे उत्तर भारत को एक दूसरे प्रकार के सकट से गुजरना पडा था। इसका उल्लेख आगे किया गया है। सभव है, इस अवसर पर सरकार की विशेष सहायता करने के लिए फतहचन्द ने 'जगत्सेठ' की पदवी पाई। जगत्-सेठ-परिवार मे जो किवदती चली आई है उसमे फतहचन्द के सम्मान का सम्बन्ध किसी दुर्भिक्ष से दिल्ली की प्रजा को उबारने के साथ जोडा गया है। बहुत सभव है कि दोनो अवसरो पर राजा-प्रजा के काम आने के लिए फतहचन्द इस प्रकार सम्मानित किये गये हो।

* जहा नाजिम कोई राजकुमार या मीर जुमला-जैसा सरदार होता, वहा वह उस पद के साथ मिलने वाली जागीर का हकदार समझा जाता। प्रबन्धादि मुर्शिदकुली खा-जैसे शासक के हाथ में होते हुए भी, उसे घर बैठे एक मोटी रकम साल-ब-साल मिलती रहती। किसी समय बगाल-बिहार का ऐसा ही नाजिम अजीमुश्शान रह चुका था।

विनाश के समाचार से उसे प्रसन्नता होना स्वाभाविक ही था। २१ नवंबर १७२०*को कंपनी के कासिमबाजार वाले कर्मचारी कौसिल को सूचित करते है कि नवाब ने दिल्ली की घटनाओं का समाचार पाकर "नौबत बजवाई है"। जब दूसरे साल खजाना भेजने का समय आया तब नवाब ने उसके साथ अपनी ओर से नजराना भेजना भी मुनासिब समझा। इसके लिए व्यापारियो से चन्दा तलब किया गया और चन्दा उगाहने का काम फतहचन्द, दरबनारायण और कल्याणमल को सौपा गया। इन लोगो ने डच और अंगरेजी कपनियों के वकीलो को बुलवा कर कहा कि आप अपने अपने मालिकों को इस काम मे नवाब का हाथ बॅटाने को लिखिए। डच कंपनी से ६०,०००) मांगा गया। अगरेजी कपनी के वकील से इतना ही कहा गया कि अगर आप की ओर से अच्छी रकम न मिली तो आप लोग बंगाल मे व्यापार करने न पायेगे। दोनों वकीलों के घरों पर सिपाही बैठा दिये गये।

अंगरेजों को कुछ भी देना मंजूर न था। उधर कासिमबाजार में उनका कन्तू नामक दलाल गिरफ्तार कर लिया गया। कौसिल ने अपने वकील को लिखा कि मुर्शिदाबाद जाकर बादशाह की दुहाई दो। पर इससे काम न बना। कासिमबाजार वालों ने नवाब की सेवा में एक आवेदन-पत्र भेजा। नवाब ने फतहचन्द से कहा कि कन्तू के विरुद्ध

---

* हुसैन अली खा ८ अक्टूबर १७२० को मारा जा चुका था। आगरे से प्राय. ७२ मील दूर, टोडाभीम के पास के पड़ाव पर वह हैदरबेग नामक तूरानी के खंजर का शिकार हुआ। उस समय वह अनिच्छुक मुहम्मद शाह को साथ लेकर निजामुल्मुल्क को दड देने दक्खिन जा रहा था। अब्दुल्ला खां ने बगावत कर दी, पर १३-१४ नवम्बेर को दिल्ली से थोडी दूर पर होने वाली लड़ाई में उसकी हार हुई और वह गिरफ्तार कर लिया गया।

कई अभियोग है, आप सच-झूठ का पता लगाइए। इनमे एक अभियोग यह था कि कन्तू की स्त्री गले मे फांसे डाल कर प्राण त्याग चुकी थी और इसके लिए बहुत कुछ कन्तू ही जिम्मेवार था। फतहचन्द ने कन्तू से पूछ-ताछ की, और उसके निर्दोष जंचने पर उन्होंने उसे यह आश्वासन दिया कि तुम्हारी रिहाई के लिए मै कुछ भी उठा न रखूगा। उनकी सिफारिश का नतीजा यह हुआ कि कन्तू छोड दिया गया और चलते समय उसे दरबार से सरोपा भी मिला। कपनी से चन्दा लेने की बात फिर न उठी। शायद फतहचन्द कीसिफारिश ने उसेभी दबा दिया।

हकीकत मे, कंपनी उस समय बडी तगदस्ती मे थी। जगह-जगह से रुपये की माग आ रही थी, पर कौसिल के हाथ खाली-से थे। व्यापारियों को दादनी देना तो दर-किनार, जो माल खरीदा जा चुका था उसका दाम चुकाने मे भी कपनी असमर्थ थी। जान पडता है कि उत्तर भारत मे रुपये की टान थी और इसके कारण ब्याज-बट्टे की दर ऊची हो रही थी। जहा मद्रास मे कपनी को ९) प्रतिशत ब्याज पर उधार मिल जाता वहां बंगाल में १२) देने पर भी मिलना मुश्किल था। कासिम-बाजार से अगस्त १७२१ मे खबर आती है कि, "अप्रैल और जून में २८,५४५।) का माल (रेशम) खरीदा गया था, पर आज तक हम व्यापारियों को उसका दाम नही दे पाये है। अब उन्होंने हो-हल्ला मचाना शुरू कर दिया है। उनका कहना है कि हमे दूसरो को १॥) से २) सैकडा ब्याज देना पड रहा है, कपनी से यह रकम भी हमे मिलनी चाहिए।" कुछ ही दिन बाद वहा वाले सूचित करते है कि इस समय हमे यहा एक रुपया भी कर्ज नही मिल सकता। पटने से सितम्बर में खत आता है कि, "नवाब ने लोगों का खून इस तरह चूसा है कि यहां रुपये की बड़ी तंगी हो गई है। उधर आगरे पर हुडी की दर ६॥)

प्रतिशत हो चली है। सराफो को उस ओर रुपया लगाने में इतना फायदा है कि कोई भी दूसरी ओर रुपया लगाने को तैयार नही। बडी मुश्किल से हम लोगो ने खड़गसिंह् किशनचद को ४) सैकड़ा बट्टा काट कर कुछ उधार देने को राजी किया है और कौसिल के नाम हुडियां कर दी है। हम लोगों ने कुछ शोरा खरीदा था और कुछ छीट भी। दाम नकद चुकाना था, इसलिए यह रकम उधार लेनी पड़ी।"

पर कलकत्ते की कौसिल आप भी वैसे ही अर्थ-संकट मे थी। जो माल पिछले साल खरीद हो चुका था उसके दाम की मद मे २७६, ८०९।।≡)।। चुकाना था। इधर १५१,५८१।) के जो नये सौदे हो चुके थे उनकी बाबत दादनी भी देनी थी। विलायत से जहाज आने की प्रतीक्षा की जा रही थी और कौल-करार हो चुके थे कि उसके आते ही हिसाब बेबाक कर दिया जायेगा। पर जब जहाज के पहुचने मे देर हुई और व्यापारी अधीर हो गये तब उनके साथ कौसिल ने यह समझौता किया कि अगर ४ अगस्त १७२१ तक जहाज न पहुंचा, तो हम हुडियां कर देगे और उस दिन से ब्याज देने लगेगे। अन्त में वैसा ही करना पडा। व्यापारी दादनी के रुपये पर भी ब्याज मांग रहे थे, पर कौंसिल ने कहा कि उसके लिए आप लोग कुछ दिन और ठहरे। उसने पिछले हिसाब की मद मे हुडिया कर दी। पावनेदारों में कुछ के नाम थे — बिशनदास सेठ, जगन्नाथ सेठ, किशोरी सेट, किशनचरन खान, पुरुषोत्तम खान, रामभद्र चौधरी, गोविन्दराम खान, रामकिशन दत्त, चैनसुख दत्त, कालीचरण सेठ, कुंजबिहारी सेठ, परमानन्द बसाक, प्राण सेठ बसाक, राधावल्लभ सेठ, नैनसुख मेहरा (?), गंगारामदास, नन्दूप्रसाद, राधाकिशन, तेजराम, मल्लिकचन्द, बख्शीचन्द चोपरा (?), ख्वाजा नजीर, बलराम बसाक, गंगाचरण

बसाक, नित्यानन्द दत्त, रामनाथ दास, गोविन्द सेठ, रामेश्वर तेली, राजवल्लभ तेली, रामनारायण दत्त, कुजबिहारीदास, अमीचन्द आदि * । इतने व्यापारियों मे सिर्फ एक मुसलमान था। इनमें सब से बड़ा पावनेदार विशनदास सेठ था, जिसका कपनी के जिम्मे ४७,१५८।।।)।।। निकलता था।

१७२२ में कपनी को अपनी सिफारिश कराने के लिए फतहचन्द का दरवाजा खटखटाना पड़ा। बात यह हुई कि मुर्शिदाबाद मे अगरेजों का जो वकील था, उसी का भतीजा ढाके मे डचो का वकील था। इस पर ५०,०००) गबन कर जाने का अभियोग चला। मालूम नही क्या कारण हुआ, पर चचा से जमानत तलब की गई और उसके जमानत न देने पर, वह गिरफ्तार कर लिया गया। कौसिल ने फतहचंद को कहलाया कि आप मेंहरबानी कर नवाब को समझा दे और हमारे वकील की रिहाई करा दे, वर्ना हम मुनासिब कार्रवाई किये बिना न रहेंगे। फतहचन्द के बीच मे पडने से, चचा की रिहाई हो गई और नवाब का हुक्म हुआ कि जमानत भतीजे से ही तलब की जाय।

दूसरे साल कपनी को फिर जगत्सेठ से सहायता मांगनी पड़ी। मालदा मे वहा के जमीदार और कपनी के बीच झगडा हो गया था और बात यहा तक बढ़ी थी कि जमीदार की जगह खुद नवाब ने ले ली थी। कपनी अपनी कोठी उस जमीदार की जमीदारी की हद से हटा चुकी थी, पर नवाब के हुक्म से राजमहल के फौजदार ने नये स्थान पर भी उसका कारबार चलना असभव कर दिया। कपनी ने जगत्सेठ की शरण ली, पर उन्होने पहले तो इस मामले मे उसकी

* विल्सन के ग्रथ के आधार पर। कुछ नामो के अगरेजी रूप अत्यन्त ही विकृत है।

सिफारिश करने से इन्कार कर दिया, और पीछे कपनी के बहुत आग्रह करने पर नवाब का जी टटोला भी तो उन्हे उत्तर निराशाजनक ही मिला। अगरेज अपनी चाल चलने से बाज आने वाले न थे। मालदा में उन्होने फौजदार की गोली का जवाब गोली से दिया, कलकत्ते से गुजरने वाली तिजारती नावो को उन्होंने रोक रखा, साथ ही मुर्शिदाबाद मे जगत्सेठ को यह कहलाते रहे कि व्यापारी के अलावा और कौन व्यापारी के काम आ सकता है ? और रो-धो कर नवाब को दयार्द्र कराने की चेष्टा करते रहे। इन सब का फल अच्छा ही हुआ। नवाब ने कुछ समय बाद फतहचन्द के द्वारा कहलाया कि ५०००) पेशकश मिलने पर वह अगरेजों की बात उनकी जबानी सुनने को तैयार होगा और २०,०००) और मिलने पर वह उन्हे मालदा मे फिर से खरीद-बिक्री करने देगा। जान पडता है कि १७२५ तक या तो कोई समझौता हो गया था या नवाब की क्रोधाग्नि शान्त हो गई। उस साल कपनी को फतहचन्द के द्वारा नवाब का यह आश्वासन मिला कि मै सदा से अंगरेजो का दोस्त रहा हूँ और आगे भी बराबर रहने वाला हूँ।

पर इस 'दोस्ती' के होते हुए भी, १७२६ में मुर्शिदकुली खां के क्रोध की आग फिर धधकने वाली थी, उसे बुझाने के लिए कपनी फिर फतहचन्द से अर्ज-मिन्नत करने वाली थी। इस बार नवाब के प्रकोप का कारण यह हुआ कि कपनी के कब्जे मे कलकत्ता और उसके पास जो गाव थे, वे नवाब की जागीर के अन्तर्गत थे और इधर उसकी ओर से माल मे जो इजाफा किया गया था उसे देने को कंपनी तैयार न थी। इस पर नवाब ने उसके मुर्शिदाबाद-दरबार के वकील को गिरफ्तार करा लिया। वकील के बाद उन व्यापारियों की बारी आई जो कंपनी से कारबार का सम्बन्ध रखते थे। इनमे से कुछ तो कासिमबाजार

छोड कर भाग गये, कुछ जहां-तहा जा छिपे। कुछ गिरफ्तार कर लिये गये। कंपनी के दलाल कन्तू ने उसकी फैक्टरी मे घुस कर शरण ली। नवाव की जागीर के तहसीलदार का नाम अब्दुल रहीम था। नाम वैसा होते हुए भी वह करदाताओ के साथ बडी ही सख्ती से पेश आता—उन पर जरा भी रहम न करता था। मुर्शिदाबाद या कासिमवाजार मे जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी उसकी जड मे यही अब्दुल रहीम था।

जगत्सेठ को कौसिल ने कई वार लिखा कि आप मेहरवानी कर इस मामले को निबटा दीजिए पर वह बीच मे पडने से इन्कार करते गये। कोई सरकारी कार्रवाई होती तो नवाव से कुछ कहने मे उन्हें उतना सकोच न होता जितना इस प्रसग मे हो रहा था। वात नवाव की खास जागीर से सम्बन्ध रखने वाली थी, उसके सम्बन्ध मे कुछ न कहना ही बेहतर था।

पर अगरेज चुपचाप बैठे रहने वाले न थे। हुगली मे अपने वकील से बादशाह की दुहाई दिलवाकर, वाकयानवीस मे उन्होने ऐसी रपट लिखवाई कि अब्दुल रहीम के कारनामो की खवर दिल्ली-दरबार तक पहुंच जाय। उनका जो वकील मुर्शिदावाद मे था वह हवालात मे कोडो की मार खा रहा और भूखो मर रहा था। एक वार उसने कासिमवाजार फैक्टरी से १२५) यह लिख कर मागा कि अगर आप यह रकम भेज देगे तो मेरे पेट और पीठ को जो यत्रणा पहुच रही है, उससे दो-एक दिन के लिए उन्हे नजात मिल जायगी। अगरेजो से सम्बन्ध रखने वाले व्यापारियो या उनके वकील के साथ जो दुर्व्यवहार मुर्शिदाबाद मे हो रहा था उसका बदला वे लूट-पाट या जोर-जबरदस्ती से हुगली और कलकत्ते मे लेने लगे थे। देशी व्यापारियो को अपने माल के लुट जाने से गहरी क्षति पहुची और उसकी पूर्ति के लिए उन्होने

मुर्शिदाबाद मे गोहार मचा दी। फतहचन्द दो लाख रुपये हुगली भेजने वाले थे, पर नवाब ने कहा कि उधर अगरेजो ने उत्पात मचा रखा है, अभी कुछ मत भेजें। उसने यह भी कहा कि हो सके तो कासिमबाजार से उनके दलाल कन्तू को बुलवाइए। फैक्टरी से जवाब मिला कि कन्तू जा सकता है, बशर्ते कि उसे लौटने दिया जाय और इसकी जिम्मेवारी फतहचन्द अपने ऊपर ले ले। समझौते की बातचीत होने लगी और अनिच्छुक होते हुए भी फतहचन्द को बीच मे पड़ना ही पड़ा।

"हां, तो आप लोग कितना देने को तैयार है? आप के वकील और व्यापारी छोड़ दिये जायगे, आप को मै यह विश्वास दिला सकता हूँ।"

"धन्यवाद, पर हमे देने-लेने के बारे मे कुछ भी तय करने का कोई अधिकार नही। हम कौसिल से पूछे बिना कुछ भी नही कह सकते।"

"तो उनसे पूछ कर बताइए।"

"सभवत. वे यही कहेगे कि पहले सब आदमियों को नवाब छोड़ दें, फिर लेने-देने की बात की जाय।"

"जैसी आप लोगों की मर्जी। मगर मुझे इसका नतीजा अच्छा होता नही दीखता।"

नवाब की ओर से जब और कडाई हुई तब बात कुछ आगे बढी। जगत्सेठ और ईस्ट इडिया कपनी के प्रतिनिधियो के बीच फिर उसी सिलसिले मे बातचीत होने लगी।

जगत्सेठ की ओर से कहा गया कि नवाब से कपनी की भलाई ही होती आई है, इसलिए उन्हे अप्रसन्न करना या उनकी आज्ञा का उल्लघन करना कपनी के लिए श्रेयस्कर नही हो सकता। हो सकता है कि तीस हजार रुपये मिल जाने पर ही वह सन्तुष्ट हो जाय। इससे

यह लाभ होगा कि आप लोग जिस तरह व्यापार करते आये है उसी तरह करते रहेगे और जो राजस्व इस समय दे रहे है, उसमे किसी प्रकार की वृद्धि न होगी।

कौसिल ने इसके उत्तर मे कहलाया, "हम अधिक से अधिक बीस हजार देने को तैयार है, मगर इस शर्त पर कि हमे मालदा मे अपनी फैक्टरी फिर से चलाने की, ढाके मे एक नया मकान बनवाने की और हुगली मे हमने जिस मकान मे हाथ लगा रखा है, उसे पूरा कराने की इजाजत मिल जाय। हमसे यह तो हो नही सकता कि हम अपने मालिकों का पैसा पानी मे फेक दे। हमारा सारा व्यापार वन्द हो जाय, हमे यह मजूर है, पर यह मजूर नही कि हमे बार-बार इस तरह तग किया जाय और हम चुपचाप उसे बर्दाश्त करते जाय। हमें आशा है कि नवाब की ओर से फिर कभी ऐसी माग न होगी।"

फतहचन्द के कहने-सुनने पर नवाब ने हुक्म दिया कि कपनी के वकील और व्यापारी जो कैदखाने मे पड़े है छोड दिये जाय। उन लोगों की रिहाई के प्राय दो महीने वाद कपनी ने २०,०००) नजराना दाखिल कर अपना वचन पूरा किया।

इधर एक नई विदेशी कपनी बगाल मे पाव जमाने की कोशिश करने लगी थी।

इसकी ओर से भी नवाव को २०,०००) नजराना मिला। पर अनुभवहीन होने के कारण, इसके प्रतिनिधि अपने प्रयत्न मे सफलता प्राप्त न कर सके। करीव दो लाख रुपये गवाकर उन्हे वहा से खाली हाथ लौट जाना पडा। बात यह हुई कि उन्होने मुर्शिदकुली खा की भेट की, उसके कुछ मुसाहबो के मुह मीठे किये, पर बगाल मे कुछ साल

विताने पर भी वे जगत्सेठ की आखों में घर न कर सके। ७ मई, १७२७ को स्टिफेन्सन कासिमबाजार से कौसिल को सूचित करता है कि, "जब तक फतहचन्द हमारे इन नये प्रतिद्वद्वियों का पक्ष नही अपनाते तव तक उन्हे नवाव से सनद मिलने वाली नही, और फतहचन्द हमसे वादा कर चुके हे कि मै उन लोगो की किसी प्रकार की सहायता न करूंगा।" वात भी यही हुई। फतहचन्द तटस्थ बने रहे, नई कपनी की ओर से आने वालो को अन्त मे निराश होकर बोरिया-बधना उठाना पडा। नवाब से उन्हे सरोपा तो मिला मगर वह सनद नही मिली जिसके लिए उन्होने दरबार मे इतना समय बिताया, इतना पैसा खर्च किया।

जगत्सेठ की कोठी मे ईस्ट इडिया कपनी का खाता खुल चुका था और दोनो के बीच लेन-देन का व्यवहार होने लगा था। २८ मार्च, १७२६ को फतहचन्द से कपनी अनुरोध करती है कि ढाके मे हमें रुपये की जरूरत पडने वाली है. आप कृपा कर अपने गुमाश्ते को लिख दे कि हमारी ओर से जो माग हो, वह पूरी कर दे। जवाब में फतहचन्द सूचित करते है कि हमने अपने गुमाश्ते को लिख दिया है कि आप को ५०,०००) दे दे। २९ सितम्बर, १७२६ को कपनी के कर्मचारी ढाके से लिखते है कि "इधर टकसाल मे अधिकारियो के अदल-वदल की वजह से हमे काफी दिक्कत उठानी पडी है, पर हम फतहचंद के गुमाश्ते के साथ वन्दोबस्त कर अपना काम चलाते आये है।"

जून, १७२७ मे मुर्शिदकुली खा की मृत्यु हुई। मरने से दो बरस पहले उसने, महल से थोडी ही दूर पर एक मसजिद बनवाई थी। यह एक कटरे के भीतर थी और कटरा-मसजिद के नाम से मशहूर थी। उसी मसजिद के जीने के नीचे उसकी लाश को मिट्टी मिली। मसजिद

का अधिकाश भाग खुद मिट्टी मे मिल चुका है, पर मुर्शिदकुली खां की कब्र मौजूद है और उसके पास शायद अब भी नियमित रूप से कुरान का पाठ होता है।

इसमे सदेह नही कि मुर्शिदकुलीखा कठोर था, क्रूर था और धर्म-सम्बन्धी विषयो मे अत्यन्त सकीर्ण दृष्टि वाला कट्टर मुसलमान था। पर कुछ बाते उसकी प्रशसा मे भी कही जा सकती है। अपने कडे अनुशासन से उसने शान्ति को सदा सुरक्षित रखा और इसके फलस्वरूप उसके शासन-काल मे खेती-बारी तथा अन्य उद्योग-धधो की अच्छी उन्नति हुई। आदमियो की उसे अच्छी परख थी और जिनके सहयोग की उसे आवश्यकता होती, उन्हे अपने साथ स्नेह-सूत्र मे आबद्ध रखने के कार्य मे भी वह कुशल था। मानिकचन्द और उनके उत्तराधिकारी के साथ उसने स्वामी ही नही, मित्र का-सा भी व्यवहार रखा। जहा उसकी दया-दृष्टि से सेठ-परिवार इतना फूला-फला, वहा इसके आर्थिक सहयोग और साहाय्य से मुर्शिदकुली खा भी कम उपकृत नही हुआ।

मालूम नही इस बात मे कितनी सचाई है, पर कहा जाता* है

---

* उदाहरणार्थ, "रियाजुस्सलातीन" का लेखक गुलाम हुसैन सलीम लिखता है कि, "जहा न्याय करना होता, वहा मुर्शिदकुली खा न तो किसी का पक्षपात करता, न किसी के साथ रिआयत। उसके लिए छोटे-बडे सभी एक-से थे और न्याय के तराजू का पल्ला वह किसी धनवान् या प्रभावशाली व्यक्ति के पक्ष मे झुकने न देता था। यह प्रसिद्ध है कि अपने पुत्र को भी, किसी को सताने और मार डालने का अपराधी साबित होने पर वह फासी की सजा देने से बाज न आया।" पर इस ग्रथ की रचना बहुत बरसो बाद हुई थी। वास्तव में इस घटना का पूरा या प्रामाणिक विवरण कही नही मिलता।

कि मुर्शिदकुली खा इतना न्याय-परायण था कि किसी की जान ले लेने के कारण उसके अपने पुत्र को भी जान से हाथ धोना पडा था। इतना निश्चित है कि मरते समय मुर्शिदकुली खा के कोई बेटा नही था। उसकी बेटी जीनतुन्निसा बेगम शुजाउद्दौला उर्फ शुजा खां नामक सरदार को ब्याही थी, जिसे वह उडीसा की सूबेदारी दिला चुका था। ससुर और दामाद की आपस मे नही बनती थी, बल्कि शुजा-उद्दौला की बेगम भी अपने पिता के ही घर रहती थी।

(२)

मुर्शिदकुली खां की इच्छा थी कि उसका उत्तराधिकारी शुजाउद्दौला न होकर इसका बेटा सरफराज खा हो, जो अपनी मां के साथ मुर्शिदाबाद मे ही रहने लगा था। पर यह इच्छा तभी पूरी हो सकती थी जब सम्राट् से इसकी स्वीकृति मिल जाती। इसके लिए मुर्शि-दकुली खा दिल्ली-दरबार मे सिफारिश कराने लगा। उधर शुजाउद्दौला को इस बात की खबर मिली तो वह सम्राट् का निर्णय अपने पक्ष में कराने के लिए समयोचित कार्य्य करने लगा। उसके खास सलाहकार थे अलीवर्दी खां और हाजी अहमद। ये दोनो उसके एक रिश्तेदार के लडके थे और दोनो ही ऊचे दर्जे के कर्मचारियो में थे। इनकी सलाह से कुछ ऐसे पैरोकार दिल्ली भेजे गये, जिनका पूरा एतबार किया जा सकता था और, इसके अलावा, कटक से मुर्शिदाबाद तक जासूसो का जाल-सा बिछा दिया गया, ताकि बंगाल की राजधानी की घड़ी-घड़ी की खबर मिलती रहे। बरसात करीब थी, रास्ता बंद हो जाने का डर था, इसलिए नावो और मल्लाहों को जुटाने का काम बडी ही तत्परता से पूरा कर लिया गया। गुप्त रूप से जहा-तहा सैनिक भी भेज दिये गये

और उनसे कह दिया गया कि आदेश मिलते ही सब के सब मुर्शिदाबाद पहुँच जायँ। ज्योही यह समाचार कटक पहुचा कि मुर्शिदकुली खा अब पांच-छ: दिनो से अधिक जीवित रहने वाला नही, शुजाउद्दौला वहां से लश्कर के साथ चल पड़ा। पर मुर्शिदाबाद पहुचने से पहले ही खबर मिली कि उसके ससुर दुनिया से कूच कर चुके है। रास्ते मे ही उसे वह सनद भी प्राप्त हुई, जिसके द्वारा सम्राट् ने उसे उड़ीसा तथा बगाल का दीवान और नाजिम नियुक्त कर दिया था। जिस स्थान पर उसे यह सनद मिली उसका नाम उसके हुक्म से 'मुबारक मजिल' पडा। शुजाउद्दौला को मुर्शिदाबाद पहुचते देर न लगी। पहुंचते ही उसने अपने आप को मुर्शिदकुली खा का उत्तराधिकारी घोषित किया और मसनद पर जा बैठा। उसका बेटा सरफराज खा उस समय सोया हुआ था। नगारे की आवाज से जब उसकी नीद टूटी और सब बाते मालूम हुई, तब आन्तरिक भाव चाहे जो रहा हो—उसने भी झट पिता के सामने हाजिर होकर उसकी कदमबोसी की और नजर पेश कर उसे बधाइया दी। सब प्रकार से निश्चिन्त होकर शुजाउद्दौला अब राज-काज मे लगा।

कटक से उसके साथ आने वालो मे अलीवर्दी खा, हाजी अहमद और राय आलमचन्द थे। यह आलमचन्द उसके दीवान रह चुके थे और उसकी दृष्टि मे बडे विश्वासपात्र थे। उसने मुर्शिदाबाद मे एक मत्रि-सभा कायम की, जिसके सदस्यो मे, इन तीनों व्यक्तियो के अलावा, जगत्सेठ फतहचन्द थे। इस बात का जिक्र करते हुए एक समसामयिक इतिहास-लेखक, जगतसेठ के विषय मे लिखता है कि, "इसका धन करोड़ो मे बताया जाता था" और "इसकी बराबरी करने वाला आज तक कोई नही हुआ"।

नैतिक दृष्टि से, शुजाउद्दौला मे कुछ कमजोरियां जरूर थीं और यही कारण है कि उसकी अपनी स्त्री और अपने ससुर से नहीं बनी—पर उसमे उदारता थी, दयाशीलता थी और न्याय-परायणता थी। जिस समय वह बगाल का नाजिम और दीवान हुआ, उस समय बहुत से जमीदार कैदखाने मे पडे तरह-तरह की यत्रणाएँ भोग रहे थे। जो घोर अपराध करने वाले थे उनके सिवाय बाकी लोग छोड़ दिये गये और शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करने पर कि हम बराबर आज्ञाकारी बने रहेंगे और नियमित रूप से राजस्व देते जायगे, सब के सब सम्मानपूर्वक विदा किये गये। चलते समय नये नवाब से उन्हे यही आदेश मिला कि साल-ब-साल खिराज "जगत्सेठ की कोठी की मार्फत" दाखिल हो जाया करे।

शुजाउद्दौला ने अपने औरस पुत्र सरफराज खा को बगाल का दीवान बनाया। उडीसा मे वह मुहम्मद तकी खा को अपने प्रतिनिधि के रूप मे छोड आया था। यह उसका किसी उपपत्नी से उत्पन्न पुत्र था। अलीवर्दी खा के कोई बेटा न था, पर तीन बेटिया थी जिनका विवाह उसके भाई हाजी अहमद के बेटो के साथ हुआ था। इनके नाम थे—नवाजिश मुहम्मद खा, सईद अहमद खा और जैनुद्दीन अहमद खा। पहले को तो फौज के बख्शी का पद मिला और बाकी दोनों क्रमश. रगपुर तथा राजमहल के फौजदार नियुक्त हुए।

बगाल और उडीसा, इन दोनो सूबो के शासक का पद शुजाउद्दौला को मिल चुका था। पूरब मे रह गया था बिहार जिसकी सूबेदारी अब तक अलग चली आई थी। हम ऊपर देख चुके है कि किसी समय वहा का सूबेदार औरगजेब का पोता अजीमुश्शान था, और जब अपने पिता बहादुरशाह के समय मे उसे पटने से दूर रहना

पड़ा था तब कुछ समय तक हुसैन अली खां ने वहां उसके नायब की हैसियत से काम किया था। उसके बाद कई सूबेदार आये-गये। इनमें अन्तिम था फख्रुद्दौला, जिसने पांच बरस तक सूबेदारी की। दुर्भाग्यवश उसने दिल्ली-दरबार में अपनी बदनामी करा ली, जिसका नतीजा यह हुआ कि उसे तो सूबेदारी से हाथ धोना ही पड़ा, बिहार अब बंगाल के सूबेदार के अधीन कर दिया गया। अगर फख्रुद्दौला एक ऐसे 'फकीर' का अपमान न करता जो वास्तव में दरबार के प्रभावशाली पारषद समसामुद्दौला खान दौरां का भाई था तो बिहार को बंगाल का पुछल्ला न बनना पड़ता, और उस रूप में प्राय. १८० साल न बिताने पड़ते। यह इस बात का उदाहरण है कि भवितव्यता की दिशा में तिल की ओट ताड़ तो क्या, पहाड़ छिपा रहता है—छोटी या साधारण-सी घटना भी कभी-कभी ऐसी बड़ी ऐतिहासिक घटना को जन्म देने वाली बन जाती है, जो बरसों तक जनता के जीवन को प्रभावित करती रहती है।

बिहार की सूबेदारी मिल जाने पर, शुजाउद्दौला के सामने यह प्रश्न खड़ा हुआ कि वहां उसका प्रतिनिधित्व कौन करे? उस प्रान्त के शासन का काम टेढ़ी खीर समझा जाता था, इसलिए वहां अनुभवी और पूर्णत. विश्वसनीय आदमी को भेजना आवश्यक था। पहले उसके जी में आया कि सरफराज खां को भेज दूं, पर उसकी स्त्री को यह स्वीकार न हुआ. इसलिए सोच-विचार कर उसने अलीवर्दी खां को भेजना निश्चित किया। मन्त्रि-सभा की भी यही राय ठहरी कि उससे योग्यतर व्यक्ति मिलना कठिन है। दिल्ली से भी इस नियुक्ति की स्वीकृति आ गई और अलीवर्दी खां पटने जाकर नायब नाजिम की हैसियत से रहने लगा।

शुजाउद्दौला के शासन-काल मे जगत्सेठ-घराने की और भी तरक्की हुई। बिहार का राजस्व भी अब उन्ही की कोठी मे दाखिल होने लगा और इस मद से होनेवाली उनकी अपनी आय बढ चली। "रियाज" में लिखा है की शुजाउद्दौला ने अपनी आर्थिक नीति से सरकारी आय में वृद्धि कर "जगत्सेठ फतह्चन्द की कोठी की मार्फत डेढ़ करोड़ रुपये दिल्ली भेजे।"

जान पड़ता है कि इतनी बडी रकम अब छकडों के द्वारा न भेजी जाकर हुडी के जरिए मुर्शिदाबाद से दिल्ली जाने लगी थी—अर्थात् जगत्सेठ का आर्थिक बल इतना बढ गया था कि वह करोड़-डेढ़-करोड़ का इस तरह आसानी से भुगतान कर सकते थे और रुपयों तथा अशर्फियों की थैलियों से लदे हुए छकड़ो को मुर्शिदाबाद से दिल्ली पहुंचाने मे जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ता, उनसे सरकार को बचा सकते थे।

ऊपर कपनी के कासिमबाजार वाले दलाल कन्तू* का जिक्र हो चुका है। यह भी जगत्सेठ की कोठी से लेन-देन का सरोकार रखता था और १७३० मे उस लेन-देन के कारण जगत्मेठ और ईस्ट इडिया

---

* क्या कासिमबाजार राज को नीव डालने वाले कृष्णकान्त नन्दी—उर्फ 'कन्तू बाबू'—और यह एक ही व्यक्ति थे? कन्तू बाबू राधाकृष्ण नन्दी के पुत्र थे और इनके पिता की कासिमबाजार मे या उसके पास ही कही रेशम की दूकान थी। इन्होने वारन हैस्टिङ्गस के गवर्नर-जनरल होने के बाद विशेष उन्नति की। हेस्टिङ्गस कुछ समय तक कासिमबाजार मे रह चुका था। उसने इनके बेटे लोकनाथ को महाराज की उपाधि और गाजीपुर जिले मे जागीर भी दिलाई। १७७८ मे कन्तू बाबू परलोक सिधारे।

कंपनी के बीच वाद-विवाद ही नही चला,दोनों का सम्बन्ध टूटने पर आ गया।

कन्तू कंपनी के लिए कासिमवाजार मे रेशम खरीदा करता। एक बार वह सौदा करने चला तो माल बेचनेवालो को अगाऊ देने के लिए उसके पास काफी रुपया न था। पर उसकी साख वहुत अच्छी समझी जाती, इसलिए वह जव चाहता, जगत्सेठ की कोठी से कर्ज लेकर अपना काम चला सकता था। इस मौके पर भी उसने ऐसा ही किया। पर मालूम नही क्यो, वह समय पर अपना देना न चुका सका। सभवत. कपनी ने अपना देना चुकाने मे देर या आनाकानी की। कन्तू थोडे समय के लिए लापता हो गया। व्यापारियो ने यह कहकर कपनी के हाथ माल बेचने से इन्कार कर दिया कि जव तक फतहचन्द का हिसाव नही चुक जाता, हम लोग कपनी के साथ काम-काज नही कर सकते। कासिमवाजार मे कपनी का कारवार वन्द हो गया। वहां वालो ने कौसिल को लिखा कि जव तक जगत्सेठ के साथ कोई समझौता नही हो जाता तब तक परिस्थिति सुधरने वाली नही।

कुछ समय बाद कन्तू कासिमवाजार लौटा। हिसाव-किताव होने पर मालूम हुआ कि वह सव मिलाकर ३७८,०००) का देनदार था। जगत्सेठ तथा कुछ अन्य व्यापारियो का उसके जिम्मे २४५,०००) निकला और कपनी का १३३,०००)। कन्तू ने २७२,०००) की जायदाद कपनी के हवाले कर दी—यह कहकर कि इससे अधिक कुछ भी देने मे मै असमर्थ हूँ। जगत्सेठ की ओर से तकाजा शुरू हुआ। कन्तू ने कुछ कागज-पत्र उन्हे सौप दिये थे। कपनी उनकी नकल कराना चाहती थी, पर जगत्सेठ की ओर से यही उत्तर मिला कि, "हमने कन्तू को जो कुछ दिया,उसे कपनी का प्रतिनिधि मान कर

ओर कंपनी के कार-बार के लिए। कपनी पहले उस रुपये की देनदारी कबूल कर ले, फिर जो कागजपत्र देखना चाहेगी, हम उसे देखने देगे।" पर कपनी यही कहती रही कि हमको इस प्रकार बाध्य करने का कन्तू को कोई अधिकार न था--उसने जो कुछ लिया उसका देनदार वही हो सकता है।

जगत्सेठ की ओर से इस विषय मे कौसिल को एक खत लिखा गया। उसका आशय यह था, "कन्तू के जिम्मे हमारा २१५,०००) पावना है। हमने अपने गुमाश्ता जीवनदास को आपकी फैक्टरी मे भेजा था। वहा उत्तर मिला कि कन्तू कलकत्ते गया हुआ है, आपका हिसाव शीघ्र ही चुकता कर दिया जायगा। पर तब से बीस रोज हो गये, आज तक रुपया न मिला। कपनी लेन-देन मे खरी समझी जाती थी--जो कुछ उसके जिम्मे निकलता था वक्त पर अदा कर देती थी। पर इस टाल-मटूल से उसकी वदनामी हुई है। हम आशा करते है कि जब कंपनी और कन्तू के बीच हिसाब-किताब साफ हो चुका, तब व्यापार के नियमानुसार हमारा पावना भी शीघ्र ही चुका दिया जायगा।"

जगत्सेठ ने कासिमबाजार फैक्टरी के सरबराहकार मि० स्टैकहौस से एक व्यावहारिक प्रस्ताव भी किया। इसका साराश यह था कि, "कन्तू से कपनी को २७२,०००) की सम्पत्ति मिल चुकी है। कपनी इतने रुपये की देनदारी का हमारे नाम एक रुक्का लिख दे। ५०,०००) का एक और रुक्का हम कन्तू से लिखा लेगे। उसका देनदार कन्तू ही होगा, कंपनी नही। इस प्रकार हम ३२२,०००) पाने के हकदार होंगे। बदले मे हम अपना पावना काट कर, कपनी को करीब ८०,०००) नकद दे देंगे और दूसरों का भी जो कुछ निकलेगा, बेबाक कर देंगे। शर्त यह है कि कंपनी कन्तू को आगे के लिए भी अपना दलाल रहने

देगी।" पर इस प्रस्ताव का कोई नतीजा न निकला। कपनी को कसर खाकर जगत्सेठ का देनदार बनना स्वीकार न हुआ।

लाचार फतहचन्द को सरकार का सहारा लेना पडा। नवाब ने हाजी अहमद को हुक्म दिया कि चाहे जैसे हो, कपनी से इनका रुपया वसूल करा दो। हाजी अहमद ने हुक्म की तामील के लिए पहले तो कपनी के वकील को गिरफ्तार करा लिया, फिर उसे कहलाया कि, "जगत्सेठ की सम्पत्ति, सम्राट् की अपनी सम्पत्ति है। चाहे जैसे होगा, नवाब रुपया वसूल करा के ही दम लेगा।" यह रग-ढग देखकर कपनी इस बात पर तो राजी हो गई कि जगत्सेठ से कोई समझौता कर लिया जाय, पर वह कन्तू को दलाल रखने से इन्कार करने लगी। उधर जगत्सेठ को कोई भी समझौता इस आधार पर मजूर न था कि कन्तू उस पद से च्युत कर दिया जाय, क्योकि उस हालत मे कन्तू के नाम पडने वाली रकम को बट्टे खाते मे ही डाल देना पडता। कपनी ने दो-एक बडे व्यापारियो को दलाल का पद प्रदान तो किया, पर उन्होंने यह कह कर उसे अस्वीकार कर दिया कि मौजूदा हालत मे कोई भी व्यापारी माल बेचने को तैयार नही। ढाके मे भी यही हाल था। कंपनी को वहा से खबर मिली कि जगत्सेठ से झगडा हो जाने के कारण वहा का व्यापार भी मिट्टी मे मिलने पर था। इधर हाजी अहमद की त्योरी चढने लगी थी, यह अफवाह उडने लगी थी कि अगर कपनी ने जगत्सेठ का ऋण न चुकाया तो वह व्यापार ही न कर सकेगी।

कौंसिल ने नवाब की सेवा मे एक आवेदन-पत्र भेजना निश्चित किया। सारी परिस्थिति के सम्बन्ध मे उसका विचार क्या था, यह उसके द्वारा स्वीकृत इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है—"अगर नवाब हमारी दरख्वास्त नामजूर कर देंगे तो उनके और हमारे बीच

झगडा उठेगा और हमारा व्यापार कुछ समय के लिए बंद हो जायगा। पर हम करे तो क्या ? हमारे सामने दो ही मार्ग है—या तो हम अपनी बात पर अड़े रहे या फतहचन्द की बात मानकर कन्तू को फिर अपना दलाल बनने दे। हमारे लिए दोनों ही रास्ते बुरे हैं, पर एक मे दूसरे की अपेक्षा बुराई कम है। यही कारण है कि हम नवाब का कोप-भाजन बनने को तैयार है, पर फतहचन्द का प्रस्ताव स्वीकार करने को नहीं। अगर कन्तू फिर कपनी का दलाल हो गया तो वह इसके लिए आजन्म फतहचन्द का ऋणी रहेगा और फतहचन्द उससे मनमाना काम निकाला करेंगे। आखिर फतहचन्द कन्तू की पुनर्नियुक्ति पर इतना जोर क्यों दे रहे है ? इसमे उनकी कोई गहरी चाल जान पड़ती है। व्यापारियों से कन्तू को १॥) सैकडा दलाली मिलती है। फतहचन्द और उसके दोस्तों का कहना है कि अगर कन्तू की यह दलाली बनी रही तो वह धीरे-धीरे अपना सारा कर्ज चुका देगा। मगर कैसे ? उसकी साल भर की दलाली किसी भी हालत मे १२०,०००) से ज्यादा हो नही सकती। उधर कपनी का दलाल होने के कारण उसे कुछ ठाट-बाट से रहना ही पड़ेगा। उसका कुटुम्ब भी छोटा नही, ऐसी हालत मे उतनी आमदनी से तो उसका अपना ही खर्च चलना मुश्किल है, वह महाजनो को क्या दे सकगा ? कन्तू की नियुक्ति से हमारा कोई लाभ होने वाला नही। बल्कि इससे हमारे ऊपर आफत बनी ही रहेगी। जहा किसी महाजन ने फरियाद की कि कन्तू कर्जदार है, वहां दरबार से हुक्म हुआ कि कपनी से रकम वसूल की जाय और न दे तो उसका कार-बार बन्द कर दिया जाय। हमें जान पडता है कि फतहचन्द किसी गूढ अभिप्राय से ही कन्तू को उसकी पुरानी जगह दिलाना चाहते है। संभवत. उनके और व्यापारियो के बीच कोई ऐसा समझौता है कि कन्तू की मार्फत जो

रेशम की खरीदारी होगी, उसका वह बाजार-भाव से ऊंचा दाम दिला देंगे। पर इसमें फतहचन्द का और व्यापारियों का लाभ भले ही हो, हमारे मालिकों की तो हानि ही हानि है। अगर कन्तू फिर से दलाल नियुक्त हुआ तो हमारा व्यापार चौपट हुए बिना न रहेगा।"

कपनी के आवेदन-पत्र के उत्तर में नवाब ने यही लिखवाया कि अगर तुम देनदार हो तो जगत्सेठ का रुपया फौरन चुका दो, अगर तुम अपनी देनदारी कबूल नही करते तो दरबार में कन्तू को हाजिर करो कि मामला पचायत से तै हो जाय। कौसिल ने एक खत जगत्सेठ को भी लिखा था, पर उन्होंने उसे पढकर लौटा दिया था, उसका कोई जवाब नही दिया था।

कंपनी ने न तो अपनी देनदारी कबूल की, न कन्तू को ही हाजिर किया। बात यह थी कि कन्तू के बयान से कपनी की मुसीबत बढने वाली थी, घटनेवाली नही। वह कौसिल को अपने आर्थिक सकट का कारण बता चुका था और अगर दरबार में पेश किया जाता तो अपनी उसी बात को दोहराता और कपनी की बदनामी करता। कन्तू ने कौसिल को लिखा था—

"कासिमबाजार फैक्टरी के भूतपूर्व प्रधान मि० स्टिफेन्सन ने मुझे डरा-धमका कर मुझसे बहुत-कुछ ऐंठ लिया। मुझे उन्हें सब मिलाकर १७५,०००) देना पडा और उनके मुतसद्दी को ७,०००)। इससे मेरी आर्थिक स्थिति खराब हो गई और मुझे टाट उलट देना पड़ा। अगर मि० स्टिफेन्सन के दोनो दलाल—हरकिशन और सदानन्द अपने बही-खातों के साथ बुलवाये जाय और उनके बयान लिये जाय तो मेरी बात की सचाई साबित हो जायगी। मेरी बरबादी छ, नही, छत्तीस

महीनों मे हुई है। जब मैंने देखा कि कर्ज लिये विना मैं अपनी रक्षा नहीं कर सकता, तब मुझे जगत्सेठ की कोठी से इतना उधार लेना पडा।"

कन्तू ने यह लिखकर दर्ख्वास्त की थी कि कौंसिल सारे मामले की जाच करावे और मेरे साथ न्याय करे। पर जाच कराई भी गई तो काम के लिए नही, नाम के लिए। कन्तू जो दाद चाहता था वह उसे न मिली और वह दरबार तक अपनी फरियाद पहुंचाने से भी रह गया।

इस बीच मे मुर्शिदाबाद के दो बडे महाजनों ने झगडा निवटा देने के उद्देश से एक प्रस्ताव किया। वह प्रस्ताव यह था कि चूकि कन्तू से २,७२,०००) की जायदाद कपनी को मिल चुकी थी, कंपनी ८०,०००) तो अपने लिए रख ले और १,९२,०००) किसी दलाल के हवाले कर दे, और यह दलाल उस रकम को, और महाजनों के बीच कर्ज के हिसाब से वाट कर, यह किस्सा खतम करे। पर कौंसिल ने इसे स्वीकार नही किया। उसकी खास दलील यह थी कि जायदाद २,७२,०००) की जरूर बताई गई है, पर सभव है, वेचने पर उतना न मिले—"कम से कम ५०,०००) का नुकसान तो मान ही लेना चाहिए।" उधर कन्तू का कहना था कि जायदाद की कीमत एक पैसा भी कम मिलने की नही। झगडा वना ही रहा।

कासिमबाजार मे काम-धधा न होने के कारण कपनी के कर्मचारी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। वे कौंसिल को लिखते कि मामला तै हो जाना चाहिए—बड़े स्वार्थ के लिए हमे छोटे स्वार्थ का बलिदान कर देना चाहिए—पर कौंसिल अपनी नीति की विफलता जल्द स्वीकार करने वाली न थी। कभी वह सरफराज खा को खुश कर अपना काम निकालना चाहती थी, कभी अपने प्रतिनिधियो को हाजी अहमद और रायराया

आलमचन्द के पास भेजकर उनसे अपनी सिफारिश कराना चाहती थी। एक खासा अच्छा घोडा शाहजादे को भेंट किया गया, हाजी अहमद और आलमचन्द के सामने आसू बहाये गये, पर इनका कोई नतीजा न निकला। उसे सब यही सलाह देते गये कि कंपनी को बंगाल, बिहार या उड़ीसा मे रहना और व्यापार करना है तो फतहचन्द से समझौता कर ही लेना चाहिए।

अप्रैल (१७३०) मे यह झगडा शुरु हुआ और अक्टूबर से पहले न निबटा। पाच-छ महीनों तक वाद-विवाद बना ही रहा। इस बीच मे कपनी की ओर से कासिमबाजार में माल की खरीद-बिक्री की कोशिश हुई भी तो किसी व्यापारी को सौदा करने का साहस न हुआ। फतहचन्द धीर-गभीर थे, पर उनकी सहनशीलता की भी एक हद थी। जब उन्हे मालूम हो गया कि कौसिल को दूसरे महाजनो का किया हुआ प्रस्ताव भी मजूर न था, तब पानी मे एक बार उबाल आया और उन्होने कौसिल का सन्देश पहुंचाने वाले कर्मचारी से तमक कर कहा "मै इतना कमजोर नही कि कपनी से कौड़ी-कौडी वसूल न कर लूं। उसे बाद को मालूम होगा कि हमारे क्रोध से उसकी कितनी हानि हो सकती है।"

नवाब का भी धैर्य जाता रहा। उसने कपनी को कहलाया कि, "जगत्सेठ का पावना सरकार का अपना पावना है" और यह धमकी दी कि पटने से आनेवाली नावें आगे बढने न दी जायगी। फिर भी कौसिल का निश्चय न बदला। अधिक से अधिक वह फतहचन्द को कन्तू की जायदाद का एक हिस्सा देने को तैयार थी और जब इस पर समझौता न हो सका, तब उसने कासिमबाजार के कर्मचारियों को आदेश दिया कि फैक्टरी मे ताला लगाकर वहा से चल दो। उन्होने

ऐसा ही किया, पर नवाब पर इसका कुछ भी असर न पड़ा। उसने कंपनी के वकील को बुलवाया और उससे कहा कि, "तुम्हारे मालिक आप अपना नुकसान करने चले हैं तो करे, उन्हे रोकता ही कौन है ? यहां के अंगरेज जहां जाना चाहते हो जायं। मै तुम्हे भी उनके साथ जाने की इजाजत दे सकता हूँ। पर यह नही हो सकता कि मै फतहचन्द की रकम डूब जाने दू।" यह कह कर उसने वकील की रिहाई का हुक्म दे दिया।

जान स्टैकहौस ८ सितम्बर को कलकत्ते पहुंचा। कुछ और कर्मचारी वहां पहले ही पहुच चुके थे। फिर से सारी परिस्थिति पर विचार हुआ और यह निर्णय हुआ कि जो लोग कासिमबाजार से आ गये है वे वहां लौट जाय और फतहचन्द से समझौता कर माल खरीदना शुरू कर दे। समझौते के संबध मे कौसिल का आदेश हुआ कि फतहचन्द को रुपये मे ॥)—अर्थात् कुल १०७,५००)—दे कर मामला तै कर सकते हो। पर कन्तू को फिर दलाल की जगह देना कौसिल को मंजूर न हुआ। स्टैकहौस भी उसके पक्ष मे न था। उसने कासिमबाजार के एक और ही व्यापारी की सिफारिश की थी। इसका नाम बडदत्त था और इसी को दलाल नियुक्त करना कौसिल ने निश्चित किया।

अन्त मे मामला १३०,०००) पर तै हो गया। २० अक्टूबर (१७३०) को फतहचन्द ने यह लिखकर दे दिया कि—

"मै जगत्सेठ इकरार करता हूँ कि, अंगरेजों के कासिमबाजार के दलाल कन्तू और मेरे बीच हिसाब-किताब साफ हो गया और उसके जिम्मे मेरा जो कुछ पावना निकला, उसे कासिमबाजार फैक्टरी के प्रधान मि० स्टैकहौस ने बेबाक कर दिया। अब अगरेज कंपनी या कन्तू के जिम्मे मेरा कुछ भी बाकी न रहा, लेहाजा यह फारखती लिख दी।"

फतहचन्द ने इसके कुछ ही दिन बाद मि० स्टैकहौस और मि० रसल को साथ ले जाकर नवाब से मिलाया। पर उनके दिल मे फरक आ गया था। इसलिए कपनी की विशेष सहायता करने से उन्होंने हाथ खीचना शुरू कर दिया। ढाके मे कपनी उनके गुमाश्ते से फिर कुछ कर्ज ले चुकी थी। जब गुमाश्ता तकाजा करने लगा, तब कंपनी के कर्मचारियो ने कौसिल पर हुडी कर उसका हिसाब चुकाया। जनवरी १७३१ की कलकत्ता-कौसिल की रोकड़ बही मे उस हुडी के भुगतान का जिक्र है —

"ढाके के प्रधान और उसकी कौसिल द्वारा की हुई हुडी का भुगतान, फतहचन्द आनन्दचन्द को—

३०,०००)

वट्टा १४।=) ५ पाई सैकडा ४,३२०)

३४,३२०)"

१३ मई को कासिमबाजार का प्रधान कौसिल को अपनी आर्थिक स्थिति से अवगत कर कुछ रुपया मांगता है क्योकि "फतहचन्द कुछ भी देने को तैयार नही।"

फर्रुखसियर ने फरमान-द्वारा कपनी को नि शुल्क व्यापार करने का अधिकार दे दिया था, पर नये बादशाह मुहम्मद शाह को कपनी ने न तो नजराना भेजा था, न उसकी स्वीकृति ही प्राप्त की थी। यो तो पहले भी उसकी ओर से इस अधिकार का दुरुपयोग हुआ करता था, पर इधर व्यापार बढने के साथ वह दुरुपयोग भी बढ चला था। यह दुरुपयोग इस प्रकार होता कि दूसरे व्यापारी भी कपनी के किसी बड़े अधिकारी की मुट्ठी गरम कर उसका दस्तक या परवाना हासिल

कर लेते और अपने माल को कंपनी का माल बताकर शुल्क लेने-दने का कोई सवाल ही नहीं खड़ा होने देते। सरकार को इससे वड़ी आर्थिक हानि होने लगी थी। उसके कर्मचारी कही रोक-टोक करते भी तो या तो घूस देकर उन्हे चुप कर दिया जाता था—अगर वे घूसखोर न हुए तो—धीगा-धीगी से उनकी मांग विफल कर दी जाती। नावों द्वारा जो माल जाया-आया करता उसके साथ सशस्त्र गोरे सैनिक भेजे जाते और कभी-कभी ये सैनिक 'चोरी और सीनाजोरी' वाली कहावत चरितार्थ कर वैठते। १७३१ मे दो विभिन्न अवसरो पर गोरों ने गोलियां चला दी। एक जगह तो दो सरकारी सिपाही मारे गये और दूसरी जगह, गोली का जवाव गोली से ही मिलने के कारण, एक गोरा सिपाही। इन घटनाओ के कारण शुजाउद्दौला का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही था। उसने कंपनी के वकील से सफाई तलब की और कहा कि अंगरेजों की यही चाल-ढाल रही और हमारी प्रजा या हमारे कर्मचारियों के साथ वे इसी तरह पेश आते रहे तो समझ लो कि उनकी खैरियत नही। कासिमवाजार वालों ने नवाव का क्रोध शान्त करने के लिए तरह-तरह के उपायो का अवलम्वन किया, पर उन्हे सफलता न मिली। नवाव ने हुक्म दिया कि मुहम्मद शाह के शासन-काल के प्रारम्भ से आज तक, चुगी का हिसाव कर, सारी रकम कंपनी से वसूल की जाय। अंगरेजो के वकील ने दरवार मे जाकर कुछ निवेदन करना चाहा तो उसे वहां जाने की इजाजत ही नही मिली। हाजी अहमद से मिलकर उसने जानना चाहा कि नजराने से नवाव की नजर वांधी जा सकती थी या नही तो उसे यही उत्तर मिला कि जनाव, आप वह नजराना अपने ही पास रखिए, हम तो वादशाह का हुक्म तामील करने जा रहे हैं।

पहले तो अंगरेजों को यह आशा थी कि शाहजादा सरफराज खां इस मौके पर उनकी मदद कर उन्हे आफत से बचा लेगा, लेकिन थोड़े ही समय मे उन्हे यह भान हो चला कि फतहचन्द की शरण गये बिना उनका उद्धार होने वाला न था। २० अक्टूबर को कासिमबाजार वाले लिखते है कि—

"हमे यहा के कितने ही आदमियो से मालूम हुआ है कि फतहचन्द की बेरुखी ने ही हमारी समस्या जटिल कर दी है। हमारा विश्वास है कि जब तक वह हमारी सिफारिश नही करते, यह समस्या हल होने वाली नही। दो रोज हुए, हमने उनका दिल टटोला था। हमारी ओर से एक व्यक्ति ने जाकर पूछा कि, आप अगरेजो के पुराने दोस्त है, क्या वे आशा कर सकते है कि आप फिर एक बार उन्हे बचा देने की उदारता दिखायेगे ? फतहचन्द ने इसका रूखा-सूखा जवाब यही दिया कि मै न तो अगरेजो का दोस्त हूं, न दुश्मन। अन्त मे उन्होने इतना कहा कि अगरेज अपने किसी विश्वसनीय प्रतिनिधि को भेजें तो मै उसे नवाब से और उसके अधिकारियो से मिला दूगा, पर अपनी ओर से मै उनके पक्ष मे कुछ भी न कहूगा। हमारा खयाल है कि कन्तू वाले मामले मे फतहचन्द की जो क्षति हुई थी उसकी वे हम लोगों से पूर्ति कराना चाहते है। वह अपनी जबान से तो ऐसा न कहेगे, मगर उनके दिल की बात यही है, और जब तक हम क्षति-पूर्ति नही कर देते, उनका रुख बदलने वाला नही। यह जरूर है कि अगर हमने उनका नुकसान पूरा कर दिया तो वह फिर पहले की ही तरह हमारे मित्र और सहायक बन जायगे। इसमे कुछ खर्च तो पडेगा—और वह भी छोटी-मोटी रकम नही—पर जो आफत आ पड़ी है उससे बचने का इससे सस्ता और कोई उपाय नजर नही आता। नवाब का

क्रोध शान्त हो सकता है तो फतहचन्द की ही सिफारिश से। अगर वह हमारी मदद नही करते तो हम और दरबारियो को चाहे जितना दें, हमारी जिल्लत होती ही रहेगी, हम ठोकरे खाते ही रहेगे।"

कुछ समय तक कौंसिल इस भ्रम मे रही कि उसने एक घोड़ा सरफराज खां को भेट कर उसको अपनी मुट्ठी मे कर लिया था और उसकी सिफारिश से ही वह ऐसी कठिनाइयो पर विजय प्राप्त कर लेने वाली थी। पर समस्या हल होते न देख वह धीरे-धीरे समझने लगी थी कि अब तक वह मन के लड्डू ही खाये बैठी थी। कासिमबाजार से आने वाले खत ने उसकी बची-खुची आशा या भ्रम को दूर कर दिया और उसके मिजाज को अर्श से फर्श पर ला दिया। २३ अक्टूबर को वह लिखती है कि, "फतहचन्द को यह आशा दिला दो कि कन्तू वाले मामले मे उन्हे जो नुकसान उठाना पड़ा, उसे हम पूरा कर देगे और इस प्रकार अपनी रक्षा करा लो। हा, जब तक हमारी स्वीकृति न मिल जाय, यह मत कहना कि कपनी उन्हे उस मद में क्या देगी।" खत भेजते ही कासिमबाजार से खबर मिली कि नवाब एक लाख तो बादशाह के लिए और उसके अलावा "कुछ अपने लिए" मांग रहा था। कौंसिल ने दो ही दिन बाद वहा वालो को लिखा कि फतहचन्द से दरियाफ्त करो कि मामला कितना देने से तै हो जायगा—"पर, ध्यान रहे कि बिना हमारी मजूरी के कोई बात पक्की न होने पावे।"

फतहचन्द का उत्तर आशाजनक तो था, पर उन्होने इस बात पर जोर दिया था कि मामला तै करने का कासिमबाजार वालो को अधिकार होना चाहिए। कौंसिल ने लिखा कि ,"नवाब को ४०,०००) और उसके दीवान (सरफराज खा) को ५,०००) देने की बात

करो। इतने पर सौदा तै न हो तो दस-पांच हजार और दे सकते हो, लेकिन इससे अधिक नही। दिल्ली से न कोई मांग हुई है, न कोई हुक्मनामा आया है। सारी बाते नवाब की मनगढंत है। अगर बादशाह के लिए कुछ देना पडे भी तो इसी शर्त पर दे सकते हो कि हमे जितनी सनदे मिल चुकी है, सब की सब बहाल रहे।"

कासिमबाजार वाले जगत्सेठ से मिले और उन्हे यह वचन दिया कि अगर आपने हमारा पक्ष अपनाया तो हम भी आपको 'सन्तुष्ट' कर देगे। उन्होने लेने-देने की कोई बात नही की, पर उनके मुनीम रूपचन्द ने कहा कि अगर उनसे सिफारिश करानी है तो उन्हे ५०,०००) देना कबूल करो। उधर नवाब की त्योरी मे रोज बल पड़ रहा था—कासिम-बाजार वाले कर्मचारी रोज कौंसिल को लिख रहे थे कि जितनी ही देर हो रही है, उतनी ही बात बिगड़ रही है—चाहे जितना खर्च पडे, नवाब के साथ शीघ्र से शीघ्र, समझौता कर लेने मे ही हमारी भलाई है।

वे कासिमबाजार से महिमापुर (मुर्शिदाबाद) जाते-आते रहे, पर कोई बात तै करने का उन्हे अधिकार न था, इसलिए जगत्सेठ के सामने कोई निश्चयात्मक प्रस्ताव न रख सके। उन्होने एक दिन कहा भी कि "तुम लोगो ने इस मामले को मजाक समझ रखा है। जब नवाब फरमान छीन लेगा और व्यापार बद कर देगा तब होश मे आओगे।" कर्मचारियो ने कौंसिल को लिखा कि, "अगर आपका निश्चय हो कि उलझन और न बढे तो हमे तै-तमाम करने की इजाजत दीजिए। सरफराज खां से तो हमे निराशा ही रही। वह बाप से इतना डरता है कि उसके आगे हमारी ओर से एक भी शब्द नही बोल सकता।"

कौंसिल ने कासिमबाजार वाले कर्मचारियों को इजाजत दे दी कि जो रकम देनी थी उसे घटा-बढा कर वे मामले का निबटारा करा

ले। जगन्सेठ से उन लोगों को मालूम हो चुका था कि सख्ती करने के लिए नवाब को दिल्ली-दरबार ने भी आदेश भेज दिया है और कौसिल का यह खयाल गलत है कि बादशाह की इस मामले मे कोई दिलचस्पी नही है। कंपनी की फैक्टरी पर पहरा बैठ जाने से, उन्हे यह भी विश्वास हो चला था कि और भी कडुए-कसैले दिन आने ही वाले है। इजाजत मिलते ही उन्होने लेन-देन की बातचीत शुरू कर दी।

जगत्सेठ ने बताया कि दिल्ली-दरबार की माग तो सात-आठ लाख रुपये की है। नवाब से जब कभी इस विषय मे कुछ कहा जाता तब वह यही जवाब देता कि दिल्ली की जो मांग है, कपनी उसे पूरा करे। पर जगत्सेठ ने दो लाख पर ही मामला निबटा देने का आश्वासन दिया—एक लाख सम्राट् के लिए, और एक लाख नवाब के लिए। कासिमबाजार वालों ने कलकत्ते लिखा, "हमारी राय है कि इतना देकर नवाब को खुश कर देना चाहिए। इससे कम मे निबटारा हर्गिज नही हो सकता। दो लाख देकर भी जान बच जाय तो यह फतहचन्द की मेहरबानी समझनी चाहिए।"

नायब दीवान आलमचन्द* ने कपनी के व्यापार को नियन्त्रित करने के उद्देश से इधर यह प्रस्ताव किया था कि (१) एक संख्या निर्धारित कर दी जाय, जिससे अधिक जहाज चलाने का कंपनी को अधिकार न हो, और (२) कपनी कुछ खास चीजो की तिजारत न करने के लिए बाध्य कर दी जाय। दीवान उससे एक कबूलियत लिखा लेना चाहता था। कपनी के कर्मचारियो को बात मालूम हुई तो वे किङ्कर्तव्य-विमूढ़ होकर फतहचन्द के पास पहुचे। फतहचन्द ने

*वास्तव मे दीवान का काम यही करते थे, सरफराज खा बस नाम के लिए उस पद पर था।

सिफारिश की और उनकी बात मानकर नवाब तथा आलमचन्द ने कुछ शर्तों को हटा लेना मजूर कर लिया। फतहचन्द ने कबूलियत का मजमून कासिमबाजार भेज दिया और कहलाया कि अगरेजो को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। वे पहले तो उस पर दस्तखत करने से इन्कार करते रहे, पर फतहचन्द के समझाने-बुझाने पर राजी हो गये। उन्होने कहा कि, "जो दरवाजा बंद-सा है, उसे नवाब खोलने जा रहा है। फिर उसे भी तो दिल्ली-दरबार को बताना होगा कि हमने अंगरेजों को कुछ दिया है तो बदले मे उनसे कुछ लिया भी है।" कंपनी को कबूलियत मे इतना ही इकरार करना पड़ा था कि हम इस देश के भीतर नमक, सुपारी तथा कुछ अन्य पदार्थ एक स्थान मे खरीद कर दूसरे स्थान मे न बेचेंगे और कभी किसी वस्तु के व्यवसाय पर एकाधिकार जमाकर प्रजा को कष्ट न पहुंचायेगे।

फतहचन्द के कहने पर कंपनी के कर्मचारी दो लाख देना स्वीकार कर चुके थे। पर यह रकम बादशाह और नवाब के लिए थी। दीवान तथा दूसरे अधिकारियों को जो देना पडता, वह अलग था। पर फतहचन्द ने सब मिलाकर दो लाख से भी कम मे मामला निबटा दिया। कंपनी को कुल १,८०,०००) ही देना पड़ा। इसके अलावा फतहचन्द को ५०,०००) देने की बात तै हुई। कासिमबाजार वालो ने प्रस्ताव किया था कि कन्तू के जिम्मे उनकी जो रकम डूब गई थी, वह उनको दे दी जाय। कौसिल को यह स्वीकार न हुआ। उसने उनको लिखा कि फतहचन्द की हानि की पूर्ति का नाम हर्गिज मत लेना—उन्हे जो कुछ देना, उनकी सहायता के लिए कृतज्ञता-ज्ञापन के चिह्न-स्वरूप देना। फतहचन्द ने वह ५०,०००) चाहे जो समझ कर स्वीकार किया हो, मोटी बात यह है कि कपनी ने उतना रुपया दिया

और उन्होंने लिया। देने-लेने का नतीजा यह हुआ कि जहां कंपनी से मन फट चुका था, वहा फिर जुट चला—कलकत्ता और कासिमबाजार फिर महिमापुर के सद्भाव से पूर्ववत् लाभ उठाने लगे।

३० अप्रैल, १७३० को कंपनी के वकील ने जगत्सेठ से मिलकर कुछ निवेदन किया और वह उसकी फ़रियाद नवाब के कानो तक पहुचाने दरबार मे गये। जुलाई मे कासिमबाजार के प्रधान ने किसी कर्मचारी के हाथ कंपनी की कोई अर्जदाश्त महिमापुर भेजी। यह थी तो नवाब के लिए, पर उस कर्मचारी को आदेश मिला था कि 'जगत्सेठ से अनुरोध करना कि वह इसे नवाब तक पहुचा देने की कृपा करे। अगर उन्हे यह स्वीकार न हो तो, उनके कहे अनुसार इसे नवाब तक स्वयं पहुचा आना।' जनवरी, १७३१ मे हम कंपनी के वकील को फिर हिरासत में पाते है। कंपनी जगत्सेठ की दुहाई देती है और जगत्सेठ उसका छुटकारा करा देते है। नवम्बर मे कंपनी से कलकत्ते के माल या खिराज की मद मे फिर एक बडी रकम मागी जाती है, फिर हुज्जत शुरू होती है, फिर फतहचन्द बीच में पड़ते है और कंपनी के ४०,०००) देने पर झगड़ा निपट जाता है, उसे नया परवाना मिल जाता है। इसके बाद एक दिन जगत्सेठ कंपनी की फैक्टरी मे पधारते है, वहां उनका स्वागत होता है और उन्हे अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया जाता है।

लेन-देन का भी वही पुराना सिलसिला शुरू हो चुका है। १७३२ में जब कंपनी को १५०,०००) पटने भेजने की जरूरत पडती है तब फतहचन्द से उनकी वहा की कोठी के नाम एक खत लिखाकर उससे उधार लिया जाता है और कुछ समय बाद कासिमबाजार वालो को यह हिदायत भेजी जाती है कि जब कभी कर्ज लेना हो तब फतहचन्द से ही लेना, और किसी से नही। १७३६ मे यह हिदायत दोहराई

जाती है। ३ मार्च को कासिमबाजार वाले कौसिल को सूचित करते है कि हमने इधर दो लाख रुपये फतहचन्द से लिये है, और आगे भी जब कभी कर्ज लेने की जरूरत पडेगी, तब आपके आज्ञानुसार उन्हीसे लेगे। उसी साल जून मे फतहचन्द-द्वारा की हुई २४०,०००) की हुडी की नकल कलकत्ते पहुचती है जिसे कासिमबाजार की फैक्टरी सकार चुकी है। २ मार्च, १७३८ को कासिमबाजार वाले फतहचन्द से १३०,०००) कर्ज लेते है। लेन-देन के ऐसे ही और भी बहुत-से अवसर उपस्थित हुए होगे जिनका आज कही कोई उल्लेख नही मिलता।

१६ जून, १७३८ के कपनी के लेखे मे दर्ज है—"फतहचन्द का गुमाश्ता आया था। उसने कहा कि हमारे मालिक को ६६ थान लाल और ६६ थान सब्ज बनात चाहिए। पर इतना माल इस समय गोदाम मे मौजूद नही। पटने की फैक्टरी को लिखा जाय कि वह फतहचन्द के गुमाश्ते को ७ गाठ सब्ज बनात दे दे और ५०), थान की दर से उसकी कीमत हमारे नाम टाक ले। हम फतहचन्द से भुगतान ले लेगे।" पटने वालो ने लिखा कि फतहचन्द के गुमाश्ते ने बनात ले जाने मे देर की, इसलिए माल दूसरे के हाथ बिक गया।" २७ फरवरी, १७३९ के लेखे में लिखा है—"हमे इस बात का खेद है कि फतहचन्द को बनात न मिली और उन्हे निराश होना पडा। पर दोष उन्ही के गुमाश्ते का है। हम आशा करते है कि वर्तमान परिस्थिति मे वह इसके लिए हम पर नाराज न होगे।"

जिस 'परिस्थिति' की ओर यह इशारा था वह नादिरशाह के आक्रमण[3], और उसके ईरान लौट जाने से पहले ही मुर्शिदाबाद में शुजाउद्दौला की मृत्यु के कारण उत्पन्न हो गई थी।

१३ मार्च, १७३९ को कासिमबाजार वालों ने कलकत्ते खबर भेजी कि शुजाउद्दौला परलोक सिधार चुका है। उधर ९ मार्च को नादिरशाह दिल्ली में दाखिल हो चुका था।

भारतवर्ष के इतिहास मे नादिरशाह की चढ़ाई उन प्रचंड आंधियों में से एक थी जो उत्तर-पश्चिम से यहां आई है और यहां की सलतनत को झकझोर कर हमें अपरिमित हानि पहुचा गई है। ऐसी आंधी का झटका हमे बहुत दिनों से नही खाना पड़ा है, फिर भी भविष्य में सतर्क रहना ही बुद्धिमानी का काम होगा।

नादिरशाह ने लूटमार के तौर पर जो कुछ किया उससे ढोल की पोल खुल गई और यहां की हुकूमत का खोखलापन सारे संसार को प्रत्यक्ष हो चला। अकबर और औरंगजेब के वंशज, बल-विक्रम में, उनके पासंग भी नही रह गये थे और मुगल-साम्राज्य की इतनी अधोगति हो चुकी थी कि अब उसका संभलना असम्भवप्राय था।

जगत्सेठ-परिवार के लिए यह समय घोर सकट का रहा होगा। मुर्शिदाबाद मे शुजाउद्दौला की मृत्यु और दिल्ली में नादिरशाही का दौरदौरा—इन दोनो दुर्घटनाओ के कारण फतहचन्द को गहरी हानि उठानी पड़ी। दिल्ली मे उनके दो सगे-संबन्धी मार डाले गये। बचने वालों मे दो—राय मुहकम सिंह और राजा *डालचंद—वहां से भाग कर मुर्शिदाबाद जा बसे। उत्तर भारत मे कुछ समय के लिए वाणिज्य-व्यापार बंद-सा हो गया। लूटपाट से जो नुकसान हुआ उसके अलावा दिल्ली मे जगत्सेठ की कोठी को चंदा भी भरना पड़ा। उधर बंगाल से नये नवाब—सरफराज खां—को नादिरशाह की मांग पूरी करने के लिए जो कुछ भेजना पड़ा या फतहचन्द को जो कुछ जुटाना पड़ा वह रकम अलग थी।

(३)

कंपनी से सरफराज खां के शासन-काल मे दो वार नजराना तलव किया गया और दोनो वार कंपनी के कर्मचारियो को सहायता के लिए फतहचन्द के पास जाना पड़ा। पहली वार नजराना तलव किया गया सरफराज खा के गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिन वाद। कपनी के प्रार्थना करने पर फतहचन्द ने हाजी अहमद मे वाते की और दस हजार पर ही सौदा पटा दिया। कपनी उतना देने मे भी आनाकानी करने लगी, पर फतहचन्द ने सलाह दी कि इसे फौरन दाखिल कर दो, वर्ना हाजी अहमद चिढ जाने पर कुछ और लेकर रहेगा। हाजी अहमद खा की दूसरी माग अक्टूबर १७३९ मे हुई। उस समय तक सरफराज खा को तीनो प्रान्तो की निजामत का फरमान मिल चुका था और वकील हाजी अहमद, ऐसे अवसर पर भी नवाव नजराना पाने का हकदार था। कपनी की ओर से कहा गया कि हम लोगो ने जो रकम शुजाउद्दौला की नजर की थी वही नये नवाव की भी नजर करेगे, पर हाजी अहमद ने कहा कि इधर समय असाधारण वीता है और अमन-चैन कायम रखने के लिए नवाव को काफी खर्च करना पडा है, कपनी को कम से कम दस हजार तो देना ही चाहिए। २ मार्च, १७४० को कासिमवाजार फैक्टरी के प्रधान मि० आयर, "फतहचन्द और आलमचन्द" के परामर्श के अनुसार नजर पेश करने दरवार मे गये और दस हजार दे आये।

लेन-देन भी पहले की ही तरह जारी रहा। ७ अप्रैल के लेखे मे लिखा है—"जगत्सेठ फतहचन्द आनन्दचन्द से हमने १) सैकड़ा माहवार सूद पर १२१,०००) रुपये कर्ज लिये और ५ तारीख को

उन्हे इसकी दर्शनी हुडी कर दी । उनसे दो लाख लेने की बात थी, उतना पूरा हो गया ।" इससे पहले पटना-फैक्टरी वाले फतहचन्द के गुमाश्ते से २५०,०००) कर्ज ले चुके थे और कलकत्ता कौसिल के नाम चालीस दिन की मुद्दती हुंडी कर चुके थे। इस हुडी का भुगतान ३० जुलाई को हुआ. ऐसा उल्लेख मिलता है ।

सरफराज खां न तो अपने पिता की तरह लोकप्रिय हो सका न उसकी-सी सफलता ही प्राप्त कर सका। तकदीर ने उसे जहां ले जाकर बैठा दिया था वहा से उसके दुश्मन की तदबीर ने प्राय: एक ही साल बाद हटा दिया और हटने के मानी यह हुए कि उसे राजसिहासन के साथ अपने प्राण भी गंवाने पड़े।

शुजाउद्दौला खां मरते समय पुत्र को यह उपदेश दे गया था कि हाजी अहमद, आलमचन्द और फतहचन्द को मत्री बनाये रखना। सरफराज खां ने पिता के इस उपदेश का कहने को ही पालन किया। नाम के लिए तो यह मंत्रिसभा कायम रही, पर अब काम दूसरे ही आदमियों की सलाह से होने लगा। इससे दिल फिर गये, मनमुटाव बढ़ने लगा और दरबार मे दो दल पैदा हो गये ।

बंगाल का तत्कालीन इतिहास जिन फारसी ग्रथों से जाना जा सकता है उनमे सब से ऊंचा स्थान है "सैरुल मुताखरीन का।" प्रकाशित ग्रंथों में उसके बाद नाम लिया जा सकता है तो "रियाजुस्सलातीन" का। एक का लेखक था सैयद गुलाम हुसैन खां और दूसरे का गुलाम हुसैन सलीम। इनमे दूसरा सरफराज खां का पक्षपाती था और पहला उसके शत्रु अलीवर्दी खा का—यद्यपि सत्य के अनुरोध से यह कहना पड़ता है कि सैयद गुलाम हुसैन खा ऊंचे

दर्जे का इतिहासकार और लेखक था और उसके दृष्टिकोण मे गुलाम हुसैन सलीम की-सी संकीर्णता न थी। अलीवर्दी खा का पक्षपाती होते हुए भी उसने सरफराज खा के दोष ही नही दरसाये है, उसके गुणों पर भी प्रकाश डाला है।

"मुताखरीन" का कहना है कि सरफराज खा आदमी तो भला था, पर उसमे शासन-सम्बन्धी योग्यता का अभाव था। नमाज पढना, रोजा रखना--ऐसे काम तो वह बडी लगन से किया करता, पर राज-काज से सम्बन्ध रखने वाले मामलो मे वह हाजी अहमद, फतहचन्द या आलमचन्द की सलाह को कोई वजन न देता--बल्कि हाजी लुत्फुल्ला, मर्दान अली खा, मीर मुर्तजा जैसे लोगो के कहे अनुसार चलता जो उसके दिल मे घर कर चुके थे और जो इन तीनो के, खास कर हाजी अहमद के, विरोधी या शत्रु थे। हाजी अहमद की निन्दा करना, उसकी फबतिया उडाना—यह इनका नित्य नियम था। हाजी अहमद इनकी करतूतो से अपने भाई अलीवर्दी खा को आगाह करता रहता और उसे मुर्शिदाबाद पर चढाई करने के लिए उभाड़ता भी रहता था।

"रियाज" में लिखा है कि शुजाउद्दौला के शासन-काल मे अलीवर्दी खा ने मुहम्मद शाह के वजीर कमरुद्दीन खा से लिखा-पढी कर, अपने लिए 'महाबतजग बहादुर' की उपाधि प्राप्त कर ली। शुजाउद्दौला के तो नही, पर सरफराज खा के मन मे खटका हुआ और अलीवर्दी खा के विषय मे दोनो के दो मत हो चले। बात यहा तक बढी कि बाप और बेटे मे अनबन भी हो गई। अलीवर्दी खा महत्त्वाकाक्षी था। अपने भाई हाजी अहमद की सहायता से, उसने कूटनीति से काम लेना आरम्भ कर दिया। सरफराज खा और उसके

सौतेले भाई मुहम्मद तकी खां के बीच भेद-भाव इतना बढ़ गया कि एक दूसरे का जानी दुश्मन हो गया। कुछ समय बाद मुहम्मद तकी खां की मृत्यु हो गई और उसकी जगह शुजाउद्दौला ने अपने दामाद मुर्शिदकुली खां को उडीसा के नायब-नाजिम का पद दिलाया। मुर्शिदाबाद में हाजी अहमद, फतहचन्द और आलमचन्द इन तीनों का एक गुट बन गया था और जब तक शुजाउद्दौला जीवित रहा, राज-काज का वास्तविक सचालक यही त्रिगुट बना रहा।

"रियाज" में यह भी लिखा है कि सरफराज खां के नाजिम होने पर यह त्रिगुट राजकीय विषयों मे पहले की अपेक्षा अधिक हस्तक्षेप करने लगा। नवाब की इच्छा थी और बेगमों की भी इच्छा थी कुछ पुराने सरदारों—मनसबदारों की तरक्की करने की, पर त्रिगुट के विरोध के कारण यह न हो सका। फिर तो इसका साहस यहा तक बढा कि यह रात-दिन यही बदिश बांधने लगा कि किसी प्रकार अलीवर्दी खां को मुर्शिदाबाद की मसनद मिल जाय और वह तीनों प्रान्तो का नाजिम बन जाय। "रियाज" के लेखक का यह भी कहना है कि अपने षड्यंत्र मे इस त्रिगुट को पूरी सफलता प्राप्त हुई। नादिरशाह के नाम से मस्जिदो मे खुतबा पढा जाना—उसके नाम पर सिक्को की ढलाई होना—ऐसे काम इसी की सलाह से हुए थे। बगाल से काफी बडी रकम उसके कूच करने से पहले दिल्ली भेजी जा चुकी थी—जिसमे राजस्व के अलावा शुजा-उद्दौला खां का निजी धन भी शामिल था। पर नादिर-शाह के विदा होते ही दिल्ली मे सरफराज खां पर दोपारोपण होने लगा कि उन कामों के लिए वही जिम्मेवार था, और कमरुद्दीन खां तथा निजामुल्मुल्क के कान भरे जाने लगे। नतीजा यह हुआ कि दिल्ली-

दरबार से अलीवर्दी खां को निजामत मिल गई और सरफराज खां के काले कारनामो के लिए उसे प्राण-दड देने का हुक्मनामा भी अलीवर्दी खां को भेज दिया गया। जब त्रिगुट ने देखा कि यहां तक काम बन चुका तब उसने सरफराज खां को यह बता कर कि आमदनी को देखते हुए खर्च बहुत अधिक होता जा रहा है,उससे सैनिको की संख्या घटाने की स्वीकृति ले ली। उसकी सेना के प्राय आधे सैनिक बरखास्त कर दिये गये। पर एक ओर नवाब की सेना से आदमी हटाये जाते, दूसरी ओर वे ही अलीवर्दी खा की फौज के लिए भरती कर लिये जाते। हाजी अहमद ने अपने भाई की धन से भी बडी सहायता की। अलीवर्दी खां चुपचाप लडाई की तैयारी करता गया। जब सरफराज खां को मालूम हुआ कि षड्यत्रकारी मुर्शिदाबाद से दिल्ली तक सुरंग खोद चुके है तब उसने अलीवर्दी खा की जगह अपने दामाद सैयद मुहम्मद हसन को बिहार का नायब नाजिम बनाना तथा कुछ और हेरफेर करना चाहा। पर त्रिगुट के समझाने-बुझाने पर इस कार्य को भी उसने स्थगित कर दिया। मत्रियो ने कहा कि वार्षिक आय-व्यय का हिसाब तीन महीने बाद होनेवाला है—बेहतर होगा कि जमाखर्च हो जाने से पहले कोई अदल-बदल न किया जाय। सरफराज खा भोला-भाला था। उसने फिर उनकी बात मान ली और शत्रु को अपना संगठन और भी ठोस कर लेने का मौका दे दिया।

मुर्शिदाबाद मे हाजी अहमद के विरुद्ध रोज ऐसी चाल चली जाती—दोनो भाइयो के स्वार्थ पर आघात करने की ऐसी चेष्टाएँ होती—कि अलीवर्दी खां को लडाई के लिए कटिबद्ध हो जाना पडा। व्यवहार-कुशल होने के कारण उसने दिल्ली-दरबार मे प्रभावशाली व्यक्तियो से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। अब उसकी ओर से यह

प्रयत्न होने लगा कि तीनो प्रान्तो का नाजिम वह बना दिया जाय और सरफराज खां को उस पद से हटा दिया जाय। उसने राजस्व के अलावा एक करोड़ भेट करना स्वीकार किया। यह भी करार किया कि सरफराज खां की जो निजी सम्पत्ति होगी उसे जब्त कर दिल्ली पहुंचा दूंगा। इस प्रयत्न मे अलीवर्दी खां पूर्णत. सफल हुआ। शुजाउद्दौला के मरने के प्राय: एक ही बरस बाद दिल्ली से अलीवर्दी खा को सनद मिल गई और यह आदेश भी कि अगर सरफराज खां विरोध करे तो उसे जीवित मत रहने देना।—("मुताखरीन")।

अलीवर्दी खां ने अपने दामाद जैनुद्दीन अहमद खां को अपना नायब बनाकर पटने मे छोडा और सुसज्जित सेना के साथ मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हुआ। इससे कुछ दिन पहले वह अपने ज्योतिषी से मुहूर्त्त या साइत निकलवा चुका था और पत्र-द्वारा अपने "मित्र जगत्-सेठ फतहचन्द को" प्रस्थान के दिन की सूचना भेज चुका था। जब उसके सभी हिन्दू और मुसलमान सैनिक—अपनी अपनी रीति से—शपथ ग्रहण कर, उसका अखीर तक साथ देने की प्रतिज्ञा कर चुके, तब उसने अपनी इस यात्रा का असली अभिप्राय जताया और कूच का डका बजवाया। जब मुर्शिदाबाद थोडी दूर रह गया, तब उसका भेजा हुआ पत्र जगत्सेठ के हाथ मे पड़ा। पत्र-वाहक को वह पत्र उसी दिन उन्हे देने का आदेश था। जगत्सेठ ने जो उसे पढा और तारीखें मिलाईं, तो समझ गये कि अलीवर्दी खां तिलियागढ़ी के इस ओर पहुच चुका है और मुर्शिदाबाद पहुचने मे उसे चार ही पाच रोज और लगने वाले है। फौरन वह घोड़े पर सवार हुए, सरफराज खां के पास पहुचे और अपने रंग-ढग से घबराहट दिखाते हुए उस पत्र को सरफराज खा के हाथ मे देकर कहा कि मुझे सन्देह है कि अलीवर्दी खां राज-

महल पहुंच चुका है। साथ ही उन्होंने एक दूसरा पत्र निकाल कर सरफराज खा को दिया। अलीवर्दी खा ने यह पत्र उसी के नाम लिखा था। इसका साराश था—"मेरे भाई हाजी अहमद को अपमानित करने और हमारे परिवार-मात्र की बेइज्जती करने की इधर इतनी चेष्टाएँ हुई है कि मुझे विवश होकर यहा तक आना पडा है। मै आपका वही वफादार नौकर हू और मेरी नेकनीयती के बारे में आपको कोई शुबहा नही होना चाहिए। मेरी प्रार्थना यही है कि आप हाजी अहमद को सकुटुम्ब मेरे पास आने की इजाजत दे दे।" बहुत तर्क-वितर्क के बाद यह तै हुआ कि हाजी अहमद को जाने दिया जाय। अलीवर्दी खां की नेकनीयती का तो किसी को विश्वास न हो सका, पर लोगो ने यही कहा कि हाजी का रहना-न रहना बराबर है। लड़ने की तैयारी कर आगे बढना निश्चित हुआ। सरफराज खां आगे बढा भी, पर तैयारी जैसी होनी चाहिए थी, न हो सकी। दोनो दलों के बीच कुछ समय तक दूत जाते-आते रहे और समझौते की बात चलती रही। पर कोई नतीजा न निकला और लडाई न रुक सकी। इस लडाई में सरफराज खा मारा गया। रायराया आलमचन्द भी बुरी तरह घायल हुए और बाद को उन्होंने हीरे की कनी खाकर आत्महत्या कर ली। दो दिन बाद अलीवर्दी खा मुर्शिदाबाद शहर मे दाखिल हुआ। पहला काम उसने यह किया कि सरफराज की मा के पास पहुचा और उससे यह कहकर माफी मागी कि जो होनी थी हो चुकी —"इतिहास मे सदा के लिए मेरी कृतघ्नता की कहानी लिखी जा चुकी।" उसे आश्वासन देकर और उससे विदा ग्रहण कर वह 'चहलसतुन' में गया और वही तख्तनशीन हुआ।—("मुताखरीन")

सरफराज खा और अलीवर्दी खा के बीच होने वाली लड़ाई का जो

वर्णन "रियाजुस्सलातीन" मे मिलता है, वह इस वर्णन से भिन्न है। उसमे यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि बहुत से पदाधिकारी हाजी अहमद से मिले हुए थे और उनके विश्वासघात के कारण ही सरफराज खां की वैसी हार हुई। जब अलीवर्दी खा का हरावल राजमहल पहुंच चुका, तब सरफराज खां को उसके मुर्शिदाबाद की ओर चल पड़ने की खबर मिली। फिर भी रायरायां आलमचन्द उसे यही समझाने की कोशिश करते रहे कि "अलीवर्दी खा का उद्देश बुरा नही, वह केवल आप से मिलने के लिए आ रहा है।" सरफराज खा को उसकी बात पर विश्वास न हुआ। जो सेना बच रही थी और जो सरदार, मनसबदार तथा जमीदार विश्वास करने योग्य थे, उन्हे साथ लेकर वह दुश्मन का मुकाबला करने के लिए मुर्शिदाबाद से चला। चलने से पहले ही उसे यह मालूम हो चुका था कि तोपखाने मे बारूद की जगह कूड़ा-करकट और गोलो की जगह ईंटे भरी हुई थीं। हाजी अहमद का एक रिश्तदार उस विभाग के अध्यक्ष के पद से हटाया गया और उस पद पर एक पुर्तगीज की नियुक्ति हुई। तीन-चार दिन बाद शहर से थोडी ही दूर पर पहली लड़ाई हुई। इसमे अलीवर्दी खा की फौज को हार खानी पड़ी। अगर रायराया आलमचन्द ने फिर विश्वासघात न किया होता तो शत्रु के दल में भगदड़ मच जाती और हार-जीत का उसी दिन निर्णय हो जाता। पर उसने सरफराज खा से जाकर कहा कि दोपहर की गरमी किसी से बरदाश्त नही हो रही है, अगर लड़ाई जारी रखी गई तो अपने बहुत से आदमी और घोडे, गरमी और प्यास से ही छटपटा कर, प्राण त्याग देंगे; अच्छा हो कि आज लड़ाई मुलतबी की जाय और कल मोरचा लेकर दुश्मन का खातमा कर दिया जाय।" सरफराज खां के ज्योतिषियों या सरदारों की राय ऐसी न थी—उनका कहना

था कि लडाई स्थगित करने मे लाभ नही, हानि ही हानि है—फिर भी नवाब ने उनकी एक न सुनी और जो प्रस्ताव आलमचन्द ने किया था उसी को स्वीकार कर लिया। कुछ देर वाद उसे अलीवर्दी खा का एक खत मिला, जिसमे उसने लिखा था कि मेरी वफादारी मे जरा भी फर्क नही पडा है—मैं आपकी सेवा मे उपस्थित होकर केवल अपने को निर्दोष प्रमाणित करने यहां आया हू । सरफराज खा को ससार का अनुभव नही के वरावर था, उसने अलीवर्दी खा की वात अक्षरश: सत्य मान ली, और बेवकूफी से सारे फसाद की जड हाजी अहमद को अपने भाई के पास जाने दिया। उसके साथ शुजा कुली खा और ख्वाजा वसन्त पानी की थाह ले आने के लिए भेजे गये। अलीवर्दी खा ने इनके सामने कुरान की कसम खाकर कहा कि कल दिन चढते ही यह सेवक अपने स्वामी के सामने उपस्थित होकर क्षमा-याचना करेगा। वास्तव मे कसम खाने के लिए जो चीज उसने हाथ मे ली थी वह कुरान की प्रति न हो कर वेठन से लपेटी हुई एक ईंट थी। फिर उस से ख्वाजा वसन्त को दो सौ अशर्फिया भी मिली। उन दोनो वेवकूफो ने जो कुछ देखा-सुना, उससे उन्हे विश्वास हो गया कि अलीवर्दी खा अब सचमुच पश्चात्ताप कर रहा है और वह नवाव के पाव पडने ही वाला है। पडाव पर लौटकर उन्होने जो कहानी सुनाई उससे सब लोग निश्चिन्त हो गये और लडाई की तैयारी के बदले अलीवर्दी खां की जियाफत की तैयारी होने लगी। उधर दुश्मन रात भर चौकन्ने रहे और सरफराज खा की फौज के जो लोग साजिश मे शामिल थे, उनसे मिलते-जुलते और सलाह-मशविरा करते रहे। सरफराज खा के दो सेनापतियो ने चेतावनी दी भी तो उसने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, वल्कि उन्ही लोगो को डाटने-डपटने लगा। पौ फटने से पहले ही

अलीवर्दी खां ने गोलावारी शुरू करा दी। फिर भी कुछ देर तक सरफराज खा यही समझे बैठा रहा कि तोपो की बाढ से शायद उसकी सलामी उतारी जा रही है और अलीवर्दी खा उससे मिलने आ रहा है।

इसके याद "रियाज" में उस दिन होने वाली लड़ाई का विस्तृत वर्णन है, जिसमे उसके दल के कुछ लोग तो मैदान छोड़ कर भाग चले, कुछ तैयार न रहने के कारण गाजर-मूली की तरह काट डाले गये, और थोडे से लोग उसकी ओर से वीरतापूर्वक लड़े भी तो उनसे कुछ बन न पडा। खुद सरफराज खां "अपने ही दल के किसी विश्वासघातक की बंदूक से चली हुई गोली" का शिकार हुआ। रायरायां आलमचन्द को दगाबाजी का यह बदला मिला कि सिर मे एक तीर लगने से वह बुरी तरह घायल हुआ और फिर अपने घर पहुंच कर, पश्चात्ताप के साथ उसने हीरे की कनी चाट ली और यो आत्महत्या कर ली। अलीवर्दी खां के दल मे विजय-दुदुभी बजने लगी, उसे बधाइया मिलने लगी। हाजी अहमद ने शहर मे जाकर लोगो को अपने पक्ष की जीत की खबर सुनाई और शान्ति-रक्षा का सबको आश्वासन दिया। अलीवर्दी खां वहां चार रोज बाद पहुचा और मसनद पर जा बैठा। सरफराज खा जो कुछ धन छोड गया था, वह सब आसानी से उसके हाथ लग गया। अलीवर्दी खा ने पत्नी-व्रत धारण कर रखा था, इससे सरफराज खा के हरम की ओर उसका ध्यान जाने वाला न था, पर वहा जो डेढ हजार उसकी बीवियां और दासियां थी, उन्हे हाजी अहमद और उसके बेटे तथा दूसरे सम्बन्धी अपने अपने घर ले गये।

अलीवर्दी खां, और सरफराज खां के बीच यह लड़ाई, भागीरथी के तट पर गिरिया नामक स्थान मे हुई थी—नादिरशाह के ईरान

लौट जाने के ग्यारह और शुजाउद्दौला के प्राण छूटने के प्राय: चौदह महीने बाद।

इस क्रान्ति को सफल बनाने मे जगत्सेठ का बहुत बडा भाग था, यह स्पष्ट है। "मुताखरीन" मे इसका जो वर्णन है उसके अनुसार सरफराज खां ने अपने व्यवहार से उन्हे इतना असन्तुष्ट और रुष्ट कर दिया था कि उन्हे विवश होकर हाजी अहमद से मिल जाना पड़ा। "रियाज" में उन्हें त्रिगुट मे शामिल वता कर, यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि वह भी प्रभुत्व के भूखे थे और सरफराज खां के समय में पहले से भी अधिक मनमानी करने लगे थे। "रियाज" मे जो कुछ लिखा है उसका ध्वन्यात्मक अर्थ यह है कि अपनी दाल गलते न देख कर ही उन्होंने अलीवर्दी खां का पक्ष अपना लिया था और सरफराज खां के मंत्री होते हुए भी काम उसके हित के विरुद्ध करने लगे थे।

पर जान पडता है कि बहुत पहले ही फतहचन्द इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि योग्यता के अभाव के कारण, सरफराज खां मुर्शिदकुली खां का उत्तराधिकारी होने योग्य न था। वास्तव मे नाजिम के पद के सम्बन्ध में उत्तराधिकार या वरासत का कोई सवाल उठ ही नही सकता था। सम्राट् जिसको चाहता उस पद पर रख सकता या उससे हटा सकता था। जहा तक जगत्सेठ की पृष्ठपोषकता का सम्बन्ध था, यह सरफराज खा को उस समय भी प्राप्त न हो सकी थी, जब मुर्शिदकुली खा ने अपने दामाद के बजाय अपने नाती को सम्राट् से फरमान या सनद दिला देने की चेष्टा की थी। शुजाउद्दौला के मरने पर, सरफराज खां को दिल्ली से स्वीकृति मिली भी तो देर से, और फिर कुछ महीनों के भीतर ही दिल्ली ने अपना वह निर्णय बदल कर अलीवर्दी खा को नाजिम नियुक्त कर दिया। अगर फतहचन्द ने अलीवर्दी खां की इस

सिलसिले में सहायता की तो इसी कारण कि बंगाल, बिहार, उडीसा जैसे प्रान्तो की निजामत की जिम्मेवारी बहुत भारी थी और यह जिम्मेवारी उठाने की दृष्टि से, अलीवर्दी खा से योग्य व्यक्ति मिलना कठिन था।

पर इस सारी घटना के बरसो बाद, ईस्ट इडिया कपनी के एक अंगरेज कर्मचारी ने सरफराज खा और फतहचन्द के बीच अनबन हो जाने का वास्तविक कारण यह बताया कि नवाब ने जगत्सेठ की पौत्र-वधू की मुहदिखाई पर तुल कर उसे अपने महल मे बुलवाना चाहा और जब जगत्सेठ किसी तरह उसके प्रस्ताव से सहमत न हुए तब उसने मनमानी की और महल मे उस बालिका को एक रात रख कर दूसरे दिन अपने घर जाने दिया। पर यह सारी कहानी या तो चडूखाने की गप थी या उसकी अपनी मनगढत थी। चूकि उसका हवाला देकर और लेखक भी उसकी बात दोहरा चुके है, सत्यासत्य के निर्णय के लिए एक दूसरे अगरेज लेखक का मत परिशिष्ट के रूप में उद्धृत कर दिया गया है। उसमें ईस्ट इडिया कपनी और जगत्सेठ-परिवार के सम्बन्ध पर विशेष रूप से प्रकाश डालने वाले मि० लिट्ल ने यह भली भांति दिखा दिया है कि कपनी का वह कर्मचारी कितना सच्चा या विश्वसनीय था और उसकी इस कहानी मे क्या तथ्य था। एक किवदन्ती यह है कि सरफराज खा को बताया गया था कि फतहचन्द मुर्शिदकुली खां से कोई बड़ी रकम उधार ले चुके थे या उनके जिम्मे उसके कई करोड़ रुपये बाकी रह गये थे, पर जब उसने उनसे अदायगी के लिए तकाजा किया, तब फतहचन्द ने कहा कि न तो मैंने कभी ऐसा कर्ज लिया, न मेरे जिम्मे ऐसी कोई रकम बाकी है। पर यह बात भी निराधार ही जान पड़ती है। किसी प्रामाणिक इतिहास-

ग्रंथ मे इसका उल्लेख नही मिलता। अगर इसमे कुछ भी सचाई होती तो कम से कम "रियाजुस्सलातीन" का लेखक इसका उल्लेख किये बिना न रहता।

(४)

अलीवर्दी खा राज-सिहासन पर बैठ जाने के बाद भी कुछ समय तक प्रजा के हृदय-सिहासन पर न बैठ सका। प्रजा की दृष्टि मे सरफराज खां की हत्या कृतघ्नता की चरम सीमा थी, कारण कि सरफराज खा उसका स्वामी ही नही, उसकी बाह गहने और उसके परिवार-मात्र को ऊपर उठानेवाले शुजाउददौला खा का पुत्र भी था। पीठ पीछे होने वाली आलोचना मे तमाम अलीवर्दी खा और हाजी अहमद के नाम धरे जाते और उनके प्रति घृणा तथा निन्दा से भरे हुए भाव प्रकट किये जाते। पर अलीवर्दी खा ने अपने गुणो से ऐसी परिस्थिति पर भी विजय प्राप्त कर ली और अपने नाम पर लगे हुए धब्बे को मिटा-सा दिया। उसमे साहस था, श्रमशीलता थी और साथ ही ऊचे दर्जे की राजनीतिज्ञता थी। उसका ध्यान सदैव इस ओर रहता था कि तीनो प्रान्तो मे अमन-चैन कायम रखने के लिए कुछ भी उठा न रखा जाय। वह सच्चरित्र भी था। गिरिया के मैदान मे जो सफलता अधूरी रह गई थी उसे पूरा करने का विशेष अवसर उसे तब मिला, जब तीनो प्रान्तो पर मराठो के आक्रमण होने लगे और वह जी-जान से अपनी प्रजा की रक्षा करने लगा।

नाजिम हो जाने पर अलीवर्दी खां ने अपने बन्धु-बान्धवों को उदारतापूर्वक पुरस्कृत किया। हम देख चुके है कि उसके तीन भतीजे

थे जिनके विवाह उसकी लडकियों के साथ हुए थे। इनमें नवाजिश मुहम्मद खा को बगाल के दीवान का पद मिला। साथ ही वह ढाका, चटगांव, त्रिपुरा, सिलहट का नायब नाजिम भी नियुक्त हुआ। जैनुद्दीन अहमद खां विहार का नायव नाजिम बना दिया गया। इसके बेटे को अलीवर्दी खा ने गोद ले रखा था और वही पीछे सिराजुद्दौला के नाम से मशहूर हुआ। उडीसा अभी अलीवर्दी खां के कब्जे में न था, पर सईद अहमद खां को उसने वचन दिया कि उस पर अपना आधिपत्य होते ही तुम वहा के नायब नाजिम बना दिये जाओगे। हाजी अहमद का दामाद अताउल्ला खां भागलपुर का फौजदार नियुक्त हुआ। इसी प्रकार और सम्बन्धी तथा सहायक भी पुरस्कृत किये गये । प्रत्येक की पदोन्नति हुई, प्रत्येक का मनसब बढ़ा, प्रत्येक को नई खिलअत या खिताब मिला। हिन्दुओं मे चैनराय और राजा जानकीराम के नाम भी इसी सिलसिले मे लेने लायक है। चैनराय रायरायां आलमचन्द का पेशकार था। वह अब स्वयं रायरायां की उपाधि पाकर अलीवर्दी खा का दीवान हुआ। राजा जानकीराम पहले इसी पद पर रह चुका था। इसकी भी पदोन्नति हुई और यह सेना-विभाग मे दीवान बना दिया गया। अलीवर्दी खां के शासनकाल में दो खास बातें ये हुईं कि तीनों प्रान्तो में शीया-सम्प्रदाय के मुसलमानों का महत्त्व बढा और पटना—मुर्शिदावाद जैसे नगर शीया-सस्कृति के प्रधान केन्द्र बन गये। उधर सरकारी विभागो मे हिंदू अधिकारियो की भी सख्या-वृद्धि हो चली।

अलीवर्दी खां ने मुर्शिदाबाद पर चढाई करने से पहले बादशाह को जो एक करोड़ रुपये देने का वादा किया था, उसे तो उसने मसनद

पर बैठते ही भेज दिया, पर सरफराज खां की सम्पत्ति और राजस्व की मद मे बाकी निकलने वाली रकम को भेजने मे कुछ देर हुई। इसकी वसूली के लिए दिल्ली से मुरीद खां नामक दरबारी बगाल भेजा गया। ज्योही अलीवर्दी खां को इसकी सूचना मिली, उसने मुरीद खा को लिखा कि मै स्वयं आपसे मिलने राजमहल आ रहा हू, आप तब तक पटने मे विश्राम करें तो अच्छा होगा। फिर दोनों की सकरीगली मे मुलाकात हुई। अलीवर्दी खां ने हिसाब तो चुका ही दिया, मुरीद खां का भी मुह मीठा कर उसे वहा से सम्मानपूर्वक विदा किया। सरफराज खां की जो निजी जायदाद जब्त की जा चुकी थी और जो अब मुरीद खा के हवाले की गई, उसमे "लाखों रुपये नकद" के अलावा "सत्तर लाख के जवाहरात", सोना-चादी के सरोसामान, कीमती कपड़े और कितने ही हाथी-घोड़े भी शामिल थे। *

दिल्ली की ओर से निश्चिन्त होते ही अलीवर्दी खां ने कटक की ओर से भी निश्चितता प्राप्त करने का उद्योग आरम्भ कर दिया।

उडीसा मे पहले से ही, शुजाउद्दौला खा का दामाद मुर्शिदकुली खां नायब नाजिम था। उसके और अलीवर्दी खा के बीच सन्धि की

---

* "रियाजुस्सलातीन" मे जो कुछ लिखा है वह इससे कुछ भिन्न है अगर उसकी बात मानी जाय तो सरफराज खा की सम्पत्ति की मद मे अलीवर्दी खा ने कुल चालीस लाख रुपये ही भेजे। हा, सम्राट् के प्रधान मन्त्री कमरुद्दीन खा को उससे तीन लाख और आसफ जाह निजामुल्मुल्क को एक लाख अवश्य मिले। "रियाज" में यह भी लिखा है कि अलीवर्दी खा ने सरफराज खा के प्रतिनिधि राजा युगलकिशोर से साठ-गाठ करके तीनो प्रान्तो की सनद हासिल कर ली।

बातचीत होने लगी और दोनों यहां तक सहमत हो गये कि लोगो को जान पड़ा कि सन्धि होकर ही रहेगी। वास्तव में होने वाला कुछ और ही था। "मुताखरीन" का कहना है कि मुर्शिदकुली खां की स्त्री और उसके अपने दामाद मिर्जा बाकिर खा ने उसे इतना उभाड़ा कि अनिच्छुक होते हुए भी उसने सन्धि के नियमो के पालन का विचार त्याग दिया और लड़ने-भिड़ने की बात सोचने लगा। अलीवर्दी खां को इसका पता चला तो उसने मुर्शिदकुली खां को लिखा कि, "मैं तुमको किसी तरह का नुकसान पहुचाना नही चाहता, फिर भी यह निश्चित-सा है कि अगर तुम कटक मे रहे, तो हम दोनो मे से किसी को भी शान्ति न मिल सकेगी। इसलिए मै आशा करता हूं कि तुम अपने परिवार के लोगों और अपने माल-असबाब को साथ लेकर फौरन या तो दक्खिन-प्रदेश चले जाओगे, या—तुम्हारी इच्छा हो तो—मुर्शिदाबाद होकर 'हिन्दुस्तान'।" पत्र पाकर मुर्शिदकुली खां कुछ भयभीत अवश्य हुआ, पर अपनी स्त्री और अपने दामाद को लड़ाई के लिए अधीर देखकर उसने फिर सन्धि या सुलह का नाम नही लिया, बल्कि अलीवर्दी खां को यह लिखकर आग मे घी डाल दिया कि, "मेरे प्रतिनिधि* ने मेरी ओर से जो कुछ तै किया, वह मेरी इच्छा के विरुद्ध है—मै उसे स्वीकार नही कर सकता। अब हम दोनों के झगडे का निबटारा तलवार-द्वारा

---

* "मुताखरीन" के अनुसार यह सूरत का निवासी था और इसका नाम आगा मुहम्मद तकी था। "रियाजुस्सलातीन" के अनुसार सुलह की बातचीत मुर्शिदकुली खा की ओर से मुखालिस अली खा ने शुरू की। यह हाजी अहमद का दामाद था, पर मुर्शिदकुली खा के साथ रहता आया था। अलीवर्दी खा और हाजी अहमद ने इसके द्वारा मुर्शिदकुली खा को ऐसा आश्वासन दिलाया कि वह निश्चिन्त होकर सो गया। उधर मुखालिस खा मुर्शिदकुली खा के सरदारो को फोड़-फोड़ कर अलीवर्दी खा के मतलब का काम करने लगा।

ही होगा।" इस चुनौती के जवाब मे अलीवर्दी खां ने मुर्शिदाबाद नगर की रक्षा का भार अपने भाई हाजी अहमद और अपने भतीजे को सौंपा और आप रकाब मे पैर रख, दस-बारह हजार चुने हुए सवारो के साथ शुभ मुहूर्त मे उड़ीसा-प्रान्त की ओर रवाना हुआ।

यह बात सन् १७४० के अन्तिम दिनों की है। अलीवर्दी खा को उडीसा मे एक साल से भी अधिक समय बिताना पडा। मुर्शिदकुली खा से उसका मुकाबला बालेश्वर से थोडी ही दूर पर हुआ। इस लड़ाई मे अलीवर्दी खां की जीत कुछ ऐसे कारणो से हुई, जो उसके शत्रु के दुर्भाग्य और उसके अपने सौभाग्य के सूचक थे। अगर मिर्जा बाकिर ने अपने ससुर की इच्छा के विरुद्ध, आवेश मे आकर अपना स्थान न छोड़ दिया होता—अगर उसकी फौज का अफगान-सरदार आबिद खा दुश्मन से मिलकर विश्वासघात न कर बैठता—तो जीत सभवत. मुर्शिदकुली खा की होती, अलीवर्दी खा की नही। वास्तव मे हुआ यह कि मिर्जा बाकिर के बुरी तरह घायल हो जाने के कारण फौज मे भगदड मच गई और जब मुर्शिदकुली खा ने बचने का और कोई उपाय न देखा, तब उसको साथ लेकर झटपट एक जहाज मे जा बैठा और खुद भी भाग कर मछलीबन्दर जा पहुचा। रतिपुर और जगन्नाथपुरी का राजा *

* "रियाजुस्सलातीन" के अँगरेजी अनुवादक गुलाम हुसैन सलीम ने अपनी पाद-टीका मे इसका नाम हाफिज कादिर बताया है और कहा है कि यह रतिपुर (खुर्दा) का राजा और पुरी के मन्दिर का प्रबन्धकर्ता था। मालूम नही, यह बात किस आधार पर लिखी गई है। इस पुस्तक में पुरुषोत्तम या पुरी के राजा का उल्लेख है। "मुताखरीन" में लिखा है कि यह "रतिपुर का राजा था और जगन्नाथ का भी।" आगे चलकर "मुताखरीन" ने इसे स्पष्टत. "हिन्दू" राजा बताया है।

उसके मित्रो मे था और यह गाढ़े का ऐसा साथी निकला कि इसकी सहायता से उसके वाल-वच्चे, नौकर-चाकर सभी, माल-असवाव के साथ, अलीवर्दी खां के कटक पहुंचने से पहले ही वहां से चल पड़े और सकुशल दक्खिन पहुच गये। यहां निजामुल्मुल्क के राज्य में मुर्शिदकुली खा को पहले ही शरण मिल चुकी थी। उधर विजेता अलीवर्दी खां ने कटक पहुंचकर प्रान्त के वड़े-वड़े जमीदारों को वुलवाया और राजभक्ति का आश्वासन मिल जाने पर उन्हे सम्मान-प्रदान कर विदा किया। अपने दूसरे दामाद सईद अहमद खां को उडीसा का नायव नाजिम वनाने के लिए वह वचनवद्ध था, इसलिए उसे कटक वुलवाकर उसने अपनी वह प्रतिज्ञा भी पूरी कर दी।

सुशासन की दृष्टि से अलीवर्दी खां को जो कुछ आवश्यक जंचा उसे पूरा कर, वह मुर्शिदावाद लौट गया। पर कटक मे अहमद खां की अयोग्यता के कारण परिस्थिति सुधरने के वजाय दिन-दिन विगड़ने लगी, लोगों मे उसके प्रति असन्तोप का भाव बढ़ने लगा, भीतर ही भीतर एक दूसरी क्रान्ति के लिए रंग-मंच तैयार होने लगा। इस सव के लिए प्रधानत. दोषी शाह अहिया नामक एक 'फकीर' था जिसकी अहमद खां से पुरानी जान-पहचान थी, जो घूमता-फिरता कटक जा पहुंचा था और जिसकी अव दरवार मे तूती वोलने लगी थी। वास्तव में यह कोई योगी-यती नही, वल्कि दुश्चरित्र ढोंगी था। इसकी कुसंगति का फल यह हुआ कि नायव नाजिम दुराचारी वन गया और लंपटता की राह पर तेज कदमों से आगे वढ़ने लगा। इससे जनता में वडा ही असन्तोप फैला और मिर्जा वाकिर के पक्षपातियों को अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए अनायास ही उपयुक्त वातावरण मिल गया।

अचानक मिर्जा वाकिर ने कटक पहुंचकर ऐसा झपट्टा मारा कि

सईद अहमद खां से तख्त और ताज तो छिन ही गये, उसे अपनी निजी सम्पत्ति से भी हाथ धोना पडा और सपरिवार बदीगृह मे बन्द होना पडा। कटक के नागरिक विद्रोही हो गये थे और उनके इस विद्रोह के फलस्वरूप ही क्रान्तिकारियो को ऐसी आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी।

अलीवर्दी खां को कुछ बातो की खबर पहले ही मिल चुकी थी और वह कटक जाने की तैयारी भी कर चुका था। अब मालूम हुआ कि विद्रोहियो की सहायता से मिर्जा बाकिर पूर्णत सफल हो चुका था और अहमद खा को कैदखाने मे जान के लाले पड रहे थे। हाजी अहमद और उसकी स्त्री ने तो सलाह दी कि अगर मिर्जा बाकिर उनके बेटे को सपरिवार छोड़ दे, तो उससे लडा न जाय और उडीसा उसी को दे दिया जाय। पर अलीवर्दी खा को यह सलाह ठीक नही जची। हा, जितनी तैयारी वह कर चुका था, वह काफी नही थी—उसे लगा कि अगर निजामुल्मुल्क मिर्जा बाकिर की पीठ पर न होता तो यह इतने बल और वेग से आक्रमण न कर सकता। इसलिए उसने लाव-लशकर बढा कर ही कटक जाना और दुश्मन की ताकत की आजमाइश करना युक्तिसगत समझा। अब उसने घुड़सवारो की सख्या बढाकर बीस हजार कर दी और सेना को सुसज्जित करने मे कोई भी कसर न छोड़ी। जब तैयारी पूरी हो चुकी, तब उसने कटक की ओर प्रस्थान किया।

वहां दोनों दलों का मुकाबला नगर से थोड़ी ही दूर, महानदी के किनारे हुआ। इसमे फिर मिर्जा बाकिर की हार हुई और फिर उसे मैदान छोड कर दक्खिन भागना पड़ा। अपने कैदी अहमद खां को वह साथ लेता गया था। रथ पर इसके साथ दो तूरानी सरदार तैनात थे। इन्हे आदेश मिल चुका था कि दुश्मन के

पास पहुंचते ही अहमद खा के पेट मे खंजर घुसेड़कर उसे मार डालना। रथ के चारो ओर पाच सौ मराठे सर्दारों का पहरा था और इन्हे भी आज्ञा मिल चुकी थी कि अगर अनहोनी हो जाय और दूसरे दलवाले रथ के पास पहुंच जाय तो तुममे से प्रत्येक आदमी पहले अपना वरछा रथ के आर-पार कर दे, फिर अपनी जान बचाने का प्रयत्न करे। पर जब अनहोनी सचमुच होके रही तब न तो तूरानियो के खंजर, न मराठों के भाले ही अहमद खां का वाल वाका कर सके। मराठो को जो आज्ञा मिल चुकी थी, उसका उन्होने पालन अवश्य किया, पर इसका नतीजा यही हुआ कि एक तूरानी सरदार मारा गया और दूसरा घायल होकर उसकी लाश के नीचे दबक गया। अहमद खा ने भी झुक या लेट कर अपनी जान बचाई*। इतने मे ही उस रथ की तलाश मे दौड़धूप करने वाले मुस्तफा खां, मीर जाफर खां†, मुहम्मद अमीन खा, दिलेरखां आदि सरदार आ पहुचे और उनके पहुंचते ही अहमद खां को कैद से छुटकारा मिला, उसकी जिन्दगी की मीयाद बढ गई। अलीवर्दी खां के दल मे हर्ष का पारावार न रहा। जब अहमद खा अपने चचा के पास पहुचा, तब अलीवर्दी खा ने उठकर उसे छाती से लगा लिया और कुछ देर तक आनन्द-विभोर बना रहा। फिर उसने अहमद खां को नहवाया और

* "रियाजुस्सलातीन" में यह कथा कुछ और प्रकार से मिलती है। उसमे लिखा है कि अहमद खा के साथ रथ में एक ही शख्स खंजर लेकर बैठा था और वह था मुर्शिदकुली खा का भाई हाजी मुहम्मद अमीन। फिर उसमें पाच सौ की जगह कुल दो ही घुड़सवारो का जिक्र है, जिनके वरछो ने अहमद खा की जगह हाजी मुहम्मद अमीन का खातमा कर दिया।

† मीर जाफर अलीवर्दी खा का मीरबख्शी था। इसका पूरा नाम था मीर मुहम्मद जाफर खां वहादुर। यह अलीवर्दी खा के सौतेले भाई मीर मुहम्मद अमीन का बहनोई था।

उसे नई खिलअत देकर तथा कलगी, सरपेच, मोतीमाल आदि से विभूषित कर मसनद पर बैठाया। इसकी स्त्री और लड़के-वाले बारहबाटी के किले में कैद थे। वहां से सब के सब मुक्त कराये गये और यही बुलवा लिये गये। इसके बाद अलीवर्दी खा के आदेश से वे मुर्शिदाबाद के लिए रवाना हुए। अहमद खां को देखने के लिए उसके मां-बाप अधीर हो रहे थे, इसलिए उसका जल्द से जल्द मुर्शिदाबाद पहुंच जाना आवश्यक था। आप अलीवर्दी खा कुछ समय के लिए कटक में ही ठहर गया और सुशासन की दृष्टि से जो उत्तम प्रबन्ध हो सकता था वह हो जाने के बाद ही उसने मुर्शिदाबाद की राह ली।

उसकी अनुपस्थिति में वहा हाजी अहमद और जगत्सेठ फतहचन्द उसके प्रतिनिधि-स्वरूप काम करते जा रहे थे। रायराया आलमचन्द की मृत्यु के बाद मंत्रिमंडल के सदस्य यही दोनो रह गये थे और इनके उत्तरदायित्व के ही भरोसे अलीवर्दी खा अपनी राजधानी से इतनी दूर के दौरे पर जा सकता था या प्रवास मे महीनो बिता सकता था।

फतहचन्द की कोठी और कंपनी के बीच आर्थिक सम्बन्ध पूर्ववत् ही बना रहा और इस सम्बन्ध से कम्पनी पूर्ववत् ही लाभ उठाती रही। ७ जुलाई सन् १७४० को उसे १२१,०००) कर्ज लेना पड़ा और इस कर्ज का भुगतान उसने जगत्सेठ की कोठी को चांदी बेच कर किया। दिसम्बर १७४० मे कासिमबाजार के कर्मचारियो ने कौंसिल को लिखा कि हमे फतहचन्द को १२) सैकड़ा सालाना व्याज देना पड़ता है, हमे आशा है कि आपके लिखने पर वह यह दर घटा कर ९) कर देंगे। इस पर प्रेसिडेंट ने उन्हें लिखा कि, "बरसों से कंपनी १२) सैकड़ा व्याज देती आ रही है, पर इतना भारी बोझ उठाने में अब वह असमर्थ है। हमारी प्रार्थना है कि कासिमबाजार की फैक्टरी को जितने

रुपये की जरूरत हो, आप ९) सैकड़ा सालाना ब्याज पर दिया करें।" यह प्रार्थना स्वीकृत हो गई। २१ दिसम्बर को ही वहां वालों को ६०,०००) कर्ज लेना पड़ा। यह रुपया उन्हे ९) सैकड़ा ब्याज पर ही मिला।

नमक की खरीद-बिक्री करने का कंपनी या उसके अंगरेज कर्मचारियों को कोई अधिकार नहीं था। वास्तव मे इस अधिकार से दूसरे व्यापारी भी वञ्चित थे। नमक की खरीद-बिक्री से जो कुछ लाभ होता, उसका हकदार स्वयं नवाब नाजिम था। फिर भी अंगरेजों की धृष्टता ऐसी थी, कि वे उस क्षेत्र मे समय-समय पर घुस ही जाते और जो कुछ हाथ लगता, लेकर बाहर निकल आते। हाजी अहमद कान में तेल डालकर बैठने वाला न था। उसने कंपनी के वकील को बुलवाया और कहा कि,"व्यापार-सम्बन्धी जो अधिकार अंगरेजो को प्राप्त हैं, वे सम्राट् की अपनी प्रजा को भी प्राप्त नही। उनके लिए यह अत्यन्त लज्जाजनक बात है कि वे फिर भी मर्य्यादा के भीतर नही रह सकते और जो छोटी-मोटी चीजे खास कर यहां के लोगों के लिए छोड़ दी गई थी, उन्हे भी हथियाने लगे हैं। फिर नमक के इजारेदार तो खुद नवाव हैं—उनके साथ इस तरह पेश आने के मानी क्या?" वकील से यही जवाव बन पड़ा कि, "कंपनी इस विषय मे कुछ भी नही जानती। अगर उसके कुछ कर्मचारियों ने नमक की खरीद-बिक्री की है, तो विना उसकी जानकारी और इजाजत के।" पर हाजी अहमद जानता था कि असलियत क्या है। इसलिए उसने गरम होकर ऐसी झिड़की सुनाई कि वकील को चुप्पी साध लेनी पड़ी। उसने सारा वृत्तान्त कलकत्ते लिख भेजा। वहां यह तै हुआ कि जगत्सेठ को लिखा जाय कि आप हाजी अहमद को समझा-बुझा कर यह मामला निबटा दें। जगत्सेठ

ने उनके अनुरोध की रक्षा कर हाजी अहमद से क्षमा-प्रदान करा दिया। कंपनी को कुल १३,१९३) नकद देना पड़ा—और यह प्रतिज्ञा करनी पडी कि भविष्य मे अगरेज नमक की खरीद-बिक्री से कोई सरोकार न रखेगे। फतहचन्द की सिफारिश से इस मामले का निबटारा हो जाने की सूचना कौसिल को देते हुए, कासिमबाजार के कार्यकर्ता फरवरी १७४१ मे लिखते है—"हमे अपना भाग्य सराहना चाहिए कि इतना ही देकर हम इस सकट से मुक्त हो गये। यह निश्चित है कि अगर फतहचन्द की कृपा न होती और नवाब यहा से इतनी दूर न होता तो हम इतने सस्ते न छूटते।"

मार्च १७४१ मे कंपनी ने जगत्सेठ से १५०,०००) कर्ज लिया। नवम्बर मे उसने ५०,०००) चुका दिया। मार्च १७४२ मे सूद का हिसाब हुआ तो, उस मद मे कंपनी के जिम्मे १२,०००) निकला। इसका तो उसने कलकत्ते मे भुगतान कर दिया, पर असल बाकी ही रहा। कुछ और रुपये की जरूरत पडी। इसलिए कपनी की ओर से तीन हुंड नोट और लिखे गये—एक ११०,०००) का, दूसरा १००,०००) का और तीसरा ९०,०००) का। साथ ही पुराना हुंड नोट बदल दिया गया। किसी हुंड नोट मे महाजन का नाम 'जगत्सेठ फतहचन्द आनन्द-चन्द' लिखा था तो किसी मे 'सेठ महताबराय।' कही-कही यह नाम 'जगत्सेठ फतहचन्द' ही मिलता है। वास्तव मे तीनों ही नाम प्रचलित थे—कम से कम कंपनी के कागजात मे तीनो ही मिलते है। सेठ महताबराय फतहचन्द के पौत्र थे—अर्थात् सेठ आनन्दचन्द के पुत्र। कोठी का मशहूर नाम 'जगत्सेठ फतहचन्द सेठ आनन्दचंद' ही था और उन दोनो व्यक्तियों के मर जाने पर भी कई साल तक

इस नाम का व्यवहार होता रहा। यों तो सेठ आनन्दचन्द अपने पिता के जीवन-काल में ही परलोक सिधार चुके थे।

कंपनी को किस हैंडनोट की बाबत कितना चुकाना पड़ा, यह नीचे के विवरण से जान पड़ेगा:—

(१)

महाजन जगत्सेठ फतहचन्द को चुकाया गया	ता० २१ मार्च, १७४१-४२
असल	१००,०००)
सूद ८ नवम्बर तक (७ महीने, १८ दिन का ९) सैकड़ा के हिसाब से)	५,७००)
	१०५,७००)
बट्टा १५॥) सैकड़ा	१६,३८३॥)
	१२२,०८३॥)

(२)

महाजन जगत्सेठ फतहचन्द को चुकाया गया	ता० २६ मार्च, १७४१-४२
असल	९०,०००)
सूद (उसी हिसाब से, उसी तारीख तक—अर्थात् ७ महीने १३ दिन का)	५,०१७॥)
	९५,०१७॥)
बट्टा १५॥) सैकड़ा	१४,७२७॥=)६
	१०९,७४५=)६

(३)

महाजन जगत्सेठ फतहचन्द आनन्दचन्द को चुकाया गया	तारीख वही
असल	११०,०००)
सूद (उसी हिसाब से, उसी तारीख तक—अर्थात् ७ महीने १३ दिन का)	६,१३२॥)
	११६,१३२॥)
वट्टा १५॥) सैकड़ा	१८,०००॥)९
	१३४,१३३)९

(४)

महाजन सेठ महतावराय को चुकाया गया	तारीख वही
असल	१००,०००)
सूद (उसी हिसाब से, उसी तारीख तक—अर्थात् ७ महीने १३ दिन का)	५,५७५)
	१०५,५७५)
वट्टा १५) सैकड़ा	१६,३६४=)
	१२१,९३९=)
कुल भुगतान	४८७,९००॥।-)३

मुर्शिदावाद और कलकत्ते के बीच वाणिज्य-व्यापार का स्रोत अपनी साधारण गति से वह रहा था, मिर्जा बाकिर की सहायता

करने के लिए मयूरभंज के राजा का प्राणान्त* कराके, अलीवर्दी खां उधर के जंगलों मे शिकार खेलता और प्राकृतिक सौंदर्य को आंख भर देखता हुआ बंगाल की ओर लौटा जा रहा था। बिहार में जैनुद्दीन खां भोजपुर के इलाके को सर कर चुका था—भोजपुर के बाद मगह की बारी आ चुकी थी—और "मुताखरीन" के लेखक का पिता सैयद हिदायत अली खां, टेकारी (गया) के राजा सुन्दरसिंह और पलामू के राजा जयकिशनराय की मदद से रामगढ (हजारीबाग) के किले पर सरकारी झंडा फहराकर और आस-पास के पहाड़ी इलाके मे भी अपने मालिक का सिक्का जमाकर उसी ओर कही सुस्ता रहा था—कि अचानक एक टिड्डी-दल के पश्चिम दिशा से टूट पड़ने की खबर मिली और बंगाल-बिहार-उड़ीसा के इतिहास में एक ऐसे अध्याय का आरंभ हुआ, जिसकी भीषणता लोगों को बहुत बरसों तक भूलने वाली न थी।

यह मराठों-द्वारा होने वाली बंगाल पर पहली चढ़ाई थी। अलीवर्दी खां के समय मे ऐसी और भी चढाइयां हुई। इनसे तीनों प्रान्तों की विशेष क्षति इस कारण हुई कि मराठे उधर जमकर बैठने और शासन करने के उद्देश से नही,बल्कि लूट-पाट करने अथवा चौथ वसूल करने के उद्देश से ही जाते रहे और हाथ लगने वाले धन को नागपुर या अन्यत्र पहुंचाते रहे। उनकी इन चढाइयों के फलस्वरूप जगत्सेठ को भी लुटना पड़ा, अंगरेजों को कलकत्ते की रक्षा के लिए एक काफी लम्बी और गहरी खाई खुदवानी पडी और अलीवर्दी खां को अन्त मे विवश होकर उड़ीसा-प्रान्त मराठों के हवाले कर देना पडा।

मराठों-द्वारा होने वाले आक्रमण के स्रोत का उद्गम स्थान नागपुर

---

* "रियाजुस्सलातीन" में लिखा है कि अलीवर्दी खां ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया, पर वह पकड़ा न जा सका।

था, जहां रघुजी भोंसले ने वरार की ओर से वढते-वढते अपना अधिकार जमा लिया था। यह विम्वाजी भोसले नामक सरदार का पुत्र था और किसी समय सातारा मे शिवाजी के पौत्र शाहू का कृपा-पात्र वन चुका था। शाहू के आदेश से इसने अपने चचा कान्होजी को पराजित कर कैदखाने में डलवा दिया और १७३० के लगभग सेना साहेव का पद तथा वरार का अधिकार पाकर यह गिनती मे आ गया। रघुजी महत्वाकाक्षी था। पूरव की ओर पांव पसारने की गुजाइश देखकर इसने उधर वही काम करना शुरू किया, जो शिन्दे, होल्कर, पवार, गायकवाड़ आदि दूसरी दिशाओं मे कर रहे थे।

वंगाल पर मराठों की पहली चढाई रघुजी के प्रधान-मंत्री भास्कर पन्त कोल्हटकर के नायकत्व मे हुई। इतिहास मे यह भास्कर पडित के नाम से प्रख्यात है। इसके साथ मीर हवीव * भी था, जो पहले ढाके मे और फिर कटक मे मुर्शिदकुली खां का नायव रह चुका था और जो उसके हारकर भाग जाने पर रघुजी भोंसले से यह चढाई कराने के उद्देश से नागपुर जा पहुंचा था। रघुजी ने इसके अलावा एक और मुसलमान सरदार को उच्च पद देकर भास्कर पडित के साथ भेजा था। इसका नाम अली करावल था।

भास्कर की सेना मे पच्चीस से चालीस हजार घुडसवार थे और उसने छोटा नागपुर-प्रदेश होकर वगाल पर आक्रमण किया था।

---

* इसका पूरा नाम था मीर हवीव अर्दिस्तानी। जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है। "मुताखरीन" का वयान है कि मराठो से गुप्त सम्वन्ध रखते हुए भी यह अलीवर्दी खा के वर्दवान पहुचने तक उसके साथ वना रहा, फिर लडाई में घायल होने पर भास्कर पंडित के दल में जा मिला। "मुताखरीन" में इस सभावना का भी उल्लेख है कि रघुजी को उकसाने वाला निजामुल्मुल्क था।

मुबारक मंजिल (मेदिनीपुर) के पास अलीवर्दी खां को पक्की खबर मिली कि मराठे वर्दवान के बिलकुल पास पहुंच चुके थे। उस समय बहुत थोड़े-से सैनिक उसके साथ रह गये थे, बाकी या तो खेत आ चुके थे या बर्खास्त हो चुके थे या मुर्शिदाबाद पहुंच चुके थे। फिर भी अलीवर्दी खां ने वर्दवान पहुंचकर मराठों का मुकाबला किया। वहां उसे कामयाबी हासिल न हो सकी—बल्कि उसे हार खाकर किसी तरह जान बचाते हुए मुर्शिदाबाद की ओर सरकना पड़ा। कटवा पहुंचने पर दम मारने की फुरसत मिली भी तो मालूम हुआ कि मराठे वहां पहले ही पहुंच चुके थे और लूट-पाट मचाकर तथा खेतों, खलियानों और बखारो में आग लगाकर फिर हवा हो चुके थे।

बरसात करीब थी और अलीवर्दी खां पीछे हटते-हटते अपनी राजधानी के पास पहुंच चुका था। भास्कर पंडित का विचार वीरभूम के रास्ते नागपुर लौट चलने का हुआ, पर मीर हबीब ने इसका विरोध किया। "मुताखरीन" के लेखक का कहना है कि

"मीर हबीब अपनी जान पर खेलकर मराठों का इतना उपकार कर चुका था कि उसके विरोध की उपेक्षा नही की जा सकती थी। ईरान से चलकर एक मामूली फेरीवाले के रूप मे यहां आनेवाले इस शख्स की तारीफ करनी होगी कि जिसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर था, उसने अपनी गुण-गरिमा से अपने लिए विशिष्ट पद प्राप्त कर लिया। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी वह घबराने या डांवाडोल होने वाला न था। अगर एक युक्ति विफल हो जाती तो पांच और युक्तियों को पेश करते उसे देर न लगती। सेनापतित्व के सम्पादन मे भी वह बराबर धीर-वीर बना रहता। जब उसने भास्कर पंडित का प्रस्ताव सुना, तब बंगाल से इतना थोड़ा लेकर ही चल देना उसे स्वीकार नही

हुआ। उसने अपने प्रधान से कहा कि अगर आप रुपया चाहते है तो मुझे एक हजार घुडसवार दीजिए, मै अलीवर्दी खां के मुर्शिदाबाद पहुँचने से पहले ही वहा पहुच जाऊंगा और जहां शहरपनाह तक नही, उस शहर के एक जगत्सेठ के ही घर से इतना धन ला दूगा कि आप सन्तुष्ट हो जायगे। मीर हबीब की सलाह और उसकी दलीलों का भास्कर पडित पर ऐसा असर पडा कि उसके साथ कोई एक हजार अच्छे से अच्छे सवार कर दिये गये और वह घोडे को एड लगा कर फौरन मुर्शिदाबाद रवाना हुआ। अलीवर्दी खा को इसकी भनक मिल गई। वह राजधानी की परिस्थिति को अच्छी तरह जानता था और उसे यह विश्वास न हो सकता था कि उसका भाई या भतीजा नगर-निवासियो की रक्षा कर सकेगा। इसलिए वह स्वयं झटपट चल पड़ा। पर जहां अलीवर्दी खा को मुर्शिदाबाद पहुचने मे दो दिन लगे, वहा मीर हबीब एक ही दिन में वहां पहुंच गया। अलीवर्दी खां के पहुंचने से पहले ही वह जगत्सेठ का घर लूट चुका था और वहां से दो करोड रुपये तथा कुछ अन्य सम्पत्ति लेकर अदृश्य हो चुका था। उसने नगर के कुछ अन्य भागों को भी लूटा। एक काम यह किया कि अपने भाई मीर शरीफ के घर पहुंच कर उस को अपने साथ ले लिया।"

मुर्शिदाबाद के लोगों को मार्च (१७४२) मे खबर मिली थी कि मराठे बगाल मे प्रवेश कर चुके है और लूट-पाट करते तथा गांवो और शहरो को जलाते हुए वीरभूम की ओर बढते आ रहे है। मराठों का ऐसा आतक था कि इस समाचार के पहुचते ही लोग शहर छोडकर जहां-तहा भागने लगे। जो लोग भागने में असमर्थ थे, वे भी अपने-अपने माल-असबाब को मुर्शिदाबाद से बाहर भेजने लगे। अप्रैल बीतते-बीतते शहर बहुत-कुछ खाली हो चुका था और वहा प्राय: सरकारी कर्मचारी-

मात्र रह गये थे। कासिमबाजार का भी यही हाल था—वहां एक भी व्यापारी नही रह गया था। जगत्सेठ ने पहला काम यह किया कि अपने परिवार को और कही भेज दिया, फिर जितना धन मुर्शिदाबाद से हटाया जा सकता था, उसे हटवाना शुरू किया। इससे लोगों की घबराहट और भी बढ गई। फतहचन्द ने अपना कुछ धन कलकत्ते भेज दिया, इसका कंपनी के कागजात में उल्लेख मिलता है। और व्यापारियों ने भी यही किया। एक ही दिन २०७ नावे कलकत्ते पहुंची। इनमे एक नाव पर जगत्सेठ के ही पन्द्रह तोड़े रुपये थे।

मई में हाजी अहमद को अपने भाई का एक खत मिला था, जिसमें अलीवर्दी खां ने बर्दवान से लिखा था कि मराठे मुझसे एक करोड़ रुपया मांग रहे है, पर मै उन्हे कानी कौडी देने को भी तैयार नही। हाजी अहमद ने फौरन फतहचन्द को बुलवाया और उन्हें अपने खास कमरे में ले जाकर वह खत पढ सुनाया। उसने यह भी बताया कि मराठों के व्यूह को भेदकर अलीवर्दी खां मुर्शिदाबाद की ओर निकल आया है और इस समय उसका पड़ाव कटवा मे है, जहां कठिनाइयों के होते हुए भी वह कही अधिक सुरक्षित है। मई में ही मीर हबीब ने जगत्सेठ के घर पर छापा मारा और जो धन वहां से हटाया न जा सका था, उसे लूट ले गया।

"मुताखरीन" का अंगरेजी अनुवाद करनेवाला* इस प्रसंग में लिखता है कि—

"जिसका घर मीर हबीब-द्वारा लूटा गया, उसका नाम जगत्सेठ

---

* अनुवादक एक फरासीसी था जिसने इस्लाम को ग्रहण कर अपना नाम 'हाजी मुस्तफा' रख लिया था।

आलमचन्द * था। यह व्यक्ति संसार मे सब से धनी था। आज भी (१७८६) उस घराने मे कम से कम दो हजार आदमी गुजर-बसर करते हैं। वहीं से लुटेरे पूरे दो करोड ले गये। ये सारे रुपये एक ही टकसाल के अर्थात् आरकाट के ढले हुए थे, यह बात और भी विशेषता-पूर्ण थी। यूरोप के किसी भी बादशाह को ऐसा धक्का लगता तो वह बेहोश हुए बिना न रहता, पर जगत्सेठ पर इसका असर नही के बराबर पड़ा और यह परिवार पहले की ही तरह दर्शनी हुंडी के जरिये, सरकार को एक-एक करोड तक का भुगतान करता-कराता रहा। यह बात बंगाल में इतनी विख्यात है कि इसे प्रमाणित करना अनावश्यक है।"

लूट के माल के साथ मीर हबीब भास्कर पंडित के पडाव पर पहुंचा, जो उस समय बीरभूम जिले मे कहीं था। उसने अपनी सफलता की ओर उसका ध्यान आकर्षित करते हुए इस बात पर बहुत जोर दिया कि बंगाल में अभी और बहुत-कुछ हाथ लग सकता है, पर उसके लिए यहां कुछ और समय बिताने की जरूरत है। उसने यह भी कहा कि जल्दबाजी करना और इतना थोड़ा-सा धन लेकर ही चल देना बडी मूर्खता होगी और इसके लिए रघुजी भोंसले हम लोगों को फटकारे बिना न रहेंगे। भास्कर को उसकी बात ठीक लगी और वह नागपुर लौटने के बजाय कटवा में ही आसन मारकर बैठ गया। मीर हबीब उसके प्रधान मंत्री की हैसियत से अपना समय कटवा और हुगली के बीच बिताने लगा और तरह-तरह की युक्तियों का अवलम्बन कर छोटे-बड़े जमींदारों और व्यापारियों से जितना रुपया ऐठ सकता था, ऐंठने लगा।

संभवतः अलीवर्दी खा के मुर्शिदाबाद पहुंच जाने के बाद भी

* यह गलती है। फतहचन्द होना चाहिए था।

फतहचन्द का घर एक वार और लूटा गया। लूट मे हाजी अहमद के या उसके अपने ही कुछ सिपाही शामिल थे। संभवतः इन लोगों को जो दंड मिलना चाहिए था, न मिला। फतहचन्द को वात वहुत वुरी लगी और मुर्शिदावाद छोड़कर वह स्वयं ढाके चले गये। अलीवर्दी खां की ओर से उन्हें लौटा ले आने के लिए कुछ आदमी भेजे गये, पर उन्होंने यही उत्तर दिया कि जिस नगर में कोई सरकार ही नहीं, वहां हम सुरक्षित कैसे रह सकते है?

कासिमवाजार में जो अंगरेज कर्मचारी रह गये थे, वे अपने ७ जून के पत्र में लिखते है:—

"हमें खेद के साथ लिखना पड़ता है कि जो व्यापारी रेशमी माल वेचने वाले थे, उनमें से एक भी अभी तक नही लौटा है। जुलाहे भी वाहर ही हैं। वेचारे करे तो क्या? जिन-जिन स्थानों मे माल तैयार होता था, वे उजड़-से गये है। जुलाहों के घर-वार जलकर राख हो गये है और यही हालत उनके करघों की हुई है। हमने नवाव और हाजी अहमद के पास एक अर्जदाश्त भेजकर प्रार्थना की है, कि जो व्यापारी खरीद-विक्री का कौल-करार या लिखा-पढ़ी कर चुके हैं, उन्हे यहां वुलवा दिया जाय, वर्ना हमारा व्यापार मिट्टी मे मिल जायगा। पर सफलता की आशा वहुत कम है। जव तक जगत्सेठ नही लौटते, तव तक और कोई व्यापारी लौटने वाला नही। सव उन्ही का अनुसरण करने वाले है। सुना है कि फतहचन्द ढाके पहुंच गये। नवाव ने कई दूत उनके पास भेजे, पर उन्होंने वीमारी का वहाना कर दिया और न लौटे। कल मुर्शिदावाद का काजी उनके पास भेजा गया है। उसे आज्ञा मिली है कि समझा-वुझा कर फतहचन्द को वापस ले आओ, क्योंकि उनका यहां रहना व्यापारियों के लिए ही नही, सरकार के लिए भी जरूरी है। इधर एक

हफ्ते से नवाब और हाजी अहमद का मिलना-जुलना बन्द है। नवाब ने कुछ तोहफा भेजा था तो हाजी अहमद ने उसे लौटा दिया। अनबन का कारण यह बताया जाता है कि मुर्शिदाबाद लौटने पर नवाब ने कहा कि बडे अफसोस की बात* है कि अपने पास दूने सवार होते हुए भी मराठों को अपनी छावनी तथा जगत्सेठ का घर जलाने और लूटने दिया गया ! "

इसके प्राय. एक सप्ताह बाद फतहचन्द मुर्शिदाबाद लौटे। उनके साथ और कई व्यापारी थे। पर अपने दोनों पोतों को—महताबराय और स्वरूपचन्द को—वे ढाके मे ही छोड़ते आये। मुर्शिदाबाद अभी निरापद नही हुआ था, इसलिए फतहचन्द वहा कम से कम रुपया-पैसा अपनी तिजोरियों मे रखना चाहते थे। उन्होने कासिमबाजार के अगरेजो को कहलाया कि रुपये की जरूरत हो तो कर्ज ले सकते हो। अंगरेज कुछ चादी बेचना चाहते थे, पर उस समय चादी छूने से भी फतहचन्द को इन्कार था। "जब टकसाल ही बन्द है, तब मै चादी लेकर क्या करूगा ? जो रुपया मौजूद है, उसी को हटाना मुश्किल हो रहा है, फिर बोझ को बढ़ाने से फायदा ही क्या ?" फतहचन्द का जो गुमाश्ता हुगली मे रहता था, वह कार्यवश कलकत्ते गया तो कौसिल ने बहुत कहा कि आप कुछ चांदी ले लीजिए। पर उसने यही जवाब दिया कि "मालिक की ओर से चादी लेने की मनाही है, बल्कि ढाका तथा अन्य स्थानो मे भी ऐसी ही मनाही हो चुकी है।" मराठो की उपस्थिति और

---

* "तवे हाजि साहेब के नवाव अनेक बुलिल,
एतेक लस्कर रइते बाडी लुइटा गेल !"

ये पक्तिया 'महाराष्ट्र-पुराण' नामक ग्रथ से उद्धृत है, जिसके लिए परिशिष्ट-भाग द्रष्टव्य है।

मीर हबीब की हरकतों ने पश्चिम बंगाल मे राज-काज का चलना बंद-सा कर दिया था। अलीवर्दी खां का प्रभुत्व उधर के कई जिलों मे—मसलन मेदिनीपुर, हुगली, बर्दवान में—नाममात्र को रह गया था ; बल्कि उड़ीसा के भी कुछ अंश पर मराठों का अधिकार हो चला था। कुछ ही दिन बाद फतहचन्द फिर ढाके लौट गये। और व्यापारी भी रंग-ढंग ठीक न देखकर मुर्शिदाबाद से धीरे-धीरे हटने लगे। १० जुलाई को कासिमबाजार के अंगरेज लिखते है कि—

"८ तारीख की रात को जगत्सेठ मुर्शिदाबाद से बाहर चले गये। यहां से हमारे भी कई व्यापारी जा चुके और कई जाने की तैयारी कर रहे है।"

अलीवर्दी खां मराठों को मार भगाने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर तैयारी करने लगा। पर सैनिकों का वेतन चुकाने के लिए रुपया चाहिए था और रुपया जुटाना उस समय बहुत कठिन काम हो रहा था। उधर अलीवर्दी खां के अपने सैनिक भी उद्धत और उद्दड होकर प्रजा पर अत्याचार करने लगे थे। तत्कालीन परिस्थिति मे अनुशासन की शिथिलता अनिवार्य-सी हो गई थी और इस शिथिलता से अराजकता पैदा होने लगी थी। कासिमबाजार के अंगरेजों ने नवाब से डाकेजनी की शिकायत भी की तो कोई नतीजा न निकला। डाका मारने वाले सैनिक थे और उनकी करतूतों से लज्जित होते हुए भी अलीवर्दी खां उन्हें रोकने या दंड देने में असमर्थ था।

उसने अपने भतीजे जैनुद्दीन खां को लिखा कि इस सकट-काल मे धन-जन से हमारी जितनी सहायता कर सकते हो, फौरन आकर करो। ढाका, मालदा और राजमहल से नावे मंगवाकर उसने बहुत बड़ा बेड़ा भी तैयार कराया। प्रत्येक सरदार से कहा गया कि जितने सवार या

सिपाही भरती कर सकते हो, करो और प्रत्येक को इसके लिए प्रोत्साहन के अलावा पुरस्कार भी दिया गया। पुरानी तोपो की मरम्मत कराई गई और कुछ नई तोपे बनवाई गईं। पर यह सारी तैयारी हो ही रही थी कि दिल्ली से मुरीद खां फिर आ धमका और माल का बकाया तलब करने लगा। इस बार परिस्थिति और प्रकार की थी, इसलिए अलीवर्दी खा ने कुछ भी देने मे अपनी असमर्थता प्रकट की और सम्राट् को लिखा कि मराठो के आक्रमण की कहानी आप सुन ही चुके होगे, मै आपको बगाल की सुध दिलाता हू और आप से प्रार्थना करता हू कि जल्द से जल्द वहा से किसी बड़े सरदार को यहा ससैन्य भेजकर मेरी सहायता करे और बंगाल को मराठो के अधीन हो जाने से बचावे। मुहम्मद शाह ने एक खत अवध के सूबेदार को लिखा और दूसरा बालाजी बाजीराव को। बाजीराव के मरने पर इसे ही पेशवा का पद मिला था। यह अरसे से मालवा-प्रान्त की सनद चाहता था और रघुजी भोंसले से इसका वैमनस्य भी चला आता था। शत्रु से बदला लेने और वैध रूप से मालवा का अधिकार प्राप्त करने का यह बालाजी को अच्छा मौका मिला।

अलीवर्दी खां ने बरसात बीतते ही मुर्शिदाबाद से कूच किया। कटवा के आमने-सामने, भागीरथी के दूसरी ओर, एक स्थान पर पहुचकर उसने छावनी डाली। वहा सात-आठ दिन तक दोनो ओर से गोलाबारी होती रही। अलीवर्दी खा की वास्तविक इच्छा भागीरथी को पारकर, मराठो पर टूट पड़ने की थी। इसके लिए नावो का पुल तैयार किया गया और निविड़ अन्धकार मे एक रात अलीवर्दी खां की सेना उस पार से इस पार पहुच गई। कहा गया है कि मराठे भाग पडे और अलीवर्दी खा ने उनका पीछा किया। हुगली, बर्दवान, मेदिनीपुर—

हर जगह मराठों के पांव उखड़ गये और वे जिस राह आये थे, उसी राह भागने की चेष्टा करने लगे। पर छोटा नागपुर के जगल इसमें बाधक हुए और भास्कर को मेदिनीपुर-बालेश्वर-कटक होते हुए भागकर अपनी रक्षा करनी पड़ी। अलीवर्दी खा ने चिलका-झील तक पीछा किया, पर जब भास्कर और मीर हबीब पकड़े न जा सके, तब खाली हाथ कटक लौट आया। उड़ीसा में पिछली बार वह शाह मुहम्मद मसूम पानीपती को अपने प्रतिनिधि के रूप में छोड़ आया था। यह मराठो-द्वारा हरिहरपुर मे मारा जा चुका था, इसलिए वह पद अब मुस्तफा खा के चचा अब्दुल नबी खां को प्रदान किया गया। राजा जानकीराम का बेटा दुर्लभराम इसका नायब या पेशकार नियुक्त हुआ।

इस बीच अवध का सूबेदार अबुल मंसूर खां और पेशवा बालाजी बाजीराव सम्राट् का आदेश पाकर, पूरब की ओर प्रस्थान कर चुके थे। अबुल मंसूर पटने पहुच चुका था कि उसे खबर मिली कि बालाजी की फौज अवध होकर आने वाली है। उसने फौरन मनेर के पास गंगा को पार किया और सिर पर पांव रख अवध लौट गया। बालाजी राव को भी बिहार पहुचते देर न हुई। वह पटने के पास से तो गुजरा, पर वहां मुकाम नही किया। दाऊदनगर, गया, मानपुर, टेकारी, बिहार शरीफ, मुगेर, भागलपुर होते हुए वह वीरभूम की ओर बढ गया। जब अलीवर्दी खां उससे मिला, तब बालाजी ने सब से पहले चौथ का जिक्र छेड़ा और हिसाब चुकता हो जाने पर ही उसने सम्राट् की आज्ञा का पालन करने का नाम लिया। रघुजी भोसले अपनी सेना के साथ बंगाल पहुंच चुका था और भास्कर पन्त भी लौट चुका था। रघुजी का पड़ाव कटवा और बर्दवान के बीच था और भास्कर का मेदिनीपुर में। बालाजी बाजीराव से शिकस्त खाकर रघुजी

को नागपुर भागना पड़ा। भास्कर भी बंगाल में न ठहर सका। उडीसा होकर, वह भी जहां से आया था वहीं लौट गया।

कहने के लिए तो बालाजी बंगाल गया था सम्राट् के आदेश से अलीवर्दी खां की सहायता करने, दर असल उसका उद्देश था अलीवर्दी खां से चौथ वसूल करना—इस मद में उसके जिम्मे मोटी रकम बाकी ठहराकर, पत्थर तले दबे हुए हाथ से जितना मिल सके, उतना ले लेना और आगे के लिए भी नाजिम को शर्तो से जकड़बंद कर जाना। ७ जुलाई सन् १७४३ को उसे मालवा की सनद मिल गई और इसके बाद ही उसका रघुजी से मेल या समझौता भी हो गया। अब उसने अवध, बंगाल, बिहार और उडीसा का कर वसूल करने का अधिकार शाहू से रघुजी को दिलवा दिया,* जिससे प्रोत्साहित होकर भोसले ने वर्षा-काल के बाद ही, भास्कर पन्त को फिर पूरब की ओर रवाना किया।

जिस समय फतहचन्द ढाके मे प्रवास कर रहे थे, उस समय कंपनी को कुछ उधार लेने की जरूरत पडी। फतहचन्द एक लाख से कम देने को तैयार न थे, इसलिए ढाकेवालो को उतना ही लेना पडा। अगस्त (१७४२) मे कपनी की ओर से पूछा गया कि और कुछ उधार मिल सकता है क्या, और अगर मिल सकता है, तो कितने ब्याज पर? फतहचन्द ने कहा कि जितने रुपये की जरूरत हो, कपनी ले सकती है; ब्याज की दर वही रहेगी—९) प्रतिशत प्रतिवर्ष। समय के लिहाज से कपनी के कर्मचारियो को यह दर कुछ ऊची जची। कौसिल ने ढाका-फैक्टरी को लिखा कि अभी खरीदारी बद रहेगी, इसलिए दादनी देने

---

* "मराठो का उत्थान और पतन"—श्री गोपाल दामोदर तामस्कर लिखित।

या कर्ज लेने की जरूरत नही। पर अक्टूबर मे उसे ४०,०००) कर्ज लेना ही पड़ा। ब्याज मे किसी तरह की कमी नही हुई। हां, ढाके मे उसकी कुछ नावे रोक ली गई थी और उसके कर्मचारियों के साथ 'दुर्व्यवहार' होने लगा था। फतहचन्द के सिफारिश करने पर नावे छोड़ दी गई—वह 'दुर्व्यवहार' भी बंद हो गया। अक्टूबर मे नवाब और हाजी अहमद दोनो ने ही फतहचन्द को लिखा कि मराठे बंगाल से चपत हो चुके, अब आपको लौट आने मे कोई सकोच नही होना चाहिए। फतहचन्द मुर्शिदाबाद लौट गये। उनके लौटने पर ही कपनी ने चांदी देकर उन चारो हुंड नोटों का भुगतान किया जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

नवम्बर १७४२ में कौसिल ने यह निर्णय किया कि—

"चूकि कंपनी पर फतहचन्द के कर्ज का भारी बोझ है और उन्होंने बहुत कहने-सुनने पर कर्ज के भुगतान मे चादी लेना स्वीकार कर लिया है, हम लोगों की सम्मति है कि उन्हे चादी देकर यह कर्ज चुका दिया जाय।

"उनके साथ यह तै हुआ है कि चांदी का दाम तो वही रहेगा जो और व्यापारी इधर देते आये है, पर कासिमबाजार की परिपाटी के अनुसार वह चांदी को 'सिक्को' से तौल कर ही लेंगे। और जगह तो प्रेसिडेट हेजेस के समय से चादी की मझोली पेटी का वजन ९३२५ 'सिक्कों' के वजन के बराबर मान कर ही इसकी खरीद-बिक्री होती रही है।

"आज्ञा दी जाती है कि इस समझौते के अनुसार भुगतान कर देने के लिए खजाने से चांदी की ५४ पेटियां निकाल कर प्रेसिडेट को दे दी जायं।"

जनवरी १७४३ मे ढाके की फैक्टरी से कौंसिल को एक खत मिला जिसमे लिखा था कि फतहचन्द मार्च मे साल तमाम होने पर चालू खाता बद करने वाले है, इसलिए उनका कहना है कि कपनी या तो हिसाब बेबाक कर दे या तमस्सुक बदल दे। हिसाब बेबाक करने के लिए तीन लाख रुपया चाहिए था। इसके अलावा फतहचन्द की कोठी से कुछ और कर्ज लेने की जरूरत थी। कौंसिल ने जवाब दिया कि जरूरी खर्च के लिए हम एक लाख भेजने का प्रबन्ध कर रहे है, पर इस समय रुपये की ऐसी टान है कि हम पुराना कर्ज चुकाने के लिए कुछ नही भेज सकते। अगर फतहचन्द न माने तो तमस्सुक बदल देना, लेकिन कोशिश इस बात की करना कि बिना बदले ही काम चलता रहे। संभवतः यह न हो सका। फरवरी मे ढाका-फैक्टरी को १६०,०००) नये कर्ज के तौर पर भी लेना पड़ा।

इधर अलीवर्दी खा को भास्कर पडित का पीछा करते हुए उडीसा जाना पडा था और वह उसको भगाने मे पूर्णत. सफल भी हो चुका था। फरवरी मे कौंसिल ने निश्चय किया कि नवाब के मुर्शिदाबाद लौटने पर उसे बधाइया भेजी जायं और हाजी अहमद तथा फतहचन्द को भी इस कामयाबी पर अपनी खुशी जाहिर करने के लिए खत लिखे जायं।

अलीवर्दी खा बगाल लौट आया—पर उसके साथ मराठे भी लौट आये, बल्कि कहना चाहिए कि एक ओर से बालाजी बाजीराव और दूसरी ओर से रघुजी भोसले के आ धमकने के कारण परिस्थिति और भी विभीषिका-पूर्ण हो गई। सभवत अलीवर्दी खा को बधाइयां भेजने की बात जहां थी, वही रह गई। फिर मुर्शिदाबाद मे घबराहट फैली और फिर लोग बोरिया-बधना उठा-उठाकर मालदा, ढाका, रामपुर बौलिया, गोदागारी की ओर भागने[६] लगे। फतहचन्द फिर

जहांगीरनगर (ढाका) चले गये और अलीवर्दी खां तथा हाजी अहमद ने भी अपना-अपना कुटुम्ब और अपना-अपना माल-असबाब वही भेज दिया। आफत टली भी तो सरकारी खजाना खाली कर—तीनो प्रांतो का बहुत-कुछ खून चूस कर—जगत्सेठ फतहचन्द को एक और धक्का पहुंचा कर। ६ जून १७४३ को कासिमबाजार के अगरेज कर्मचारी लिखते है—"यहां रुपया उधार मिलना असंभवप्राय हो रहा है। फतहचन्द तथा अन्य धनी व्यक्तियो के ढाके भाग जाने से यहा रुपये की जैसी टान इस समय हो रही है, वैसी पहले कभी नही हुई थी।" अगस्त तक फतहचन्द मुर्शिदाबाद लौट आये थे। २२ अगस्त को कलकत्ता-कौसिल अपने लेखे मे लिखती है—"यह प्रत्यक्ष है कि इधर नवाब को बहुत-कुछ खर्च करना पडा है और वह उसका कुछ अंश फतहचन्द से वसूल करने के लिए उन पर हर तरह से दबाव डाल रहा है।"

मुर्शिदाबाद लौटने पर फतहचन्द ने कंपनी से वह रुपया मागा, जो कासिमबाजार का प्रधान सर फ्रैंसिस रसेल उनकी कोठी से उधार ले चुका था। कपनी यह कर्ज चुकाने मे आनाकानी करने लगी, जिसका नतीजा यह हुआ कि फतहचन्द को अपनी फरियाद नवाब के कानो तक पहुचानी पडी। बात क्या थी, यह रसेल के उत्तराधिकारी के उस पत्र से स्पष्ट हो जाता है, जो उसने ११ अगस्त को कौसिल के नाम लिखा था —

"फतहचन्द का गुमाश्ता सर फ्रैंसिस रसेल का तमस्सुक लेकर आया था। उससे जान पडा कि असल २५,०००)* था, सूद अलग है। गुमाश्ता रुपया मागने लगा। हमने कहा कि कलकत्ते के 'मेयर' की

* यहा 'सिक्को' से अभिप्राय है।

अदालत से कोई शख्स रसेल की जायदाद का इतजामकार मुकर्रर हो चुका है, वह अभी रसेल का पावना वसूल कर रहा है; जो कुछ वसूल हो सकेगा, उसे वह रसेल के महाजनो मे बाट देगा। फतहचन्द का गुमाश्ता बोला कि, "हमारे मालिक न तो 'मेयर' की अदालत को जानते है और न किसी ऐसे इतजामकार को। वह सिर्फ कपनी को जानते है। यह कर्ज उन्होने कपनी की फैक्टरी को दिया था, इसलिए वह आशा करते है कि कपनी उसे चुका देगी। आप लोगो के सामने दो रास्ते है—जिस पर आप की मर्जी हो चल सकते है। या तो इस तमस्सुक का रुपया चुका दीजिए और जगत्सेठ से दोस्ती बनाये रखिए, या उसे चुकाने से इन्कार कर दीजिए और उनसे अपना रिश्ता तोड़ लीजिए। यह रकम कभी डूबने वाली नही। इतना जरूर है कि इसे वसूल करने के लिए उन्हे जो कुछ करना पडेगा, वह आपको अच्छा न लगेगा।"

प्रधान ने सब-कुछ सुन लेने पर इतना ही कहा कि, "हम अपनी कौसिल को इसके बारे मे लिख रहे है। वहा से जो जवाब आवेगा, उसे आप के पास भेज देगे।"

अपने पत्र मे प्रधान ने यह भी लिखा था कि "कौसिल को यह बताने की जरूरत नही कि फतहचन्द चाहे जैसे हो, रुपया वसूल करने पर तुल गये है। कौसिल को मालूम है कि सरकार इस समय कैसी तगदस्त है और उस पर उनका कैसा प्रभाव है। अगर हमने उनको रुष्ट कर दिया तो सरकार को जोर-जबर्दस्ती करने का एक बहाना मिल जायगा और इसका नतीजा हमारे लिए बहुत ही बुरा होगा। हम आशा करते है कि कौसिल इन सारी बातो पर विचार कर किसी निर्णय पर पहुचेगी।"

नवाब इस मामले की जांच करने का हुक्म चैनराय को दे चुका था और कासिमबाजार की फैक्टरी की ओर से कौंसिल को लिखा जा चुका था कि "हमे डर है कि जब चैनराय तहकीकात शुरू करेगा, तब सारा भेद खुले बिना न रहेगा–अर्थात् उसे मालूम हो जायगा कि कंपनी के अगरेज कर्मचारी निजी कारबार भी किया करते है। दरबार मे हमने इसे कभी स्वीकार नही किया है—बराबर यही कहते आये है कि जो कुछ व्यापार होता है, कपनी की ही ओर से। हमे इस बात का अदेशा है कि अगर सरकार को असलियत का पता चल गया—उसे विश्वास हो गया कि कंपनी के कर्मचारी उसकी आड मे अपना कारबार भी किया करते है—तो इसका परिणाम हमारे लिए अच्छा न होगा।"

कंपनी को जो विशेष अधिकार मिले हुए थे, वे उसके अपने व्यापार के ही लिए थे। दोनो ओर से यह मानी हुई बात थी कि कपनी के नाम से कंपनी का कोई भी कर्मचारी निजी व्यापार नही कर सकता। कंपनी की ओर से यह स्वीकार तो नही किया जाता, पर वास्तविकता यह थी कि उसके सभी अगरेज कर्मचारी निजी व्यापार करने के लिए स्वतत्र थे और सभी ऐसा व्यापार किया करते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि उन्हे कंपनी की ओर से जो वेतन[९] मिलते थे, वे देश-काल के लिहाज से भी कम—बहुत कम थे। फिर जहा छोटे-बडे सब के सब चोर थे, वहा कौन किस की चोरी का भेद खोल सकता था—कौन किसको दंड दे या दिला सकता था? यों तो कपनी की ओर से यह बात प्राय: गुप्त रखी जाती, पर जब कोई अंगरेज कर्मचारी दिवाला मार देता और महाजन अपने रुपये कपनी से मागने लगते तब उन्हे यह जवाब जरूर मिलता कि यह कर्ज उसने अपने कारबार में लगाने के लिए

लिया था--इससे कंपनी का न कोई सरोकार था, न है। जगत्सेठ-जैसा महाजन तो किसी न किसी तरह अपनी रकम वसूल कर ही लेता, पर जिसकी दरबार मे पहुंच न होती, उसे या तो कंपनी जो कुछ दे देती उसी से सतोष मानना पड़ता या सारी रकम से ही बाज आना पडता।

कौसिल ने देखा कि बात आगे बढने में भलाई नहीं, इसलिए कासिमबाजार की फैक्टरी को जगत्सेठ की कोठी के साथ यह मामला तै कर लेने का पूरा अधिकार दे दिया। ११ सितम्बर को वहां से खबर मिली कि मामला तै हो चुका है। फैक्टरीवालों ने प्रस्ताव किया था कि असल और सूद दोनों की बाबत हम १५,०००) देने को तैयार है, सब बातों को देखते हुए आपको यह स्वीकार होना चाहिए। फतहचन्द का गुमाश्ता कह गया था कि सूद की मद में ३,५००) निकलता है, बडी से बडी रिआयत यही की जा सकती है कि असल २५,०००) मिल जाने पर हम एक भी पैसा सूद न ले। कासिमबाजार के कर्मचारी अपने पत्र मे लिखते है--

"कल १० तारीख को फतहचन्द ने फिर यही कहलाया कि जहां तक असल का सवाल है, कुछ भी बल खाना हमे मजूर नही। अगर मामला तै करना है तो कंपनी हमे सूद न देकर असल का असल दे दे। आपने लिखा था कि जैसे मुनासिब समझना, मामला निबटा लेना। हम लोगों की भी यही राय हुई कि फतहचन्द के साथ लड़ने-झगडने मे अपनी भलाई नही, बल्कि भलाई इसी मे है कि वे हमारे व्यवहार से प्रसन्न रहे। इसलिए हम लोगो ने उनके साथ मामला तै कर लिया और उन्हे २५,०००) का तमस्सुक लिख दिया। उन्होंने सर फ्रांसिस रसेल वाला तमस्सुक हमे लौटा दिया। नये तमस्सुक की रकम पर हमे ९) सैकड़ा सालाना ब्याज देना पड़ेगा। हमे आशा है कि

हम लोगो ने जोकुछ किया है, आप उसे ठीक समझेंगे । मामला तै हो जाने पर फतहचन्द ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। उनका गुमाश्ता आकर यह भी कह गया कि दशहरे के बाद टकसाल खुलने पर हम बता जायगे कि आप लोगों को कितनी चांदी मंगानी चाहिए।"

हम ऊपर कह आये है कि १७४३ में बालाजी बाजीराव से मेल हो जाने पर रघुजी भोसले की वक्रदृष्टि फिर बंगाल पर पड़ी और बरसात समाप्त हो जाने पर भास्कर पन्त फिर उस ओर भेजा गया।

इस बार उसके साथ प्राय. बीस हजार घुड़सवार थे, जिनमें छः-सात हजार का मनसब अली करावल (उपनाम अली भाई) को मिल चुका था। "रियाज" का कहना है कि यह पहले एक मराठा सरदार था और हिन्दू से मुसलमान बन चुका था। भास्कर ने बगाल पहुंचकर फिर कटवा मे ही डेरा डाला और संकल्प-सिद्धि के लिए आवश्यक अनु-संधान तथा संगठन करने लगा।

अलीवर्दी खां ने इस बार मराठों से पार पाने के लिए बल की जगह छल का प्रयोग करने का निश्चय कर, अपने अफगान सेनापति मुस्तफा खां से जी खोलकर बातें की और कहा कि अगर तुमने भास्कर और उसके सरदारों को लाकर मेरे चंगुल मे फंसा दिया, तो मैं तुम्हें इनाम के तौर पर बिहार की नायब निजामत दे दूंगा। मुस्तफा खां बहादुर होने के साथ चालबाज भी था। उसने भास्कर पन्त को यह विश्वास दिलाया कि अलीवर्दी खां लड़ाई नही, सुल्ह चाहता है। राजा जानकीराम को साथ लेकर वह स्वयं कटवा गया और वहां भास्कर पन्त से मिला। लगे दोनों बाते बना-बनाकर उसे इतमीनान दिलाने और अपनी लोरियों से उसे बच्चे की तरह सुलाने। दिल-जमई के लिए अगर एक कोई बात कुरान हाथ मे लेकर कहता,तो दूसरा

उसी को तुलसीदल तथा गगा-जल उठाकर दोहरा देता । फिर भी भास्कर पडित के मन मे कुछ सन्देह वना ही रहा । उसने अली करावल से सलाह की और कहा कि तुम खुद जाकर अलीवर्दी खा से मिलो और उसके मन की थाह ले आओ। पर अलीवर्दी खा ऐसा मायावी था और इस दूत के साथ इतनी अच्छी तरह पेश आया कि इसे सूखे पानी मे डूवते देर न लगी। कटवा लौटकर इसने भी यही कहा कि उधर छल-कपट का लेश भी नही, अलीवर्दी खा आपकी सारी शर्ते मान लेने को तैयार बैठा है; वस, आप दोनो के मिलने भर की देर है। भास्कर पर राजा जानकीराम की वातो का विशेष प्रभाव पहले ही पड़ चुका था, अव अली करावल ने अपना अनुभव सुनाकर उस रग को और भी जमा दिया। भास्कर के मन मे किसी प्रकार का भी सन्देह नही रह गया और वह अलीवर्दी खा के पास जाने को तैयार हो गया। उस समय अलीवर्दी खां का पड़ाव अमानीगज मे था। यह निश्चित हुआ कि दोनो का सम्मेलन मनकरा मे हो, जो अमानीगंज और कटवा के वीचोवीच था। वही अलीवर्दी खां की ओर से एक खेमा खडा किया गया और इसी खेमे के भीतर मसनद पर वैठकर अलीवर्दी खा भास्कर पन्त की प्रतीक्षा करने लगा। उस समय वहा जो लोग मौजूद थे,उनमे तीन ही व्यक्ति—राजा जानकीराम, मुस्तफा खा और मिर्जा हाकिम वेग—शुरू से यह जानते थे कि भास्कर पन्त के पहुचने पर क्या गुल खिलने वाला है। कुछ देर वाद अलीवर्दी खा के आदेश से सईद अहमद खां और अताउल्ला खा को भी सारा रहस्य वता दिया गया। वाकी सरदारों या सैनिको से भेद न खोला गया।

भास्कर पन्त के मनकरा पहुचने से पहले ही प्राय पचास मराठे सरदार वहा पहुंच चुके थे। इनमे इक्कीस-वाईस की खेमे के भीतर

तैनाती हो चुकी थी। ज्योंही वह स्वयं पहुंचा, राजा जानकीराम और मुस्तफा खां ने आगे बढकर उसकी अभ्यर्थना की और अपना-अपना हाथ धराकर उसे खेमे के भीतर ले गये। वहां किसी ने उससे बैठने को भी न कहा। राजा जानकीराम और मुस्तफा खा तो कोई बहाना कर खेमे के बाहर चले गये और अलीवर्दी खा ने तीन बार यह पूछा कि इन सरदारों में वीर भास्कर पडित कौन है ? प्रत्येक बार भास्कर को पहचानने वालों ने उसकी ओर इशारा कर अलीवर्दी खां के इस प्रश्न का उत्तर दिया। जब वह अपने पराक्रमी शत्रु को अच्छी तरह देख चुका, तब उसने मराठों के कत्ल का हुक्म देकर सब को मरवा डाला। सब से पहले भास्कर पडित मारा गया। इसका हत्यारा मीर कासिम खां था। बाकी मराठे सरदार भी मारे गये, पर वैसी परिस्थिति मे भी वे धीरता-वीरतापूर्वक लड़ते हुए—कुछ रुड-मुंड गिराते हुए—मरे। जो सैना कटवा मे रह गई थी, वह बात की बात में तितर-बितर हो गई—अलीवर्दी खां को मराठो के आक्रमण और उत्पात से कुछ समय के लिए शान्ति मिल गई।

पर उसके सामने और ही समस्याये उठ खड़ी हुई। इनमे प्रधान थी अर्थ-सम्वन्धी समस्या, जिसके हल के लिए उसने देशी-विदेशी व्यापारियो से चंदा मागना और वसूल करना शुरू किया। सेना का बाकी वेतन चुकाने के लिए काफी रुपया चाहिए था। अलीवर्दी खां ने विदेशी व्यापारियो से दो महीने का वेतन मागा। यह बीस लाख रुपया होता था।

चदे की बात सुनते ही कंपनी पहले तो बेहोश-सी हो गई, फिर होश संभाल कर अपने वकील को लिखा कि फतहचन्द से जाकर पूछो कि वह क्या सलाह देते हैं। फतहचन्द ने उसके पूछने पर कहा कि,

"मै क्या सलाह दू ? जमाने का रंग-ढग खराब है। इस समय तो जान पड़ता है कि कोई सरकार है ही नही। हुकूमत करनेवालो को न तो खुदा का डर है, न वादशाह का। चाहे जैसे हो, लोगों से रुपया ऐंठना ही उनका एकमात्र कर्तव्य हो रहा है। मै स्वय वहुत-कुछ नुकसान उठा चुका हूं। कंपनी को मै सलाह दूगा तो यही, कि जहा तक जल्द हो सके, देने-लेने के विषय मे नवाब से कुछ तै कर ले। कौसिल को सारी हकीकत लिख भेजो और उसका उत्तर मंगा लो। पर शीघ्रता होनी चाहिए। यदि इस कार्य मे विलम्ब हुआ, तो कंपनी को और भी गहरी हानि उठानी पड़ेगी।" साथ ही फतहचन्द ने यह भी कहा कि, "जहां तक मुझसे और चैनराय से बन पड़ेगा, हम दोनों दरबार मे कपनी के साथ रिआयत कराने की कोशिश जरूर करेगे।"

१० जुलाई १७४४ को नवाब ने अगरेजो के वकील को बुलवाकर कहा कि, "जिस समय तुम्हारी कपनी को बादशाह फर्रुखसियर से फरमान मिला था, उस समय उसके कुल चार-पाच जहाज चलते थे। इस बीच मे कपनी का व्यापार कही से कही बढ गया है, पर सरकार को जो कर मिलना चाहिए था, वह नही मिला है। अव दिल्ली से मेरे पास हुक्मनामा आया है कि अगरेजो के जिम्मे जो कुछ बाकी निकले, वह उनसे पैसा-पैसा वसूल कर लो। मै उसकी तामील करने जा रहा हू। अगरजो को अपने बढे हुए व्यापार पर, शुरू से आज तक, सरकारी कर देना पडेगा।" अलीवर्दी खा ने यह भी कहा कि, "मेरी शिकायत थी कि अगरेज मराठों की मदद किया करते है। मैंने तो उनका कसूर माफ कर दिया, पर उन्होने आज तक न तो मुझे कभी याद ही किया, न मेरे लिए घोडे की पूछ की पशम तक भेजी।" नवाब के अन्तिम शब्द बडे ही भयावह थे। उनका अभिप्राय यह था कि अगर

और दो-तीन दिन में कपनी का कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तो नवाब अपनी फौज को कासिमबाजार और कलकत्ते भेजकर अगरेजो से नाको चने चबवाने वाला है।

वकील ने जाकर हाजी अहमद और फतहचन्द से सारी बात कही तो उन्होने यही सलाह दी कि कपनी को चाहिए कि इस अवसर पर एक अच्छी रकम नवाब को भेट करे।

जब कौंसिल को मालूम हो गया कि बिना कोई ऐसी रकम दिये छुटकारा नही होने का, तब उसने कासिमबाजार के कर्मचारियो को इजाजत दी कि चालीस-पचास हजार देकर मामला तै कर लो। पर इतनी छोटी रकम से काम निकलने वाला न था। कासिमबाजार वाले अपने २२ जुलाई के पत्र मे लिखते है—

"नवाब ने मामला निबटाने का अधिकार फतहचन्द और चैनराय को दे दिया है। आपके आज्ञानुसार अपने वकील उनके पास गये और उनसे कहा कि कंपनी सब मिलाकर पचास हजार दे सकती है। उन्होने जवाब दिया कि नवाब की माग के आगे यह रकम इतनी छोटी है कि हम दरबार मे इसका जिक्र भी नही कर सकते। अपने वकीलो ने बड़ी बहस की और यह दिखा दिया कि नवाब की मांग जायज नही है। उन्होंने यह भी बताया कि इधर जो उपद्रव होते रहे है, उनके कारण कम्पनी को बड़ी हानि भी हुई है। पर इन बातो के जवाब में फतहचन्द ने यही कहा कि अगर समय और होता तो इन बातो पर विचार किया जा सकता था। पर इस समय तो सेना का वेतन चुकाने के लिये नवाब को रुपये की जरूरत है और आप लोग अच्छी तरह जानते है कि नवाब को इतनी बड़ी सेना रखनी पड़ी है देश की तथा व्यापार की रक्षा के ही लिए। उन्होने यह भी कहा कि आजकल नवाब का सारा ध्यान बस

रुपये की वसूली की ओर है और वह अंगरेजो से काफी बड़ी रकम पाने की उम्मीद किये बैठा है। अन्त मे उन्होने यही सलाह दी कि कौंसिल को खत लिखकर पूछो कि वह कहा तक जाने को तैयार है। २१ तारीख को अपने वकील फिर फतहचन्द और चैनराय से मिले। हमने उन्हे यह पता लगाने के लिये भेजा था कि आखिर नवाब चाहता क्या है? इसबार फतहचन्द ने उनसे कहा कि "साहबान! जमाना बदल गया। पुरानी बाते जाती रही, अब नयी बातो का दौरदौरा है। पहले के हुक्काम और तरह के होते थे—उन्हे हम समझा-बुझा कर आसानी से रजामन्द कर लेते थे। पर आजकल के हुक्काम का यह हाल है कि ये लोभी है, धोखेबाज है और साथ ही मिजाजदार भी है। इन्हे समझाना-बुझाना या ठीक रास्ते पर ले आना कठिन से कठिन काम है। अगर कपनी का यह खयाल है कि मौजूदा सरकार पहले की सरकार की ही तरह है, तो यह उसकी भूल है। कोई नही कह सकता कि अपनी माग पूरी कराने के लिए अलीवर्दी खा कब क्या कर गुजरेगा"। जब अपने वकीलो ने यह जानना चाहा कि कितना मिल जाने पर नवाब सन्तुष्ट होगा, तब फतहचन्द ने कहा कि यो तो उसके मन की बात बताना असभव है, पर कुछ अनुमान किया जा सकता है। वह अपनी सेना का दो महीने का वेतन मागता है। इसके लिए उसे बीस लाख रुपया चाहिए। अधिक से अधिक छोड देगा तो दस लाख। बाकी दस लाख तो तीनो कपनियों को जुटाना ही पडेगा। ऐसी हालत मे अगर कपनी पाच लाख देने को तैयार हो, तो हम नवाब से उसका चदा मंजूर कराने की कोशिश करे। डच और फरासीसी कपनियो की ओर से कहलाया गया है कि पहले अगरेजो के साथ बात तै हो जाय, फिर हम भी अपना-अपना चदा लेकर हाजिर हो जायगे। चैनराय ने

कहा कि पांच लाख मे चालीस-पचास हजार कम होने पर भी हम चेष्टा करेंगे कि नवाब उस रकम को मजूर कर ले। बस, इन मंत्रियों से तो और कुछ की आशा करना ही व्यर्थ है। हा, फतहचन्द ने बातों-बातों मे कहा कि आज कपनी चालीस-पचास हजार ही देना चाहती है, पर उसे अपने पुराने बही-खातों के पन्ने उलटकर यह भी देखना चाहिए कि शुजाउद्दौला के समय मे वह सरकार को क्या दे चुकी है। मालूम नही, यह उन्होंने किसी गूढ अभिप्राय से कहा या बात यों ही उनके मुंह से निकल गई। हमने तो फैक्टरी लौटकर पुराने बही-खाते निकलवाये और इस बात की जांच कराई कि शुजाउद्दौला को क्या दिया गया था। पता चला कि १७३१ मे कंपनी ने फतहचन्द की मार्फत दरबार को १८४,५००)* दिया था। उसका ब्योरा हम आपके पास भेज रहे है। यह कहना कठिन है कि बीती बात की याद दिलाकर फतहचन्द ने कोई इशारा किया या नही। संभव है, उनका यह अभिप्राय रहा हो कि अगर कंपनी इस बार भी उतना ही दे दे तो उसे नजात मिल सकती है। संभव है, यह अनुमान गलत हो। इतना तो स्पष्ट है कि अगर हमने पिछली बार से कम दिया तो नवाब को यह रकम कभी मंजूर न होगी। इस समय यह अवस्था है कि काम-काज बंद है। कोई भी व्यापारी माल लेकर अपनी कोठी के अहाते मे आ नही सकता। इस पर तुर्रा यह कि रोज धमकी दी जाती है कि सरकारी फौज आकर कोठी को घेर लेगी और कंपनी का गला घोट देगी।"

इसके बाद फिर वे २७ तारीख को लिखते है—

"अपने वकील रोज फतहचन्द, चैनराय और हाजी अहमद के पास जाते है, पर तीनों यही कहते है कि पहले कौसिल से मामला तै

---

* 'सिक्के'

करने का अधिकार मंगा लो, फिर हम और बातें करेंगे। नवाब तो इस समय भूखा भेडिया हो रहा है। उठते-बैठते, सोते-जागते वह बस शिकार की ही फिक्र मे रहता है, और जिसके बदन पर थोडी-सी भी चरबी नजर आती है, उस पर टूट पडता है। किसी भी मालदार असामी का पता चलते ही उसे गिरफ्तार करा लेता है और माग पूरी करने से इनकार करने पर उसकी खाल खिचवा लेता है। और तो क्या, जिनकी हैसियत हजार-दो हजार की भी नही, उन्हे भी आधी सम्पत्ति तक दे देनी पड़ी है। अपने एक ही व्यापारी से तीन लाख तलब किया गया है। फतहचन्द ने वकीलों से कहा भी कि तुम खुद समझ सकते हो कि जहां तुम्हारे एक ही व्यापारी से नवाब तीन लाख लेने जा रहा है, वहा वह तुमसे कितना लेना चाहेगा।"

कौसिल ने सारी बातो पर विचार कर, उत्तर दिया कि कपनी एक लाख तक देने को तैयार है।

फतहचन्द और चैनराय ने यह सुनकर यही कहा कि, "हमारी जबान से तो एक लाख की भी बात नही निकल सकती। अगर कपनी चार-पाच लाख तक देने को तैयार होती, तो हम उसका चदा मजूर कराने की कोशिश करते। लेकिन जब वह एक लाख से आगे न बढने की कसम खा चुकी है, तब हम भी चुपचाप बैठकर तमाशा देखना चाहते हैं कि नवाब क्या करता है।"

कासिमबाजार वालों ने लिखा कि हमारी तो समझ में ही नहीं आता कि अब हमें क्या करना चाहिए!

कौसिल ने नवाब की सेवा मे एक आवेदन-पत्र भेजा, जिसमे कहा गया था कि जब-जब सरकार के और कपनी के बीच ऐसा प्रसग उपस्थित हुआ है, तब-तब उलझन सुलझाने का काम फतहचन्द और

दरवार के मुत्सद्दियो को सौंपा गया है, फिर इस बार भी वही क्यों न मामले को तै-तमाम कर दे? ७ अगस्त को कासिमबाजार की फैक्टरी लिखती है:—

"अपने वकील दरख्वास्त लेकर नवाब के पास पहुंचे। फतहचन्द और दूसरों के द्वारा मामला तै-तमाम कराने का प्रस्ताव पढते ही नवाब ने पूछा कि हमने इससे कब इनकार किया है? फिर उसने अपने मुंशी को बुलवाकर कहा कि इन वकीलो को फतहचन्द और चैनराय के पास ले जाओ और उनसे कहो कि मामला निबटा दे। पर जब हमारे वकील उन दोनो से मिले, तब उन्होने यह जवाब दिया कि, 'हम बीच में पड़े तो कैसे? नवाब आसमान की बात करता है—कपनी जमीन की। नवाव २५ लाख से कम लेना नही चाहता—कंपनी एक लाख से अधिक देना नही चाहती। ऐसी हालत मे दोनों को कौन मिला सकता है—कौन उनका समझौता करा सकता है? कंपनी का कहना है कि हम पचास हजार से एक लाख पर आ चुके, पर नवाब पर इसका कुछ भी असर पड़ने वाला नही। मुस्तफा खां उससे कह चुका है कि हम अंगरेजों से पच्चीस लाख वसूल करा देगे।' अपने वकीलो ने कहा कि आप यकीन करे, अंगरेजो से इतना तो किसी भी हालत मे मिल नही सकता।

इस पर फतहचन्द और चैनराय बोले कि, "न तो नवाव कंपनी से पच्चीस लाख पाने की आशा करता है और न उसे एक लाख मिलने-न मिलने की ही कोई परवा है। पर हम लोग एक वात कहना चाहते हैं। जितना कंपनी खुद नहीं दे सकती, उतना दूसरों से तो दिला ही सकती है। इधर इतने व्यापारी मराठो के भय से कलकत्ते भाग गये है—इतने व्यापारियों को कंपनी से काम पड़ता है, इतनो का वही आश्रय या

अवलम्बन है। उन सब से चदा वसूल कर नवाब के पास पहुंचा देने का काम तो कंपनी कर ही सकती है। समय असाधारण है। सेना का वेतन चुकाने का प्रश्न वडा विकट हो रहा है। राजा को यह सेना रखनी पड़ती है, प्रजा की रक्षा के लिए। सरकारी खजाने मे जो कुछ था, वह उसका वेतन चुकाने मे लग चुका। नवाव अपनी तिजोरिया भी खाली कर चुका। फिर भी पूरा न पड़ा। मजबूर होकर उसे अपने रिश्तेदारो से और अपने कारिन्दो तक से रुपया लना पडा है। ऐसी स्थिति मे उसका यह कहना सर्वथा उचित ही है कि कलकत्ते के व्यापारियों को भी सरकार की यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए। आखिर सरकार की छत्रच्छाया मे ही तो विना किसी प्रकार की विघ्न-वाधा के, हर एक का काम-धधा चल रहा है, हर एक चांदी काटता आ रहा है। वहां नागरिकों पर कपनी को कर लगा देना चाहिए। अगर कोई शख्स कर नही चुकाता या चंदा नही देता, तो कंपनी को चाहिए कि उसे सीधे यहां नवाव के पास भेज दे—नवाव उसकी फस्द खुलवा देगा।"

अपने वकीलों ने कहा कि, "आज तक कपनी ने एसा काम नही किया। अगर यह व्यापारियों को जेरबारी से नही वचाती रही, तो उसके व्यापार का चलना ही असभव हो जायगा।" फतहचन्द बोले कि "सब कुछ समयानुसार होता है। पहले कभी ऐसी परिस्थिति नही हुई, इसलिए कपनी से इतना मागा भी नही गया। आज परिस्थिति असाधारण है, इसलिए नवाब की माग भी असाधारण है। असाधारण समय की बात साधारण समय के लिए नजीर नही वन सकती। फिर कपनी को यह भी सोचना चाहिए कि रुपया देने से वह वच ही कैसे सकती है? ढाके से पटने तक, नवाव ने उसका कारबार-वंद करा दिया है। उधर के सारे कारखाने इस समय नवाब के कब्जे मे हैं—सारी

सम्पत्ति नवाब के हाथ मे है। अगर अगरेजों ने उसकी बात न मानी तो वह कुछ भी अपने चंगुल से निकलने न देगा। कासिमबाजार की फैक्टरी पर भी चढ़ाई की बात थी, पर हाजी अहमद, चैनराय और मेरे कहने पर नवाब रुक गया है। फिर भी यह कहना कठिन है कि वह कब तक चुपचाप बैठा रहेगा। कंपनी के सभी व्यापारियों के गुमाश्ते बुलवाये जा चुके हैं। मुमकिन है, नवाव उन्हे अपना कुल माल मुर्शिदाबाद ले आने को मजबूर करे। गरज यह कि व्यापारियो से जो कुछ मिल सकेगा, उसे तो ले ही लेगा, कपनी पर भी अपना दावा खड़ा रखेगा। हर तरह कंपनी घाटे में ही रहेगी।" अन्त मे उन्होने यह कहा कि, "कौसिल से ऐसी रकम देने की इजाजत मगाओ, जिसका हम लोग उसके सामने नाम ले सके और जिसकी स्वीकृति की भी कुछ आशा कर सके। इतना तो निश्चित है कि एक लाख पर कोई समझौता नही हो सकता।"

जब दूसरे दिन फतहचन्द और चैनराय नवाब से मिले, तब उसने पूछा कि अगरेजों के साथ क्या तै हुआ? उन्होने कहा कि हुजूर पच्चीस लाख से कम लेना नही चाहते और अंगरेज एक लाख से ज्यादा देना नही चाहते—कुछ भी तै हो तो कैसे? नवाब कुछ देर चुप रहा। फ़िर उसने अपने दरबारियों से कहा कि कपनी के साथ अब जोर-जबर्दस्ती करनी ही पडेगी। फतहचन्द ने कासिमबाजार के अगरेजों को कहलाया कि, "सैनिक अधीर हो रहे है और रोज ही नवाब से तुम्हारे कारखानो को लूट लेने की इजाजत माग रहे है। अपनी भलाई चाहते हो तो नवाव को सन्तुष्ट कर दो।"

दो ही दिन बाद चैनराय ने कपनी के वकील से कहा कि, "नवाब कितना मिलने पर सन्तुष्ट होगा, यह उसने फतहचन्द को बता दिया है। पर फतहचन्द यह बात प्रकट करने वाले नही। अब तुम उन्हे बताओ

कि कंपनी कहां तक बढने को तैयार है। रकम बडी होनी चाहिए। दो लाख से भी बात नही बनने की। हा, जो निश्चय हो, फतहचन्द को ही बताना, और किसी को नही। वह घटा-बढा कर मामला तै करा देंगे। अगर तुम लोगो की यह धारणा है कि अन्त मे सरकार वही करेगी जो न्यायसंगत होगा, तो उसे निर्मूल समझो। आजकल बगाल मे सरकार कहने को ही है। वास्तव मे सब कुछ करने-धरनेवाले सैनिक है और सैनिक इस बात पर जोर दे रहे है कि नवाब सबसे—अपने रिश्तेदारो तक से—रुपया सख्ती के साथ वसूल करे।"

कौसिल कुछ समय तक हीला-हवाला करती रही, पर अन्त मे जब उसने देख लिया कि इससे पिड छूटने वाला नही, तब उसने कासिम-बाजार फैक्टरी के प्रधान जान फार्स्टर को लिखा कि चार लाख में औना-पौना कर मामला तै कर लो। फार्स्टर ने साढ़े तीन लाख में ही सौदा पटा लिया। १६ सितम्बर को कासिमबाजार की कौसिल लिखती है —

"१५ तारीख को फतहचन्द यहा नवाब के हुक्म से आये थे। हुगली, पटना, ढाका आदि स्थानो के लिए जो परवाने निकल चुके है, उन्हे दे गये। प्रधान ने कौसिल के मेबरो को सूचित किया कि वह कपनी की ओर से साढे तीन लाख देना स्वीकार कर चुका है। फतहचन्द ने यह रुपया मांगा और कहा कि हम नवाब से हुक्मनामा जारी करा चुके है कि कपनी का कारबार पहले की ही तरह चलने दिया जाय। हमने कहा कि इतना रुपया तो हमारे पास मौजूद नहीं, आप अपनी क़ोठी से कर्ज दिला दे तो आपकी बडी मेहरबानी हो। वह राजी हो गये। हमने उतने रुपये ('सिक्को') का तमस्सुक लिख दिया है। अब कलकत्ते से रुपया आ जाय तो हम उनका और दूसरे महाजनो

का हिसाब चुकता कर दे। सब मिलाकर यहा ५४०,०००) ('सिक्के') देना है।"

रुपया मिल जाने पर अलीवर्दी खा ने दरबार से कलकत्ता-कौसिल के अध्यक्ष के लिए एक हाथी के साथ सरोपा भिजवाया। कासिमबाजार फैक्टरी का प्रधान कलकत्ते जाने वाला था। फतहचन्द ने नवाब का एक खत ले जाकर उसे दिया और कहा कि इसे अपने अध्यक्ष के हाथ मे दे देना। कासिमबाजार वालों ने कलकत्ते लिखा कि जब हाथी और सरोपा वहां पहुंच जायं, तब इस सम्मान-प्रदान के उपलक्ष्य मे कंपनी की ओर से उल्लास प्रकट किया जाय और नवाब को धन्यवाद भेजे जायं। ५ दिसम्बर को जब खिलअत और हाथी कलकत्ते पहुंच गये, तब ५७ तोपों की सलामी उतारी गई और इस दयादान के लिए बड़ी धूमधाम के साथ नवाब के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन किया गया।

१६ नवम्बर (१७४४) के लेखे में यह बात दर्ज मिलती है:—

"कासिमबाजार से जान फार्स्टर लिखता है कि वह एक दिन दरबार में गया था। वहा नवाब के साथ फतहचन्द और चैनराय बैठे थे और फार्स्टर की सब से बातचीत होने लगी। कुछ ही देर बाद नवाब उठ पड़ा और उन तीनो को एक कमरे मे ले गया। वहां उसने फार्स्टर से कहा कि जासूसों से सरकार को खबर मिली है कि मराठों की बड़ी सेना फिर बंगाल पर चढ़ाई करने आ रही है। हमे उसका मुकाबला करने जाना पड़ेगा। लेकिन मुश्किल यह है कि हमारे आदमियों को अंगरेजों की तरह तोप-बदूक चलाना नही आता। इसके लिए तुम अपनी कंपनी से तीस-चालीस सिपाहियो के साथ एक अंगरेज प्रधान

भिजवा कर हमारी सहायता करो। जो वेतन कंपनी नियत कर देगी हम देने को तैयार है।" नवाब ने यह भी कहा कि, "हमे अपने लिए एक अच्छा ताजी घोडा भी चाहिए। अगर कलकत्ते मे कोई मिल सके, तो मंगा दो।"

कौसिल ने घोडा तो २७५०) को खरीद कर भेज दिया, पर गोलंदाजों को भेजने से इनकार कर दिया।

प्राय उसी समय, नवाब के दवाव डालने पर फतहचन्द अगरेजों से कुछ चादी खरीदने को तैयार हो गये. पर सब कुछ तै हो जाने के बाद भी उन्होंने दाम इतना घटा दिया कि कोई सौदा न हो सका। अंगरेजो ने हैरान होकर उनके गुमाश्ता रूपचद से इसका रहस्य पूछा। उसने बताया कि, 'इधर टकसाल के कामो मे अताउल्ला खां और चैनराय काफी दखल देने लगे थे—यहा तक कि जहा पहले फतहचन्द को हफ्ते में पाच दिन सिक्के ढलवाने के लिए मिलते, वहां अब एक दिन भी मिलना मुश्किल हो गया था। इससे वह बहुत असन्तुष्ट थे। फिर उन्होने यह भी सोचा कि अगर सिक्के ढलने से पहले ही मराठे आ गये, तो चादी धरी ही रह जायगी। इन्ही कारणों से उन्होने नवाब से कह दिया था कि कपनी चांदी का इतना ऊचा दाम मांगती है कि वह उसे खरीद ही नही सकते। वह चाहते यह थे कि पहले मराठों के लौटने-न-लौटने की बात निश्चित रूप से मालूम हो जाय—फिर चांदी के बारे में कोई फैसला हो।'

फतहचन्द के जीवन के अब इने-गिने दिन शेष रह गये थे। २८ दिसम्बर को कासिमबाजार वालो ने कौसिल को उनकी मृत्यु की संक्षिप्त सूचना देते हुए लिखा कि, "२६ तारीख को प्रात.काल फतहचंद

संसार से चल बसे। उनके विपुल ऐश्वर्य के उत्तराधिकारी उनके पोते महतावराय और स्वरूपचन्द हुए हैं। लोगों का विश्वास है कि ये दोनों वाणिज्य-व्यवसाय में अपनी वंश-परम्परा की रक्षा करनेवाले होंगे। इस अवसर पर यह उचित होगा कि हमारी ओर से पत्र-द्वारा इनका अभिनन्दन किया जाय।"

जिसकी जिन्दगी की नाव किनारे लग चुकी थी और जिसकी अस्थियो को 'जगत्-विश्राम' मे सदा के लिए विश्राम मिल चुका था, उसके नाम पर आंसू वहानेवालों मे अगर ईस्ट इडिया कंपनी भी थी, तो इसका उल्लेख नही मिलता। पिछले पृष्ठों मे हम कंपनी की ही जवानी सुन चुके है कि जब-जब उसे सहायतार्थी के रूप में फतहचन्द के पास जाना पडा, तब-तब उन्होंने कैसी सहानुभूति दिखाई—उसको संकट से उबारने मे कैसी सरलता, उदारता और परोपकारिता का परिचय दिया। क्या उनके मरते ही कपनी उन्हे विलकुल भूल गई? अगर बात ऐसी न होती, तो महताबराय और स्वरूपचद को बधाइयां देने से पहले उन्हे सांत्वना दी जाती, जिनसे काम पडने वाला था उनका स्वागत करते समय जिससे काम पड चुका था, उसकी स्मृति की ऐसी उपेक्षा न की जाती।

फतहचन्द को अपने मामा मानिकचन्द से जो वरासत मिली थी, उसकी उन्होने पूरी हिफाजत ही नही की, उसका विस्तार और उसकी गहराई भी बढाई। गाढे दिन मे राजा और प्रजा की उन्होने ऐसी सेवा की, जिसका महत्त्व सूचित करने के लिए उन्हे मुहम्मद शाह से 'जगत्सेठ' की उपाधि मिली, यद्यपि सच्ची बात यह है कि कम से कम अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे, उनकी बराबरी करनेवाला व्यापारी

या सेठ-साहूकार ससार भर मे और कोई न था—इसलिए वह बिना किसी प्रकार की अतिशयोक्ति के 'जगत्सेठ' कहे जा सकते थे। बर्क ने कहा था कि जगत्सेठों का कारबार उतना ही फैला हुआ था और उसी पैमाने पर था, जिस पर बैक आव् इगलैण्ड का। इस विस्तार या उन्नति मे विशेष भाग था तो प्रथम जगत्सेठ फतहचन्द का। उनके उत्कर्ष का आधार था उनका मुर्शिदाबाद की मसनद से घनिष्ठ सम्वन्ध और इस सम्बन्ध का रहस्य यह था कि उनके सहयोग से ही प्रत्येक शासक की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक रह सकती थी, वह मसनद पर कायम रह सकता था। दिल्ली-दरबार मे बंगाल की साख बराबर अच्छी बनी रही। बल्कि जब से फतहचन्द ने हुडी के जरिए राजस्व का भुगतान करने की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली थी, तव से वह साख और भी ऊची हो चली थी। टाट उलटनेवालो की जमात मे कोई साहूकार बच गया था तो बगाल। जब बाजीराव ने मुहम्मद शाह पर दबाव डालकर पचास लाख रुपया लेना चाहा था, तव उसने लिखा था कि अगर आप इतना रुपया नकद नही दे सकते तो मुझे बगाल पर परवाना भेज दीजिए। खानदौरा ने काबुल से रुपये की माग आने पर, वहा के सूबेदार नासिर खां को कहलाया था कि बगाल के नाजिम को खत लिखा जा रहा है, बरसात बाद वहा से खजाना आते ही हम तुम्हारे पास रुपया भेज देगे। मुहम्मद शाह का एकमात्र भरोसा या बल बगाल रह गया था और मुर्शिदावाद से रुपया या हुडी आने मे देर होते ही उसका दम सूखने लगता था। जब मुरीद खा को पिछली बार मराठों की चढाई के कारण विफल होकर दिल्ली लौटना पडा था, तब अलीवर्दी खा ने बादशाह को बंगाल की उपयोगिता की याद दिलाते हुए लिखा

था कि शाही खजाने और तोशाखाने को खाली न होने देने का श्रेय बंगाल के ही किसानों और कारीगरों को है—ऐसी दशा में आप स्वयं अनुमान कर सकते है कि अगर इस प्रान्त पर सदा के लिए मराठों का अधिकार हो गया, तो केन्द्र की कितनी बड़ी हानि होगी। बगाल की रक्षा के द्वारा अपनी रक्षा के उद्देश से ही मुहम्मद शाह ने बालाजी बाजीराव को मालवा की सनद दे देने का वचन देकर रघुजी भोसले के विरुद्ध भेजा था। ऐसे कल्पवृक्ष को सदाबहार बनाये रखने मे जगत्-सेठ का भाग विशेष महत्त्वपूर्ण होने के कारण ही, मुर्शिदाबाद से दिल्ली तक उनकी ऐसी धाक बध गई थी कि उनके बिना हाँ किये बगाल मे ऊंचे से ऊंचे पद पर भी किसी की नियुक्ति नही हो सकती थी—कम से कम बादशाह से उसे सनद या फरमान नहीं मिल सकता था।

घर के मालिक के रूप में फतहचन्द तीस वर्ष ससार मे रहे। उनके दो पुत्र हुए—आनन्दचन्द और दयाचन्द। इनके अलावा दो कन्याये * भी हुईं। दोनों ही पुत्र शुजाउद्दौला के शासन-काल मे ही चल बसे थे। इनमें आनन्दचन्द के पुत्र † का नाम महताबराय था और दयाचन्द के पुत्र का स्वरूपचन्द। यही दोनों चचेरे भाई फतहचन्द के उतराधिकारी हुए। इनमें महताबराय जगत्सेठ की और स्वरूपचन्द महाराजा की पदवी, मुहम्मदशाह के पुत्र अहमदशाह से, १७४८ मे पाने वाले थे।

---

* इनमे एक नयनसुख गाधी को ब्याही थी, दूसरी मानसिंह समदड़िया को।

† आनन्दचन्द के एक कन्या भी थी जिसका नाम अजबू बाई था।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ ६८—बहादुरशाह के राज्य-काल मे कपनी ५२॥ हजार रुपया देकर व्यापार-सम्बन्धी सनद प्राप्त कर चुकी थी, पर उसकी इच्छा थी पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त कर बगाल के दीवान या अन्य पदाधिकारियो के नियत्रण मे सदा के लिए मुक्त हो जाने की। ३,०००) सालाना पेशकश देने के अलावा किसी भी प्रकार की चुगी भरने से उसे इनकार था।

कपनी को अजीमुश्शान मे बडी आशाएँ थी, क्योकि उसी मे उसे सुतानुती, गोविन्दपुर और कलिकाता, इन तीन गावो की जमीदारी कुल १६,०००) देने पर मिल चुकी थी। १७ अगस्त १७११ को कौंसिल ने एक अर्जदाश्त भेजकर उससे शाही फर्मान दिला देने की प्रार्थना की। उसके साथ एक पत्र-द्वारा यह भी प्रलोभन दिया गया था कि, "हम अपनी ओर से नजराने के तौर पर कुछ सामान वहा भेजने वाले है, पर उनके पहुँचने मे कुछ देर हो सकती है। इधर माल खरीदकर इगलैण्ड भेजने का समय करीब आ गया है, इसलिए तब तक दीवान के नाम एक हस्बुल्हुक्म भिजवा देने की कृपा करें कि वह हमारे व्यापार मे किसी प्रकार की बाधा न डाले।"

इधर अजीमुश्शान को यह आवेदन-पत्र अगस्त १७११ मे भेजा गया, उधर कपनी ने कासिमबाजार के कर्मचारियो को यह आदेश दिया कि वहा की फैक्टरी बन्द कर चल देने के लिए तैयार रहो। पर अक्टूबर मे ही दीवान से ५२,५००) पर समझौता हो गया और कासिमबाजार छोडने की नौबत नही आई। फिर भी दिल्ली-दरबार का दरवाजा खटखटाने का जो निश्चय कपनी कर चुकी थी, उसका उसने कभी परित्याग नही किया। नजराना भेजने की बात भी उसे बराबर याद रही। हा, इसका समय टलता गया। कभी तो यह हुआ कि जो सामान मद्रास से दिल्ली भेजने के लिए मगाये गये वे दरबार मे कपनी की प्रतिष्ठा बढाने योग्य न निकले, कभी सामान जाने की तैयारी हो जाने पर दिल्ली से परवाना न पहुँच सकने के कारण यात्रा स्थगित करनी पडी। कभी यह प्रश्न उठा कि नजराने के साथ कपनी का पटने का वकील दिल्ली जाय या

और कोई योग्यतर व्यक्ति ? इसी बीच शाह आलम या बहादुरशाह की मृत्यु हो गई और कुछ ही दिनो वाद अजीमुश्शान की भी। जहादार शाह के राज्य-काल में जव फर्रुखसियर का पटने पर कब्जा हो चुका था और कपनी के कर्मचारी उसके चदे की माग के कारण दम साध कर गगा पार लालगज मे समय विता रहे थे, कलकत्ते से कौंसिल ने उसकी सेवा मे भी अपना आवेदन-पत्र भेजा और उसे अपने नजराने की याद दिलाकर लिखा कि, "यह हुगली के पास कलकत्ते मे तैयार है, बरसात बीतते ही हम इसे यहां से भेजने की आशा करते हैं।" फिर भी वह न भेजा गया। अन्त मे जब फर्रुखसियर की जीत हो गई, वह तख्त पर बैठ चुका और कपनी को इस बात का निश्चय हो गया कि उसके पाव जम चुके, तव फिर वही पुराना राग अलापते हुए उसने २७ मार्च १७१३ को एक आवेदनपत्र भेज कर, मुर्शिदकुली खा की शिकायत की और सम्राट् से 'नि-शुल्क व्यापार' करने की इजाजत मागी। टेक या 'स्थायी' वही पुराना था कि "जो नजराना हमारी ओर से दरबार मे जाने वाला है, उसे मछलीबदर में कुछ देर हुई, पर अव वह यहा पहुँच गया है। हम उसे जल्द से जल्द दिल्ली भेजना चाहते हैं। उम्मीद है कि सब सूवेदारो के नाम ऐसे हस्बुल्हुक्म जारी हो जायगे कि रास्ते मे कही कोई रोक-टोक न हो।"

३ जनवरी १७१४ को मुर्शिदकुली खां के नाम दिल्ली से वजीर का आदेश-पत्र आया कि दपनी को व-दस्तूर व्यापार करने दिया जाय, अर्थात् उससे चुगी तलव न की जाय। समाचार कलकत्ते पहुचते ही कौसिल ने बड़ी खुशिया, मनाईं। तोपो की वाढे दाग कर वादशाह की सलामी उतारी गई—रात को आतिशबाजी छोड़ी गई। अगरेज सिपाहियो के लिए शराब की छूट कर दी गई। मुर्शिदाबाद में रामचन्द्र कपनी की ओर से वकील नियुक्त हुआ। इसको ४०) माहवार देना निश्चित हुआ। इसके साथ यह 'स्टाफ' दिया गया.—

६ कहार— १२ रु० माहवार।
५ चपरासी— १२॥ रु० माहवार।
१ मशालची— २ रु० माहवार।
दूसरे नौकर-चाकर—३॥ रु० माहवार।

जोड—३० रु० माहवार।

पूरी तैयारी हो जाने पर, १९ अप्रैल १७१४ को जान सरमन की अध्यक्षता मे कपनी का दल उपहार-सहित कलकत्ते से दिल्ली रवाना हुआ। सरमन के वाद दर्जा था खोजा सरहाद का जो अगरेज नही, अर्मनी व्यापारी था। इसकी दिल्ली-दरवार मे रसाई थी और यह पहले भी कपनी के काम आ चुका था। जव फर्रुखसियर वालक था, तव इसने कुछ विलायती खिलौने उसकी भेट किये थे—इससे भी कपनी को आशा थी कि वह जो कुछ चाहती थी उसे दिलाने मे यह वडा उपयोगी सिद्ध होगा। इसके पक्ष मे एक वात और थी—फारसी भाषा पर इसका पूरा अधिकार था। इसके अलावा दो सहायक और एक सर्जन भी थे। ये तीनो अगरेज थे। सरहाद के साथ यह तै हो चुका था कि—

(क) जो अधिकार कपनी को पहले प्राप्त थे, वे फिर फरमान-द्वारा उसे मिल गये और कपनी को कलकत्ते की जमीदारी की हद वढाने की इजाजत मिल गई और अगर उसने मछली वदर के पास वह टापू कपनी को दिला देने की कोशिश की, जिस पर मद्रास की कौंसिल की नजर थी, तो उसे पुरस्कार-स्वरूप ५०,०००) मिलेगा। अगर वह यह सव न दिला सका, तो वह कुछ भी पाने का हकदार न होगा।

(ख) अगर सरहाद ने सूरत में भी कपनी का व्यापार नि शुल्क करा दिया, तो उसे ५०,०००) और मिलेगा। अगर वह यह न करा सका, तो वह यह रकम पाने का हकदार न होगा। पर व्यापार नि शुल्क करा देने मे सफलता न भी हो, तो चुगी की दर २॥) सैकडा करा देने का प्रयत्न तो उसे करना ही होगा।

दूत-दल को विभिन्न कारणो से पटने मे प्राय एक साल रुक जाना पडा। मार्च १७१५ मे कौंसिल को खवर मिली, कि सरहाद वख्शी से मिलने गया तो वहा शेख ईसा, फतहचन्द और लालजी भी मौजूद थे और सव ने यही कहा कि, "जब तक आप लोग और सिपाही अपने साथ नही ले लेते, तब तक आगे बढना खतरनाक है।" पर सरमन और सरहाद की आपस मे अनवन शुरू हो गई थी, इसलिए सरमन ने इस वात पर कुछ भी ध्यान नही दिया। "जहा-तहा

फौजदार अपनी-अपनी जगह छोड़कर लापता हो चुके है। उज्जैनियो * ने कई जगह रास्ता रोक रखा है।" यह सारी खबर सरहाद की भेजी हुई थी। उधर सरमन का कहना था कि "पूछताछ से मालूम हुआ है कि रास्ता खुला हुआ है, व्यापारियो का जाना-आना जारी है।" सरमन उस समय नौबतपुर मे था और सरहाद पटने में। इसे सरमन ने आगे बढने का आदेश भेजा।

जून १७१५ में दूत-दल दिल्ली पहुच गया। जो सामान नजर करने के लिए यह साथ लेता गया था, उसमे कमखाब, वनात, रग-बिरगे मखमल के थान, दस्ताने, पिस्तौले, तमचे, तलवारें, कलमतराश, तरह-तरह के खिलौने, क्लाक (घडिया), आईने इत्यादि थे। दल के साथ घुडसवार, चपरासी, कहार, गाडीवान आदि तो थे ही।

दिल्ली मे इस दल को प्राय. दो बरस ठहरना पडा। कपनी के सौभाग्य से जो सर्जन † दूत-दल के साथ गया था, उसके इलाज से फर्रुखसियर बवासीर-रोग से मुक्त हो गया था। फिर भी आज, कल होता ही रहा। दरबार का काफी अनुभव हो जाने पर दूत-दल ने वजीर अब्दुल्ला खा का पल्ला पकड़ा। वह उदार और शीलवान् था। कपनी के दूत-दल से उसने शीराज की कुछ शराब के सिवा और कुछ भी स्वीकार नही किया और जो जो रिआयत वह दल चाहता था, वह उसे दिला भी दी।

फरमान और हस्बुल्हुक्म उस समय पहले की अपेक्षा कही सस्ते हो चले थे। अगर बात ऐसी न होती, तो सरमन दिल्ली से खिलौनो और आईनो के बदले ३ फरमान और ३२ हस्बुल्हुक्म लेकर कलकत्ते न लौटता।

इस बीच मे कपनी और दीवान के बीच जो झगडा चला आता था, वह बना ही रहा। मुर्शिदकुली खा को कासिमबाजार वाले कभी कुछ नरम पाते

---

* उज्जैनो या उज्जैनिये भोजपुर इलाके के क्षत्रिय थे।

† इसका नाम विलियम हैमिल्टन था। १० दिसम्बर १७१५ को उसे सम्राट् से एक सदरो, एक जडाऊ कलगी, हीरे की दो अगूठिया, एक हाथी, एक घोडा और पाच हजार रुपये इनाम के तौर पर मिले।

तो कभी कुछ गरम। पर कपनी जो कुछ भी रिआयतें चाहती थी, वे उसे मिलने वाली न थी। एकाध बार उसकी ओर से उसके वकील ने बादशाह की दुहाई भी दी और समाचार-पत्र न होते हुए भी जहा-तहा जो वाकयानवीस या अखबारनवीस नियत थे, उनकी जेब गरम कर कपनी ने उनके द्वारा अपनी फरियाद भी दिल्ली तथा मुर्शिदाबाद तक पहुचवाई। एक अवसर पर हुगली का वाकयानिगार अपनी रिपोर्ट में लिखता है.—

"अगर मुर्शिदाबाद-कचहरी का चुगी का दारोगा, सम्राट् या दीवान की आज्ञाओ के विरुद्ध अगरेजो से चुगी लेना, बन्द नही करता और जो चुगी ली जा चुकी है, उसे लौटा नही देता, तो सभव है कि बहुत से व्यापारियो को हानि उठानी पडे। कारण कि अगरेजो के व्यपार को रोक देने का अर्थ है बगाल-मात्र के व्यापार को रोक देना।" ५ मई १७१५ के लेखे मे लिखा है—"जो बात वाकयानवीस लिख चुका है उसी को सवानेहनवीस दोहरा चुका है।"

नवम्बर १७१७ मे सरमन कलकत्ते लौटा। जितने शाही आज्ञापत्र जारी हुये थे, उन्हें वह साथ लेता आया। उनकी नकलें पदाधिकारियो के पास दिल्ली से पहले ही पहुच चुकी थी। कपनी की ओर से दूत-दल और उसके साथ आने वाले आदेशपत्रो के स्वागत की धूमधाम से तैयारिया की गई। अगवानी के लिए कपनी के छोटे-बडे कर्मचारी, व्यापारी तथा अन्य नागरिक हुगली से कुछ दूर आगे, त्रिवणी तक गये। दूत-दल को वहा बधाइया दी गई, सम्राट् को धन्यवाद दिये गये। फिर कलकत्ते मे आनन्दोत्सव मनाया गया। एक हजार रुपया खर्च कर इसके लिए एक शामियाना तैयार कराया गया था। सभा में कपनी की ओर से अध्यक्ष ने फिर सम्राट् के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उन्हें अनेकानेक धन्यवाद दिये। आमन्त्रित व्यक्तियो में हुगली के वाकयानिगार, सवानेहगार, हरकारा-दारोगा इत्यादि भी थे। दिल्ली से एक गुर्जबरदार भी साथ आया था। उसे त्रिवेणी में ही २,०००) सम्राट् की भेंट के तौर पर दिया जा चुका था और वाकयानिगार उसकी खबर भेज चुके थे। कलकत्ते में गुर्जबरदार को ५००), एक सरोपा, एक थान कमखाब, पगडी के लिए बोरा और एक पटका दिये गये। रह गये सवाददाता और हरकारा-दारोगा।

वाकयानिगार को मिले:—

६ गज सुर्ख बनात।

२ थान नारगी बनात।

२ थान साधारण हरे रंग का कपड़ा।

सवानेहगार को मिले—

१ थान नारंगी बनात।

१ थान साधारण हरे रग का कपडा।

हरकारा-दारोगा के हिस्से मे नारंगी बनात और उस हरे रग के कपडे के दस दस गज आये।

बगाल, बिहार आदि के लिए फरमान और हस्बुल्हुक्म पहुँच गये—कंपनी इनके मिलने के उपलक्ष्य मे बडे समारोह से उत्सव मना चुकी—तोपो की बाढें दग चुकी—आतिशबाजी छोडी जा चुकी—सवाददाता बढा-चढा कर इन सारी घटनाओ की खबर मुर्शिदाबाद और दिल्ली भेज चुके, पर इनका मुर्शिदकुली खा पर कुछ भी असर न हुआ। कंपनी को नि शुल्क व्यापार करने देना तो वह खुद मंजूर कर चुका था, पर बाकी बातें जहा थी, वही रही। न तो कंपनी के लिए टकसाल का दरवाजा खुला, न वह अपनी जमीदारी की हद को ही बढा सकी।

फिर भी सरमन-वसीठी निष्फल रही, यह इतिहासकारो को स्वीकार नही हो सकता। मुर्शिदकुली खा ने कपनी को उससे तात्कालिक लाभ नही होने दिया, पर कंपनी को बराबर यह कहते रहने का मौका तो मिल गया कि उसने सम्राट् के आदेश की अवहेलना कर अगरेजो के साथ घोर अन्याय किया, उन्हे गहरी हानि पहुँचाई। विल्सन ने लिखा है कि जब कई बरस बाद क्लाइव ने खुल्लमखुल्ला तलवार सूत कर इस देश पर कब्जा करना शुरू किया, तब उसे अपनी कार्रवाइयो के लिए यह बहाना या दलील अच्छी मिल गई कि सरमन ने कपनी के लिए जो अधिकार दिल्ली से प्राप्त किये थे, उनसे भी एक प्रान्तीय

शासक की निरकुशता के कारण वह वचित ही रही। उस दूत ने जो काम शुरू किया था, उसे इस 'रणवीर' ने पूरा किया।

(२) पृष्ठ ७०—अब्दुल्ला खा की प्रकृति नरम थी, हुसैन अली खा की गरम। पर दोनो का सास्कृतिक स्तर ऊँचा था और दोनो ही स्पष्टवक्ता थे। उनके विरुद्ध जो मन्त्रणाये होती, जो चालें चली जाती—उनकी जानकारी रखते हुए भी उन्होने कभी कपट या कुटिलता से काम नही लिया। वे दोनो भयकर से भयकर परिस्थिति का सामना करने के लिए वरावर तैयार रहते, पर अपने तई इस वात की कोशिश करते कि खून-खरावी न हो। यह उनकी भलमनसाहत कही जाय, या उनकी कमजोरी, इतना जरूर है कि पदाधिकारियो के चुनाव या नियुक्ति के सम्वन्ध मे उन्होने कडाई से काम नही लिया और फर्रुखसियर को वहुत कुछ निरकुश रहने दिया। नतीजा यह हुआ कि दरवार उनके दुश्मनो का अखाडा वन गया और इन लोगो ने वादशाह के कान भरते भरते उसके और सैयद-वन्धुओ के बीच एक चौडी खाई खोद दी।

सैयद-वन्धुओ के शत्रुओ में :—

(क) खानदौरा का पूरा नाम था समसामद्दौला खानदौरा वहादुर मसूरजग। इसके पूर्वज वदख्शा से आकर आगरे के पास वस गये थे। खानदौरा विद्वान् तो न था, पर दरवार के तौर-तरीके वहुत अच्छी तरह जानता था। उसकी वाक्पटुता भी ऊँचे दर्जे की थी। षड्यन्त्रो मे खूव भाग लेता, पर मार-काट से वहुत घवराता। १७३९ में नादिरशाह के साथ होने वाली लडाई में इसे मजवूर होकर मोरचा लेना पडा और उसी लडाई मे यह खेत आया।

(ख) निजामुल्मुल्क का नाम पहले मीर कमरुद्दीन था, फिर चिंकिलिच खा पडा। इसके पूर्वज समरकद से आये थे। गोरखपुर में फौजदार रह कर इसने नाम कमाया और आगे वढते-वढते दक्खिन का सूवेदार नियुक्त हुआ। पर जव यह पद हुसैन अली खा को मिल गया, तव यह चोट खाकर दिल्ली लौट आया और सैयद-वन्धुओ के विरोधी-दल में सम्मिलित हो गया। जिस समय फर्रुखसियर सिंहासन-च्युत हुआ, उस समय यह मुरादावाद का फौजदार था।

सैयद-बन्धुओ के विनाश के बाद यह कुछ समय तक वजीर रहा, फिर दक्खिन जाकर स्वतन्त्र-सा हो गया। इतिहास में यह आसफजाह निजामुल्मुल्क के नाम से विशेष प्रसिद्ध है। हैदराबाद के वर्तमान निजाम-वश का यही प्रवर्तक था।

(ग) अमीन खा निजामुल्मुल्क का चचा और तूरानी-दल का प्रधान नेता था।

सैयद-बन्धुओ ने फर्रुखसियर से कई बार कहा कि, "यह स्पष्ट है कि आप हमारे किये हुए उपकार को भूल गये और अब हमारे दुश्मनो की ओर हो रहे हैं। ऐसी हालत मे आपको हमारा इस्तीफा मजूर कर हमें अपने गाव चले जाने की इजाजत दे देनी चाहिए। अगर हमें अपनी सेवा में रखना ही है, तो हमारे दुश्मनो से कहिए कि एक बार मैदान में मुकाबले पर आयें और अपने जौहर दिखायें। शर्त यह होगी कि जो दल मैदान मार ले, वही दरबार में रहने पावे; जो हार जाय, उसे दरबार-निकाला मिल जाय। अगर आप को यह भी मजूर न हो, तो हमें बल्ख और बदख्शा पर चढाई करने की इजाजत मिल जाय। हमारी प्रार्थना यही है कि अगर हम उन्हें जीत लें, तो हम उन दोनो प्रदेशो के जागीरदार माने जायें।"

पर इनमें से कोई बात फर्रुखसियर को मंजूर होने वाली न थी। नैतिक बल के अभाव के कारण वह इतना भी स्वीकार न करता कि उनके प्रति उसके मन में किसी प्रकार का असन्तोष था। बराबर यही कहता कि, "आप अपनी परछाईं से डरते है। दरबार में न तो आपका कोई शत्रु है, न आपके विरुद्ध किसी प्रकार का षड्यन्त्र है। आप पर मेरा पूरा विश्वास है। भला ऐसी कृतघ्नता मुझसे कभी हो सकती है कि मै आपकी सेवाओ को भूल जाऊँ! आप जहां है, वही बने रहें, इस्तीफा देने या बल्ख-बदख्शा जाने की कोई जरूरत नही।"

फर्रुखसियर एक ओर तो हुसैन अली खा को पुरस्कृत करने के बहाने कहीं उच्च पदाधिकारी बनाकर भेजता, दूसरी ओर किसी सरदार को इनाम-इकराम का प्रलोभन देते हुए लिखता कि देखना, यह दिल्ली जिन्दा न लौटने पावे। जब ऐसे खत सैयद-बन्धुओ के हाथ लग जाते और वे सम्राट् से उनका

जिक्र करते, तब वह उनके लेखक या प्रेषक होने से साफ इनकार कर जाता और कहता कि जिस खत की आप बात कर रहे है, वह जरूर जाली होगा। हमने तो स्वप्न मे भी कभी किसी को ऐसा आदेश नही दिया !

सैयद-बन्धुओ के दरबारी शत्रुओ का यह हाल था कि वे पीठ पीछे बातें बघारते, जहर उगलते, तरह-तरह की बदिशें बाधते, पर उनमें आमने-सामने हो कर उनका विरोध या उन पर वार करने की हिम्मत करने वाला कोई नही था। वे सब के सब, एक इतिहासकार के शब्दो मे,'शेरे-कालीन' थे,'मर्दे-मैदान' नही। "यो आबरू बनावे जग में हजार बाता, जब तेरे आगे आवे गुफ्तार भूल जावे"— प्रत्येक का यही हाल था।

अब्दुल्ला खा का पल्ला हलका करने के लिए हुसैन अली खा दक्खिन का सूबेदार बनाकर उधर भेज दिया गया। इधर दिल्ली में उनके विरुद्ध संगठन होने लगा—अब्दुल्ला खा ने आत्म-रक्षा के लिए जो दीवार खडी कर रखी थी उसमें छिद्र ढूढे जाने लगे। हुसैन अली खा को सम्राट् ने अपनी आखो से आसू बहाते हुए विदा किया था, यद्यपि उन आसुओ से वह धोखे में आने वाला न था और चलते समय यह स्पष्ट कह गया था कि अगर मेरे भाई पर किसी प्रकार का आघात हुआ तो औरगाबाद से दिल्ली पहुँचना मेरे लिए बीस दिनो से अधिक का काम न होगा।

दो-तीन साल तो अब्दुल्ला खा ने किसी तरह बिताये, फिर जब वह दुश्मनो की हरकतो से तग आ गया, तब उसने अपने छोटे भाई को लिखा कि प्याला अब छलकने पर है, जितना जल्द हो सके, तुम यहा आ जाओ। खत मिलते ही हुसैन अली खा ने मराठो से सन्धि कर उन्हें चौथ देना स्वीकार कर लिया और रकाब में पैर रखकर अपने भाई की रक्षा के लिए रवाना हो गया। उसके साथ सहायको के रूप मे प्राय पन्द्रह हजार मराठे घुडसवार भी थे। आनन-फानन वह १६ फरवरी १७१८ को दिल्ली जा पहुँचा और पहुँचते ही फर्रुखसियर के होश ठिकाने करने के काम में लग गया। जब उसने देखा कि कोरी बातो से कुछ बनने वाला नही, तब उसने लाल किले को घेर लिया और अपने बडे भाई के द्वारा समझौते की बातें कराने लगा—इस आशा से कि शायद फर्रुखसियर अब भी होश मे आ जाय!

पर वह आने वाला न था। "विनाशकाले विपरीतबुद्धि"—वह इसका एक खासा अच्छा उदाहरण है। किले में वस्तुत. कैदी होते हुए भी, वह अपने को क्या समझे बैठा था, यह कहना तो कठिन है, पर जो अब्दुल्ला खा के मुह पर उचित बात कहने का भी साहस न करता, वही अब आपे से बाहर होकर उसे गालिया भी दे बैठा। "तेरे गाव मे मै गधो के हल न चलवा दू और तेरी बहू-बेटियो की सुथनियों में चूहे न डलवा दू, तो मै तैमूरलंग का सच्चा वशज नही!"

पर होने वाला कुछ और ही था। २७ फरवरी को हुसैन अली खा की फौज ने किले को घेर लिया था और उसी दिन फर्रुखसियर से अब्दुल्ला खा की यह आखिरी मुलाकात थी। भय और क्रोध ने फर्रुखसियर को विवेकहीन कर दिया था। एक बार उसके मन मे आया भी कि आत्मसमर्पण कर दू तो यह विचार कर कि अब उसे अब्दुल्ला खा के पास जाकर दया-भिक्षा मागनी पड़ेगी, उसने वह इरादा छोड दिया। किले के भीतर भी सैयद-बन्धुओ के सैनिको और सहायको का कड़ा पहरा था। इन सहायको मे जोधपुर के महाराज अजित सिंह,* कोटा के महाराव भीमसिंह हाड़ा† और नरवर‡ के गजसिंह नरवरी मुख्य थे। अजितसिंह फर्रुखसियर को अपनी लडकी का डोला दे चुके थे, पर उन्होने साथ बराबर सैयद-बन्धुओ का ही दिया। जयपुर के धिराज राजा सवाई जयसिंह § उन दोनो भाइयो के विपक्षी थे, और दिल्ली मे यह आशा की जाती थी कि वह वहा पहुँचकर फर्रुखसियर की रक्षा करेगे। पर इस मौके पर वह उधर जाने से रह गये।

---

* महाराज जसवन्त सिंह के पुत्र, जिन्हे राठोर सरदार दुर्गादास ने औरगजेब के चगुल मे फसने से बचाया था। यह मुहम्मद शाह के समय में अपने ही पुत्र बख्त सिंह के हाथो मारे गये।

† कोटा राज्य के संस्थापक माधोसिंह हाड़ा के वंशज।

‡ आगरा-प्रान्त के अन्तर्गत यह सभवतः राजा रामदास नरवरी के वंशज थे।

§ जयपुर को इन्ही ने बसाया। वड़े ज्योतिष-प्रेमी थे और इन्होंने कई मान-मन्दिर बनवाये।

घटनाओ की रफ्तार बहुत तेज हो चली थी। २८ फरवरी को अब्दुल्ला खा ने कुछ कागजो पर दस्तखत कराने के लिए फर्रुखसियर को जनाने में बुलावा भेजा तो उसने बाहर निकलने से इनकार कर दिया। इस पर कुछ आदमी एक दूसरे राजकुमार को ले आने के लिए भेजे गये। इसका नाम बेदारबख्श था और जो राजकुमार बच रहे थे, उनमें यह सब से योग्य समझा जाता था। पर स्त्रियो ने यह समझकर कि सैयद-बन्धु एक-एक कर सभी शाहजादो को खतम करना चाहते है, उसे ऐसी जगह छिपाया कि उसका कही पता न चला। इतने में खोजने वालो की नजर एक दूसरे राजकुमार रफी-उद्दरजात पर पडी और वे उसी को लेकर चल दिये। बादशाह के दस्तखत हुए बिना कई जरूरी काम रुके पडे थे, इसलिए रफी-उद्दरजात को चटपट तख्तताऊस पर बैठाकर सम्राट् घोषित कर दिया गया। फिर राजा रतनचन्द, राजा बख्तमल, दीनदार खा, नज्मुद्दीन खा आदि सरदारो को हुक्म हुआ कि जैसे हो सके, फर्रुखसियर को यहा लाकर हाजिर करो। इनके साथ चार सौ सिपाही भी दिये गये। ये लोग अन्त पुर में घुसे, तो वह स्त्रियो के आर्तनाद से प्रतिध्वनित हो उठा। फर्रुखसियर ढाल-तलवार लिये किसी कमरे मे बैठा था। उसने प्राणो की ममता छोडकर इन लोगो का अकेला मुकाबला भी किया, पर उसे गिरफ्तार होते देर न लगी। स्त्रियो ने उसे बचाने की भरपूर चेष्टा की, पर उससे होना ही क्या था! हुक्मी बन्दे उसे घसीट कर बाहर ले ही गये। जो अभी थोडी देर पहले तक भारत का सम्राट् था, उसे नगे पाव और नगे सिर ही नही जाना पडा, कुछ गालिया भी सुननी पडी, कुछ ठोकरें भी खानी पडी।

दीवानेखास मे फर्रुखसियर अब्दुल्ला के सामने पेश किया गया और उसके हुक्म से अधा कर दिया गया। इसके बाद वह तिरपौलिया की कालकोठरी मे पहुँचाया गया, जहा प्राय दो महीने बाद उसे जल्लादो के हाथ मरना पडा। उसके काले कारनामो को याद कर इतिहासकार को कहना पडता है कि अपने ही छोटे भाई से लेकर सिक्ख-जाति के धर्मवीर बन्दा तक सैकडो आदमियो के नृशसतापूर्वक बहाये हुए खून से हाथ लाल करने वाले इस नर-पिशाच के साथ दैव ने किसी प्रकार का अन्याय नही किया।

इस क्रान्ति के वाद महाराज अजितसिंह अपनी वेटी इन्द्रकुवर को दिल्ली से जोधपुर ले गये। उसके साथ एक करोड़ रुपये से अधिक की निजी सम्पत्ति भी गई। जोधपुर मे इन्द्रकुवर की 'शुद्धि' हुई और उसे अपने पिता के घर रहने का अवसर मिला। अजितसिंह ने जो कुछ किया, वह मुसलमानो की दृष्टि में मुगलवश-परम्परा और मुगल-राजसत्ता का घोर अपमान था। पर आलोचक आखिर करते ही क्या? उन्होने अजितसिंह को 'दामादकुश' कहकर सन्तोष किया।

रफी उद्दरजात की उम्र कुल वीस साल होते हुए भी वह संसार में अधिक समय तक रहने वाला न था। उसे तपेदिक की बीमारी थी और तख्तनशीन होने के चार महीने के भीतर ही उसे काल-कवलित होना पड़ा। उसके वाद रफी-उद्दौला सम्राट् वनाया गया। यह वहादुर शाह का पोता था—अर्थात् रफी उश्शान का वेटा। पर स्वास्थ्य सन्तोषजनक न होने के कारण इसे भी तीन ही चार महीने वाद परलोक सिधारना पड़ा। २८ सितम्वर १७१९ को वहादुर शाह के चौथे लडके खुजिस्ता अख्तर का बेटा रोशन अख्तर—मुहम्मद शाह के नाम से—अठारह साल की उम्र मे अव भारत का सम्राट् हुआ। इसी के राज्य-काल में पहले हुसैन अली खा की हत्या हुई, और फिर कुछ समय वाद अब्दुल्ला खां की कारागार में मृत्यु। इसके वाद निजामुल्मुल्क का चचा मुहम्मद अमीन खा वजीरे आजम हुआ और इसके मर जाने पर १७२२ में स्वयं निजामुल्मुल्क। पर प्रायः एक ही साल वाद यह दक्खिन चला गया और इसकी जगह मुहम्मद अमीन खां का वेटा कमरुद्दीन खां प्रधानमत्री हुआ।

(३) पृष्ठ १०७—नादिरकुली नाम का एक तुर्कमान दरिद्र कुल में जन्म लेने पर भी, योग्यता के वल से, ईरान का वादशाह वन गया। वही शहंशाह नादिरशाह के नाम से मशहूर हुआ। उसका अफगानो से वैर था और कन्धार से भागे हुए अफगानों को मुगल-सरकार हिन्दुस्तान में शरण न देती तो नादिरशाह इस मुल्क पर चढाई न करता। उसने दो-तीन दूत दिल्ली भेजे, और मुहम्मदशाह को लिखा कि आप हमारे साथ मित्र का-सा व्यवहार नही कर रहे है। पर दिल्ली-दरवार से एक साल तक कोई जवाव न मिला। फिर नादिरशाह ने चढ़ाई कर

दी। कावुल-प्रान्त इसी देश के अन्तर्गत था, पर वहा आय से व्यय अधिक हुआ करता था, इसलिए टोटा पूरा करने के लिए दिल्ली से कुछ लाख रुपये हर साल वहा भेजे जाते थे। इधर शासन-सम्बन्धी शिथिलता के कारण यह रकम नियमित रूप से नही भेजी जा रही थी, जिसके फलस्वरूप वहा के सैनिको या रक्षको का वेतन पाच साल से नही चुका था। नादिरशाह का विरोध नही के बरावर हुआ। उसने पेशावर और लाहौर पर वात की वात में कब्जा कर लिया और ११ फरवरी १७३९ को वह सरहिन्द-अम्बाला-शाहावाद होता हुआ करनाल पहुँच गया।

१३ फरवरी को होनेवाली लडाई में मुहम्मदशाह को वुरी तरह हारना पडा। खानदौरा, अपने तीनो वेटो के साथ, खेत आया, अवध का सूबेदार सआदत खा घायल होकर गिरफ्तार हुआ, नादिरशाह को यह कहने का मौका मिला कि यहा के लोग मरना जानते है, लड़ना नही जानते। मुहम्मदशाह भी करनाल में ही था। दूसरे ही दिन उसने निजामुल्मुल्क को नादिरशाह के पास भेजा। सन्धि-सम्वन्धी वातचीत होने लगी। नादिरशाह की माग पचास लाख रुपये की हुई—जिसमें २० लाख वह तत्काल चाहता था और वाकी ३० लाख कावुल पहुँच जाने तक। उसकी इच्छा दिल्ली की ओर वढने की न थी। निजामु-ल्मुल्क ने उसकी शर्तें मजूर कर ली और लोगो ने समझ लिया कि वादल हट चले, आसमान साफ हो गया।

लेकिन निजामुल्मुल्क के दुश्मन भी थे। जव उसे शावाशी मिली और उसका वेटा फीरोज़ जग, खानदौरा की जगह, मीर वख्शी कर दिया गया, तव वे जल-भुन कर खाक हो गये। सआदत खा ने निजामुल्मुल्क की शिकायत करते हुए उससे कहा कि "आपने धोखा खाया। अगर आप दिल्ली चलें तो जवाह-रात के अलावा आपको २० करोड रुपये नकद मिल सकते है।" इससे नादिर शाह की आखें खुल गई, और वह दिल्ली की ओर चल पडा।

९ मार्च को उसने सदल-वल दिल्ली में प्रवेश किया और लाल किले में जाकर डेरा डाल दिया। मुहम्मदशाह उसके स्वागत की तैयारी के लिए वहां पहले ही पहुँच चुका था। सआदत खा डपोरसख सावित हुआ और नादिरशाह

के फटकारने पर उसने आत्महत्या कर ली। १० मार्च को बाजार में यह अफवाह उडी कि नादिरशाह मारा जा चुका है। कुछ नागरिक उत्तेजित होकर ईरानी सैनिको पर टूट पड़े और प्राय: तीन हजार आदमी उनकी तलवारो के शिकार हो गये। नादिरशाह को इस पर क्रोध हो आना स्वाभाविक ही था और उसने खून का बदला खून से लेने का निश्चय कर, दूसरे ही दिन, कत्लेआम का हुक्म दे डाला, जिसके फलस्वरूप कम से कम बीस हजार दिल्ली-निवासी मौत के घाट उतार दिये गये।

नादिरशाह दिल्ली में प्राय. दो महीने रहा। २६ मार्च को एक मुगल-राजकुमारी के साथ उसके छोटे बेटे का ब्याह हुआ। उसका बाकी सारा समय राजा और प्रजा के रक्त-शोषण मे ही बीता।

दिल्ली–निवासियो की मुहल्लेवार तालिकायें तैयार कराई गई और जिससे जो कुछ वसूल किया जा सकता था, जबरन वसूल कर लिया गया। इस जोर-जबर्दस्ती और लूट-पाट का नतीजा यह हुआ कि हजारो घर बरबाद या खाली हो गये। कोहनूर और तख्त-ताऊस तो हडप ही लिये गये, शाही खजाने में भी जो कुछ हाथ लग सका, ले लिया गया। आर्थिक के अलावा भारतवर्ष की राजनीतिक हानि भी हुई। काश्मीर से सिन्ध तक जो प्रदेश सिन्धु नदी के पश्चिम पड़ता था, उस पर नादिरशाह का आधिपत्य हो चला। कुछ समय बाद पजाब की भी यही दशा हुई। मुगल सल्तनत को जबर्दस्त धक्का पहुचाकर नादिरशाह ने ५ मई १७३९ को अपने घर की राह ली। एक इतिहासकार का अनुमान था कि वह प्राय. ७० करोड की धन-सम्पत्ति अपने साथ ले गया।

(४) पृष्ठ १०८—अपने "हिन्दी के निर्माता" नामक ग्रंथ के प्रथम भाग में, बाबू श्यामसुदर दास राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के सम्बन्ध में लिखते है.—"सुप्रसिद्ध रणथभौर गढ में घघार नाम का एक परमार राजा राज्य करता था। उसके पुत्र का नाम गोखरू था। हमारे राजा साहब इसी गोखरू गोत्र में थे। बादशाही समय मे इनके पूर्वज दिल्ली में जौहरी का व्यवसाय करते थे। वे नादिरशाही में दिल्ली से भागकर मुर्शिदाबाद

चले गये। नवाब कासिमअली खा के अत्याचार से राजा शिवप्रसाद के पितामह राय डालचद काशी में आ बसे। उनके पुत्र बाबू गोपीचद थे जिनके पुत्र हमारे चरितनायक राजा शिवप्रसाद थे। राजा साहब का जन्म मिती माघ सुदी २ सवत् १८८० मे हुआ था।"

(५) पृष्ठ ११८—गिरिया की लडाई के दिन, आलमचन्द के साथ, शायद फतहचन्द भी सरफराज खा की ओर से मैदान में मौजूद थे। "मुताखरीन" में लिखा है कि—"एक ओर सन्धि की बात चल रही थी, दूसरी ओर फतहचन्द अलीवर्दी खा के सरदारो को फोडने की चेष्टा कर रहे थे। उनकी ओर से प्रत्येक सरदार को कहलाया गया कि तुम अलीवर्दी खा को गिरफ्तार करा दो। जिसका जैसा पद था, उसे वैसी ही रकम मिलने की आशा दिलाई गई। विश्वास कराने के लिए फतहचन्द ने उनके पास दस्तखती पुरज़े भी भेजे। उन पर लिखा था कि इस पुरजे की रकम का भुगतान मिलेगा, पर उसी हालत मे जब अलीवर्दी खा को गिरफ्तार कर उसके सैनिक सरदार सरफराज खा के हवाले कर देगे।" कई सरदारो के पास ऐसे पुरजे पहुँचे, जिनमे मुस्तफा खा भी था। मुस्तफा, कुछ सरदारो के साथ, अलीवर्दी खा के पास गया और उन पुरजो को दिखाकर कहा कि—"अगर हम लोगो को लडना है, तो अब इसमे जरा भी देर न करनी चाहिए। कल सुबह होते ही लडाई छिड जाय, नही तो परसो बात बिगड जायगी।" अलीवर्दी खा को मुस्तफा की सलाह बहुत ठीक जँची और उसने उसी दम हुक्म दिया कि सारी फौज कल सुबह चोट करने के लिए तैयार हो जाय। यहा प्रश्न उठता है कि "क्या "मुताखरीन" का बयान सच्चा है और क्या फतहचन्द ने सचमुच सरफराज खा की ओर से वैसा काम किया था ?" "मुताखरीन" के अनुवादक का कहना है कि बात ठीक उलटी हुई थी। उसने यहा फुटनोट देकर लिखा है कि, "मै कुछ दिनो तक मुर्शिदाबाद मे रह चुका हूँ और मै जानता हूँ कि अलीवर्दी खा ने फतहचन्द की मार्फत सरफराज खा की फौज को रिश्वत दिलाई थी। जिस समय मै यह अनुवाद करने मे लगा था, उस समय सरफराज खा की फौज का एक सरदार जिन्दा था। उसने मुझसे कहा था कि तोप को

गोला-बारूद की जगह कूडा-करकट से भरने के लिए मैंने खुद चार हजार रुपये पाये थे।" इस बात की पुष्टि और प्रमाणो से भी होती है। ऐसी अवस्था में "मुताखरीन" की बात का अर्थ यही हो सकता है कि फतहचन्द ऐसे पुरजे बटवा कर किसी की सहायता कर रहे थे तो अपने 'मित्र' अलीवर्दी खा की, न कि सरफराज खां की। जान पडता है कि उन्होने अलीवर्दी खा की सम्मति या अनुरोध से ही यह काम किया था। अलीवर्दी खा लडाई शुरू करने के लिए कोई बहाना ढूढ रहा था और जब उसने नवाब की ओर से किसी तरह की छेड-छाड होते न देखी, तब उसने फतहचन्द से वैसे पुरजे लिखवाकर अपनी फौज मे बँट-वाये और एक हीला-हवाला खडा कर लिया। यदि फतहचन्द ने सचमुच सरफ-राज खा की ओर से वैसी चेष्टा की होती तो रण मे विजय लाभ करने वाला अलीवर्दी खा उनसे इसका बदला लिए बिना न रहता। पर इतिहास का साक्ष्य तो यह है कि अलीवर्दी खा आजन्म अपने को फतहचन्द का ऋणी मानता रहा और दोनों में कभी मनमुटाव तक न हुआ। (मि० लिट्ल)

(६) पृष्ठ १४७—"रियाजुस्सलातीन" के अगरेजी अनुवादक मौलवी अब्दुस्सलाम ने यह मत प्रकट किया है कि मराठो के आतक से बहुतेरे कुलीन मुसलमान पश्चिम और दक्खिन बगाल छोडकर पूरब और उत्तर बगाल में जा बसे और यही कारण है कि पश्चिम बगाल मे—तथा मुर्शिदाबाद के आसपास भी—हिन्दुओ से मुसलमानो की सख्या इतनी कम है। पर अठारहवी शताब्दी के मुसलमान इतिहासकारो ने भी जो कुछ लिखा है, उससे इस मत की पुष्टि नही होती कि मराठो के डर से भागनेवाले अधिकतर मुसलमान थे। आखिर पूरब या उत्तर बंगाल के मुसलमानो मे ऐसे भागे हुये सरदारो, जागीरदारो या अहलकारो के वशज निकलेगे ही कितने? जगत्सेठ मुर्शिदाबाद छोड़कर ढाके चले गये थे। पाइकपाड़ा राज्य के स्वत्वाधिकारी पहले मुर्शिदाबाद जिले के काडी इलाके में रहते थे, पर उन्हे भी मराठो की दहशत से कुछ समय के लिए रामपुर बौलिया भाग जाना पड़ा था। बगाल में कहीं हिन्दुओ की तो कही मुसलमानो की संख्या अधिक होने के कारण चाहे जो भी रहे हो, वे अलीवर्दी खां तो क्या, मुर्शिदकुली खा के समय मे भी पुराने हो

चुके थे। मराठो की चढाइयो से कोई नयी बात नही हुई। लूटपाट की दृष्टि से उनके लिए हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—सब एक से ही थे।

(७) पृष्ठ १५०—कलकत्ते के अगरेज कर्मचारियो को मिलनेवाला वेतन इस प्रकार था—

	पौंड	=	रुपया	
गवर्नर	३००	"	२४००	प्रतिवर्ष
बडा पादरी	१००	"	८००	"
कौसिल का प्रत्येक सदस्य	४०	"	३२०	"
सर्जन	३६	"	२८८	"
क्लर्क	५	"	४०	"

पर वेतन के अलावा उन्हे कुछ सुविधायें प्राप्त थी, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह थी कि वे निजी व्यापार कर सकते थे।

महताबराय

"रात्रिर्गमिष्यति, भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति, हसिष्यति पंकजश्रीः"—
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हन्त, हन्त, नलिनीं गज उज्जहार !!

पंडितराज जगन्नाथ

कंज के कोस मैं भौंर बंध्यो,
अपसोस कियो मन मैं अति ऊवा।
ह्वै है प्रभात, उदै है दिवाकर,
छूटिहौं मैं अलि जाल मैं डूवा।
'वेनी' न सोचेउ मूढ़ अजौं,
अरु काल को ख्याल न जान्यो अजूबा।
तोरि लई नलिनी गज त्यों,
रहिगो मनको मन ही मनसूवा॥

'वेनी' कवि

(१)

फतहचन्द के मरने के बाद भी तीनों प्रान्तों पर मराठों क आक्रमण होते ही रहे। कहना चाहिए कि भास्कर पंडित को मारकर अलीवर्दी खां ने अपनी उलझन सुलझाई नही, और भी बढा ली। अन्त में उस लेने के देने पड़े।

महाराष्ट्र-अध्याय की समाप्ति १७५१ मे हुई, यद्यपि इसका यह अर्थ नही कि उडीसा मिल जाने पर मराठे बगाल को भूल गये। उड़ीसा तो बरसों उनके अधिकार मे रहा ही, बगाल पर भी जब-तब उनके हमले होते ही रहे।

पूरब मे कलकत्ता, पश्चिम मे पलामू, उत्तर मे भागलपुर और दक्षिण मे कटक, यह मराठो की चकफेरियों की चौहद्दी थी। इसके भीतर वे अपन घोडे दौडाते, शहर और गाँव लूटते, लोगो को तरह-तरह से सताते, पर अलीवर्दी खॉ को आग बरसाने पर उद्यत देखते ही नौ दो ग्यारह हो जाते।

जब मराठे बगाल मे पहले पहल आये थे, तब हिन्दू जनता को लगा था कि वे मुसलमानी राजसत्ता का अन्त कर हिन्दू-धर्म का उद्धार करने आये थे। पर थोड़े ही समय मे उसकी आँखे खुल गई थी और उसने देख लिया था कि ये मराठे रक्षक नही, भक्षक—बल्कि आततायी थे। फिर तो लोगो को सहानुभूति की जगह घृणा होने लगी थी और अली-वर्दी खा को उनका पूरा सहयोग मिलने लगा था।

मराठो के अत्याचार कई प्रकार के होते थे। गाँव के गॉव जला देना, लोगो का सर्वस्व लूट लेना, निरपराधियो के भी नाक-कान काट लेना—यह सभी उनके काले कारनामो मे शामिल था। किसानोंके जहाँ-तहाँ भाग जाने या दिन-रात आतक बना रहने के कारण खेती-बारी, बाणिज्य-व्यापार को बहुत भारी धक्का लगा। हालत नाजुक थी, इसलिए धनी व्यक्ति भी रुपया और सोना-चॉदी दबाकर बैठ गये। जगत्-सेठ का भी यह हाल था कि वह रुपये की मॉग पूरी नहीं कर पाते थे। टकसाल के लिए जितनी चॉदी चाहते, उतनी उन्हे विदेशी

व्यापारियों से प्राप्त नहीं होती थी। वह चाँदी मुर्शिदाबाद न जाकर और ही कहीं चली जाती थी। उधर सरकार की आय घटती जा रही थी, सैनिक व्यय बढ़ता जा रहा था। अलीवर्दी खाँ को मराठों और अफगानो से पार पाने के लिए जब-जब रुपये की जरूरत पड़ी, तब-तब उसको अपना खजाना प्रायः खाली मिला। काम चला तो कर्ज या चदे से जिसके लिए उसे कभी तो सेठ-साहूकारों, जमीदारो और अपने रिश्तेदारों को फुसलाना पड़ा और कभी उन पर अनुचित दबाव डालना पड़ा। आये दिन ईस्ट इंडिया कंपनी और दूसरी कम्पनियाँ जगत्-सेठ से कर्ज माँगती रहती थी। वह खीजते, भौह तानते, कभी सहायता करते, कभी कुछ भी देने से साफ इनकार कर देते। मराठों से १७५१ मे संधि हो जाने तक यह अर्थ-सकट बना ही रहा।

फिर भी यह याद रखना चाहिए कि मराठे कभी गंगापार नही गये। इसलिए पूरब बंगाल और उत्तर बिहार उनसे सुरक्षित ही रहे। १७४५ मे मराठो और अफगानों का मेल हो जाने पर राजनीतिक स्थिति और भी विकट हो गई। अगर मुस्तफा खाँ मारा न जाता और १७४८ में अलीवर्दी खाँ अफगानों को परास्त कर, अपने मार्ग के दो काँटो मे से एक को सदा के लिए नष्ट न कर देता, तो बंगाल और बिहार मे मराठे राज्य करते या अफगान, या दोनों ही, यह कहना तो कठिन है, पर इसमे सदेह नही कि कुछ समय के लिए गंगा के दोनों ओर लूट-मार का बाजार गरम हो जाता और प्रजामात्र के कष्ट की कोई सीमा न रहती।

अलीवर्दी खाँ और मुस्तफा खाँ का झगडा भास्कर पंत की हत्या के बाद शुरू हुआ। मुस्तफा खां ने अलीवर्दी खाँ को उसके कौल-करार की

याद दिलाकर उससे बिहार की नायब निजामत माँगी और अलीवर्दी खाँ ने उसे देने से इनकार कर दिया। बहुतेरे सदेसे भुगते, लोगो ने मुस्तफा खाँ को समझाने-बुझाने की बहुत कोशिश की, पर उसने बिहार के बदले और कुछ भी इनाम-इकराम के तौर पर लेना स्वीकार नही किया। अलीवर्दी खाँ बात का धनी तो न निकला, पर अफगानो को छोडकर और किसी की भी सहानुभूति मुस्तफा खाँ के साथ नही हुई। उसे जो कुछ पद-प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वह अलीवर्दी खाँ की ही कृपा का फल था। फिर उसने बिहार-जैसा प्रान्त पाने लायक कोई खैरख्वाही भी तो नही की थी। भास्कर पन्त को फँसा कर मरवा डालने की जो कीमत वह माँग रहा था, वह इतनी ऊँची थी कि लोगों ने यही कहा कि मुस्तफा खाँ लोभ से अधा हो गया है, उसके दुराग्रह की उपेक्षा करना ही अलीवर्दी खाँ का कर्तव्य है।

बात यहाँ तक बढी कि मुस्तफा खाँ ने पहले तो दरबार मे जाना-आना छोड दिया, फिर एक दिन नौकरी से इस्तीफा देकर खुल्लम-खुल्ला बगावत कर दी और प्राय दस हजार अफगान सवारो के साथ बिहार पर धावा बोल दिया। हाँ, कूच करने से पहले उसने वेतन के हिसाब मे सत्रह लाख रुपये सरकार के जिम्मे बाकी बताकर उसे अदा करा लिया।

जब मुस्तफा खाँ मुगेर पहुँचा, तब पटने से जैनुद्दीन अहमद ने कहलाया कि अगर तुम्हारे पास कोई सनद हो तो दिखा दो, मै यो ही तुम्हारे मार्ग से हट जाऊँगा। मुस्तफा खाँ ने जवाब दिया कि सनद मैं तुम्हे वही दिखाने वाला हूँ जिसे तुम्हारे चचा ने गद्दी छीनते समय सरफराज खाँ को दिखाया था। पटने के पास दोनों के बीच घमासान लड़ाई हुई। कई हिन्दू जमीदारो ने इस अवसर पर जैनुद्दीन अहमद

की मदद की। उनमे मुख्य थे टेकारी के राजा सुन्दर सिंह, सरीस कुटुंबा के बिशन सिंह और ससराम चैनपुर के पहलवान सिंह। हिन्दू कर्मचारियों मे विशेष उल्लेखनीय थे महता जसवन्त नागर, राजा कीर्त्तिचन्द और राजा रामनारायण। लड़ाई में मुस्तफा खॉ की हार हुई और एक ऑख भी जाती रही। गुलाम हुसैन*इस पर खुशी जाहिर करता हुआ लिखता है कि "मुस्तफा खॉ हजरत अली को और भलाई करनेवालों को बायीं ऑख से देखा करता था। अगर उसकी दाहिनी आँख फूट गई तो उसके साथ किसी प्रकार का अन्याय नही हुआ।" मुस्तफा चुनारगढ भाग गया। अलीवर्दी खाँ भी पटने जा पहुँचा था। जैनुद्दीन अहमद को साथ लेकर उसने गाजीपुर जिले मे जमानिया तक उसका पीछा किया। जब वह पकडा न जा सका तब अफगानों के उस कस्बे मे आग लगवा दी और पटना होता हुआ मुर्शिदाबाद लौट गया।

चुनारगढ़ मे सुस्ता कर और नई सेना संगठित कर मुस्तफा खाँ ने फिर बिहार पर चढाई की। यह दूसरी लड़ाई शाहाबाद मे जगदीशपुर के आसपास हुई। वह चाहता था उस इलाके के जमीदारों को अपने पक्ष मे कर, उनकी आर्थिक सहायता से लडना। मराठो से भी उसकी लिखा-पढी जारी थी और वह उनकी राह देख रहा था। पर जैनुद्दीन अहमद ने राजा सुन्दर सिंह, रहीम खाँ रुहेला आदि को साथ लेकर झट सोन नदी को पार किया और ऐसा झपट्टा मारा कि मैदान भी मार लिया। इस बार मुस्तफा खाँ खेत आया। यह २० जून १७४५ की बात है।

---

* "मुताखरीन" का लेखक शीआ था और सभी अफगानो की तरह मुस्तफा खाँ सुन्नी।

उसका सिर तो काट कर दिल्ली भेज दिया गया और धड़ के दो टुकड़े कर दोनो पटने मे दो जगह गाड दिये गये।

भास्कर के खून का बदला लूट से लेने के लिए, रघुजी भोसले मार्च १७४५ मे ही उडीसा पर चढाई कर चुका था। इसके बाद मुस्तफा खॉ के उकसाने पर वह बगाल की ओर बढा। अलीवर्दी खाँ की परिस्थिति से लाभ उठाकर मोटी रकम वसूल करने के उद्देश से उसने तीन करोड़ रुपये मॉगे। अलीवर्दी खॉ पहले मुस्तफा खॉ से पार पाना चाहता था, इसलिए उसने रघुजी के पास एक दूत भेजकर कहलाया कि मै सधि करने को तैयार हूँ। सदेसे जाने-आने लगे। चाहे इस बातचीत के कारण हुआ हो, चाहे और किसी कारण, रघुजी मुस्तफा खॉ को किसी तरह की मदद न भेज सका। और जब मुस्तफा खॉ मारा जा चुका, तब अलीवर्दी खॉ ने त्योरी बदल कर, रघुजी को कहला दिया कि रुपया दे-लेकर सुलह करना नामर्द का काम है, मै तो लड़ाई के लिए तैयार बैठा हूँ।

मुस्तफा खॉ की बगावत के समय उडीसा का नायब नाजिम उसका भतीजा अब्दुल रसूल खॉ था। जब वह भी बागी हो गया, तब अलीवर्दी खॉ ने राजा जानकीराम के बेटे दुर्लभराम को वहॉ का शासक बनाकर कटक भेजा। पर वह पूजा-पाठ करनेवाला दुर्बलराम निकला और रघुजी ने उसे अनायास ही कैदकर नागपुर भेज दिया। पीछे जानकीराम के तीन लाख रुपये देने पर दुर्लभराम की रिहाई हुई। उडीसा मराठों के अधिकार मे होते हुए भी, अलीवर्दी खॉ ने अब मीर जाफर को नायब-नाजिम नियुक्त किया।

अलीवर्दी खाँ की ओर से चुनौती मिलते ही, रघुजी ने बर्दवान और वीरभूम पर कब्जा कर लिया और मुस्तफा खॉ के बेटे मुर्तजा को

बचाने के उद्देश से मुगेर तथा गया होता हुआ तीर की तरह रोहतास जा पहुँचा। उसका उबार कर और सोन नदी को दोबारा पार कर वह पटने की ओर बढा। तब तक अलीवर्दी खाँ वहाँ पहुँच चुका था। मराठे दक्खिन की ओर सरकन लगे। दोनों दलों की मुठभेड़ सोन के तट पर महीब अलीपुर मे हुई। वहाँ अठारह दिन तक लडाई होती रही, जिसमे रघुजी ने अलीवर्दी खाँ के छक्के छुडा दिये। अलीवर्दी खाँ को सन्देह हुआ कि मीर जाफर और शमशेर खाँ मराठों से साँठ-गाँठ कर चुके है। उसकी बेगम ने सुलह की बातचीत शुरू कराई। पर रघुजी को ऐसी बातचीत का कुछ कटु अनुभव हो चुका था, इसलिए उसमे समय बरबाद न कर, वह मुर्शिदाबाद को लूटने चल पड़ा।

अलीवर्दी खाँ कब पीछे रहने वाला था? उसन भी धावा मारा। भागलपुर के पास दोनो की छोटी-मोटी लड़ाई भी हुई। रघुजी संथाल परगना और वीरभूम के जगल-पहाड होकर मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ गया। शहर के पास पहुँच कर उसने लूट-मार शुरू करा दी, पर अलीवर्दी खाँ भी दूसरे ही दिन पहुँच गया, इसलिए रघुजी वहाँ से हट कर कटवा चला गया। वहाँ दिसम्बर १७४५ मे दोनों के बीच बड़ी लड़ाई हुई, जिसमे अलीवर्दी खाँ ने मैदान मार लिया। रघुजी मीर हबीब की अधीनता मे दो-तीन हजार मराठे और छः-सात हजार अफगान सवार छोड़कर आप नागपुर लौट गया।

मराठ दबने वाले न थे। बर्दवान, बाँकुडा, मेदिनीपुर, कटक, बालश्वर, इन इलाकों मे उनके उपद्रव बने ही रहे। १७४७ में रघुजी ने अपने पुत्र जानोजी को बड़ी सेना क साथ कटक भेजा। मीर जाफर अपना कर्तव्य-भार ग्रहण करने वहाँ जा ही रहा था कि मेदिनीपुर में

खबर मिली कि जानोजी चला आ रहा है। वही थम गया। अलीवर्दी खाँ को यह मालूम हुआ तो वह मीर जाफर पर बहुत बिगड़ा और उसकी मदद मे अताउल्ला खाँ को बर्दवान भेजा। पर यह मीर जाफर के मेल मे होकर अलीवर्दी खाँ को ही मार मिटाने के बाँधनूं बाँधने लगा। इसलिए नाजिम को खुद उधर जाना पडा। जानोजी की बर्दवान मे हार हुई और वह मेदिनीपुर चला गया।

मराठो के उत्पात आर्थिक दृष्टि से हानिकारक सिद्ध हुए बिना कब रह सकते थे? किसान और कारीगर दोनो चक्की मे पिसने लगे थे, इसलिए हर तरह की पैदावार कम होती गई, मजदूरी और दाम बढ़ चले और बाणिज्य-व्यापार के स्रोत का स्वच्छंदतापूर्वक बहना बद हो गया।

चाँदी के अभाव के कारण टकसाल प्राय. बन्द रहती थी, इसलिए मुद्रा-स्फीति का प्रश्न तो उठ ही नही सकता था। दामों की तेजी[1] की तह मे केवल उत्पादन की कमी और वस्तुओं का अभाव था।

मि० लिट्ल लिखते है:—

"मारकाट के इतिहास मे तो महताबराय या उनके घरान का नामोल्लेख नही के बराबर मिलता है, पर कंपनी क कागजात मे उनका बार-बार जिक्र आता है। बंगाल मे अपना व्यापार जारी रखने के लिए कंपनी को जितना कर्ज उनसे इस समय लेना पड़ा, उतना पहले कभी नही लेना पड़ा था। इसका कारण स्पष्ट है। और कही भी रुपया उधार मिलना बहुत ही कठिन था। अलीवर्दी खाँ के डर के मारे सेठ-साहूकारो ने अपने-अपने धन को छिपा दिया था। कोई यह बात प्रकट होने देना नहीं चाहता था कि उसके पास कुछ भी पूजी बच रही है।

बंगाल मे इस समय मुद्रा का घोर अभाव था। तूफान मे पड़कर औरों की नावे तो डूब गई थी, एक जगत्-सेठ की नाव चल रही थी। हाँ, उनके लिए भी उसके पालों को बहुत-कुछ समट लेना आवश्यक हो गया था। सरकार की माँग की वह बिलकुल उपेक्षा तो नही कर सकते थे, पर जितना वह चाहती, उतना दे भी नही सकते थे। यही बात प्रान्त के विभिन्न भागों से आने वाली माँग के बार मे भी कही जा सकती थी। अगर वह काम-काज बद कर देते तो अनर्थ पैदा हो जाता, इसलिए उन्होने उसे यथासभव कम कर दिया था और अपनी नाव को धीमी चाल से ही चला रहे थे।"

इधर कंपनी की प्राय प्रत्येक शाखा के लिए कर्ज लेना अनिवार्य हो गया था और प्रत्येक का अनुभव यह था कि कर्ज मिलना पहले की तरह आसान नही था। जुलाई १७४५ मे ढाका-फैक्टरी को ५०,०००) की जरूरत पड़ी, पर फतहचन्द की कोठी से उसे टका-सा जवाब मिल गया—"हमारे पास न मुर्शिदाबाद के ढले हुए रुपये है, न आरकट के।" ढाकावालो ने कलकत्ते की कौंसिल को इसकी सूचना दी। कौंसिल ने कासिमबाजार के कर्मचारियों को लिखा कि सेठों से जाकर मिलो और कहो कि अपनी ढाके की गद्दी पर एक लाख की हुडी दे दे। पर सेठो ने भी यही कहा कि ढाके मे इतना रुपया ही नही कि हम एक लाख की हुडी दे सके। फिर कंपनी की ओर से कहा गया कि अच्छा जो चाँदी हम बेच चुके है, उसी के पेटे मे इतना दे दीजिये। इसका जवाब यह मिला कि देने के लिए 'सिक्के' कहा है? ज्यो-ज्यो टकसाल में सिक्के ढलते जायँगे, चाँदी की कीमत का भुगतान होता जायगा। ५ अगस्त को कासिमबाजार वालों ने ५०,०००) ढाका-फैक्टरी वालों के पास भेजा और यह भी लिखा कि महताबराय स्वरूपचद वहां अपने

गुमाश्ते को आदेश भेज चुके है, उससे तुम्हे ५०,०००) और मिल जायगा। पर इस रकम के भी मिलने मे काफी देर हुई। सितम्बर से पहले वह ढाका-फैक्टरी को प्राप्त न हो सकी।

इसी प्रकार, कासिमबाजार और पटने मे भी कपनी को समय-समय पर जगत्सेठ की कोठी से कर्ज लेना पड़ा और प्राय प्रत्येक बार यही किस्सा रहा कि गुमाश्ता पहले तो मुद्राभाव के कारण कुछ भी उधार दे न सका, फिर लिखा-पढी या बातचीत होने पर महतावराय ने कर्ज देना मजूर कर लिया, फिर कपनी ने चाँदी देकर उस कर्ज का भुगतान किया या उसने कागज बदल दिया। १७४६ मे हम कपनी को ब्याज के सम्बन्ध मे उन्हे यह लिखते पाते है कि उस मद मे जो कुछ निकलता है, उसे आप असल मे जोड़ लीजिये। मई मे कासिमबाजार की फैक्टरी को एक लाख कर्ज मिल चुका है, शायद एक लाख और मिलने की बात है। फिर भी वहाँ के कर्मचारी कलकत्ते लिखते है कि "रुपये की ऐसी टान है कि फतहचन्द की कोठी को जो चादी बेची गई थी, उसकी कीमत भी वह मुश्किल से चुका सकी है। हमे तो यही जान पडता है कि अगर सेठो के पास रुपया है भी तो वे सरकार के डर से उसे जाहिर करना नही चाहते।" जुलाई मे कपनी के कर्मचारी कासिमबाजार मे कर्ज माँगते फिरते है। पर न कर्ज मिलता है, न कपनी विलायत भेजने के लिए माल खरीद पाती है। ढाके का भी यही हाल है। कौसिल का आदेश था कि ।।।) प्रतिशत प्रतिमास से अधिक ब्याज पर रुपया हर्गिज उधार न लिया जाय, पर वहाँ के कर्मचारियो के हैरान-परेशान होने पर भी ।।।) ब्याज पर कही रुपया नही मिलता।

अक्टूबर मे कुछ चाँदी कलकत्ते पहुँची। कौसिल ने महताबराय को लिखा कि आप यह चाँदी खरीद लीजिये और दाम मे हमे तब तक दो

लाख द दीजिये। प्रान्त मे अमन-चैन न होने क कारण कौसिल ने उनसे यह भी अनुरोध किया कि आप हमसे चाँदी सदा की भांति मुर्शिदाबाद मे न लेकर यही अपनी कोठी पर ले लीजिये। महताबराय ने कौसिल का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दो लाख मे से एक लाख रुपया कपनी को अपनी ढाका-फैक्टरी के लिए चाहिए था। उसके लिए हुंडी करनी होती और ऐसी हुंडी की बाजार-दर १) सैकड़ा थी। महताबराय ने कहलाया कि कंपनी को यह हुंडावन देना पड़ेगा। उन्होंने यह भी कहलाया कि 'हम चाँदी लेंगे मुर्शिदाबाद के भाव से और कलकत्ते का भाव १९७)* से ऊपर नही। फिर चाँदी यहाँ ले आने में कुछ खर्च पड़ेगा और कुछ जोखिम भी उठानी होगी। एसी हालत में, चाँदी मिल जाने पर भी हम एक महीने तक ब्याज के देनदार न होंगे'। कलकत्ते की कौंसिल अपने कासिमबाजार के कर्मचारियों को लिखती है—"महताबराय स्वरूपचंद ढाके के लिए जो १) सैकड़ा हुंडावन माँग रहे हैं वह उन्हे शोभा नहीं देता। उनसे जाकर कहो कि फतहचन्द के समय में तो हमे कभी ऐसा हुंडावन नही देना पड़ा। हमारे साथ उनके घराने का व्यवहार सदा और ही तरह का रहा है। लेकिन अगर वह न मानेगे, तो उनकी माँग पूरी करनी ही होगी। कलकत्ते में चाँदी मिल जाने के बाद भी वे एक महीने का ब्याज नही देना चाहते। यह भी मुनासिब नही। यों तो कहन-सुनने पर भी न मानेंगे तो हमे बल खाना ही होगा।"

१७४७ के पूर्वार्द्ध में कंपनी ने कुछ चाँदी कासिमबाजार भेजी। पर बंगाल-बिहार में राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति इतनी चिन्ताजनक थी कि मुर्शिदाबाद की टकसाल ही बंद कर देनी पड़ी थी।

---

*२४० 'सिक्को' के वजन की चादी का दाम। मुर्शिदाबाद में उतनी चादी की कीमत थी २०१ से २०३ 'सिक्के'।

महताबराय ने कहलाया कि जब टकसाल तीन-चार दिन बाद खुलेगी, तब वह चाँदी तो ले लेगे, पर आगे २०१) से ऊचा दाम न दे सकेगे। कारण कि, "सिक्के मे खालिस चाँदी पहले की अपेक्षा अधिक हो चली है, इसलिए ढलाई मे अब उतना मुनाफा नही रह गया है।" १७४७ के उत्तरार्द्ध मे भी रुपये का अभाव बना ही रहा। उधर महताबराय की ओर से यह शिकायत की गई कि जहाँ कपनी साल बीतते ही ब्याज चुका देती थी, वहाँ वह अब ब्याज को असल मे जोड़ कर सिर्फ कागज बदल देती है। १० अगस्त को कौसिल कासिमबाजार की फैक्टरी को लिखती है कि, "चादी का दाम बढ़वाने की कोशिश जारी रखना। जगत्सेठ महताबराय से जोर देकर कहना कि जो दाम वह दे रहे है, वह इतना नीचा है कि विलायत स यहाँ चाँदी ले आने मे कुछ भी फायदा न रहेगा। हाँ, अपने व्यवहार से उन्हे कभी असन्तुष्ट मत होने देना। उनका ब्याज का हिसाब तो फौरन कर दो। फिर इस बात की चेष्टा करो कि ढाका-फैक्टरी को एक लाख नही तो कम-से-कम पचास हजार अपनी कोठी से उधार दिला दे। वहाँ वालो न लिखा है कि अगर रुपया न मिल सका तो उनका काम चलना असभव हो जायगा।"

कौसिल को अपने इस खत का जवाब सोलह दिन बाद मिला। कासिमबाजार वालों ने लिखा:—

"जगत्सेठ का गुमाश्ता रै (रवि ?) दास दो साल का ब्याज माँगने आया था। इधर बीस पेटी चाँदी मिली थी, पर प्राय. सारा रुपया ब्याज चुकाने मे लग गया। अब माल की खरीदारी क लिए यहाँ अपने पास रुपया नही। इसके साथ हिसाब भज रहे है, आप समझ लेगे। ढाका-फैक्टरी के लिए सेठो से एक लाख माँगा था, पर कुल २५,०००) की हुडी मिली। यह हुंडी कासिद के जरिए वहाँ भेज दी है। सेठों ने

चाँदी २०३) के भाव से लेना स्वीकार कर लिया है। पर उनका गुमाश्ता कह रहा था कि मुझे मालूम है कि कपनी के दलालो ने कलकत्ते मे चाँदी १९७।।=) की दर से बेची है। अगर बात एसी है, तो आप सहज ही अनुमान कर सकते है कि इधर सेठों का जी क्यो खट्टा हो चला है।"

अगर सेठों का दिल थोडी देर के लिए फिर गया था तो इसका कारण सचमुच यही था कि जो चाँदी विलायत से आती, उसका बड़ा हिस्सा तो कपनी प्राय: बाजार मे बेच लेती और उनको ब्याज तक नही चुकाती। कौसिल को सेठो के संतोष के लिए यह बताना पड़ा कि उसकी ओर से कितनी चाँदी बाजार मे बेची जा चुकी थी और क्यों। पर उनके 'सन्तुष्ट' हो जाने पर भी कासिमबाजार की फैक्टरी को वह कर्ज न मिल सका जिसकी उसे सख्त जरूरत थी।

सितम्बर में फिर कुछ चाँदी कलकत्ते पहुँची। इधर महताबराय की ओर से फिर ब्याज का तकाजा होने लगा था। कौसिल ने निश्चय किया कि पाँच पेटी चाँदी तो उन्हे ब्याज की मद मे दे दी जाय, पाँच पेटी कलकत्ते मे रख ली जाय और बाकी बीस पेटी चाँदी कासिमबाजार भेज दी जाय—इस आदेश के साथ कि टकसाल मे बिकजाने पर अपने कर्मचारी दस पेटी की कीमत तो यहाँ भेज दे और दस पेटी की कीमत से वहाँ माल की खरीदारी करे। कौसिल ने महताबराय को यह भी कहलाया कि और चाँदी आने ही वाली है। महताबराय ने इस पर प्रसन्नता प्रकट की, पर कहा कि हम २०१) स ऊचा दाम नहीं दे सकते। लाचार, कपनी को उसी दर से चाँदी बेचनी पडी।

जनवरी १७४८ तक सौ पेटी चाँदी कलकत्ते पहुँच चुकी थी। कौसिल ने अपने कासिमबाजार वाले कर्मचारियों को लिखा कि महताबराय से पूछ कर लिखो कि चाँदी वह यहाँ लेना चाहते है या वहाँ।

कौंसिल का प्रस्ताव था कि चाँदी मिल जाने पर जगत्सेठ दो लाख तो लेन-देन के हिसाब मे हमारा जमा कर ले, एक लाख कासिमवाजार-फैक्टरी को और ५०,०००) ढाका-फैक्टरी को दे दे और वाकी जो कुछ निकले, यहाँ कलकत्ते भेज दें। प्रेसिडेन्ट ने इस विषय मे महतावराय को एक पत्र भी लिखा। पर जनवरी बीतने से पहले ही खबर मिली कि जैनुद्दीन अहमद पटने मे मारा जा चुका था और अलीवर्दी खाँ पर ऐसी कौटुविक आपदा आ जाने के कारण मुर्शिदावाद मे हडताल मनाई जा रही थी। ८ फरवरी के लेखे मे महतावराय से मिलने वाले उत्तर का उल्लेख है। उन्होने लिखा था कि, "यो तो हम कपनी की वरावर मदद करते आये है और आज भी चाँदी खरीद लेने को तैयार है, पर पटने मे जो दुर्घटना घटी है, उसके कारण इस समय कुछ भी करना-धरना हमारे वस की वात नही। तमाम गडवड मची हुई है। काम-काज वद है। लोग अपनी-अपनी जान वचाने के लिए शहर से भाग रहे है। हम खुद नवाव से विदा ग्रहण कर गगापार चले आये है। टकसाल वद कर देनी पडी है। इसलिए हम इस समय रुपया देने में असमर्थ है। जव शान्ति हो जायगी और काम-काज फिर चलने लगेगा, आप के प्रस्ताव पर ध्यान देगे। इस समय तो लाचारी है।"

पटने की 'दुर्घटना' की कहानी यह है—

मुस्तफा खाँ मारा जा चुका था, पर अफगान-समस्या हल नहीं हुई थी। मुर्शिदावाद मे कुछ एसे अफगान रह गये थे, जिन्होने मुस्तफा खाँ की वगावत के समय उसका साथ तो नही दिया था, पर जो अलीवर्दी खाँ के पूरे वफादार भी नही हो सके थे। इनके नेता थे दरभगा-निवासी शमशेर खाँ, सरदार खा और मुराद शेर खाँ जो मीर हवीव से पत्र-

व्यवहार करते रहते थे और मराठों की सहायता स फिर अफगान-राज्य ·स्थापित करने की तदबीर सोचा करते थ।

"मुताखरीन" के लेखक ने अफगानों के गुण-दोष वताते हुए जहाँ उन्हें शूर-वीर स्वीकार किया है, वहाँ साथ ही उनकी उपमा जगली जानवरों से दी है। कहा है कि "अफगानों क न दिल होता है, न दिमाग। वड़े लालची होते है, पर नमक का हक अदा करना नहीं जानते। अफगान से झगड़ा करना वर्र के छत्ते में हाथ डालना है। अगर कोई अफगान मारा जाता है, तो उसका फिरका उस बात को कभी भूलता नही, चाहे कितना ही समय क्यों न बीत जाय। मौका मिलने पर वह बदला लेकर ही रहता है।"

अलीवर्दी खाँ ने उन अफगानो का रंग बेढग देखकर उन्हे बर्खास्त कर दिया और व दरभगे चले गय। उसी समय जैनुद्दीन अहमद के सिर पर एक हौसला-रूपी भूत सवार हुआ। वह अलीवर्दी खाँ को गद्दी से हटाकर खुद उसकी जगह जा बैठने का विचार करने लगा। दरभंगे के अफगानो से पत्र-व्यवहार कर उसने उन्हें पटने वुलाया। सरदार खां, शमशेर खाँ आदि हाजीपुर जा पहुँचे और वाकी सैनिकों को वही छोड़ कर प्राय: पाँच सौ सवारों क साथ १३ जनवरी १७४६ को गंगापार दरवार मे हाजिर हुए।

वहाँ उनके स्वागत का आयोजन किया गया था। पर जिस समय जैनुद्दीन अहमद पान-सुपारी बँटवा रहा था, उसी समय एक अफगान ने उसके पेट मे खंजर घुसेड़ दिया और अपने साथी का अधूरा काम मुराद शेर खाँ ने पूरा कर डाला। अफगानों की दिलजमई के लिए जैनुद्दीन अहमद ने आज्ञा दे दी थी कि उसके अपने सैनिक उस दिन के दरवार में

न आवें। राजा सुन्दर सिह, मेहदी निसार खाँ आदि सरदार किसी दौरे पर पटने से वाहर भेज दिये गये थे। कुछ दरवारी और साधारण कर्मचारी-मात्र उपस्थित थे। अफगानों ने वात की वात मे शहर और किले पर कब्जा कर लिया।

जैनुद्दीन अहमद का पिता हाजी अहमद भी उस समय पटने में ही था। वह वृद्धावस्था और धन क लोभ के कारण भाग न सका। उसकी अवस्था ८२ वर्ष की थी और उसके पास सचित धन ७० लाख रुपये से कम न था। वह कैद कर लिया गया और कुछ दिन वाद कैद-खाने मे ही उसकी मृत्यु हो गई। महल में और शहर मे लूट-खसोट होने लगी। लोगो को दिल्ली मे नादिरशाही का जमाना याद आने लगा। अफगानो ने अपने माथे पर कलक का एक और टीका यह लगा लिया कि जैनुद्दीन अहमद की स्त्री अमीना वेगम और उसके वेटे-वेटी को वैलगाडी मे वैठा कर अपने पडाव पर ल गये। वह वहली चारो ओर से खुली हुई थी, जिस पर झीना भी ओहार या घटाटोप न था।

जिस समय अलीवर्दी खाँ को यह दु ख द समाचार मिला, उस समय उसका पड़ाव अमानीगंज मे था और वह मराठो से भिडन जा रहा था। समाचार मिलते ही सन्न हो गया। पर वह वड़ा धीर-वीर था, इसलिए फौरन होश सँभाल कर उसने पटने जाने का निश्चय किया और कूच का डका वजवाया। ऐलान करा दिया कि, "अफगानों की खवर लेना सब से जरूरी हो गया है, इसलिए नवाव नाजिम पटन जा रहे है। वहाँ से लौट कर मराठो की भी खवर लेगे। तव तक लोग अपनी रक्षा का जो प्रवन्ध कर सकते हों, आप ही करे।" पर 'हिम्मत थी आली, जेबे थी खाली!'।

सैनिको की ओर से कहा गया कि जब तक वेतन नही चुक जाता, तब तक हम लोग इस धावे पर जाने का नाम भी नही ले सकते। बडी मुश्किल पडी। इस मौके पर उसकी बेटी घसीटी बेगम, दामाद नवाजिश मुह-म्मद खाँ और जगत्सेठ महताबराय काम आय और परिस्थिति को सँभालने मे उसकी बड़ी सहायता की। नवाजिश-मुहम्मद से उसे ९० लाख मिला और महताबराय से ६० लाख। २९ फरवरी को अलीवर्दी खाॅ अमानीगज से चला था। १७ मार्च को वह भागलपुर पहुँच चुका था। १६ अप्रैल को तोपे दगने वाली थी।

लड़ाई पटना जिले मे बाढ के पास रानीसराय के मैदान मे हुई। अलीवर्दी खाॅ को इसमे अफगानों का ही नही, मराठों का भी सामना करना पडा। कारण कि जानोजी और मीर हबीब बंगाल से उसका पीछा करते ही आये थे। पर उसकी ओर से लडने के लिए बिहार के कुछ जमीदार भी अपनी-अपनी सेना लेकर पहुँच गये थे। जीत अलीवर्दी खाँ की ही हुई। शमशेर खाॅ, मुराद शेर खाॅ, सरदार खाॅ आदि मारे गये। अफगानों का गर्व खर्व हो गया। मराठों को लापता होते देर न लगी। पटने मे अलीवर्दी खाँ को विजयमाल पहनाई गई, अफगानों की पराजय पर आनन्दोत्सव मनाया गया।

अलीवर्दी खाँ को मालूम हुआ कि शमशेर खाॅ अपने बाल-बच्चों को बेतिया में छोड़ आया है। वहाँ क राजा ने लिखा कि आज्ञा हो तो इन्हें अपने घर जाने दे। यह आज्ञा तो न मिली, पर शिकार खेलने के बहाने अलीवर्दी खाॅ स्वयं बेतिया जा पहुँचा। शमशेर खाॅ के अनुरोध की रक्षा करने के लिए राजा को भला-बुरा कह कर उसने आज्ञा दी कि उसके कुटुम्ब को दरभगे पहुँचा दो। शमशेर खाॅ की लडकी का ब्याह भी उसन सब की रजामदी से एक खानदानी अफगान के साथ करा दिया। उसकी

माँ के लिए उसने राह-खर्च तो दिलाया ही, परवरिश के लिए दरभगे मे कुछ गाँव भी दिला दिये। अलीवर्दी खाँ मे और चाहे जो दोष रहे हो, ओछापन न था। शमशेर खाँ और सरदार खाँ उसकी अपनी बेटी के साथ जो व्यवहार कर चुके थे, वह याद होते हुए भी, उसने बुराई का जवाब भलाई से ही दिया।

अलीवर्दी खाँ पटने मे प्राय छ महीने रहा। मुर्शिदाबाद लौटने से पहले उसने जैनुद्दीन अहमद के बेटे सिराजुद्दौला को नायब नाजिम घोषित किया और राजा जानकीराम को सिराजुद्दौला का पेशकार या दीवान। सईद अहमद खाँ और सिराजुद्दौला को साथ ले कर वह नवम्बर १७४८ के अन्त मे मुर्शिदाबाद लौटा।

दिसम्बर मे हुगली के फौजदार ने कपनी पर एक अभियोग लगाया। वहाँ के कुछ अर्मनी और मुसलमान व्यापारियो के माल से लदे हुए दो जहाज कही से कलकत्ते आ रहे थे कि कपनी के एक बडे जहाज ने उन पर कब्जा कर लिया था। अलीवर्दी खाँ को अंगरेजो की इस धीगामुश्ती पर बड़ा क्रोध आया और उसने कपनी के गवर्नर को लिखा कि, "इन व्यापारियो के कारबार से सल्तनत को इतना फायदा है, फिर भी इन्हे इतना भारी नुकसान पहुँचाया गया है कि इन्हे मै दाद दिलाये बिना नही रह सकता। तुम लोगो ने समुद्र मे डाकाजनी कर ऐसा घोर अपराध किया है कि अगर उनका माल उन्हे फौरन लौटा न दिया गया और जो सामान मेरे लिए आ रहा था, वह यहाँ पहुँचा न दिया गया, तो मै तुम्हे ऐसा दड दूगा जिसकी तुमने कभी कल्पना भी नही की होगी।" कासिमबाजार वालो का अनुमान था कि अर्मनी व्यापारियो के हो-हल्ला मचाने पर नवाब ने ऐसा कडा खत लिख तो दिया है पर वह सचमुच कोई वैसी सख्ती करने वाला नही है। वह उनकी भूल थी।

नवाब ने प्रान्तमात्र में कंपनी का व्यापार बन्द करा दिया। जहाँ-तहाँ कंपनी के कारखानों या कोठियों पर पहरा बैठ गया और अँगरेजों को खाने-पीने की चीजों के भी लाले पड़ने लगे। कंपनी से हर्जाना वसूल करने का काम दो मुसलमान कर्मचारियों को सौपा गया। इनके नाम थे हुकम बेग और करौली बेग। इन्होने अपनी माँग चार लाख से शुरू की। फिर उतरते-उतरते दो लाख पर आये। कासिमबाजार वालों ने कौसिल को लिखा कि हमारा विश्वास है कि मामला एक लाख पर तै हो जायगा। हाँ, संभव है कि उसके अलावा पच्चीस-तीस हजार इन दोनों को भी देना पड़े। प्राय. एक साल बाद अक्टूबर १७४९ मे यह मामला १,२०,०००) पर तै हो गया।

इस बीच कंपनी के प्रतिनिधि कई बार महिमापुर हो आये थे। पर प्रत्येक बार उन्हे महताबराय से यही उत्तर मिला था कि मेरी सहानुभूति कंपनी के साथ अवश्य है, पर मैं नवाब के और उसके बीच के झगड़े मे पडना नही चाहता। कपनी को चाहिए कि नवाब को खुश कर यह झगड़ा निबटा ले। बात दर असल यह थी कि कपनी ने इधर अपने व्यवहार से जगत्सेठ को अप्रसन्न कर दिया था और उस अप्रसन्नता के कारण, उसके लिए चक्कर खाना जरूरी हो गया था।

ढाके मे कपनी के एक अँगरेज कर्मचारी के जिम्म जगत्सेठ की खासी मोटी रकम बाकी चली आई थी। उसक मर जाने पर उस रुपये की दनदारी को लकर एक वाद-विवाद खड़ा हुआ, जिसमें एक ओर तो महताबराय थ और दूसरी ओर कपनी के कुछ अधिकारी। कंपनी का अपना व्यवहार भी आपत्तिजनक था। जो चाँदी आती, उसका उपयोग उसे पहल अपन कर्ज के भुगतान मे करना चाहिए था, फिर और कामों मे। कम स कम महताबराय की कोठी के साथ उसका

समझौता यही था। पर वह उस चाँदी की पूरी खबर उन्हे या उनके गुमाश्तों को मिलन न देती और अक्सर उसे बाजार मे बेच कर रुपया तो माल की खरीदारी में लगा देती और जब कभी उनकी ओर से ब्याज का भी तकाजा होता, तब हीला-हवाला करने लगती। एक हद तक महताबराय न लगाम ढीली रहने दी। पर जब वह दख चुके कि कंपनी बार-बार यही चाल चलती है, तब उन्होने उसे कसना शुरू कर दिया। यही प्रधान कारण था कि कंपनी की ओर से बहुत अनुनय-विनय होने पर भी उन्होने इस अवसर पर उसकी कोई विशेष सहायता नही की। वह चाँदी से ही प्रसन्न किये जा सकते थे, चिकनी-चुपड़ी बातो या टलते जाने वाले वादो से नही।

पर नवाब को देने के लिए अपने पास १,२०,०००) न होने क कारण कपनी को फिर उन्ही की शरण जाना और उनस उधार माँगना पड़ा। २० अक्टूबर १७४९ को कासिमबाजार वाल कर्मचारी कौसिल को लिखते है —

"हमने अपने वकील महिमापुर भेजे और सेठो को कहलाया कि अगर आप इस मौक पर कर्ज न देगे तो कपनी के लिए इसका नतीजा बहुत ही बुरा होगा। उन्हे यह भी आश्वासन दिलाया कि चाँदी या रुपया हाथ मे आते ही हम इस कर्ज का भुगतान कर देगे। इसका सेठों पर कुछ प्रभाव पड़ा और उन्होने रैदास को हमारे पास भेजा। उसने इस बात की बड़ी शिकायत की कि कंपनी के जिम्मे इतनी बड़ी रकम बाकी होते हुए भी और इतनी चाँदी आने पर भी उसने इधर कुछ भी नही दिया है। गुमाश्त ने कहा कि अगर कपनी यह पक्का वादा नही करती कि विलायत से जहाज आते ही वह तीन लाख चुका देगी, तो हमारी कोठी से अब कुछ भी मिलन का नही। हमने यह उत्तर दिया कि

बिना कौंसिल की इजाजत के हम जबान तो नही दे सकते, पर अगर आपकी कोठी ने इस मौके पर हमारी मदद की, तो हम कलकत्ते यह जरूर लिखेगे कि जितनी भी चाँदी कौंसिल दे सकती हो, आपको दे दे। पर इससे उसे सतोष न हुआ। अन्त में उसने कहा कि हम तीन शर्तो पर डेढ लाख दने को तैयार है—(१) आप कलकत्ते पर दो लाख 'सिक्कों' की हुडी कर दे, (२) आपके पास हमारी सकारी हुई २३,०००) 'सिक्को' की जो हुंडी है, उसे हमे लौटा दे और (३) चार पेटी चाँदी जो आपकी फैक्टरी मे पडी हुई है, उसे सेठों की कोठी पर भेज दें। हमने तीनो शर्तें मजूर कर ली।"

कासिमबाजार वालो ने १७ अक्टूबर को कलकत्ते लिखा कि "सेठ मानिकचन्द सेठ आनन्दचंद से कर्ज लेकर हमने आप पर दो लाख 'सिक्को' की दर्शनी हुडी कर दी है। आप उसका भुगतान कर देगे।" २१ अक्टूबर को कौंसिल ने खजाची को उसके भुगतान की आज्ञा दे दी।

जून मे ढाका-फैक्टरी कौंसिल को लिख चुकी थी कि, "सेठों का गुमाश्ता वह ५४,०००) माँगन आया था, जो हम 'सेठ महताबराय बाबू खुशालचंद' से ले चुके है। हमने यह कह कर उसकी दिलजमई कर दी कि जो जहाज आने वाले है, उनके पहुँचते ही और हमारा कारबार फिर चालू होते ही हम उस पुरजे का भुगतान कर देगे।" खुशालचद महताबराय के ज्येष्ठ पुत्र थे और जगत्सेठ की कोठी से कही-कही इनका नाम भी सम्बद्ध हो चला था।

उस कोठी और ईस्ट इडिया कपनी के बीच इधर लेन-देन के और भी कई मौके आये, पर सब का उल्लेख करने से कहानी बहुत लम्बी चौड़ी हो जायगी। हाँ, यह कह देना जरूरी जान पड़ता है कि जनवरी

१७५० मे कासिमबाजार के कर्मचारियो ने नवाब के एक हुक्मनामे की नकल कलकत्ते भेजी और कौसिल को लिखा कि, "अपने वकीलों का कहना है कि इसके द्वारा नवाब ने यह आदेश दिया है कि अब आगे सेठो को छोड़कर और कोई न तो आरकटी रुपये ले सकता है और न चाँदी ही खरीद सकता है।" इस निषेध-पत्र का उद्देश था ईस्ट इडिया कपनी को बाजार मे चाँदी बेचने से रोककर उस क्षेत्र पर जगत्सेठ का आधिपत्य पूरा कर देना।

बाढ की लडाई के बाद ही जानोजी को अपनी माता की मृत्यु का समाचार मिला था, इसलिए मीर हबीब को सेना के साथ मेदिनीपुर की ओर भेजकर वह स्वय नागपुर चला गया था। कुछ ही समय बाद रघुजी ने अपने दूसरे पुत्र मानाजी के नेतृत्व मे कुछ और सैनिक मीर हबीब की सहायता के लिए भेजे। अलीवर्दी खॉ ने मुर्शिदाबाद लौटकर मराठो से युद्ध की तैयारी शुरू कर दी और कटक की ओर प्रस्थान किया। मीर हबीब भी मेदिनीपुर से उसी ओर चल पडा। अलीवर्दी खॉ ने कटक पहुँच कर अपना अधिकार तो जमा लिया,* पर ज्यो ही वह मुर्शिदाबाद लौटा, मीर हबीब वहाँ जा धमका और अलीवर्दी खॉ के प्रतिनिधि को मारकर फिर मराठो की ओर से कर्त्ता-धर्त्ता बन बैठा।

नवाजिश मुहम्मद खाँ, जगत्सेठ और कुछ प्रधान पदाधिकारी इधर अरसे से अलीवर्दी खॉ को सलाह देत आ रहे थे कि मराठो से सधि कर ली जाय। पर उसकी आन के आगे ऐसे सलाहकारो की कुछ

---

*मराठो की ओर से सैयद नूर, सरदाज खाँ और धरमदास ने बारहबाटी के किले पर कब्जा कर लिया था। अलीवर्दी खाँ ने कूटनीति का प्रयोग कर इन्हें अपने फदे मे फॅसा लिया और सब को मरवा डाला।

नही चल सकी थी। जब समय-सरित् के प्रवाह के साथ अलीवर्दी खाँ की अपनी शक्ति भी क्षीण हो चली और हाजी अहमद, जैनुद्दीन अहमद जैसे अंगों के कट जाने से उसे बुढापे मे और भी कमजोरी महसूस होने लगी, तब उसने अपनी पुरानी टेक छोड़ दी और मराठो को चौथ देना स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप रघुजी और उसके बीच १७५१ में एक संधि* हुई, जिसके द्वारा उसे तो शान्ति मिल गई और मराठों को उड़ीसा-प्रान्त। दोनों के बीच यह तै हुआ कि.—

(१) अलीवर्दी खाँ भोंसले को तीनों प्रान्तों की चौथ दिया करेगा।

(२) जमानत के तौर पर वह उड़ीसा-प्रान्त भोंसले के हवाले कर देगा और कटक में मीर हबीब को अपना नायब नियुक्त करेगा।

(३) मीर हबीब की नियुक्ति अलीवर्दी खाँ-द्वारा होने पर भी, वह रघुजी भोंसले के प्रतिनिधि-स्वरूप उडीसा का शासन करेगा और आय मे जो कुछ बचत होगी, उसे सैनिकों के वेतन के बकाये की मद मे नागपुर भेज दिया करेगा।

(४) अलीवर्दी खाँ रघुजी को हर साल उस आय के अलावा १२ लाख रुपये[२] चौथ की मद मे दिया करेगा।

(५) सुवर्णरखा नदी दोनो क राज्यों के बीच की सीमा समझी जायगी और मराठों की सेना कभी भी उस नदी मे न तो पैर धरेगी और न उसे पार करेगी।

---

*"रियाज" में लिखा है कि मीर हबीब के मारे जाने के बाद अलीवर्दी खाँ और रघुजी भोंसले के बीच संधि हुई और इस अवसर पर मराठो के प्रतिनिधि मस्लेहुद्दीन मुहम्मद खाँ (मीर हबीब का भतीजा) और सदरुलहक खाँ थे। इनमें सदरुलहक खाँ कटक में नायब नाजिम नियुक्त हुआ। पर "मुताखरीन" का बयान इससे भिन्न है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसी के आधार पर।

इस सधि का एक फल यह हुआ कि मदिनीपुर जिला अब उड़ीसा से कटकर बगाल का अग बन गया ।

अलीवर्दी खाँ से सधि हो जाने के बाद जानोजी और मीर हबीब के बीच ऐसा वैमनस्य हो गया कि जानोजी न अन्त मे उसकी जान ले ली। मीर हबीब के बाद उसका भतीजा मिर्जा सालेह, मस्लेहुद्दीन मुहम्मद खाँ के नाम से मराठो का प्रनिनिधित्व करन लगा ।

उस सधि का दूसरा और सब से महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि लोगो के घाव धीरे-धीरे भरने लगे। मराठो की ओर से निश्चिन्त हो जाने पर सरकार को कई उपयोगी कामो क लिए अवकाश मिल गया। सेना बहुत बडी हो चली थी, इसलिए सैनिको की संख्या घटा दी गई । उजडे हुए गाँव फिर से बसाये गये। पडती मे फिर हल चलने लगे, जहाँ उल्लू बोलने लगे थे, वहाँ फिर किसानो क ढोल या ढफ बजने लगे।

पिछले अध्याय मे हम चैनराय को अलीवर्दी खाँ के अर्थ-सचिव के पद पर दख चुके है। उसकी मृत्यु हो जाने पर बीरदत्त या बीरुदत्त को यह पद मिला और जब १७५१ मे उसकी भी मृत्यु हो गई तब उसका नायब उम्मेदराय स्थानापन्न दीवान हुआ। रायरायाँ आलमचद का पुत्र राजा कीर्तिचद पटने मे जैनुद्दीन अहमद खाँ का वजीर रह चुका था। यह फारसी का अच्छा विद्वान् और सुलेखक समझा जाता था। अताउल्ला खाँ* के साथ कुछ समय बिताने के बाद यह बनारस मे रहने

*सिराजुद्दौला इससे जलता था, इसलिए उसने अपने नाना से कह-सुनकर अताउल्ला को देश-निकाला दिला दिया । अताउल्ला दिल्ली चला गया और कुछ समय बाद वजीर सफदरजग के आदेश से फर्रुखाबाद जाकर रुहेलो के विरुद्ध एक लड़ाई में भाग लिया। इसी लड़ाई में वह मारा गया।

लगा था। अलीवर्दी खाँ ने उसे मुर्शिदाबाद बुलवाया और उसी को खालसा-विभाग का दीवान नियुक्त किया। गुलाम हुसैन* ने लिखा है कि उसने राजस्व-सबधी कुछ ऐसे पुराने भेद खोले, जिनसे कई जमीदार तथा दूसरे व्यक्ति सरकार के देनदार साबित हुए। इनमे मुख्य थे जगत्सेठ और बर्दवान के राजा। इन सब ने देनदारी स्वीकार कर ली और सरकार को एक करोड़ से ऊपर रुपये की आय हो गई। इससे कीर्तिचंद को वाहवाही मिली और वह अलीवर्दी खाँ का बड़ा ही विश्वासपात्र हो गया। पूरे दो बरस दीवान रहने के बाद उसकी मृत्यु हुई। मरते समय वह सिफारिश कर गया था कि दीवान का पद उम्मेदराय को ही दिया जाय। अलीवर्दी खाँ ने यही किया और उम्मेदराय को खिलअत क साथ रायरायाँ का खिताब देकर खालसा-दीवान बना दिया।

राजा रामनारायण का नाम ऊपर आ चुका है। यह शाहाबाद जिले के किशनपुर गाँव के निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। मुहर्रिरी से तरक्की करते-करते जानकीराम के दीवान हुए थे। जब १७५२ मे जानकीराम की मृत्यु हो गई, तब अलीवर्दी खाँ ने उसकी जगह रामनारायण को दे दी। जानकीराम का बेटा दुर्लभराम सैनिक-विभाग मे नायब दीवान रह चुका था। वह उस विभाग का दीवान कर दिया गया।

१७५२ मे सिराजुद्दौला के छोटे भाई इकरामुद्दौला की अकाल-मृत्यु हुई। इसे अलीवर्दी खाँ का भतीजा नवाजिश मुहम्मद खा (सहामतजंग) गोद ले चुका था। तीन साल बाद सहामतजंग भी जाता

* "मुताखरीन"।

रहा और इसके मरने के प्राय एक वर्ष वाद इसका भाई सईद अहमद खाँ (सौलतजग) । इतिहासकारो का कहना है कि विषय-लोलुप होते हुए भी सहामतजग दयाशील और उदार था।

१७५६ मे अलीवर्दी खाँ[3] खुद वीमार पडा और ८० वर्ष की अवस्था मे उसी साल उसकी मृत्यु हुई ।

मसनद पर बैठने के वाद, अपने शासनकाल के अन्तिम चार-पाँच वर्षो को छोड़कर वह कभी सुख की नीद न सो सका था। उसके लिए ये चार-पॉच साल भी कौटुविक विपत्तियो के कारण दु खदायी ही रहे। पर इसमे सदेह नही कि वह पुरुषार्थी था और वुढापे मे भी आसमान के तारे तोड देने की हिम्मत रखता था। मराठो से अगर वह आठ-नौ साल पहले ही सधि कर लता तो जो त्याग उसे १७५१ मे करना पडा, वह न करना पड़ता और सभवत वगाल का इतिहास भी दूसरी ही तरह लिखा जाता ।

जगत्सेठ के घराने से अलीवर्दी खा का सम्वन्ध पहल-पहल तव हुआ था, जव शुजाउद्दौला के शासनकाल मे वह विहार का नायव नाजिम था। वह सम्वन्ध धीरे-धीरे मित्रता मे परिणत हुआ था और वह मित्रता अलीवर्दी खाँ को मुर्शिदावाद की मसनद दिलाने मे सहायक हुई थी। १७४० से १७५६ तक दोनो का सम्वन्ध राजा-मत्री का-सा रहा। इस वीच मे मराठो के उपद्रव होते ही रहे। फिर अफगानो के विद्रोही हो जाने के कारण पेचीदगी और भी वढ गई। अलीवर्दी खा को इस कठिन काल मे, अपनी आर्थिक कठिनाई हल करने के लिए, कई वार फतहचन्द और, उनके मर जाने के वाद,महतावराय पर दवाव भी डालना पडा। लूट-पाट या व्यापारिक सन्निपात से जगत्सेठ की जो हानि हुई,वह अलग थी। इन कारणो से उन्हे कभी-कभी क्षुब्ध भी

होना पड़ा और इस बात की शिकायत करनी पड़ी कि प्रान्त की तो बात ही क्या, राजधानी मे भी कोई सरकार नही रह गई है। पर बल खाने पर भी अलीवर्दी खाँ और जगत्सेठ का पारस्परिक सम्बन्ध कभी टूटा नही, बल्कि घनिष्ठ ही बना रहा।

अलीवर्दी खाँ के मरने के बाद राजसत्ता, ईस्ट इडिया कंपनी के हाथ मे जाने वाली थी—राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र मे बड़े उलट-फेर होने वाले थे—और भँवर मे पड़कर महताबराय के घराने की भी नाव डूबने वाली थी। पर १७५६ मे पहली या दूसरी नही तो तीसरी दुर्घटना कुछ दूरस्थ थी और उस नाव के मस्तूल की ऊँचाई अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। एक आधुनिक इतिहासकार* ने लिखा है कि, "जहां फतहचन्द का विभव लोगों को आश्चर्यचकित कर देता, वहाँ महताबराय और स्वरूपचंद का विभव उनकी आँखों मे चकाचौंध लगा देता।" उनके धन की इयत्ता बताना तो संभव नही, पर उस पर थोड़ा-बहुत प्रकाश अवश्य डाला जा सकता है.—

उस समय यह किंवदन्ती थी कि अगर जगत्सेठ चाहते, तो रुपयों से ही भागीरथी के उद्गम को बॉध सकते थे। ऐसी ही और भी जन-श्रुतियां रही होंगी। अत्युक्ति के उदाहरण होते हुए भी, इनसे यह सूचित होता है कि जगत्सेठ-परिवार की धन-सम्पत्ति के संबंध में सर्वसाधारण का क्या अनुमान था। पर जो जानकार कहे जा सकते थे, उनका भी अंदाज यही था कि जगत्सेठ अपने समय के अद्वितीय धनी थे। उनकी आमदनी के जरिये क्या थे, यह ऊपर बताया ही जा चुका है। फिर भी पाठकों को कुछ बातों की याद दिला देना और कुछ नई बातों की ओर उनका ध्यान आकर्षित कर देना आवश्यक जान पड़ता है।

---

* मि० लिट्ल।

(१) जो कुछ भी सरकारी आय होती, वह जगतसेठ की ही कोठी में जमा कराई जाती। इस आय का अधिकाश माल के रूप मे आता।

जिस समय ईस्ट इडिया कपनी को वगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी मिली थी, उस समय (१७६५) क्लाइव ने अदाज किया था कि तीनों प्रान्तो से खर्च काटकर प्राय. २ करोड़ ६८ लाख 'सिक्को' की आय हुआ करेगी। इसके अन्तर्गत बंगाल और विहार की ही आय* थी—उडीसा* की नही, कारण कि वहा अभी तक मराठो का आधिपत्य वना हुआ था। क्लाइव ने कंपनी के संचालकों को लिखा था कि दीवानी मिलने का अर्थ है प्राय. ढाई करोड़ 'सिक्को' की आय, यद्यपि उसमें कम से कम बीस-तीस लाख की बढती तो निश्चित-सी है। इस प्रकार तीनों प्रान्तो को मिलाकर सरकारी आय प्राय. तीन करोड़ तक जा पहुंचती थी और तीन करोड़ 'सिक्को' के प्राय साढ़े तीन करोड़ रुपये होते थे।

फिर माल या मालगुजारी के अलावा तरह-तरह के अववाव भी थे—और मुर्शिदकुली खाँ के समय से इस प्रकार की आय मे उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती आ रही थी। अलीवर्दी खाँ के ही समय मे तीन तरह के नये अववाब लगाये गये, जिनका जोड़ २२,२५,५५४) बैठता था। इनमे मुख्य थी "मराठा चौथ" जिससे १५,३१,८१७) की आय थी।

महिमापुर जाकर जिन्हे माल दाखिल करना पडता, वे पहले तो वंगाल के ही जमीदार या अहलकार होते, फिर जब विहार और उडीसा का भी शासन मुर्शिदावाद से ही होने लगा, तब उन प्रान्तों मे होनेवाली

---

* औरगजेव के मरने से पहले उडीसा से होने वाली आय ३६ लाख रुपये थी।

बचत का रुपया भी सरकार के पास जगत्सेठ की कोठी के रास्ते ही पहुँचने लगा।

माल दाखिल हो जाने पर, सिक्को की जाँच होती और वे तरतीबवार रखे जाते। खोटे सिक्को को अलग कर देने पर जो बाकी बचते, उन पर बट्टा काट कर उनकी असली कीमत ठहराई जाती और हर जमीदार या दूसरे देनदार के खाते मे उतना रुपया जमा कर लिया जाता। नियत समय पर जगत्सेठ को रुपये का हिसाब और सरकार के इच्छानुसार भुगतान देना पड़ता।

जगत्सेठ को सरकारी फोतेदारी से क्या लाभ था, इस विषय में कुछ भी निश्चित रूप से कहना कठिन है। पर अनुमान किया गया है, कि यह लाभ चालीस लाख रुपये प्रतिवर्ष से कम न रहा होगा। कम्पनी के कर्मचारी स्क्राफ्टन ने तो स्पष्ट शब्दो मे उनकी इतनी आय बताई है। वाट्स नामक एक दूसरा कर्मचारी भी एक जगह कुछ ऐसी बात लिख गया है, जिससे इस अनुमान की कुछ पुष्टि होती है कि सरकार को जगत्सेठ जो कुछ भुगतान देते, उस पर उन्हे दस प्रतिशत कमीशन मिलने का नियम था।*

(२) जमींदारों को अक्सर जगत्सेठ की कोठी से उधार लेकर हिसाब चुकता करना पड़ता था। विलियम बोल्ट्स नामक एक अँगरेज व्यापारी, जो कंपनी का कर्मचारी भी रह चुका था, १७७२ मे बगाल और बिहार की आर्थिक व्यवस्था की आलोचना करते हुए लिखता है—

---

* रजीतराय के एक पत्र के आधार पर।

"जब माल की किस्त चुकाने का समय आता है और जमीदार के पास रुपया नही होता, तब उसे बकाये पर अहलकारो को फी रुपया दो पैसे माहवार ब्याज देना पड़ता है। जगत्सेठो का यह कायदा था कि वे रुपये की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेते और नवाब या सरकार को रसीद के तौर पर 'पात' लिख कर दे देते थे। बिहार मे ईस्ट इडिया कपनी का दीवान भी वैसी स्थिति मे यही करता है और कपनी के खजाने मे 'पात' दाखिल कर देता है। ऐसी रकम पर उसे जमीदार से दस रुपया सैकडा ब्याज मिलता है, जिसे 'पटान' कहते है। जब कभी कंपनी को रुपये की जरूरत पडती है और 'पात' की रकम दीवान से तलब की जाती है, तब वह बात की बात मे सराफो से उधार लेकर हिसाब बेबाक कर देता है। बिहार मे जमीदार को ब्याज या बट्टे के अलावा ५) सैकड़ा 'रसूम' या 'दस्तूरी' के तौर पर देना पड़ता है। जिसके हकदार माल-विभाग के छोटे कर्मचारी होते है।"

(३) हीरानन्द के समय से ही जगत्सेठ-घराने का खास धंधा महाजनी या रुपये का लेन-देन चला आया था और फैलते-फैलते इस व्यवसाय-वृक्ष ने उत्तर भारतवर्ष के बहुत बडे भाग को आच्छादित कर लिया था। शायद ही कोई व्यापार-केन्द्र था, जहाँ इसकी शाखा-प्रशाखा न थी, जहाँ से उनके पास हर तरह के समाचार नियमित रूप से न पहुँचते रहते थे। उनकी कोठी ही उस समय बडी से बडी बैंक थी और उसी का यह काम था कि मुर्शिदाबाद मे एक करोड़ लेकर उसका दिल्ली मे भुगतान दे सकती थी। हुडावन तथा बट्टे से जगत्सेठ-वश इतना लाभ उठाता रहा कि "उस पैमाने पर यूरोप में कभी किसी ने लाभ उठाया ही न था।"*

* बोल्ट्स।

(४) जगत्सेठ का प्राय: सभी विदेशी कंपनियों से सम्बन्ध था और उनके यहाँ इनके खाते खुल चुके थे। आपत्काल मे भी इन्हें कर्ज मिल सकता था तो जगत्सेठ की ही कोठी से। अलीवर्दी खाँ के जमाने में जब कभी ईस्ट इंडिया कपनी को किसी टेढी आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ता, तब वह उन्ही का दरवाजा खटखटाती और उनकी सहायता से उसकी प्राय. प्रत्येक समस्या हल भी हो जाती। इस पुस्तक मे इसके उदाहरण भरे पड़े है। सितम्बर १७४९ मे कंपनी की ढाका-फैक्टरी के ही जिम्मे सेठों का ५,८४,०००) निकला था। १७५१ में कासिमबाजार-फैक्टरी ५,१२,८२०) की देनदार ठहरी थी। महताब-राय और स्वरूपचंद से अँगरेज ही नहीं, फ्रेंच और डच भी समय-समय पर कर्ज लेते रहते थे। इस बात का उल्लेख मिलता है कि १७५७ में फरासीसी प्राय. पन्द्रह लाख के देनदार थे। इसी प्रकार यह उल्लेख भी मिलता है कि डच कपनी उनकी कोठी से ।।।) फी सदी माहवार ब्याज पर ४,००,०००) कर्ज ले चुकी थी। अगर पुराने बही-खाते या दूसरे कागजात मौजूद होते, तो इस तरह के लेन-देन के और भी अनेकों उदाहरण दिये जा सकते।

(५) मुद्रा-सम्बन्धी परिस्थिति मुद्राओं की विभिन्नता के कारण अत्यन्त असंतोषजनक थी—यह हम ऊपर बता चुके है। अनेकता में एकता ले आने के लिए विभिन्न मुद्राओ को काल्पनिक रुपये मे परिणत करना पड़ना था और यह काम बट्टा काटकर पूरा किया जाता था। बंगाल में बट्टे की दर प्राय: इन बातो पर निर्भर होती थी कि 'सिक्के' कितने पुराने थे—उनके बदले जो मुद्रा माँगी जाती, उसकी आमदनी कैसी थी—मुद्रा को एक स्थान से दूसरे स्थान मे भेजने का खर्च क्या बैठता था, इत्यादि। अदल-बदल का यह काम जिस पैमान पर जगत्सेठ

कर सकते थे, उस पर दूसरे सराफ या कोठीवाल नही। इसलिए इस व्यवसाय से उनकी ही सब स अधिक आय थी। लोगो को मुद्रा-विनिमय क लिए बट्टे के नाम से जो दाम चुकाना पडता, उसकी घटा-वढी के कारणो को समझ लना कोई आसान काम न था। अँगरेज तो प्राय ही उसे गोरखधधा कहते और जगत्सेठ को ही उसके लिए जिम्मेवार ठहराते। अगर विलियम वोल्ट्स को उन समालोचको या आक्षेपकों का प्रतिनिधि मान लिया जाय, तो उनकी शिकायत यह थी --

"नवाब को और अर्थ-विभाग के अधिकारियो को चकमा देकर जगत्सेठ ने एक ऐसा रिवाज चला दिया जो आज भी (१७७२) कायम है और जो मुद्रा-प्रसार की दृष्टि से इस देश के लिए वहुत ही हानिकर सिद्ध हो चुका है। यह रिवाज 'सिक्को' पर कटने वाले वट्टे का था। 'सिक्के' टकसाल मे ढलते है। उनमे चाँदी कितनी होनी चाहिए, इसके लिए पहले से ही नियम बना हुआ है। पर जो 'रुपया राइज' या 'प्रचलित रुपया' कहा जाता है, वह काल्पनिक मुद्रा-मात्र है, जैसे इगलैड का पौड स्टर्लिग। 'सिक्को' की तुलना मे प्रचलित 'रुपये' का मूल्य १६ प्रतिशत कम है। मुगल सल्तनत के बरबाद हो जाने के बाद से इस देश के विभिन्न भागो मे विभिन्न प्रकार के रुपये या सिक्के चल पडे है। इन सव को पारस्परिक विषमता को दूर कर इनमे समानता ले आने और हिसाब मिलाने के लिए, इनके 'रुपये राइज' या 'प्रचलित रुपये' बना लेना आवश्यक हो जाता है।

"जब बट्टा कटने लगा, तब यह नियम वना कि टकसाल मे ढलने के बारह महीने बाद तक काल्पनिक रुपयो के मुकावले मे 'सिक्कों' की कीमत १६ प्रतिशत ऊँची रहे, पर साल तमाम होते ही उस कीमत मे ३ प्रतिशत की कमी मान ली जाय। ऐसे 'सिक्के' 'हरसन्' कहलाते

और प्रचलित रुपयो की अपेक्षा कीमत मे १३ प्रतिशत ऊँचे माने जाते है। पर ढलाई से तीसरा साल शुरू होते ही, 'हरसन्' का नाम बदल कर 'सनवात' हो जाता है और 'सनवात' की कीमत और २ प्रतिशत के हिसाब से गिर जाती है। गरज यह कि जहाँ एक साल तक रुपये की तुलना मे 'सिक्के' का मूल्य १६ प्रतिशत ऊँचा रहता है, वहाँ दूसरा साल शुरू होते ही बट्टा लगने पर वह फर्क १६ की जगह १३ हो जाता है और दूसरा साल बीतते ही १३ की जगह ११। नियमानुसार इससे अधिक बट्टा तो नही लगना चाहिए, पर अगर सराफ चाहे तो एक प्रकार की मुद्रा की बहुतायत और दूसरे प्रकार की मुद्रा की कमी बताकर, लगा सकते है।

"इस देश मे रुपयों की ऐसी विभिन्नता है कि अगर मुर्शिदाबाद का कोई व्यापारी पास के किसी दूसरे प्रान्त मे नकद दाम चुकाकर माल खरीदना चाहता है, तो उसक लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सराफों से ऐसी मुद्रा खरीदे, जिसका या तो उस प्रान्त में चलन हो या जिस पर कम से कम बट्टा कटने की संभावना हो। याद रखना चाहिए कि पटने की टकसाल में ढले हुए 'सिक्के' जब बंगाल मे आते है या मुर्शिदाबाद-कलकत्ते की टकसालों मे ढले हुए 'सिक्के' जब बिहार भेजे जाते है, तब उन पर भी बट्टा कटे बिना नही रहता। रुपयों के अदल-बदल के धंधे में बड़ी उलझनें, बड़ी पेचीदगियाँ है। सच कहा जाय तो बट्टा एक तरह की जेब-कतरनी है। इसी का उपयोग कर मुर्शिदाबाद का यह सेठ-परिवार मालामाल हो गया था। देश के वर्तमान शासकों से भी अभी तक इसका उपयोग बद नही हो सका है।"

बट्टे का रिवाज चलानेवाले जगत्सेठ थे, यह तो इस लेखक की

खामखयाली ही थी। सिक्को के छीजने पर उनका मूल्य कम हो जाना अर्थात् उन पर बट्टा लगना कोई नई वात नही थी। 'आईने अकवरी' मे भी इसका जिक्र है। मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आजाद' अपने "दरवारे अकवरी" मे लिखते हैं कि, "महाजन उन दिनों भी पुराने राजाओ के सिक्को पर मनमाना बट्टा लगाया करते थे और गरीवो का लोहू चूसा करते थे।" इसलिए अकवर को आज्ञा देनी पडी थी कि, "सव पुराने सिक्के एकत्र करके गला डालो। हमारे राज्य मे केवल हमारा ही सिक्का चले और नया-पुराना सव वरावर समझा जाय।" अकवर का ही आदेश था कि वजन और सोना-चांदी के खरापन के अनुसार ही उनका मूल्य निर्द्धारित हो, जिससे लेने या देने वाले को कुछ भी कसर न खानी पडे। अकवर के वाद इस देश मे सिक्को की विभिन्नता और बढ़ गई और एक ही टकसाल मे विभिन्न अवसरो पर ढले हुए रुपये या अन्य सिक्के विभिन्न प्रकार के होने लगे। फिर और कारणो से भी बट्टा घटने-बढने लगा। कासिमवाजार से ईस्ट इडिया कपनी के ही एक अँगरेज कर्मचारी ने १६६१ में लिखा* था कि, "सिक्को पर कटने वाले बट्टे के हिसाब से चादी के दाम मे घटा-बढी होती रहती है"। उस समय: जगत्सेठ की कौन कहे, मानिकचन्द की भी महत्ता भविष्य के ही गर्भ मे थी। पर यह सच है कि मुद्रा-सवधी विभिन्नता जव तक बनी रही, तव तक वह इस देश की एकता और उन्नति के मार्ग मे प्रवल वाधक रही और साथ ही यह भी सच है कि उस विभिन्नता के कारण पैदा होने वाली बट्टे की परिपाटी से अठारहवी शताब्दी मे जगत्सेठ-वश ने बहुत-सा धन कमाया।

(६) जव से मानिकचन्द टकसाल के इतजामकार या ठेकेदार हुए

* विल्सन, भाग १, पृष्ठ ३७६।

थे, तब से बंगाल मे चादी का सब से वड़ा खरीदार उन्ही का घराना हो चला था। कुछ समय बाद जगत्सेठ टकसाल के इजारेदार-से* हो गये और चाँदी के वाजार पर उनका एकाधिपत्य हो गया। ऐसी स्थिति मे वट्टा काटकर मुद्रा-विनिमय करने का व्यवसाय उनकी कोठी के लिए विशेष लाभदायक बन गया। नियमानुसार जगत्सेठ जमीदारो से नये 'सिक्को' में ही माल लेने को वाध्य थे। अगर 'सिक्को' की उम्र एक साल की भी होती, तो उन पर बट्टा कटना अनिवार्य हो जाता। दो साल पुराने होते ही 'सिक्कों' की कीमत ५ प्रतिशत कम हो जाती। पर उन्ही पुराने 'सिक्को' को जब टकसाल मे फिर नया कलेवर मिल जाता तब उनका मूल्य पूर्ववत् ही ऊँचा हो जाता। जगत्सेठ का इसमें सारा खर्च १) सैकड़ा बैठता— ॥) सरकारी ढलावन और ॥) ढलाई का खर्च, यद्यपि एक अँगरेज ने १७६० में अनुमान किया था कि अगर काफी वड़ी तादाद मे 'सिक्को' की ढलाई हो तो खर्च ॥) सैकड़ा से भी बहुत कम पड़े।

हम अन्यत्र देख चुके हैं कि ईस्ट इडिया कपनी इस बात के लिए बराबर प्रयत्नशील रहती आई थी कि वह अपनी चाँदी मुर्शिदाबाद की टकसाल मे भेजकर उसके 'सिक्के' करा सके और जगत्सेठ की ओर से इस प्रस्ताव का बराबर विरोध होता आया था। उस विरोध † के कारण १७५७ से पहले कंपनी को वैसी इजाजत

---

* कपनी के कागजात में कही तो जगत्सेठ स्वय इजारेदार बताये गये और कही दूसरे। असलियत यह जान पडती है कि इजारेदार दूसरे ही थे, पर जगत्सेठ की कोठी को टकसाल मे कुछ विशेष अधिकार या सुविधाएँ प्राप्त थी।

† १७५३ में कासिमबाजार वालो ने कौसिल के आदेशानुसार चुपचाप चेष्टा की कि कंपनी को कलकत्ते में टकसाल खोलने का अधिकार मिल

न मिल सकी। अगर मिल जाती तो जगत्सेठ का चाँदी या सराफे के बाजार पर एकाधिपत्य न रह सकता और वट्टे के जरिये उन्हे जो आमदनी होती आई थी, वह न हो सकती। कपनी को यह अनुभव जरूर होने वाला था कि युद्ध के क्षेत्र में नवाब नाजिम को हरा देना एक बात थी, आर्थिक क्षेत्र मे जगत्सेठ पर विजय प्राप्त कर लेना और बात। कलकत्ते मे टकसाल खुल जाने पर भी कई साल तक वहाँ के ढले हुए 'सिक्के' स्वच्छदतापूर्वक न चल सके। १७६० मे नाजिम नियुक्त होन पर मीर कासिम को यह हुक्म जारी करना पडा कि कलकत्ते के 'सिक्को' पर वट्टा माँगना या काटना जुर्म समझा जायगा।

अलीवर्दी खाँ के मरने पर महताबराय को उसके नाती सिराजुद्दौला से वास्ता पडने वाला था और पारस्परिक सघर्षण के कारण कुछ ही दिन बाद चन्दन से भी आग प्रकट होने वाली थी।

(२)

सिराजुद्दौला का जन्म अलीवर्दी खाँ के बिहार की नायब

जाय। पर उन्होंने लिखा कि "जगत्सेठ के विरोध के कारण यहाँ सफलता की कोई आशा नही दीखती। दिल्ली में सिफारिश कराई जाय तो कम से कम एक लाख रुपया तो वहाँ खच पडेगा और एक लाख यहाँ। पर जगत्सेठ या उनके किसी भी कर्मचारी को इसकी भनक भी नही मिलनी चाहिए"। स्वयं कासिमबाजार वालो को यह आशा न थी कि दो लाख या उससे अधिक खर्च करने पर भी कपनी को टकसाल-सबधी विशेष अधिकार कभी भी प्राप्त हो सकेगा।

निजामत पाने से कुछ ही दिन पहले हुआ था। यह बात १७३३* की है। अलीवर्दी खाँ मरने से पहले ही उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुका था और सभवतः १७५३ मे मसनद पर बैठा भी चुका था। उस समय सिराजुद्दौला उन्नीस-बीस साल का रहा होगा। अलीवर्दी खॉ ९ अप्रैल १७५६ को मरा। २३ जून १७५७ को पलासी के मैदान मे सिराजुद्दौला की हार हुई और नौ ही दिन बाद मीरन† के हुक्म से वह मारा गया। इस प्रकार स्वतत्र रूप से नाजिम होने के पन्द्रह महीनों के भीतर ही उसके शेष जीवन की सारी कहानी समाप्त हो गई।

अकबर भी कम उम्र मे ही राजसिहासन पर बैठा था—बल्कि तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था मे ही। पर वह तो "मां के पेट से ही ऐसी-ऐसी योग्यताओ और गुणों का समूह बनकर बाहर निकला था, जो हजारों मे से एक बादशाह को भी नसीब न हुए होगे‡"। उसका लालन-पालन भी और ही तरह के वातावरण मे हुआ था। उसे दूध पिलानेवाली मिली थी तो माहम अतगा-जैसी, अभिभावक मिला था तो बैरम खाँ-जैसा। पाँच साल की उम्र मे ही उसे गोलो की वर्षा का अनुभव हो चुका था। अलीवर्दी खॉ के लाड-दुलार ने सिराजुद्दौला को कभी घड़ी भर के लिए भी नियंत्रण की कठोरता का अनुभव होने न दिया। निरकुशता ने उसे उद्धत और अभिमानी बना दिया और कमसिनी मे ही उसका दिमाग आसमान

---

* श्री कालीकिंकर दत्त के मतानुसार। सिराजुद्दौला के जन्मवर्ष के सम्बन्ध मे कुछ मतभेद है।

† मीर जाफर का बेटा।

‡ "दरबारे अकबरी" (हिन्दी अनुवाद)

पर चढ गया। जिसे मखमली गद्दो से कभी अलग न होना पडा, वह मिजाज मे तेजी होते हुए भी, युद्ध-कला-कौशल से कोरा रह गया। फिर अकबर मे यह विशेषता थी कि शिक्षा-रूपी सरकार से वचित होते हुए भी वह व्यापक अर्थ मे अशिक्षित नही कहा जा सकता था। भले-बुरे की उसे अच्छी पहचान थी, मनुष्य-रूपी रत्नो का वह अच्छा पारखी था। सिराजुद्दौला का मानसिक धरातल न तो उतना ऊँचा था, न उसके ज्ञान और अनुभव का क्षेत्र उतना विस्तृत। नाजिम होने पर उसने राजमुकुट के लिए कुछ नगीने खरीदे भी तो वे प्राय नकली पत्थर निकले। जो लाल-जवाहर अपने खजाने मे थे, उन्हे उसने अपनी बेवकूफी और हेकडी से ठुकरा दिये।

शासन की बागडोर पूरी तरह हाथ में आते ही, सिराजुद्दौला ने हर तरफ टक्कर लडाना शुरू कर दिया। दुर्भाग्यवश उसने न तो अपने चरित्र मे ही कोई सुधार किया, न अपने घर को ही सँभाला। अपनी करतूतो से उसने मुर्शिदाबाद मे ईस्ट इडिया कपनी का दूसरा 'फोर्ट विलियम' खडा कर दिया। नतीजा यह हुआ कि बात बढने पर जब उसने कपनी से तीसरी टक्कर ली, तब उसका माथा चकनाचूर हो गया। अँगरेजो की धीगाधीगी इस हद तक बढ चुकी थी कि नाजिम की हैसियत से उन्हे दड देना उसका धर्म था। पर साथ ही उसका यह भी धर्म था कि दड देने के लिए जो कुछ करता, अपनी सघ-शक्ति बढ़ाकर, आवश्यक साधनो को जुटाकर, अपनी तलवार की धार तेज कर। वास्तव मे उसने किया यह कि अपनी दुर्नीति से अपने पुराने सगठन को भी तीन-तेरह कर दिया; जो सहायक हो सकते थे, उन्हे गरदनिया दे दी—और जो बख्तर पहनकर लडाई पर जाने वाला था, उसमे सैकडों नये छेद पैदा कर लिये। पद्रह दिनो या हफ्तो मे

नही, तो पंद्रह महीनों मे ऐसे निरंकुश और विवेक-भ्रष्ट शासक का विनिपात अवश्यभावी था।

नवाजिश मुहम्मद खाँ के मरते ही उसकी स्त्री घसीटी बेगम से उसकी चखाचखी शुरू हो गई थी। वह बदचलन समझी जाती थी और उसके पास धन भी बहुत था। अलीवर्दी खाँ के जीवित रहते उसका बाल बाँका होना तो असंभव था, पर सिराजुद्दौला ने उसके दीवान राजा राजवल्लभ को गिरफ्तार करा लिया और उससे हिसाब-किताब तलब किया। राजवल्लभ ने जो कुछ देकर छुटकारा कराना चाहा, वह सिराजुद्दौला को मंजूर न हुआ और उसके घर पर सिपाही बैठा दिये गये। राजवल्लभ ने कासिमबाजार की फैक्टरी क प्रधान मि० वाट्स को कहलाया कि "मेरा पुत्र कृष्णदास* सस्त्रीक जगन्नाथपुरी जाना चाहता है। दोनों कलकत्ता होकर जायँगे। पर कृष्णदास की स्त्री गर्भवती है, इसलिए अभी दो महीने वे वही रहना चाहते है। आप कौंसिल को लिखकर जरूरी इजाजत मँगा दें।" इजाजत आ गई और कृष्णदास रवाना हो गया। वह अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के अलावा बहुत-कुछ धन भी साथ लेता गया। वास्तव मे वह शरणार्थी होकर ही कलकत्ते गया था। सिराजुद्दौला को इसकी खबर मिली तो वह आग-बबूला हो गया। अलीवर्दी खाँ उस समय बीमार था; उसने सिराजुद्दौला को समझाया-बुझाया और कहा कि चगा होते ही मै कृष्णदास को गिरफ्तार करा लूगा, तब तक तुम धीरज धरो। इसी बीच उसकी मृत्यु हो गई। सिराजुद्दौला न अपने दूत नारायण सिह† की मार्फत कपनी के

---

* "मुताखरीन" मे इसका नाम कृष्णवल्लभ मिलता है।

† यह मेदिनीपुर के फौजदार राजाराम का भाई और हरकारा (जासूस) विभाग का प्रधान अधिकारी था।

गवर्नर के नाम एक परवाना भेजा कि कृष्णदास को सपरिवार गिरफ़्तार कर और उसकी धन-सम्पत्ति जब्त कर फौरन मुर्शिदाबाद भेज दो। पर कलकत्ते मे गवर्नर या कौंसिल ने उस पर कुछ भी ध्यान नही दिया और नारायणसिंह क साथ बुरी तरह पेश भी आये।

इधर बीबी घसीटी मोतीझील मे रहने और पैसा पानी की तरह बहाकर सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र करने-कराने लगी थी। तनातनी बढने पर अलीवर्दी खॉ की बेगम और सिराजुद्दौला की ओर से महताव-राय ने पास जाकर उसे आश्वासन दिया। उसका विशेप कृपापात्र और विश्वासपात्र मीर नजरअली नामक एक अधिकारी था। उसको मुर्शिदाबाद छोड देना पड़ा। लोगों को लगा कि मनमुटाव का कारण दूर हो गया। पर सिराजुद्दौला ने उसके वाद ही वहुत से सिपाही भेज कर अपनी चाची को नजरबन्द और उसकी सारी धन-सम्पत्ति खालसा करा ली।

कलकत्ते से लौटकर नारायण सिंह ने आप-वीती तो सुनाई ही, इस खबर की भी तसदीक की कि वहाँ तो अँगरेज, और चन्दननगर मे फरासीसी, जोरो से किलेबन्दी करते जा रहे थे। 'फोर्ट विलियम' मे किले की मरम्मत के बहाने कुछ नये हिस्से जोड़ दिये गये थे। दो-एक बडे मकान भी बनवा लिये गये थे, जहा से जरूरत पड़ने पर गोले वरसाये जा सकते थे। शहर के इर्द-गिर्द जो खाई थी, वह और गहरी कर दी गई थी। सिराजुद्दौला का हुक्मनामा कलकत्ते पहुँच चुका था कि कोई नई इमारत न बनने पावे; जो मकान इधर बन चुके है, वे तोड़-फोड़ दिये जायँ और खाई को भर दिया जाय। कंपनी ने यह सव तो किया नही, उलटे सिराजुद्दौला को ऐसा उत्तर भेजा जिससे उसकी क्रोधाग्नि और भी प्रज्वलित हो उठी।

जिस समय सिराजुद्दौला को कंपनी का असंतोषजनक उत्तर मिला, उस समय वह राजमहल में था। चला था पूनिया के फौजदार और अपने चचेरे भाई शौकतजंग को सर करने, पर यह देखकर कि अँगरेजो ने कलकत्ते मे उसकी आज्ञा का पालन करने से इनकार कर दिया था, वह उन्हें दंड देने के विचार से लौट पडा और कासिमबाजार पहुँचकर उनकी कोठी पर कब्जा कर लिया। इसके बाद ही उसने कलकत्ते की ओर प्रस्थान किया। उसकी माँ अमीना बेगम ने और अपने भाई के साथ जगत्सेठ ने बडी कोशिश की कि तकरार न बढे, सिराजुद्दौला का क्रोध शान्त हो जाय और वह कलकत्ते पर चढ़ाई करने का विचार त्याग दे। पर वे सफल न हो सके। सिराजुद्दौला का कहना था कि "अँगरेज न जाने कितनी बार मेरा अपमान कर चुके है। जब कभी कोई अपराधी कलकत्ते भाग जाता है, तब उसे वहाँ शरण मिल जाती है और अँगरेज उसे सरकार के हवाले नही करते। एक बार इसी कासिमबाजार फैक्टरी मे मै अपनी अम्मा के साथ आया था। इसके प्रधान को कहलाया कि हम लोग तुम्हारी फैक्टरी देखना चाहते है। उसने जवाब दिया कि हम भीतर आने की इजाजत नही दे सकते। उसका यह अपमानजनक उत्तर मुझे आज तक नही भूला है।" जगत्सेठ ने बहुत कहा कि अँगरेज लड़ाई-झगडे से दूर रहने वाले व्यापारी है, अगर उनसे कोई अपराध हो भी गया हो, तो उन्हे क्षमा कर देना चाहिए। सिराजुद्दौला पर उनकी बातों का कोई असर न हुआ। बल्कि उसने जगत्सेठ से शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करा ली कि मै आगे कभी अँगरेजों की सिफारिश न करूँगा।

कंपनी के कुछ अंगरेज अधिकारी भी आरभ से ही कृष्णदास को

कलकत्ते मे शरण देने के विरोधी* थे। उनके मतानुसार वैसे भगोडे को पनाह देना और फिर उसे मुर्शिदाबाद भेजने से इन्कार कर देना राजसत्ता का अपमान करना और सरकार को लडाई के लिए ललकारना था। कौंसिल ने सिराजुद्दौला को आपत्तिजनक पत्र लिखकर बात और भी बिगाड दी थी। पर ऐसे अगरेज अल्पसख्यक थे। जो बहुमत कहा जा सकता था वह झगडा-रगडा ही चाहता था। इसका कारण यही जान पडता है कि मुर्शिदाबाद की परिस्थिति से उसे प्रोत्साहन मिल चुका था और बगाल के पानी मे दाल गलने की पूरी आशा हो चली थी।

सिराजुद्दौला सिर्फ तीन बाते चाहता था:—

(१) जो अपराधी या अभियुक्त भागकर कंपनी के पास पहुँचे उन्हे वह शरण न दे।

(२) कपनी के अधिकारी दस्तक बेच बेचकर सरकार को आर्थिक हानि न पहुँचावे।

(३) किलेबन्दी के सिलसिले मे जो कुछ बन चुका था वह ढहवा दिया जाय।

कासिमबाजार का प्रधान विलियम वाट्स और उसके सहकारी गिरफ्तार हो चुके थे। उन लोगो ने एक मुचलका लिखकर दिया भी तो उससे नवाब को सतोष न हुआ। ९ जून १७५६ को सिराजुद्दौला कासिमबाजार से चला, १६ को कलकत्ते पहुँचा और पहुँचते ही

---

* इन्ही विरोधियो में ढाके को कौंसिल के प्रधान रिचर्ड बेचर और अन्य सदस्य थे। बेचर अपने एक पत्र में लिखता है कि मानिकचन्द और जगत्सेठ ने भी मेजर किलैट्रिक को लिखा था कि अँगरेज पर नवाब के क्रोध का कारण यही हुआ कि जो अपराधी भागकर कलकत्ते पहुँच जाते, उन्हें वहा शरण मिल जाती थी। हिल, भाग २, पृष्ठ १६०।

शहर पर कब्जा कर लिया। फिर 'फोर्ट विलियम' पर घेरा डाला। उस समय यह किला लालदीघी के पास हुगली-नदी के किनारे था। आत्मरक्षा का कोई उपाय न देखकर अधिकाश अगरेज अधिकारी और व्यापारी नदी के रास्ते जहां-तहा भाग गये। इन भागने वालों मे विलियम ड्रेक नामक गवर्नर तथा कमाडर-इन-चीफ साहब भी थे। जो अंगरेज किले मे बच गये उन्हे कुछ समय तक लड़ने के बाद २० जून को आत्म-समर्पण कर देना पड़ा। इन्ही का मुखिया हालवेल था जिसने ड्रेक और उसके साथियो पर बाद यह अभियोग लगाया कि वे औरो को मुसीबत मे छोडकर भाग गये थे और अपने को कायर ही नही, गैर-जिम्मेवार भी साबित कर चुके थे। उसी मुसीबत को बढा-चढाकर बताने के लिए, हालवेल ने वह कहानी गढ़ी जो "कालकोठरी-काड" के नाम से ब्रिटिश शासन-काल मे इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है।

जहाजों और नावो पर सवार हो भाग जाने वाले कुछ समय तक तो मारे मारे फिरे। फिर उनके बेडे ने फलता के पास पहुचकर लंगर डाला। कुछ महीनों के लिए यही स्थान सभी अगरेज शरणार्थियों का शिविर बन गया। पर वहां उन्हे नाना प्रकार के कष्ट झेलने पड़े। तंबू-डेरे तो थे ही नही, खाने-पीने का सामान मिलना भी मुश्किल था। खास कर बरसात मे बौछाड़ों से बचने का कोई उपाय न होने के कारण, मर्द-औरते-बच्चे बीमार पडने और मरने लगे। जुलाई के अत मे मद्रास से मेजर किलपैट्रिक कुछ आदमियों के साथ, उनकी खोज-खबर लेने आया भी तो परिस्थिति मे किसी प्रकार का सुधार न हो सका और वह स्वयं जीवित भी रहा तो उसके अपने सैनिको की वही दशा हुई जो दूसरे अंगरेजों की हो चुकी थी। जब बाकी लोग भूखों मरने लगे तब उसने अगस्त मे सिराजुद्दौला के पास एक आवेदनपत्र भेजा कि बीती

हुई बातों को बिसारकर, अब अंगरेजो पर रहम कीजिए और ऐसा हुक्म दीजिए कि उन्हे दाना-पानी तो मिल सके। इस पत्र को वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब तक पहुचने न दिया।

सिराजुद्दौला कलकत्ते मे राजा मानिकचन्द*को किलेदार के रूप मे छोड कर मुर्शिदाबाद लौट गया था। उस से पहले 'फोर्ट विलियम' के भीतर और बाहर वे सारी वारदाते हो चुकी थी जिनका ऐसे अवसर पर न होना ही आश्चर्यजनक हो सकता था। अर्थात् कुछ अगरेज मारे जा चुके थे—कुछ यत्रणाये भोगकर मर चुके थे—कुछ कैद हो चुके थे—और नवाब के सैनिकों ने कपनी का ही नही, दूसरे व्यापारियो का भी बहुत कुछ माल-असबाब लूट लिया था। इतना निश्चित-सा जान पडता है कि जो ज्यादतियां हुईं उनके लिए सिराजुद्दौला जिम्मेवार न था। उसका कलेजा ठंढा करने के लिए इतना ही काफी था कि अगरेजो के किले पर उसका झडा फहराने लगा था।

पूर्निया मे सईद अहमद खॉ (सौलतजग) के मरने पर उसका बेटा शौकतजग वहाँ का फौजदार हो चुका था। कई बातो मे वह सिराजुद्दौला के ही समान था। मीर जाफर के उभाडने पर वह मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठने का मनसूबा बाँधने और साथ ही डून की हाकने लगा था। सिराजुद्दौला से ये बाते छिपी न रह सकी। यही कारण है कि कलकत्ते पर चढाई करने से पहले वह पूर्निया पर चढाई करने चला था, पर जैसा कि हम देख चुके है, उसे राजमहल से ही लौट जाना पडा था। उसने राजा जानकी राम के बेटे (अर्थात् दुर्लभराम के भाई) राय रासबिहारी को शौकतजग के पास भेजा और माल का बकाया

* राजा मानिकचन्द पहले बर्दवान मे दीवान रह चुका था। "मुताखरीन" के लेखक ने उसे अयोग्य और अभिमानी बताया है।

तलब किया। शौकतजंग कुछ इलाके दबा बैठा था। उन्हें भी लौटा देने को लिखा। पर माँग पूरी न होने पर उसने कलकत्ते से लौटते ही मोहनलाल को फौज के साथ चढाई पर उधर भेजा और आप भी चल पडा। पटने से राजा रामनारायण पूनिया की ओर बढा। मनिहारी और नवाबगज के बीच दोनों दलों की भिड़त हुई। उसमें शौकतजग की हार हुई और वह खुद भी मारा गया। सिराजुद्दौला ने मोहनलाल को पूनिया का फौजदार नियुक्त किया। यह अपने बेटे को नायब मुकर्रर कर मुर्शिदाबाद लौट गया।

राजनीतिक परिस्थिति शौकतजंग के बहुत कुछ अनुकूल होते हुए भी वह उससे लाभ न उठा सका था। "मुताखरीन" का लेखक सैयद गुलाम हुसैन उस समय पूनिया में उसका खास सलाहकार था। उसने राय दी थी कि बरसात बीतने पर अगरेजों के और सिराजुद्दौला के बीच युद्ध हुए बिना न रहेगा—इसलिए जल्दबाजी न कीजिये, रासबिहारी को दम-दिलासा देते और चुपचाप अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाते जाइये। पर शौकतजग को यह सलाह ठीक नही जँची थी और उसने सिराजुद्दौला को अपमानजनक पत्र भेजकर सारा गुड गोबर कर दिया था। मि० लिट्ल ने इस प्रसंग मे लिखा है:— "मुताखरीन" में शौकतजंग का जो चरित्र-चित्रण है उससे तो यह संभव नही जान पड़ता कि जगत्सेठ उसे सिराजुद्दौला से अच्छा समझ सकते या उसका पक्ष ग्रहण कर सकते थे। पर लोकमत सिराजुद्दौला के इतना विरुद्ध था कि दोषों के होते हुए भी अगर शौकतजग चेष्टा करता तो बहुत संभव है कि मुर्शिदाबाद की मसनद पर जा बैठता। उसने अपनी ही बेवकूफी से वह मौका खो दिया। मो० ला नामक फरासीसी ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया है कि उसके देशवासी इस अवसर से

जो लाभ उठा सकते थे न उठा पाये। उसका कहना है कि, इसके लिए तीन-चार सौ फरासीसी और थोडे-से हिन्दुस्तानी सिपाही ही काफी थे। अगर वे सिराजुद्दौला के शत्रुओ से मिलकर काम करते तो उसकी जगह ऐसे शख्स को नवाव नाजिम वना सकते थे जिसके पक्षपाती जगत्सेठ और दूसरे प्रभावशाली हिंदू-मुसलमान भी हो जाते। पर मेरे देशवासी ऐसा न कर सके, और पूर्निया के नवाव ने अपनी जल्दवाजी से हार खाकर बगाल मे यह स्पष्ट कर दिया कि अव क्राति करने-कराने वाले वहाँ अगरेज ही रह गये थे। पर अंगरेज उस समय स्वय दुर्दशाग्रस्त थे, इसलिए जगत्सेठ को और ही अवसर की प्रतीक्षा करनी पडी।"

कलकत्ते मे ईस्ट इडिया कंपनी के साथ अमीचन्द सेठ का घनिष्ठ संबध चला आया था, यद्यपि यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि कंपनी के कुछ विशिष्ट अधिकारियो का उन पर पूरा विश्वास न था। गवर्नर ड्रेक ने तो 'फोर्ट विलियम' छोडकर भागने से पहले उन्हें गिरफ्तार भी करा लिया था। २२ अगस्त को अमीचद ने मेजर किलपैट्रिक को लिखा कि आप जगत्सेठ से सहायता माँगिये। पर उस समय मुर्शिदाबाद मे परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई थी कि किलपैट्रिक के लिखने पर भी अमीचद उसका पत्र जगत्सेठ के पास न भेज सके। एक ओर सिराजुद्दौला ने मीर जाफर को और दूसरे सरदारो को शौकतजग से लडने को भेजा, दूसरी ओर उसने महतावराय से कहा कि व्यापारियो से तीन करोड रुपये चदा उगाहकर दो। साथ ही इस वात की शिकायत की कि दिल्ली दरबार से उन्होंने अभी तक फरमान नही मँगा दिया था। जब जगत्सेठ ने चंदा उगाहने मे अपनी असमर्थता प्रकट की तव सिराजुद्दौला ने उनके गाल पर एक तमाचा जड दिया* और उन्हे

* शायद यह भी कहा कि मै तेरी सुन्नत कराके छोडूँगा।

गिरफ्तार भी करा लिया। यह सुनते ही मीर जाफर मुर्शिदाबाद लौट गया और जगत्सेठ की रिहाई पर जोर देने लगा। जब सिराजुद्दौला ने उसकी एक न सुनी तब उसने और कुछ दूसरे सरदारों ने उससे साफ कह दिया कि जब तक शाही फरमान* नही आता तब तक हम आपकी आज्ञा का पालन करने या आपकी ओर से लड़ने वाले नही।

जो अंगरेज फलता में जहाजों के तख्तो पर पड़े हुए सर्दी-गरमी झेल रहे थे उनका आखिर उद्देश क्या था? 'फोर्ट विलियम' छोड़कर भागने वालों को यों तो सीधे मद्रास जाना चाहिए था, फिर वे वैसे स्थान मे किस आशा से अटके और हवा-पानी के झटके खाते रहे? रहस्य यह जान पड़ता है कि किला और शहर गँवा देने पर भी अंगरेज निराश नही हुए। उनका यह विश्वास बना ही रहा कि एक न एक दिन वे उन्हे फिर दखल किये बिना न रहेगे। इसलिए वे कलकत्ते के ही पास ताक लगाये बैठे रहे और मौका पाते ही फिर अपने किले में जा बैठे। मेजर किलपैट्रिक को संभवत: आदेश मिल चुका था कि जब तक मद्रास से सेना नहीं आ जाती तब तक जहाँ के तहाँ बने रहो। उसने बड़ी ही खूबी से इसका पालन किया। एक ओर तो रोता-धोता रहा—जिससे लाभ यह हुआ कि कुछ समय बाद शरणार्थियो को अन्न-जल मिलने लगा और सिराजुद्दौला अंगरेजों से निश्चिंत-सा हो गया—दूसरी ओर वह मुर्शिदाबाद से पक्की खबर मँगाता और उसे मद्रास पहुंचाता रहा। उसने धीरे धीरे जगत्सेठ और खोजा वजीद से संपर्क

* विचुरा से डाक्टर वर्य ११ दिसम्बर, १७५६ को लिखता है—"सिराजुद्दौला को बादशाह से फरमान मिल गया है। उसका सारा खर्च पड़ा है २०२५,०००)। यहां भी फरमान की नकल पहुँच चुकी है।" हिल, भाग २, पृष्ठ ५३।

स्थापित कर लिया और उनसे जो कुछ भी सहायता ले सकता था लेता गया। वजीद सिराजुद्दौला के दरवार मे विशेप प्रभाव रखने वाला एक अर्मनी व्यापारी था। जो काम उससे निकल सकता निकाल लिया जाता—वाकी कामों के लिए महताबराय का पल्ला पकडा जाता। नवम्वर मे किलपैट्रिक उन्हे लिखता है कि, "आपके सिवाय हम लोगो का और कोई सहारा नही। हमे पूरी आशा है कि आपकी सहायता से हम कलकत्ते मे फिर वस सकेगे।" ११ दिसम्वर को चिचुरा से समाचार मिलता है कि जगत्सेठ और अमीचद इस वात का प्रयत्न कर रहे है कि उलझन सुलझ जाय। साथ ही फलता से महतावराय के नाम जाने वाले दो पत्रो की प्राप्ति भी स्वीकार की जाती है। अगरेजो के और जगत्सेठ के वीच पत्र-व्यवहार का रास्ता अव सीधा न रहकर टेढा-मेढा हो चला था।

वगाल, विहार और उडीसा मे इधर अगरेजो की जो परिस्थिति हो चली थी उसका नकशा वदलने ही वाला था। इसके लिए मद्रास की कौसिल ने पूरी तैयारी कर लेने के वाद, क्लाइव और वाट्सन को सदल-वल कलकत्ते भेजा। १५ दिसम्वर को दोनो फलता पहुँच गये। मद्रास से जो पत्र वहा के अधिकारियो के नाम आया उसमे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि क्लाइव और वाट्सन को भेजने का उद्देश केवल कलकत्ते पर अधिकार जमा लेना न था। 'वादशाह फर्रुखसियर ने फरमान द्वारा हमे जो अधिकार दिये थे वे सव के सव प्राप्त हो जाने चाहिए और इधर हमारी जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति भी हो जानी चाहिए।' मद्रास की कौसिल का आदेश था कि दोनो सेनापतियो के पहुचते ही लडाई जोर-शोर से शुरू कर दी जाय, पर इसके साथ यह भी हिदायत थी कि 'तलवार से ही नही, कलम से भी काम लिया जाय और

दोनों का ऐसा सहयोग हो कि कम से कम समय और व्यय में कंपनी का अधिक से अधिक काम निकल जाय।'

उन दोनो सेनापतियों में क्लाइव का स्थल पर अधिकार था और वाट्सन का जल पर। क्लाइव कंपनी का नौकर था और वाट्सन इंगलैण्ड के बादशाह का। सात समुद्र पार भी इंगलैण्ड की सरकार बराबर अपने व्यापारियों को पूरी मदद पहुँचाती रही। इसका नतीजा यह हुआ कि सारा भारतवर्ष एक दिन इगलैण्ड का उपनिवेश बन गया। अगर फ्रास की सरकार इसी प्रकार फ्रेंच कपनी की पीठ पर होती तो कहना चाहिए कि यहां फ्रास का सितारा भी बुलंद हुए बिना न रहता।

यहीं पर एक और बात कह देने लायक है।

क्लाइव और वाट्सन मे पूरा मेल-जोल रहा हो, यह नही कहा जा सकता। प्रत्येक का अपना स्वभाव, अपना दृष्टिकोण, अपनी नीति-रीति थी। स्थानीय कौंसिल के सदस्य वाट्सन के तो नही, पर क्लाइव के घोर विरोधी थे—इसलिए कि क्लाइव को मद्रास की कौंसिल से विशेष अधिकार मिल चुके थे और वह अपने क्षेत्र मे उनसे बिलकुल स्वतंत्र था। फिर भी अगरेज अपने ऊपर वालों का अनुशासन यहाँ तक मानते थे कि ऐसे पारस्परिक मतभेद या विरोध के कारण कंपनी की नीति-धारा का कभी अवरोध न हो सका। उसके स्वच्छंद प्रवाह मे सभी सहयोगी ही बने रहे।

कलकत्ते पहुँचने के दो ही दिन बाद वाट्सन और क्लाइव की ओर से सिराजुद्दौला के पास ऐसे पत्र भेजे गये जैसे अभी तक मुर्शिदाबाद तो क्या, हुगली भी नही भेजे गये थे। एक ने अपने पत्र मे लिखा था कि ऐसे सम्राट् ने मुझे नौ-सेनापति बनाकर भेजा है जिसे ससार के सभी नरेश आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते है। दूसरे ने लिखा था कि

आप सुन ही चुके होगे कि जितनी बडी फौज साथ लेकर मैं आया हूँ उतनी बड़ी बगाल मे आज तक आई ही नही। दोनो ही पत्रो में कपनी की ओर से यह माग पेश की गई थी कि हमारे मकान और कारखाने हमे लौटा दिये जायँ; हमे, हमारे कर्मचारियो को और हमारी रिआया को जो नुकसान पहुँचाया गया है वह पूरा कर दिया जाय और हमारे सारे अधिकार वही समझे जायँ जो बादशाह फर्रुखसियर ने हमे वख्शे थे। राजा मानिकचद, जगत्सेठ महताबराय, खोजा वजीद इन सब से पत्र-व्यवहार होने लगा। पर कलम चल रही थी तो तलवार भी म्यान मे बैठ रहने वाली न थी। दिसम्बर बीतने से पहले ही क्लाइव ने लडाई शुरू कर दी। मानिकचन्द बजबज जाकर उससे भिडा तो उसे मुह की खानी पडी। २ जनवरी को वाट्सन ने उससे 'फोर्ट विलियम' भी छीन लिया। एक कदम और आगे बढकर अगरेजो ने आठ ही दिन बाद हुगली से भी नवाब की फौज को मार भगाया और शहर पर कब्जा कर लिया। यह चढाई भी जल-मार्ग से ही हुई थी।

इससे पहले क्लाइव जगत्सेठ को एक पत्र लिखा चुका था। और बहुत से पत्रो की तरह वह तो इस समय अप्राप्य है, पर जगत्सेठ ने १४ जनवरी को जो उत्तर दिया वह इस प्रकार था—

"आपका पत्र मिला। उसे पढकर बडी प्रसन्नता हुई।

"आपने लिखा कि मै जो कुछ कहता हूँ नवाब उस पर ध्यान देते है। अगर यह सच है तो मुझे आशा है कि मै आपकी और सूबे की थोडी-बहुत भलाई कर सकूगा। कम से कम मै जो कुछ कर सकता हूँ अवश्य करूँगा।

"मै व्यापारी हूँ, सभव है कि मेरी सिफारिश का नवाब पर कुछ असर हो। पर मै कुछ कहूँ भी तो कैसे? जरा अपने कार-

नामो को देखिए। कलकत्ते पर आपने जोर-जबर्दस्ती से कब्जा कर लिया। फिर वही बात हुगली मे हुई। उस शहर को तो आपने मिटा भी डाला। स्पष्ट है कि आप सुलह या समझौता नही चाहते—आप सिर्फ लडाई चाहते है। फिर मै आपकी ओर से क्या कहूँ और कैसे यह झगड़ा निबटाऊँ?

"आपकी कार्रवाइयों से जान पड़ता है कि आपका अपनी तलवार पर भरोसा है। हा, अपने आवेदन-पत्र मे आपने और राग जरूर अलापा है। अगर आप सचमुच चाहते है कि मै आपके और नवाब के बीच में पडकर झगडा निबटा दू तो आप पहले अपना रग-ढंग बदले, फिर मुझे यह बतावे कि आपकी मांग क्या है। मै मामला तै करा देने के लिए, कुछ भी उठा न रखूंगा। एक ओर तो आप इस सूबे के मालिक पर तलवार सौंते और दूसरी ओर यह आशा करे कि वह इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखकर रह जायँगे—यह तो असगत ही कहा जा सकता है। आप स्वयं विचार ले"*।

जगत्सेठ ने यह पत्र चन्दननगर मे फ्रेंच कपनी के प्रधान मो० रेनाल्ट की मार्फत भेजा था। खोजा वजीद ने भी रेनाल्ट को लिखा था कि आप मध्यस्थ होकर यह झगड़ा मिटा दे। कपनी के अधिकारियों का अनुमान था कि जगत्सेठ ने क्लाइव को और खोजा वजीद ने रेनाल्ट को जो कुछ लिखा था वह सिराजुद्दौला के ही आज्ञानुसार। पर फ्रास और इगलैण्ड के बीच युद्ध छिड चुका था, इसलिए—अथवा अन्य कारणों से—कपनी को रेनाल्ट की मध्यस्थता स्वीकार नही हुई। २१ जनवरी को क्लाइव ने 'सेठ महताबराय और महाराज स्वरूपचद' को लिखा.—

---

* हिल, भाग २, पृष्ठ १०४। और पत्र भी इसी सग्रह से लिये गये है।

"आपका कृपापत्र मिल गया। आपने जो कुछ लिखा उससे मैंने यहा के गवर्नर और कौसिल के सदस्यो को भी अवगत कर दिया।

"मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि आप बीच मे पडकर इस सूबे को खून-खराबी से बचाने को तैयार है।

"आपको यह बताने की आवश्यकता नही कि इधर अंगरेजो पर क्या क्या जुल्म हो चुके हैं। नवाब नाजिम की ओर से होने वाली ज्यादतियों की दास्तान सुनाऊँ तो आपके रोंगटे खड़े हो जायँ। आज बगाल इतना सम्पन्न है तो इसका अधिकाश श्रेय अंगरेजों को ही प्राप्त है। फिर भी उनके प्रति कैसे अत्याचार किये गये, नृशसता और बर्बरता की चक्की मे उन्हे किस तरह पीसा गया? एक ही रात को कम से कम १२० अंगरेज—जिनमे अधिकाश घरानेदार थे—बेरहमी से मौत के घाट उतार दिये गये। मै बराबर सुनता आया हूँ कि नवाब नाजिम वीर है, दयावान् है। पर यह हत्याकाड तो ऐसी कायरता और क्रूरता का काम था कि मै यही कहूँगा कि जो कुछ हुआ वह बिना उनकी जानकारी के ही।

"आज हमारा खून उबल रहा है, पर आप हमे दोषी नही ठहरा सकते। क्या हमने पत्र पर पत्र भेजकर नवाब के कानो तक अपनी फरियाद नही पहुचाई—इस आशा से कि हमे कुछ तो उत्तर मिलेगा, हमारे साथ कुछ तो न्याय होगा? क्या हमने अरसे तक फलता मे बैठ कर उनकी प्रतीक्षा नही की? क्या बजबज मे उनके किलेदार ने ही हमारे जहाजों पर पहले गोली-गोले चलाकर लड़ाई नही छेडी? जब हमारे साथ ऐसा व्यवहार हुआ तब हम उत्तेजित हुए और जवाब दिये बिना कैसे रह सकते थे!

"पर यह सब गुजरने पर भी, हम ऐसी सधि के लिए तैयार हैं

जिस से दोनों की हितरक्षा हो सके। हमारी शर्तें क्या हैं, यह हम आपको अलग जता रहे है। आप समझदार है। आपको यह बताना अनावश्यक जान पड़ता है कि हम जो कुछ मांगते है वह न्याय के आधार पर ही। अगर आप समझा-बुझा कर नवाब नाजिम से हमारी शर्तें मजूर करा दे तो आप इस सूबे को बरबाद होने से बचा लेगे और इसके बहुत बडे शुभचिन्तक समझे जायगे।

"अंगरेज जाति महान् है। आपके दिल्लीश्वर से उसके अधीश्वर की शक्ति तनिक भी कम नही। जब इगलैण्डाधीश को मालूम होगा कि यहा इतने अगरेज मार डाले गये तब उन्हें कितना क्रोध आयेगा, यह आप स्वय अनुमान कर सकते है। ध्यान रहे कि उनका जल-सेनापति यहां अपने बेड़े के साथ आ गया है। स्थल-सेनापति की हैसियत से मेरा अपना दर्जा भी उसी के बराबर है। मै डींग हांकना तो नहीं चाहता, पर इतना कह देना आवश्यक समझता हूँ कि मद्रास की और बंगाल के नवाब नाजिम जैसे शक्तिशाली शत्रुओं से हमें काम पड़ चुका है और हम उन पर विजय प्राप्त कर चुके है। हो सकता है कि यहा भी वही बात हो। मुझे आशा है कि परिस्थिति हमे लडाई के लिए कटिबद्ध होने को विवश न करेगी। यों तो जीत ईश्वर की कृपा से होती है और ईश्वर अपनी कृपा का पात्र उन्ही को समझता है जो पर-पीड़ित होते है।"

क्लाइव ने एक पत्र खोजा वजीद को भी लिखा जिसका सारांश यह था कि कंपनी को किसी फरासीसी की मध्यस्थता तो स्वीकार नहीं हो सकती, पर आप से और जगत्‌सेठ से उसका यह आग्रह है कि दोनों बीच में पड़ कर नवाब नाजिम से सुलह करा दे।

नवाब की अवस्था यह थी कि जहां वह अंगरेजों से चिढ़ा हुआ

था वहां, उनका दमखम—खास कर जहाजी ताकत—देख कर उनसे भयभीत भी हो रहा था। जनवरी के अन्तिम सप्ताह मे उसने कलकत्ते की दूसरी यात्रा की और झगड़ा रफा-दफा कर लेने के विचार से ही एक ऐसे व्यक्ति को साथ लेता गया जो इस दृष्टि से विशेष उपयोगी हो सकता था। इसका नाम लाला रजीतराय था। पुराने कागजात मे यह जगत्सेठ का वकील बताया गया है। इधर कुछ समय से जगत्सेठ के इच्छानुसार यह कपनी का भी वकील हो चला था और इसी की मार्फत सधि-संबंधी संदेसे भुगतने लगे थे।

कलकत्ते के पास पहुंचने पर सिराजुद्दौला ने क्लाइव को लिखा कि अगर कपनी लूटमार करना छोड कर फिर वाणिज्य-व्यापार करने की इच्छुक हो तो अपने प्रतिनिधि को मेरे पास भेजे और कहलावे कि वह क्या चाहती है। कलकत्ते मे और अन्यत्र उसे जो स्वतत्रता पहले प्राप्त थी वह मै उसे दे दूगा और उसकी जो हानि हुई है उसकी भी कुछ पूर्ति कर दूगा। ३ फरवरी को उसकी सेना कलकत्ते पहुच चुकी थी और सेठ अमीचन्द के बगीचे मे उसका पडाव पड चुका था। उसने क्लाइव को आश्वासन देते हुए लिखा कि 'कपनी निश्चिंत रहे। मै खुदा की और उनके पैगबर की कसम खाकर कहता हू कि उसकी ओर से सधि-विषयक बातचीत करने जो लोग आयेगे वे सही-सलामत घर लौट सकेंगे।' कंपनी की ओर से वाल्श और स्क्राफ्टन दूत बना कर भेजे भी गये। पर क्लाइव के मन की बाते कुछ और ही थी। वह सिराजुद्दौला को धोखा देकर उस पर प्रहार करना चाहता था। ४ फरवरी को दोनों दूत तो इधर-उधर की बात कर लौट गये और ५ फरवरी को क्लाइव ने नवाब की छावनी पर छापा मार दिया। उस समय इतना घनघोर कुहरा लगा हुआ था और सिराजुद्दौला के सैनिक इतनी निश्चिन्तता

से विस्तरों पर पडे हुए थे कि उनसे तो कुछ बन न पड़ा और क्लाइव हाथ की सफाई दिखाता हुआ, कुछ लाशे गिरा गया—सारी सेना को चकित तथा स्तभित कर गया*।

सिराजुद्दौला ने अमीचन्द के बगीचे मे ठहरना निरापद न समझ कर दमदम के पास जा डेरा डाला। सधि के सबध मे दूसरे दिन रजीतराय ने क्लाइव को लिखा—

"मेरा तो खयाल था कि अगरेज जबान के पक्के होते है और जो बात स्वीकार कर लेते है उससे कभी टलते नही। इसी खयाल से मैं उनके मामले मे दिलचस्पी लेता और नवाब नाजिम से उनकी सिफारिश करता आ रहा था। आपकी ओर से जो व्यक्ति आये थे उनसे काम बनने वाला न था, इसीलिए मैंने ही उन्हे लौट जाने को कहा। आपको लिखा भी कि आप अपनी मांग पत्र-द्वारा सूचित करे तो मैं नवाब से उसे मजूर करा दू। वह इन बातो के लिए तैयार है कि फरमान मे जिन अधिकारो का उल्लेख है उन्हे आपको दे दे, आपको कलकत्ता लौटा दे—कासिमबाजार या अन्यत्र आपकी जो हानि हुई हो उसकी पूर्ति कर दे—कलकत्ते (अलीनगर †) मे आपको टकसाल खोलने की इजाजत दे दे—और वहाँ आप जैसी भी किलेबन्दी करना चाहे आपको करने दे। पर यह सब होते हुए भी आपने कल सुबह जो कुछ किया उससे मुझे आश्चर्य-चकित और नवाब के सामने लज्जित भी होना

---

* हेनरी डाडवेल ने लिखा है कि क्लाइव ने इस अवसर पर वही तरीका अख्तियार किया जो दाक्षिणात्य में फ्रेंच नासिरजग के खिलाफ दो बार अख्तियार कर चुके थे और जो कारगर भी साबित हो चुका था।

† यह नाम सिराजुद्दौला का रखा हुआ था।

पडा। खोजा पिट्रस (पिंदू) यह पत्र लेकर जा रहा है। उससे आप सुन लेगे कि नवाव के और मेरे वीच क्या वाते हुई।

"खैर, जो होना था हुआ। वात अभी तक बिगडी नही है। अगर आप सचमुच मामला तै करा लेना चाहते है तो अपने प्रस्ताव नवाव को लिख भेजिए। मै उन्हे स्वीकृत करा दूगा। नवाव से स्वीकृतिपत्र के साथ आपके लिये सिरोपा, हाथी और कोई आभूषण भी भिजवा दूगा। नवाव यहां से शीघ्र मुर्शिदावाद लौट जाने वाले है। अगर आप सधि नही करनाचाहते और लडाई पर ही आमादा है तो मुझे साफ लिखिए, ताकि मुझे इस मामले मे और हैरानी-परेशानी न उठानी पडे।"

खेत मे वीज वोया जा चुका था। रजीतराय ने क्लाइव को कहलाया कि देर न कीजिए, ऐसा मौका फिर आसानी से न मिल सकेगा। क्लाइव क्यो देर करने लगा था? उसने झटपट अपनी शर्ते लिख भेजी और वीज के उगने की राह देखने लगा। सिराजुद्दौला की आन्तरिक इच्छा वैसी सधि करने की तो थी ही नही। कुछ आनाकानी करने लगा। ज्योही क्लाइव को इसकी सूचना मिली, उसने रजीतराय को लिखा—

"आपका पत्र मिला। उसके साथ सुलहनामे का वह मसौदा भी, जो कपनी की ओर से भेजा गया था।

"आश्चर्य है कि आप और आपके नवाव सारी वात को मजाक समझ रहे है। मालूम हो गया कि हमारी शर्ते आप लोगो को मजूर नही। ईश्वर इस वात का साक्षी है कि मै हृदय से शाति चाहता हूँ और छलछद तो मुझे आता ही नही।

"खैर, मसौदा साफ कराके मै इसके साथ भेज रहा हूँ। अगर नवाव नाजिम सुलह चाहते है तो हर शर्त के नीचे 'मजूर' लिख कर

और सही भर कर कागज लौटा दें। उन्होंने यह कर दिया तो समझ लीजिए कि शाति हो चुकी। अगर ऐसा नही करते तो आप आगे कुछ न कीजिए। फिर तो युद्ध छिड़े बिना रहेगा ही नही।

"हमारे गवर्नर और कौंसिल की ओर से जो इकरारनामा होगा उसके बारे मे मै यकीन दिला सकता हूँ कि फरमान की और अपने इकरारनामे की शर्तो की वे बराबर पाबन्दी करेगे। सरकार की प्रजा को न तो वे शरण देगे और न अकारण किसी पर हाथ उठायेगे।"

जिस दिन यह पत्र भेजा गया उसी दिन—अर्थात् ८ फरवरी को—संधि हो गई। अपने इकरारनामे पर दस्तखत करने वालो मे सिराजुद्दौला तो था ही, उसके दीवान* राजा दुर्लभराम बहादुर और फौज के बख्शी† मीर जाफर खा बहादुर भी थे। पर सुलहनामा बिलकुल एक-तरफा था। सिराजुद्दौला को स्वीकार करना पड़ा कि—

१—फर्रुखसियर से कंपनी को जितने अधिकार मिल चुके थे वे उसे मान्य होगे। विशेष कर जिन गांवों की जमीदारी कपनी को मिल चुकी थी उन्हे वह बे-रोकटोक हासिल कर सकेगी।

२—कंपनी के दस्तक के साथ जाने वाले माल पर बगाल, बिहार या उंड़ीसा में किसी प्रकार की चुगी वसूल न की जायगी।

३—कंपनी की सारी कोठिया सरो-सामान के साथ उसे लौटा दी जायगी। कंपनी का जो नुकसान हुआ था उसके लिए उसे मुनासिब मुआवजा मिलेगा।

---

* संभवत. उस अधिकारी के भी दस्तखत थे, जो बगाल में दीवानेकुल कहा जाता था।

† स्पष्ट है कि सिराजुद्दौला ने मुर्शिदाबाद लौटने पर मीर जाफर को इस पद से हटाया।

४—कपनी को कलकत्ते मे किलेवदी का पूरा अधिकार होगा।

५—कपनी अपनी टकसाल खोल सकेगी और उसके सिक्को पर बट्टा न कटेगा।

जव कपनी को इतने अधिकार मिल चुके, तव कुछ अँगरेजों की राय हुई कि नवाव को और दवा कर उससे कुछ और लिया जाय। पर क्लाइव, किलपैट्रिक आदि ने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि नवाव को डराने-धमकाने का नतीजा यह हो सकता है कि जो हाथ लग चुका है हम उसे भी गवा वैठे। उन्होने इस वात पर जोर दिया कि रजीतराय भी इसके विरुद्ध था।

"सेठो के वकील रजीतराय की भी राय यही है। वह शुरू से ही हमारे मामले के पैरोकार रह चुके है। अपने अन्तिम पत्र मे उन्होने कर्नल क्लाइव को लिखा है कि नवाव नाजिम से जो कुछ मिल चुका है अगर कपनी को उससे सन्तोप नही तो मै इस धधे से किनारा खीचता हू। वह गोली-वारूद की आजमाइश कर देख ले।"

यद्यपि क्लाइव अभी गोली-वारूद से काम लेने के पक्ष मे न था, तथापि वह भी इस प्रस्ताव से सहमत था कि कूटनीति का प्रयोग कर—अर्थ की खीचातानी कर—सधि-रूपी गागर को कपनी के हक मे सागर बना दिया जाय। १६ फरवरी को विलियम वाट्स दरवार में कपनी का प्रतिनिधित्व करने के लिए कासिमवाजार भेजा गया और उसे जो आदेश * दिये गये उनसे स्पष्ट है कि कपनी की नीयत कहां तक खराब थी। उनका अभिप्राय यही था कि हम म्यान से तलवार खीचने

---

* हिल, भाग २, पृष्ठ २२५-२२७।

का नाम तो अभी न लेगे, पर कलम और जबान* से जो झगड़ा-रगडा किया जा सकता है करते जायगे।

उसी दिन क्लाइव ने जगत्सेठ से मिलने वाली सहायता के लिए उन्हे धन्यवाद देते हुए लिखा—

"अमीचन्द सेठ मुझे बता चुके है कि नवाब के साथ लाला रंजीतराय को आपने ही भेजा था। उनके आने का फल यह हुआ कि बंगाल में शाति-भंग की आशका जाती रही और कपनी को फिर अपना व्यवसाय करने की इजाजत मिल गई। मैंने रजीतराय के परामर्श के विरुद्ध कभी कुछ नही किया है। सुलह हो गई—उसकी शर्तो की पाबन्दी के दोनों तरफ इकरार भी हो चुके। आपने इस अवसर पर कपनी की अमूल्य सहायता की है। उसके कारबार का फिर पहले की ही तरह चलना सभव हो सका है तो उसी सहायता के फल-स्वरूप। इधर मैंने जो पत्र इगलैण्ड भेजे है उनमे इस बात का विशेप रूप से उल्लेख कर चुका हूँ।"

पर उस सहायता का दूसरी ओर फल यह हुआ कि सिराजुद्दौला मन-ही-मन जगत्सेठ से और भी खिच गया। महताबराय का घराना बरसों से कपनी का पृष्ठपोषक चला आया था। सिराजुद्दौला को यह अच्छी तरह मालूम था कि रजीतराय का उस घराने से क्या संबंध था और वह किस की ओर से वकालत कर रहा था। अगर उसे वैसी सधि करना मजूर न था तो रजीतराय को साथ ले जाने की और

* "नवाव से यह इजाजत भी मागना कि जब हमारे दस्तक हर प्रकार के कर, महसूल या चुगी से बरी कर दिये गये, तब हमे यह अधिकार भी मिलना चाहिए कि जो कोई इस हुक्म को न माने उसे हम स्वय दड दे सकें, ताकि हमे अपनी फरियाद दरबार तक पहुँचा कर महीनो उसके फैसले की राह न देखनी पड़े।"

बात-बात मे उससे सलाह करने की जरूरत ही क्या थी ? क्लाइव की धमकी मे आकर उसने संधि-पत्र पर सही भरना स्वीकार किया हो—या अगरेजो का लोहा मानकर—उसने जो कुछ किया उसका उत्तरदायित्व उस पर था—न कि महताबराय या रंजीतराय या मीर जाफर पर। असलियत यह थी कि उसने कलकत्ते की यह दूसरी यात्रा अगरेजो मे सधि कर लेने के ही विचार से की थी। इकरारनामे पर दस्तखत हुए ८ फरवरी को। ६ फरवरी को ही रजीतराय क्लाइव को लिख चुका था कि कपनी की ओर से वह जो कुछ माग रहा था, सिराजुद्दौला उसे दे देने को तैयार था।

इसमे सदेह नही कि कपनी की नब्ज की जैसी पहचान सिराजुद्दौला को थी वैसी महताबराय को नही। जगत्सेठ की और कितने ही दूसरे लोगों की दृष्टि मे अगरेज या फरासीसी व्यापारी-मात्र बने हुए थे। सिराजुद्दौला को मालूम था कि इधर दक्षिण मे दोनो क्या खेल खेल चुके थे और दोनो की विचारधारा किस दिशा मे प्रवाहित हो रही थी। वह इस नतीजे पर पहुच चुका था कि अगर इन विदेशी व्यापारियो को—विशेषत. अगरेजो को दबाया न गया तो बगाल मे कर्णाटक[५] के इतिहास की पुनरावृत्ति हुए बिना न रहेगी। कहा गया है कि कपनी के कुछ अधिकारियो ने उसे छोटी-मोटी बातो मे अपने व्यवहार से रुष्ट कर दिया था, इसीलिए वह कपनी का शत्रु बन गया था। वास्तव मे उसके कलेजे का घाव व्यक्तिगत अपमान से कही गहरा था। पर साथ ही उसमे योग्यता का ऐसा अभाव था कि रोग को पहचानते हुए भी वह उसका इलाज न कर सका। बल्कि फोडे को नासूर बना लिया और परिस्थिति पर गालिब होने के बजाय उसी का शिकार हो गया।

बहुरुपिया न होते हुए भी सिराजुद्दौला ने मुर्शिदाबाद लौटने

पर कुछ समय के लिए अपना रूप बदल दिया और जहां सेठों को पहले फूटी आखों न देख सकता था वहां अब उन्हे सिर आंखो पर बैठाने लगा। पर व्यवहार मे यह सौजन्य या नम्रता दिखाने को ही थी। उसके आंतरिक भाव मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ था। जगत्सेठ भी धोखे मे आने वाले न थे। उन्हें पक्की खबर मिलती रहती थी कि सिराजुद्दौला प्रच्छन्न रीति से उनके विनाश का मार्ग ढूढ रहा था। क्या आश्चर्य कि वे भी दूसरों से मिल कर उसके विनाश का उपाय ढूढते? मो० ला* का विश्वास था कि अगर जगत्सेठ चाहते तो बिना अगरेजो की या फरासीसियो की सहायता के ही एक दल खडा कर सिराजुद्दौला का नाश करा सकते थे। पर इसमे खर्च तो काफी पड़ता ही, समय भी बहुत लगता। और शर्त यह थी कि जगत्सेठ बगावत का बीडा उठाते तो!

उधर सिराजुद्दौला सेना-विभाग के पुराने पदाधिकारियों से भी शत्रुता मोल ले चुका था। मीर जाफर बरसों से बख्शी के पद पर था। उससे यह पद छीन कर मीर मदन† को दे दिया गया था। राजभक्त न होते हुए भी मीर जाफर काफी प्रभावशाली व्यक्ति था और सिराजुद्दौला ने अपनी इस कार्रवाई से उसे जख्मी शेर बना दिया था। मीर जाफर के अलावा रहीम खा, उमर खां, सलावत खां, दिलेर खां आदि और कई सरदार थे जो विभिन्न कारणों से भीतर ही भीतर राजद्रोही बन गये थे और उलट-फेर की घडी गिन रहे थे।

---

* कासिमबाजार मे फ्रेंच फैक्टरी का प्रधान।

† यह बयान "मुताखरीन" का है। "रियाजुस्सलातीन" की बात मानी जाय तो मीर मदन तोपची था और बख्शी का पद ख्वाजा हादी अली खा को दे दिया गया था।

जो नये अधिकारी सिराजुद्दौला के द्वारा नियुक्त हुए वे प्राय: निकम्मे ही निकले। वे उसकी हां मे हा मिलाने वाले और अपनी जेवे भरने वाले थे। अनुभव-हीन होने के कारण वे ऊचा-नीचा वता भी न सकते थे। इनकी नियुक्तियो ने सिराजुद्दौला के मार्ग मे कुछ ऐसे काटे बिछा दिये जो तत्कालीन परिस्थिति मे उसके लिए घातक ही सिद्ध हुए।

पुराने अधिकारियो को संभवत. सव से अधिक खलने वाली नियुक्ति प्रधान मत्री के पद पर मोहनलाल की थी। यह पहले सिराजुद्दौला का खास दीवान था। गुलाम हुसैन ने लिखा है कि पदोन्नति होने पर उसका दर्जा पंजहजारी मनसवदार का कर दिया गया और महाराज के खिताव के साथ उसे पालकी, नगारा आदि भी मिले। "मुताखरीन" के अगरेजी अनुवादक ने मोहनलाल की वहन से सिराजुद्दौला का अनुचित सम्वन्ध बताया है। "रियाजुस्सलातीन" मे लिखा है कि "मोहनलाल सिराजद्दौला के तन और मन को इस प्रकार आवेष्टित कर चुका था कि प्रधान मंत्री होते ही वह अपने स्वरूप को भूल गया और यह समझ वैठा कि मेरे सिवाय और कोई गिनती मे आने योग्य ही नही। उसने माल-विभाग मे तमाम अपने रिश्तेदार भर दिये और पुराने अधिकारियो को धता वता दिया। एक दिन नवाव गुलाम हुसैन खा वहादुर को कहलाया कि अगर २००) माहवार पर रहना मजूर हो तो रह सकते हो, वर्ना इस सूवे से हट जाओ। लाचार नवाव साहव, कावा जाने का वहाना कर, हुगली चले गये।" यही गुलाम हुसैन "मुताखरीन" का लेखक था। सताये जाने पर भी उसने दिल के फफोले नही फोडे, यह उसकी शराफत ही कही जा सकती है।

दुश्चरित्र न होकर अलीवर्दी खां नियम के अपवाद-स्वरूप लंका मे विभीषण हो चुका था पर इससे उसके घर के बाहर-भीतर के वातावरण मे तनिक भी सुधार न हो सका। सिराजुद्दौला भी चरित्रहीन ही निकला। साथ ही वह हृदयहीन भी था। जहां तक दरबारियों का सम्बन्ध था, अगर उसमें बदतमीजी या बदजबानी न होती तो बात बहुत अधिक न बिगडती। "मुताखरीन" मे लिखा है कि जगत्सेठ और राजा दुर्लभराम जैसे पुराने पार्षदो और अधिकारियो को उसने अपने दुर्व्यवहार या दुर्वाक्यों से यहां तक रुष्ट कर दिया कि वे भी उसके शत्रु-दल मे सम्मिलित और उसके विनाश पर कटिबद्ध हो गये। इस दल का मुखिया मीर जाफर था। जगत्सेठ ने उससे गठ-बंधन कर वादा किया कि मुझसे जहां तक सहायता बन पड़ेगी मै करने से बाज न आऊगा। इस प्रकार उस षड्यंत्र का सूत्रपात हुआ जिसका परिपाक सिराजुद्दौला को रसातल मे पहुंचाने वाला था।

सिराजुद्दौला के साथ सधि हो जाने से पहले ही यूरोप में फ्रान्स और इंगलैण्ड के बीच फिर युद्ध छिड़ जाने का समाचार कलकत्ते पहुंच चुका था। अगरेजो का विचार चंदननगर पर चढाई कर, उसे ले लेने का हुआ पर परिस्थिति को अनुकूल न देख कर वे चुपचाप बैठ रहे। उन्हे डर था तो यह कि सिराजुद्दौला को यह मजूर न होगा और वह दुश्मन की ओर हो गया तो वे दोनो का मुकाबला न कर सकेगे। पर जब सधि हो चुकी तब वे यह कह कर सिराजुद्दौला पर दबाव डालने लगे कि 'आप पत्रों द्वारा हमे आश्वासन दे चुके है कि हमारे शत्रुओ को आप अपने शत्रु समझेंगे। हमारी ओर से भी आप को ऐसा ही आश्वासन मिल चुका है। ऐसी स्थिति

मे आप हमे चन्दननगर पर चढाई करने भी न दे तो ऐसी सधि का मूल्य ही क्या ?' एक ओर अगरेज सिराजुद्दौला को कोच रहे थे, दूसरी ओर फरासीसियो से ऐसे समझौते की भी वात कर रहे थे जिससे बगाल मे दोनो कपनिया तटस्थ वनी रहे और कोई किसी पर वार न करे।

मुर्शिदाबाद दरवार मे दोनों ओर के प्रतिनिधि जाने-आने लगे। अगरेजो का प्रतिनिधित्व करने के लिए वाट्स था ही, फरासीसियो ने यह काम अपने कासिमवाजार के प्रधान मो० ला को सौपा। अगरेज चाहते थे कि सिराजुद्दौला उन्हे अपने दुश्मनो से निबट लेने दे। फरासीसी चाहते थे कि वह अगरेजो को वैसी इजाजत न दे और आवश्यकता पडने पर उनकी रक्षा भी करे। सिराजुद्दौला स्वय उनकी रक्षा करना चाहता था। उसके दुश्मन उसे अगरेजो से उलझाना चाहते थे। सिराजुद्दौला को डर था कि कही उसे अगरेजों से चपत न खानी पडे। जगत्सेठ को फिक्र थी कि फ्रेच कपनी के जिम्मे उनका जो पावना था उससे उन्हे कही हाथ न धोना पडे।

वाट्स अपनी कूटनीति-निपुणता का परिचय देने लगा। १८ फरवरी १७५७ को उसने हुगली से 'दस कोस दूर' कही से क्लाइव को लिखा कि अमीचन्द की वहा के दीवान और कायम मुकाम फौजदार नन्दकुमार से वाते हो चुकी थी और उससे यह तै हो चुका था कि दस-बारह हजार रुपये मिल जाने पर वह इस मामले मे अगरेजो के अनुकूल रहेगा और अगर नवाब ने फरासीसियो की मदद के लिए कुछ सैनिक चदननगर भेजे भी तो उन्हे कम से कम दो हफ्ते वहा पहुचने न देगा। अमीचन्द* ने सलाह दी थी कि कपनी नन्दकुमार

* अमीचन्द के ही के वश मे भारतेंदु वाबू हरिश्चन्द्र हुए। लिखा है कि

को उतने रुपये दे दे और चन्दननगर पर फौरन चढाई कर दे। वाट्स लिखता है—

"अगर नन्दकुमार को यह रकम देना मंजूर हो तो आप इस चिट्ठीरसां की मार्फत उसे बस 'गुलाब का फूल' कहला दीजिए। इस सदेसे से ही उसे तसल्ली हो जायगी। अमीचन्द कहता है कि वात अच्छी तो नही, पर लाचारी है। सरकार ही ऐसी है कि कोई भी काम आप या तो डडे के जोर से निकाल सकते है या किसी न किसी की मुट्ठी गरम कर। अमीचन्द का और मेरा अपना भी खयाल है कि नन्दकुमार को यह रकम देना व्यर्थ न होगा। हां, हम अपनी प्रतिज्ञा मतलब सध जाने पर ही पूरी करेगे। अगर आपका विचार कुछ भी देने का न हो तो 'गुलाब के फूल' का नाम ही न ले।

"अमीचन्द ने एक बात और बताई। फरासीसियो के जिम्मे जगत्सेठ की कोठी के तेरह लाख से भी अधिक रुपये निकलते है। मै समझता हूँ कि इस कारण वह इस मामले मे हमारी मदद न करेगे। अमीचन्द का कहना है कि खोजा वजीद और मानिकचन्द ने उसकी गैरहाजिरी मे चाल चल कर परिस्थिति को फरासीसियों के कुछ अनुकूल बना दिया है, पर अगरेजों के कूच बोलते ही वह उनकी चाल

"सुप्रसिद्ध सेठ अमोचद के दोनो पुत्र राय रतनचन्द बहादुर और शाह फतहचन्द काशी में आ बसे थे। शाह फतहचद के पौत्र बाबू हरखचन्द ने अपने ही सद्व्यवहार से असख्य सपत्ति कमाई और उसे सत्कार्य में व्यय कर के बडी बडाई पाई। इनके पुत्र बाबू गोपालचन्द हुए जो हिन्दी भाषा के बडे अच्छे कवि हो गए है। इन्होने पौराणिक आधार पर ४० काव्य ग्रथ रचे और सस्कृत मे भी कुछ कविता की। इनके सुपुत्र बाबू हरिश्चन्द्र हुए। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म तारीख ९ सितम्बर सन् १८५० ई० को हुआ था।"
—बाबू श्यामसुन्दर दास कृत "हिन्दी के निर्माता" से।

का जवाब दे देगा। जो ब्राह्मण यह पत्र ले कर जा रहा है वही आपके और नन्दकुमार के बीच सदेसे भुगताया करेगा।"

अमीचन्द इस मामले मे काफी दिलचस्पी लेने और कलकत्ते से मुर्शिदाबाद तक दौड-धूप करने लगे थे। जब कभी वह सिराजुद्दौला से मिलते तब अगरेजो की तारीफ और फरासीसियो की बुराई करते। २१ फरवरी को वाट्स लिखता है—"अमीचन्द ने नवाब से कहा कि मै चालीस बरस से कलकत्ते मे हू और इतने लबे समय मे मैने उन्हे कभी प्रतिज्ञा-भग करते न देखा। किसी ब्राह्मण के पाव छू कर उसने शपथ-ग्रहण भी किया और कहा कि इगलैण्ड में यह कायदा है कि झूठ बोलने वाले पर लोग थूकने लगते है और उसकी किसी बात का फिर विश्वास नही किया जाता। इसका नतीजा यह हुआ कि नवाब पहले तो मीर जाफर को फरासीसियों के सहायतार्थ ज़ाने का हुक्म दे चुका था और खुद भी जाने वाला था, पर अमीचन्द की बात सुन कर उसने वह हुक्म रद्द कर दिया।"

क्लाइव के नाम ४ मार्च को एक पत्र भेजकर सिराजुद्दौला ने इस बात पर सतोष प्रकट किया कि अगरेजो ने उसकी बात मान ली थी और फरासीसियो से झगडने वाले न थे। पर उसी दिन वाट्सन ने सिराजुद्दौला को कलकत्ते से लिखा कि "आप धन-जन से फरासीसियो की सहायता करते आ रहे है। यह आपकी उस प्रतिज्ञा का पालन नही कहा जा सकता कि मै अगरेजो के शत्रुओ को अपने ही शत्रु समझूगा। अब स्पप्टवादिता का समय आ गया है। अगर दस दिन के भीतर आप अपनी प्रत्येक बात पूरी नही करते तो आप के लिए इसका नतीजा बुरा होगा और मै बंगाल मे ऐसी आग लगा दूगा जो सारी गगा के पानी से भी न बुझाई जा सकेगी।"

८ मार्च को क्लाइव नन्दकुमार को लिखता है कि 'नवाब के और मेरे बीच पूरी मित्रता और शान्ति है और उनके इच्छानुसार मै अपनी सेना के साथ* मुर्शिदाबाद जा रहा हूं।

९ मार्च को क्लाइव चन्दननगर की फ्रेंच कौंसिल को विश्वास दिलाता है कि इस समय आपसे लड़ने-झगड़ने का मेरा तो कोई इरादा नही।

१३ मार्च को वह चन्दननगर के प्रधान मो० रेनाल्ट को सूचित करता है कि अगर आप वहां का किला हमारे हवाले नही कर देते तो लड़ाई रुकने की नही।

१४ मार्च को उसने चढाई कर ही दी। २२ मार्च को क्लाइव ने सिराजुद्दौला को लिखा कि अब तक तो हमारी ओर से बंदूकें ही चली हैं, पर कल से तोपे भी चलने वाली है। तोपों की बाढ शुरू होने के दो ही एक घंटे बाद फरासीसियों ने आत्मसमर्पण कर दिया और किले पर अंगरेजों का कब्जा हो गया।

संक्षेप मे फरासीसियों की पराजय की यही कहानी है। इसकी पृष्ठभूमि मे दोनो ओर से जो पैतराबाजी हो चुकी थी उसका भी कुछ वर्णन मिलता है और यहां दे देने लायक है।

फरासीसी प्रतिनिधि मो० ला लिखता है—

"मैं प्रतिदिन दरबार मे जाता और प्रतिदिन आश्वासन पाकर

---

* सिराजुद्दौला अहमदशाह अबदाली द्वारा बिहार-बंगाल पर आक्रमण की आशका से पटने जाने वाला था और क्लाइव की फौज के लिए एक लाख रुपये माहवार देना स्वीकार कर उसे मुर्शिदाबाद बुला चुका था। पर १५ मार्च को ही उसने क्लाइव को लिखा कि उसे आश्वासनात्मक पत्र मिल चुका था और उसने पटने जाने का विचार त्याग दिया था।

वहां से लौटता। मेरे सामने नवाब ने ऐसे आदेश दिये जिनसे मुझे विश्वास हुआ कि सरकारी सेना फरासीसियो के सहायतार्थ चन्दननगर जाने ही वाली थी। उसकी ओर से वाट्सन और क्लाइव दोनो को कई पत्र भेजे गये। नवाब ने लिखवाया कि 'सम्राट् की इच्छा है कि इस देश मे विदेशी व्यापारी झगडा-फसाद न करे। शान्ति-रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। अगर अगरेजो ने चन्दननगर पर चढाई कर दी तो मै उनका विरोध किये बिना न रहूगा।' उसे कपनी की ओर से नाना प्रकार के उत्तर मिले। किसी मे तो यह लिखा था कि आपकी आज्ञा हमारे लिए शिरोधार्य है। किसी से यह भाव प्रकट होता था कि हम अभी कुछ कह नही सकते। किसी की शैली ऐसी थी मानो अगरेज मालिक हो और सिराजुद्दौला नौकर। अगरेज सिराजुद्दौला को अपनी बात की याद दिला कर कहते जाते कि आप हमारे शत्रुओ को अपने शत्रु समझने के लिए वचनबद्ध है, आपको अब अपने उस वचन का पालन करना होगा। सिराजुद्दौला का यह हाल था कि जहा किसी ने उस प्रतिज्ञा-पत्र या सधि-पत्र का नाम लिया वहा वह आग-बबूला हुआ। साथ ही उसे यह बात भूली न थी कि अगरेज उसे कुश्ती मे पछाड़ चुके थे। इसलिए जहां क्रुद्ध होता वह मन ही मन भयभीत भी। अगरेजो को उसकी इस कमजोरी का पता था और वे इससे जो लाभ उठा सकते थे उठाने लगे।

"फिर भी, मुर्शिदाबाद से फौज भेजने की तैयारी हो चुकी थी, सैनिको को वेतन मिल चुका था, कूच का डका भर बजने की देर थी। मैंने नवाब के पास जाकर कहा कि अगर आपकी सहायता से चन्दननगर सुरक्षित रहा तो मै एक अच्छी रकम आपकी नजर

करूँगा। और अधिकारियों को भी इनाम-इंकराम देने का वादा किया। मैंने कहा कि अगर सेना के पहुचने मे तनिक भी विलंब हुआ तो अगरेज चन्दननगर पर घेरा डाले बिना न रहेंगे, और अनुरोध किया कि जो सेना के नायक की हैंसियत से जाने वाला है उसे इसी दम कूच कर देने का हुक्म मिल जाय। पर इसके उत्तर मे नवाब ने यही कहा कि 'सब कुछ तैयार है, पर मेरी राय है कि उस ओर कदम उठाने से पहले एक बार फिर कोशिश की जाय कि तकरार न बढे। अगरेजों का अभी अभी एक खत मिला है जिसमे उन्होने लिखा है कि हम आपका हुक्म मानने के लिए तैयार है। ऐसी हालत में मै यह मुनासिब समझता हू कि लड़ाई न होने देने के लिए अपनी ओर कोई भी दकीका बाकी न रखा जाय।'

"मै फौरन ताड़ गया कि यह सेठो की करतूत थी। वे झूठी बातें कह कह कर नवाब को भटका चुके थे। उन्होंने उससे कहा था कि अगरेज फरासीसियो को-डरा-धमकाकर उनसे केवल ऐसा समझौता कर लेना चाहते थे कि यूरोप मे दोनो देशो के बीच लड़ाई होते हुए भी यहा बगाल मे दोनों तटस्थ बने रहे और आपस मे लड़ाई-झगडा न करे। इसके साथ ही उन्होने यह दलील भी पेश की थी कि 'आप जानते ही है कि अगरेज कितने बलवान् है। फरासीसियों की सहायता करना अपने लिए खतरनाक है। अगर अंगरेज चन्दननगर ले लेने का निश्चय कर चुके है तो आप तो सेना भेज कर भी उन्हें रोक नही सकते और बहुत सभव है कि अगरेजो को आप पर भी चढ़ाई कर देने का एक बहाना मिल जाय।' सेठों ने नवाब को भटकाने का काम इस खूबी से किया था कि जो बात मै सुबह को बना आया था उस पर शाम होते होते वे हरताल लगा चुके थे।

"मै सेठो से जा मिला। मिलते ही उन्होने अपने रुपये की बात शुरू कर दी। बोले कि इधर आपके जिम्मे पावना बढ चला है और आपकी ओर से सूद भी नियत समय पर नही मिल रहा है। मैने कहा कि मै आज उसके बारे मे बातचीत करने नही आया हू, मै और ही विषय मे कुछ कहने आया हू। यह विषय जितना ही हम लोगों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है उतना ही आप लोगो की दृष्टि से भी, कारण कि उस कर्ज का चुकना भी उसी पर निर्भर है। मैने पूछा कि आप हमारे विरुद्ध अगरेजो के सहायक क्यो हो रहे है? जगत्सेठ ने कहा कि बात गलत है, आप नवाब को कुछ कहलाना चाहे तो मै कहने को तैयार हू। अपनी सफाई देकर बोले कि मेरा तो विश्वास है कि अगरेज चढाई न करेगे, आप निश्चिन्त रहे। मैने कहा कि हम दोनो को अच्छी तरह मालूम है कि अगरेजो का इरादा क्या है। चन्दननगर की रक्षा का एक ही उपाय है और वह यह कि नवाब प्रतिज्ञानुसार अपनी पलटन वहा जाने दे। जब आप हमारी मदद करने को तैयार है तो नवाब से कह कर उस पलटन को फौरन रवाना करा दे।' उन्होने उत्तर दिया कि नवाब अगरेजो से उलझना नही चाहते। फिर कुछ और बाते कही जिनसे यह स्पष्ट हो गया कि सहानुभूति रखते हुए भी वे हम लोगो के हक मे कुछ भी करने वाले न थे।

"रजीतराय—जो उनका विशिष्ट कर्मचारी और अंगरेजों का वकील था—पास ही बैठा था। उसने मुझसे व्यग्यपूर्वक कहा कि 'आप तो फरासीसी है, फिर आप अगरेजो से क्यो डरते है? अगर अगरेज चढाई कर बैठे तो आप इसका जवाब दीजिए और अपने आपको बचाइए। दक्षिण की ओर आपके देशवासी जो वीरता दिखा

चुके हैं उसे कौन नहीं जानता ? अपनी वही वीरता यहां भी दिखा-इए।' मैंने कहा कि, 'किसी बंगाली से तो मुझे आशा न थी कि वह लड़ाई के मैदान मे वीरता देखने को इतना उत्सुक होगा। पर कभी कभी ऐसी उत्सुकता रखने वाले को पछताना ही हाथ लगता है।' वैसे शख्स के लिए यही काफी था, पर मैने देखा कि उस मजलिस में कोई भी मुझे दाद देने वाला न था। फिर भी सेठों ने बातचीत मे सौजन्य ही दिखाया। अन्त मे उनसे छुट्टी मांग कर मै चला गया।

"सेठो की बातचीत में कृत्रिमता न थी। कम से कम उस समय तक स्थिति ऐसी ही थी। वे चाहते थे क्रांति। और क्राति फरासीसियों को नष्ट किये या उन्हे पंगु बनाये बिना सफल नही हो सकती थी। दूसरी ओर यह बात भी थी कि हम उनके बहुत बडे देनदार थे। अगरेजों की चन्दननगर पर चढाई से उनका चिंतित होना स्वाभाविक ही था। मेरा तो खयाल है कि शुरू मे जगत्सेठ इतना ही चाहते थे कि हमे डरा-धमका कर अंगरेजों के और हमारे बीच वह संधि या समझौता करा दे जिसका अगरेजों की ओर से प्रस्ताव किया जा चुका था। इस अनुमान की पुष्टि करनेवाली एक बात मुझे याद आती है। सिराजुद्दौला की उग्र प्रकृति की चर्चा चली। उन्होने कहा कि उस उग्रता का जैसा कटु अनुभव हमे है वैसा ही आपकी कपनी को भी हो चुका है। मैंने कहा कि मै आपका मतलब समझ गया—आप किसी और को ही यहां की मसनद पर बैठाना चाहते है। उन्होने मेरी बात का खडन न कर बहुत ही धीमे स्वर में कहा कि यह बात खुले आम कहने की नही। अमीचन्द भी मौजूद था, वही अमीचन्द जो अंगरेजो का पिट्ठू होते हुए भी जहां जाता वहां यही कहता कि 'कम्बख्त चले जाते तो अच्छा होता'। अगर मेरा

कहना गलत होता तो सेठ-बन्धु उसका खंडन किये विना न रहते। वल्कि मुझे भला-बुरा भी कहते। अगर वे मुझे अपना विरोधी समझते तो भी वही बात होती। पर सेठो की दृष्टि मे हमारी स्थिति भिन्न थी। नवाव हमे भी तग कर चुका था; हम भी उसकी मदद करने से वारवार इनकार कर चुके थे—इसलिए सेठो की धारणा थी कि अगर अगरेजो ने लडाई नही की तो फरासीसी क्रांति के ही पक्षपाती निकलेगे। उस समय तक सेठ हमे अपने शत्रु नही समझते थे। हो सकता है कि उनका यह सच्चा विश्वास रहा हो कि अगरेज हम पर आक्रमण न करेगे। पर जव अगरेजो की ओर से लड़ाई शुरू हो गई तव वे करते ही क्या? जगत्सेठ के लिए उनका विरोध करने का अर्थ आत्मघात करना होता। अगरेजो के लिए उन्हे इतना समझा देना कुछ कठिन काम न था कि हमारे चदननगर ले लेने मे आपकी भी भलाई है, क्योकि उसके वाद ही हम सिराजुद्दौला पर प्रहार कर सकेंगे। सभव है अगरेजो ने यह भी कहा हो कि नये नवाव के मसनद पर वैठ जाने के वाद फरासीसियो को व्यापार करने की स्वतन्त्रता फिर दे दी जायगी। आवश्यकता पडने पर अगरेज हमारे कर्ज की जिम्मेवारी भी अपने ऊपर ले ही सकते थे।"

मो० ला की जीवन-स्मृति मे यह उल्लिखित होने पर भी, आज यह जानना कठिन क्या असभव है कि उस दिन महिमापुर मे सेठो से सचमुच उसकी क्या वाते हुई थी। न जगत्सेठ का ही कोई वयान मिलता है न और किसी उपस्थित व्यक्ति का ही। हो सकता है कि ला ने कुछ वाते घटा-वढा कर लिखी हो। मि० लिट्ल का कहना है कि सिराजुद्दौला पर प्रहार करने-कराने के सम्वन्ध मे जो कुछ निश्चित हुआ वह चदननगर पर अगरेजो का अधिकार हो जाने के

बाद। पर उनका कयास है कि मो० ला की मुलाकात से पहले ही जगत्सेठ कर्ज की रकम को बट्टाखाते मे डाल चुके थे। अर्थात् उन्हें मालूम था कि अगरेज चदननगर ले लेने वाले थे और इसके फलस्वरूप उनकी रकम डूब जाने वाली थी। "मो० ला से वास्तविक स्थिति छिपा कर वह उसके साथ वैसा ही कपट-व्यवहार कर रहे थे जैसा कि आवश्यकतानुसार वह स्वय नवाब* के और अंगरेजो के—और अंगरेज दूसरों के साथ कर रहे थे या करने वाले थें।" बात चाहे जो रही हो, जगत्सेठ ऐसे मूर्ख न थे कि एक ओर अगरेजों की मदद करते और दूसरी ओर अपने ही तेरह लाख रुपये से बाज आते। ऐसा होता तो वह व्यवसायी न कहे जाते। वास्तव मे उन्होने फरासीसियों के कासिमबाजार से प्रस्थान करने से पहले उनका माल बधक रखा लिया। पीछे उस माल के लिए जब गोदामों की जरूरत पड़ी तब उन्होने कासिमबाजार के डच प्रधान वर्नेट को कहलाया, पर इसने गोदाम नही दिये। हुगली से डच कपनी के डाइरेक्टर नें ९ अप्रैल को उसे लिखा कि "फतहचन्द के उत्तराधिकारी फरासीसियो से जो माल गिरवी करा चुके है उसके लिए तुमसे गोदाम माग रहे है और तुमने देने से इन्कार कर दिया है, यह बात मालूम हुई। तुमने ठीक काम किया, वर्ना अगरेज यह कह सकते थे कि हम लोगो ने फरासीसियों का माल अपने गोदामों मे छिपा दिया था। हर्गिज जगत्सेठ को गोदाम न देना। उनके अनुरोध की रक्षा न कर सकने

---

* कम्पनी और सिराजुद्दौला के बीच सधि हो जाने पर, रजीत राय नवाब की ओर से कुछ उपहार के साथ कलकत्ते भेजा गया था। वहा क्लाइव ने उससे कहा कि नवाब से हमे चन्दननगर पर चढाई करने की इजाजत दिला दीजिए। पर रजीतराय ने हाँ नही किया। इससे तो यही जान पडता है कि जगत्सेठ क्लाइव के प्रस्ताव के विरोधी नही तो समर्थक भी नही थे।

का कारण यह बता देना कि गोदाम खाली ही नही था और कोई बहाना कर देना।" हम आगे देखेगे कि उस माल से ही जगत्सेठ का रुपया न पटा और बाकी रुपये की जिम्मेवारी अगरेजो को ही अपने ऊपर लेनी पडी।

महताबराय और स्वरूपचंद से मिलने के दूसरे ही दिन सुबह ला सिराजुद्दौला से मिला और उसे यह बताना चाहा कि क्या क्या चाले चली जा रही थी और उन चालों का वास्तविक उद्देश क्या था। पर सिराजुद्दौला ने उसकी बात हस कर ही उड़ा दी। फिर शाम को वह दरबार मे गया और नवाब से मिला। वाट्स भी वही था। नवाब के सामने दोनो के बीच सुलह की बातचीत होने लगी। उसके पास वाट्सन का पत्र पहुच चुका था और वह उसका उत्तर भेजना चाहता था। मो० ला के मुह से निकल गया कि आप चाहे जो लिखे, वाट्सन उस पर कुछ भी ध्यान न देगा। सिराजुद्दौला तमतमा गया। बोला कि तो मै तुम लोगो की निगाह मे कुछ भी नही ! उसी दम अपने मुशी को बुलवाया और कहा कि जवाब लिखो। इस मुशी को वाट्स चटाता आ रहा था। फौरन मसौदा बना कर ले आया और नवाब ने उसे मजूर कर खत भिजवा दिया। उसके अखीर मे लिखा था कि, "आप समझदार है, और उदार भी। अगर आपका शत्रु शुद्ध हृदय से प्राण-भिक्षा माँगता है तो आपको उसकी जान नही लेनी चाहिए। पर वह भिक्षा उसे तभी मिल सकती है जब वह निश्छल हो। अगर वह आपको इसका विश्वास नही दिला सकता तब आप जो कुछ उचित समझे कर सकते है"। इन अन्तिम शब्दो का अर्थ कलकत्ते मे यह लगाया गया कि नवाब ने आक्रमण करने की अनुमति दे दी थी। १४ मार्च को क्लाइव ने

चन्दननगर पर घेरा डाला और २३ मार्च को शहर पर कब्जा कर लिया।

अब कासिमबाजार की बारी आई। वहां थोड़े से फरासीसी फरासडांगा मे रहते थे। मो० ला ही उनका मुखिया था। वाट्सन और क्लाइव इस वात पर जोर देने लगे कि या तो फरासीसी उनके हवाले कर दिये जायँ या अगरेजों को उन्हे कैद कर लेने दिया जाय। सिराजुद्दौला को फिर दबना पड़ा। ला ने उसकी नौकरी* कर ली थी। उसने नवाब से कहा कि आप मुझे यहां से न हटावे, जब तक मै यहां हूं कोई आपका कुछ कर नही सकता, पर मेरे हटते ही आपके दुश्मन आप पर टूट पड़ेगे। सिराजुद्दौला भी मन-ही-मन समझता था कि उसकी बातो मे बहुत कुछ सचाई थी, पर वह लाचार था। अगरेज तो धमका ही रहे थे, जगत्सेठ और दूसरे सलाहकारो ने भी कहा होगा कि ला को रहने देने मे खतरा है। अन्त मे उसने ला से मुर्शिदाबाद छोड़ देने को कहा। ला ने न तो चन्दननगर जाना स्वीकार किया, न चिचुरा (चिसुरा), न कलकत्ते, यद्यपि वाट्स का आग्रह था कि उसे अन्यत्र जाने न दिया जाय। सिराजुद्दौला ने उसे पटने जाकर रहने को कहा और जब वह १६ अप्रैल को चलने लगा तब उसे यह आश्वासन दिया कि परिस्थिति बदलते ही मै तुम्हे बुलवा लूंगा। ला ने कहा कि "मुझे बुलवाने की बात तो मन से निकाल ही दीजिए। यही हम दोनों की आखिरी मुलाकात है। मेरे ये शब्द

---

* "मुताखरीन"। १८ अप्रैल को वाट्स क्लाइव को लिखता है कि 'मैं कह नही सकता कि ला और इसके साथी नवाब से कुछ वेतन पाते हैं या नही। जगत्सेठ और मानिकचन्द कहते है कि नही पाते। पर मुझे खबर मिली है कि पाते है।'

याद रखिएगा कि हमारा फिर मिलना असंभव* है।" ला ने लिखा है, "अगरेजो के बारबार धमकाने और जगत्सेठ के समझाने-बुझाने का फल यह हुआ कि मुझे मुर्शिदाबाद छोडना पडा। मेरे आश्चर्य की तब सीमा न रही जब नवाब ने मुझे बुलवा कर अपने वादो के खिलाफ यह कहा कि अगर तुम्हे आत्मसमर्पण कर देना स्वीकार नही तो फौरन बगाल छोड दो।"

वाट्स अपने १६ अप्रैल के खत मे क्लाइव को लिखता है कि, "आज फरासीसी शहर होते हुए चले गये। उनके दल मे १०० फिरगी, ९० तिलगे, ९० छकडे और ४ हाथी थे। मैने उसके साथ दो जासूस लगा दिये है कि जितने सिपाहियो को फोड सकते हों फोड़ कर ले आवे।"

वाट्स को ऐसे काम खूब ही आते थे। उसकी कूटनीति-निपुणता का एक उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। कुछ और उदाहरण देने लायक है। अमीचन्द और नन्दकुमार दोनो से ही उसकी बडी घनिष्ठता हो चली थी और वह दोनो का ही यथेष्ट उपयोग करने लगा था। २६ मार्च को वह लिखता है कि, "अमीचन्द जी-जान से कपनी की खिदमत करता रहा है। हम लोगों से पुरस्कार पाने योग्य ऐसा व्यक्ति दूसरा नही। बराबर मेरे साथ रहता है और उसकी सूझ-बूझ का मै ऐसा कायल हूँ कि हर काम मे उसकी सलाह लेता हू।" नन्दकुमार को भी पुरस्कार-योग्य बताता हुआ वह ५ अप्रैल को क्लाइव से सिफारिश करता है कि, "अगर नन्दकुमार आपसे फिर मिले और आप मुनासिब समझे तो उससे इतना कह दे कि 'गुलाब का फूल' ताजा बना हुआ है। पर अमीचन्द की और मेरी अपनी भी।

---

* "मुताखरीन।"

राय यह है कि अभी उसे गुलाब सूघने न दे। केवल यह आशा दिला दे कि अमीचन्द के साथ उसका जो समझौता हुआ था अगर वह उसके अनुसार काम करता रहा तो हम यथासमय अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर देगे।" अपने उसी पत्र मे वह क्लाइव को सलाह देता है कि आप जगत्सेठ के गुमाश्ते को कलकत्ते और उनके दूसरे गुमाश्ते बैजनाथ को हुगली बुलवा ले और जो शिकायत करनी है कर दे। उसका विश्वास है कि जगत्सेठ का ध्यान उन बातों की ओर आकर्षित होते ही वह सब कुछ ठीक करा देगे। वाट्स को खबर मिल चुकी थी कि जिस समय सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर घेरा डाला था उस समय बैजनाथ ने कंपनी का कुछ माल आधे दाम पर खरीद लिया था। वह उससे बाकी आधा दाम वसूल कराना चाहता था।

क्लाइव और दूसरे अधिकारियो को वाट्स बराबर सिराजुद्दौला के विरुद्ध उभाडता रहता था। १४ अप्रैल को वह वाल्श को लिखता है कि, "चन्दननगर पर हम लोगो का अधिकार हो जाने से पहले रंजीतराय और दूसरो के सामने नवाब ने मुझे यह धमकी दी थी कि तुम्हारा सिर कटवा दूगा। कल भी वही बात हुई। जगत्सेठ, मानिकचन्द, खोजा वजीद, मीर अब्दुल कासिम, रंजीतराय और अमीचन्द के सामने उसने फिर वही धमकी दी। मै इस बात का ढिढोरा पीटना नही चाहता। जो कुछ लिख रहा हूँ सिर्फ आपकी और कर्नल क्लाइव की जानकारी के लिए। नवाब की धमकी की मुझे जरा भी परवा नही। मेरी रक्षा के लिए आप जो भी कार्रवाई करना मुनासिब समझे जोरों से करे।"

वाट्स के सहायक के रूप मे एक अगरेज ढाके से कासिमबाजार भेजा गया जिसका नाम ल्यूक स्क्राफ्टन था। वह भी प्रपंची था,

साथ ही वाट्स से कही अधिक धृष्ट था। वाट्स से उसकी बनती भी कम थी।

सिराजुद्दौला अपनी प्रत्येक प्रतिज्ञा पूरी कर चुका था—प्रतिज्ञा-पत्र मे जो सीमा निर्धारित थी उससे भी कही आगे जा चुका था। उदाहरणार्थ, १७ मार्च को वाट्स कलकत्ते की सेलेक्ट कमिटी को लिखता* है कि "नवाब ने जगत्सेठको आज्ञा दी है कि हर्जाने की मद मे मुझे बीस हजार मोहरे† दे दे। जगत्सेठ खजाने से रुपये मिलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, मिलते ही मुझे दे देगे। जो रुपया बाकी रहेगा वह कल मिल जायगा। नवाब ने मुत्सद्दियो को भी आज्ञा दी है कि कासिमबाजार फैक्टरी का जो माल जब्त है वह मुझे लौटा दे। सधि-पत्र के अनुसार जहा-तहा परवाने भेज देने की आज्ञा भी मुशियों को मिल चुकी है। नवाब ने यह भी कहा है कि फर्रुखसियर के फरमान के अनुसार हमलोगो को जो ३८ गाव मिलने वाले थे उन्हे

---

* अपने इसी पत्र में वाट्स लिखता है—

"रजीतराय ने गवर्नर, कर्नल क्लाइव और मुझसे कहा था कि वकील की हैसियत से उसने कपनी को जो तीन लाख रुपये दिलाये है उस पर उसे दस फी सदी कमीशन मिलना चाहिए, क्योकि यहा दस्तूर है कि, "ये लोग" नवाव को जो कुछ देते-दिलाते है उसपर इन्हे यही कमीशन मिलता है। अगर मै भूलता न तो रजीतराय को इतना देना आपने मजूर कर लिया था। मेरी भूल हो तो आप मुझे सूचित करे। हर हालत मे उसे दस फी सदी कमीशन तो दे ही देना चाहिए। आदमी समझदार है। साथ ही प्रभावशाली है। नवाब की उस पर बडी कृपा रहती है। उससे हम लोगो का बहुत कुछ काम निकल सकता है। उसकी सहायता से बहुत सी विघ्न-बाधाए दूर हो जायगी— नवाब के मत्री हमारे मार्ग में रोडे न अटकायगे।"

† उस समय एक मोहर की कीमत १५ या १६ रुपये थी।

भी आप लोग जमीदारो से खरीद ले। अगर जमीदारों को डर हो कि इस में नवाव को किसी प्रकार की आपत्ति होगी तो आप मुझे लिखे, मैं यहां से परवाना भिजवा दूंगा। नवाब ने यह भी कहा कि आप जब चाहे टकसाल खोल सकते और सिक्कों की ढलाई करा सकते हैं।"

सिराजुद्दौला फरासीसियों को हटाने के लिए प्रतिज्ञावद्ध न था। उसके राज्य में जैसे अंगरेज, डच या डेन रह सकते और व्यापार कर सकते थे वैसे ही फरासीसी भी। फिर भी उसने अग्रेजों से डर कर और जगत्सेठ जैसे मुसाहबों की वात मानकर फरासीसियों को सेवक तक रहने नहीं दिया था। जब मो० ला मुर्शिदावाद से चला गया तब उनकी ओर से कहा जाने लगा कि आखिर तो वह विहार मे ही कही है और नवाब से तनखाह भी पा रहा है।

एक ओर यह सब हो रहा था, दूसरी ओर षड्यंत्र की खिचड़ी पक रही थी। पकानेवालों में प्रमुख थे जगत्सेठ, मीर जाफर, राजा दुर्लभराम, अमीचन्द, वाट्स, और क्लाइव*। इनमे जगत्सेठ का नाम सबसे पहले लेने लायक था। मो० ला लिख गया है कि मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि "जो क्रांति हुई उसे कराने वाले जगत्-सेठ ही थे। अगर वह सहायक न होते तो अग्रेजो को जो सफलता प्राप्त हुई है वह न हो पाती।" ला के कथनानुसार जगत्सेठ दुरंगी चाल चलने लगे थे। नवाब से कुछ कहते, अंग्रेजों को कुछ और कहलाते। नवाब से अंग्रेजों की बुराई करते और कहते कि उनकी बात हर्गिज नही माननी चाहिए। अंगरेजों को कहलाते कि

---

* वाट्सन क्लाइव की तरह फरेवी या फितूरी न था। उसे षड्यंत्र का फल मालूम भी हुआ तो कुछ समय वाद। स्क्राफ्टन को वाट्स पेट की वात तो न बताता था, पर सुन-गुन से ही वह वहुत कुछ जान लेता था।

नवाब की नीयत खराब है, उसे मौका मिका कि उसने आप लोगो पर वार किया। ला ने लिखा है कि, "एक बार ऐसा हुआ कि जगत्सेठ ने कोई कागज दिखा कर नवाब से कहा कि अगरेजो की फलां फला बात तो आप स्वीकार कर चुके हैं। नवाब बोला कि हर्गिज नही, आपने जो कुछ लिखा है गलत है। उस कागज पर जगत्सेठ की मोहर थी। जब उन्होने नवाब का रग-ढग खराब देखा तब मुकर कर यह कह दिया कि कागज पर मोहर रजीतराय ने लगा दी। नतीजा यह हुआ कि रंजीतराय दरबार से ही नही, मुर्शिदाबाद से भी निकाल दिया गया और रास्ते ही मे मार डाला गया। उस समय लोग कहते थे कि अगरेजों से दो लाख रुपये लेकर उसने उस कागज पर जगत्सेठ की मोहर लगा दी थी। मुझे यह विश्वास नही होता। रंजीतराय अगरेजो की सहायता करता था तो इसीलिए कि उसके मालिक अगरेजों के तरफदार थे।"

ला की कहानी में रजीतराय के मारे जाने की बात कपोल-कल्पित ही थी, कारण कि वह पलासी के युद्ध के बाद भी जीवित था। इतना अवश्य था कि महिमापुर मे और दरबार मे महताबराय का रूप या नीति एक न होने के कारण उन्हे बराबर असलियत और बनावट के बीच की अवघट घाटी से गुजरना पड़ता था। अगर सिराजुद्दौला बारूद के ढेर पर बैठा न होता तो वैसे वैभवशाली व्यक्ति को कभी यह काम करने का साहस न होता।

मो० ला के कूच करने से पहले ही अंगरेजो की सहायता से उस ढेर मे आग लगा देने की बात चली, पर वाट्स सहमत न हो सका। अपने ११ अप्रैल के पत्र मे उसने क्लाइव को लिखा:—

"एक विषय ऐसा है जिस पर अमीचन्द से मेरी कई बार बातें हो चुकी है, पर समझ मे ही नही आता था कि आपको कुछ लिखू तो कैसे। स्क्राफ्टन से सारी बात बताई तो उसने यही कहा कि अमीचन्द और तुम मिल कर कपनी के लिए जो कुछ कर रहे हो वह कर्नल को और मेजर को पसन्द ही पड़ेगा।

"मुझे इस बात का आभास मिला है कि कमिटी से यह प्रस्ताव किया जावेगा कि वह अपनी फौज इधर भेज दे। मुझे आशा है कि कपनी ऐसा कोई प्रस्ताव स्वीकार न करेगी। फौज भेजने का अर्थ होगा संधि-भंग करना। नवाब ने अभी तक कोई काम ऐसा नही किया है जो सधि के प्रतिकूल कहा जा सके। आलोचना हो सकती है तो यही कि उसकी रफ्तार उतनी तेज नही जितनी हम चाहते है। पर अगर हमारी ओर से वैसी कारंवाई हुई तो मुल्क मे बड़ी गड़बडी मच जायगी। और हम एक साल तक कुछ भी माल न खरीद सकेंगे, जिसका नतीजा कपनी के लिए बहुत ही बुरा होगा। जब तक नवाब निर्विवाद रूप से संधि-भग नही करता तब तक हमें इस प्रान्त में समराग्नि प्रज्ज्वलित नही करनी चाहिए। पर उसे प्रज्ज्वलित करने मे ही अपनी भलाई हो तो मेरी राय यह होगी कि पहले मुफस्सल से अपना माल-असबाब हटा लिया जाय।"

१६ अप्रैल तक वाट्स हाथ धोकर फरासीसियों के पीछे पडा रहा। ज़ब उन्हे भगाने मे सफलता प्राप्त हो चुकी तब उसने और ही काम की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। परिस्थिति के साथ उसका अपना विचार भी बदल चला और कपनी की ओर से वह भी षड्यंत्र मे भाग लेने लगा। १८ अप्रैल को स्क्राफ्टन कासिमबाजार से लिखता है कि :—

"दो-तीन दिन से अमीचन्द बहुत बीमार है। मैं कल रात मिजाज पूछने गया था। प्राय एक घटा उसके पास बैठा रहा। उसके कहने के अनुसार वर्तमान परिस्थिति यह है।

"नवाब का खयाल है कि उसने हमारी जो क्षति की है उसे हम कभी भूल नही सकते। वह हमे विश्वास के योग्य नही समझता। जब तक उसे डर है तब तक कहने के लिए हमारा दोस्त बना हुआ है। इस आशका से कि हमारे जहाज ढाका होकर उधर पहुँच जायेंगे, वह मूर्च्छी नदी का मुह बधवाने जा रहा है। फरासीसियो से उसका मेल है और उसकी फौज तैयार बैठी है। जगत्सेठ, रंजीतराय और कई दूसरे व्यक्ति वाट्स से कह चुके हैं कि, 'जब जब वह दरबार से चलने लगा है, तब तब नवाब ने उसकी ओर नजर कर कहा है कि तेरा सिर तो मुझे कटवाना ही है।' ज्योही फरासीसी अपनी सेना तैयार कर लेगे त्योही नवाब उनकी ओर हो चलेगा। इस समय अफगानो के आक्रमण की आशका है। बनारस से लोग भाग भाग कर पटने आ रहे हैं और पटने के लोग यहां भाग आने के लिए नावो का प्रबन्ध करा रहे हैं। जब तक अफगानो के आने का डर बना है तभी तक नवाब का यह रुख है। अगर अफगान आ गये तो वह हम पर और भी निर्भर करने लगेगा और अपना माल-खजाना भी हमे सौप देगा। पर अगर अफगान न आये तो वह रग बदले बिना न रहेगा।

"अमीचन्द की सलाह है कि उस हालत मे हमे इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि जहा नवाब किसी शर्त के जरा भी खिलाफ कुछ करे वहा हम उससे लडाई-झगड़ा कर और ही किसी को मसनद पर बैठा दे। इसके लिए यार लुत्फ खा विशेष उपयुक्त

होगा। एतबार करने लायक है और जगत्सेठ भी उसकी पीठ पर हैं। दो हजार अच्छे सवारो के साथ वह हमारी ओर हो जायगा। मानिकचन्द भी सहायक होगा । वास्तव मे यहा के सभी प्रभावशाली व्यक्ति सिराजुद्दौला के विरुद्ध हो रहे है और उसकी हस्ती मिटने की राह देख रहे है। अमीचन्द की एक योजना है जिससे मानिकचन्द और नन्दकुमार के जरिए, हमे उन ३८ गावों के बदले और बहुत-कुछ जमीन हाथ लग सकती है। एक पखवारे मे ही यह मालूम हो जायगा कि अफगानों का रग-ढग क्या है । अमीचन्द के व्यवहार की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। काम मे इतना चुस्त आदमी तो मैंने देखा ही नही। वाट्स भोला-भाला है। नन्दकुमार जहां है वहा बना रहेगा।"*

जान पडता है कि आरंभ मे मीर जाफर ने किसी कारणवश स्वयं नवाब बनने की अनिच्छा प्रकट की थी, इसलिए जगत्सेठ ने खुदायार (खुदा दाद ?) लुट्फ† खां नामक सरदार को मसनद पर बिठाना निश्चित किया था। वह और उसके सवार जगत्सेठ के रक्षक थे और उनसे वेतन पाया करते थे। कहने की आवश्यकता नही कि वह विद्रोह करने के लिए कमर कस चुका था।

२० अप्रैल को स्क्राफ्टन लिखता है :—

"अभी समय नही हुआ है, इसलिए सिराजुद्दौला को प्रसन्न रखना ही अच्छा है। अमीचन्द जगत्सेठ के पास गया हुआ है। मै जानता हूँ कि जगत्सेठ ने उसे किस मतलब से बुलवाया है। वह उसे

---

* स्क्राफ्टन वाल्श को अपने पत्र सकेत-भाषा मे लिख कर भेजा करता था। वाल्श उसका अगरेजी मे रूपान्तर कर क्लाइव को दे दिया करता था। स्क्राफ्टन के लिए सकेत था "२०"।

† अगरेज इसे "लती" कहते थे।

"लत्ती" को नवाव वनाने की वात वताना चाहते है। कपनी के हित के उद्देश से मै यह कहना चाहता हूँ कि अगर आप मुझे अधिकार दे तो मै दस दिन मे ही यह निश्चित करा दू कि आपके कलकत्ते से रवाना होने के दो ही दिन वाद यहा से वहुत वडी फौज आपके पास पहुँच जायगी। आप अपनी शर्तें लिख भेजिए, मै जी-जान से कोशिश कर उन्हे मजूर करा लूगा। मै आज ही रात "लत्ती" से मिलने वाला था, पर उसने मनाही करा दी है।"

इससे पहले यह हो चुका था कि अगरेजो का वकील कोई अर्जदाश्त ले कर सिराजुद्दौला के पास गया तो उसने उसको दरवार से निकलवा दिया और कहा कि आये दिन अगरेज फरासीसियो के वारे मे कुछ न कुछ लिखते ही रहते है, मै उनका कोई आवेदन-पत्र पढना नही चाहता। फिर भी उसने क्लाइव को लिखवा दिया कि अगर फरासीसी फौज ले कर चढ आये तो मै अगरेजो की मदद जरूर करूँगा। इसलिए स्क्राफ्टन क्लाइव को सलाह देता है कि 'नवाव को धन्यवाद भेज दीजिए और धीरज धरिये। कुछ ही दिनो मे काम का अजाम हो जायगा।'

दूसरे ही दिन स्क्राफ्टन ने क्लाइव को लिखा कि सिराजुद्दौला अपनी फौज वढाता जा रहा था और दो रोज पहले मीर जाफर को अगरेजो पर धावा वोलने का हुक्म भी दे चुका था। फिर जव उसको इसमे खतरा नजर आया तो उस हुक्म को रद्द कर दिया और अगरेजो के वकील को वुलवा कर उसे पान-सुपारी भी दी। स्क्राफ्टन ने यह सूचना भी दी कि पलासी मे जो अमराई थी वह सिराजुद्दौला की आज्ञा से काटी जा रही थी और अगरेजो के जहाजो को भागीरथी मे न आने देने के लिए उसके उद्गम के पास नदी वालू से भरी जा रही

थी। फिर भी स्क्राफ्टन का विश्वास था कि इन सब बातों का अन्त 'हमारे हक में अच्छा ही होने वाला है।'

२३ अप्रैल को वाट्स ने क्लाइव को लिखा कि अफगान बंगाल की ओर बढते आ रहे थे और बिहार मे मई का राजा* बगावत का झंडा उठा चुका था। अमीचन्द को पक्की खबर मिल चुकी थी कि बागियों के और नवाब की फौज के बीच पटने के पास लड़ाई होने ही वाली थी।

"अमीचन्द मेरी सलाह से मीर खुदायार लुत्फ खां के पास गया था। "लत्ती" ने कहा कि अगर नवाब के और कपनी के बीच लड़ाई हुई तो मै कपनी का साथ दूगा, बशर्ते कि वह मुझे नवाब बनने दे। उसने स्वीकार किया कि उस हालत मे वह हमे कलकत्ते के पास बहुत कुछ जमीन दे देगा और सैनिक व्यय के लिए बहुत कुछ धन भी।"

अमीचन्द का प्रस्ताव था कि क्लाइव सिराजुद्दौला को ऐसा पत्र लिख दे जिससे वह निश्चिन्त हो जाय और लडाई पर बिहार चला जाय। उनका और खुदायार खां का यह भी कहना था कि फरासीसी उससे वेतन पा ही रहे थे, और बिहार छोड कर जाने वाले न थे। अपने पत्र के अत मे वाट्स ने लिखा था कि, 'इस समय फरासीसियों के दल में मेरे पांच जासूस है। एक और विश्वासी आदमी को भेजने जा रहा हूँ जो पटने तक उनके साथ रहे और वे क्या करते-धरते है इसकी खबर, मुझे रोज देता रहे।'

२४ अप्रैल को स्क्राफ्टन ने सकेत-भाषा का प्रयोग न कर सीधे क्लाइव को अगरेजी मे लिखा कि, "अमीचन्द के मस्तिष्क मे कोई

* नरहत समाई का जमीदार कामगार खा मई।

बडी योजना है । कल उसने मुझसे कहा कि मै अभी भेद न खोलूगा, कारण कि मै शपथ-वद्ध हूँ । मेरा अनुमान है कि अमीचन्द की योजना जगत्सेठ के "लत्ती" को नवाव वनाने के विचार से सबध रखती है । सभवत योजना यह है कि कासिमवाजार मे एक सौ सिपाही तैयार रहे और हुक्म होते ही "लत्ती" की ओर से नवाव पर टूट पडे । उधर आप उसी समय अपनी फौज के साथ कूच कर दे । ज्यों ही आप वागी फौज के पास पहुँचेगे त्यो ही वहुत से जमीदार आपके साथ हो जायेगे।"

स्क्राफ्टन ने अपने अनुमान से क्लाइव को अवगत कर यह अनुरोध किया कि आप अमीचन्द को लिख दे कि वह मुझे सारी वात वता दे और ऐसा प्रवध करें कि आपका खत कासिदों की मार्फत यहां 'पाच पहर' मे ही पहुँच जाय।

अगर वाट्स स्क्राफ्टन की तरह उतावलापन न दिखा रहा था तो इसका यह अर्थ नही कि वह चुपचाप वैठा हुआ था। दरबार मे कपनी का प्रतिनिधि* वह था न कि स्क्राफ्टन और उस हैसियत से उसकी जिम्मेवारी कही वडी थी। स्क्राफ्टन की दौड थी तो अमीचन्द तक, पर वाट्स का सीधा सम्पर्क जगत्सेठ और मीर जाफर जैसे और भी प्रभावशाली व्यक्तियो से था। उसके सामने सव से महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि विना किसी कारण के ही कपनी सिराजुद्दौला पर प्रहार करे तो कैसे ? पर वह भी जानता था कि कपनी प्रहार करने के लिए कटिवद्ध थी, इसलिए नैतिक आधार का होना न होना वरावर था। सामने जो परिस्थिति थी उसके सम्बन्ध मे, जगत्सेठ,

---

* मि० लिट्ल।

मीर जाफर आदि से विचार-विनिमय पर वह जिस नतीजे पर पहुँचा उसे क्लाइव को जताता हुआ वह २६ अप्रैल को लिखता है :—

"खबर है कि पठान उत्तर चले गये और अब नवाब मुर्शिदाबाद से कहीं जाने का विचार नही करता। मैंने जिस पत्र के विषय में आपको लिखा था वह अब अनावश्यक जान पड़ता है। दरबार की स्थिति को ध्यान मे रखते हुए आप आगे नवाब को जो खत भेजे वह मेरी ही मार्फत भेजे। और किसी के हाथ में खत पड़ने से बात बिगड़ सकती है।

"जैसा कि आपने लिखा है—नवाब का व्यवहार ऐसा है कि उसके प्रति हमे क्या करना चाहिए यह निश्चित करना कठिन हो रहा है। जगत्सेठ, रजीतराय, अमीचन्द और दूसरे व्यक्तियों का भी कहना है कि वह सधिपत्र पर कायम नही रह सकता। जहां उसे और कामो से फुरसत मिली—या आपके या अपने जहाजों के चले जाने के बाद हम लोग कमजोर पड़े—या फरासीसी उसके फिर मददगार हो गये वहां उसने हम लोगों पर वार किया। पर साथ ही यह स्वीकार करना पडेगा कि उसने अभी तक संधि-भग नहीं किया है। संधि के अनुसार हमे जो कुछ मिलना है, उसे परवाने जारी कर देता जा रहा है। हम लोगो ने चन्दननगर पर जो आक्रमण किया उससे तो उस सधिपत्र का कोई सरोकार ही नही। फरासीसियों को हमारे हवाले कर देने के लिए नवाब बाध्य भी नही। उसने आपको यह जरूर लिखा था कि हम लोग एक दूसरे के दुश्मन को अपना ही दुश्मन समझेंगे। पर यह बात सधिपत्र मे नही, एक निजी पत्रमे थी। सधि के अनुसार तो जब तक वह प्रतिज्ञा-भग नही करता तब तक हम लोग भी शाति-भग नही कर सकते।

"पर जब हम यह देखते है कि हम उस पर निर्भर नही कर सकते और वह भीतर-ही-भीतर हमारा शत्रु है--जब हमारे पास इस बात के प्रमाण है कि वह फरासीसियो से हिला-मिला है और हमारा विश्वास है कि मौका पाते ही वह उनकी सहायता से हमें नष्ट कर देगा तब अक्लमदी तो इसी मे है कि हम भी अपनी रक्षा का उपाय करे।

"दो दिन हुए मीर जाफर ने खोजा पिट्रस (अरमनी) को बुलवा कर कहा कि नवाब से सभी असतुष्ट है--वह सब के साथ दुर्व्यवहार और सब का अपमान करता रहता है--मै जब दरबार मे जाता हूँ तब मुझे डर बना रहता है कि कही मेरी हत्या न करा दे और यही कारण है कि अपने लडके और सैनिको को साथ लेकर ही वहा जाता हूँ। मीर जाफर ने यह भी कहा कि नवाब सधिपत्र से आबद्ध रहने वाला नही--मोहनलाल इस समय बीमार है, उसके चगा होते ही और जो सैनिक पटने गये है, उनके आठ-नौ दिन बाद यहा लौटते ही वह अगरेजो पर चढाई किये बिना न रहेगा।

"इसलिए, मीर जाफर ने मुझे कहलाया कि अगर आपको मंजूर हो तो वह, रहीम खा, दुर्लभराम, बहादुर अली खा आदि मिल कर नवाब को कैद कर ले और आपस मे सलाह कर किसी दूसरे शख्स को गद्दी पर बिठा दे। मीर जाफर जानना चाहता है कि उस हालत मे आपको कितना रुपया चाहिए--कितनी जमीन चाहिए। मेरा अपना विचार यह है कि जिस योजना की सूचना मैं पहले भेज चुका हूँ उससे यह योजना अधिक व्यावहारिक है।"

यह नई योजना अधिक व्यावहारिक इसलिए थी कि मीर जाफर के पक्ष मे जितने आदमी हो सकते थे उतने खुदायार खा के

पक्ष मे नही। जगत्सेठ उसे नवाब बनाना चाहते थे तो इसीलिए कि मीर जाफर ने अभी तक अपना नाम प्रकट होने नही दिया था। जब उसने देख लिया कि दाल गलने मे संदेह बहुत कम रह गया है तब उसने हा कर दिया और जगत्सेठ से ले कर घसीटी बेगम तक सभी प्रधान षड्यंत्रकारी उसके पक्षपाती हो गये। "लत्ती" ने भी जगत्सेठ के कहने पर मीर जाफर की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली और खुद उम्मीदवार न रह कर उसका तरफदार हो गया।

परिस्थिति मे जो परिवर्तन हुआ वह यो तो अमीचन्द से गुप्त रखा गया, पर उन्हे इसकी भनक मिल ही गई। फिर स्क्राफ्टन को उसका आभास मिले बिना कैसे रह सकता था? २८ अप्रैल को वह क्लाइव को लिखता है —

"मैने अमीचन्द को आपका पत्र दिखाया। उसने कहा कि हम दोनों पर कुछ अधिकारियो की संदेह-दृष्टि है, अतः हमारा एकत्र न रहना ही अच्छा है। मैने कहा कि मुझे डर है कि वाट्स की कमजोरी—

अमीचन्द—डरने की कोई बात नही। तीन चार दिन मे ही मैं हजारीमल के साथ अपने कुटुम्ब को (कलकत्ते) भेज दूगा। वहां वे मेरी नेकनीयती के जामिन के तौर रहेगे। हजारीमल को मैं सकेत-भाषा मे सब कुछ लिखता रहूगा और वह तुम्हें सारी खबर देता रहेगा।

स्क्राफ्टन—कृपा कर यह तो बताइए कि बात है क्या?

अमी—नही, मै शपथ ले चुका हूँ, इसलिए अभी बता नही सकता। पर इतना कह सकता हू कि "लत्ती" होने वाला नही। और ही कोई होगा जिसके समर्थक जगत्सेठ भी है।

स्क्राफ्टन—आप भी समर्थन करेंगे ?

अमी—हां ।

स्क्राफ्टन—तो मैं यहां से चला जाऊँ ?

अमी—यक-ब-यक नही, कुछ लोग चौक उठेंगे । ढाके तो जाओ ही मत । एक दिन और रहो ।

स्क्राफ्टन—जगत्सेठ तो दृढ़ रहेंगे ?

अमी०—अवश्य । वह भी अपने घर की स्त्रियों को दूसरी जगह भेज रहे है । उनके अपने सैनिक भी तो तुम्हारी ही ओर से लड़ेंगे । जो शर्तें हों, उन्हे हजारीमल को बता देना । नवाब के सैनिकों की संख्या कम-से-कम पचास हजार है ।

"मै यह कह सकता हूं कि अगर आपसे चौबीस घंटे भी मेरी बातचीत होती तो मै इससे अधिक कुछ भी बता न सकता । मेरा यहा अब और रहना ठीक नही । वाट्स मुझसे जलता है और जैसे बिल्ली चूहे की घात मे रहती है वैसे ही जासूस मेरी ताक में रहते है ।"

वाट्स या स्क्राफ्टन के पत्रो से तत्कालीन परिस्थिति पर जो प्रकाश पड़ता है वह "मुताखरीन" जैसे इतिहास-ग्रथ से भी पड़ना असभव है । कारण कि उसका लेखक गुलाम हुसैन उस समय मुर्शिदाबाद से दूर था और अगर वहां होता भी तो वह यह न जान सकता कि कुल्हिया मे गुड फोड़ने वाले रोज क्या कर रहे थे । पर उस समय की घटनाओं को एक समसामयिक इतिहासकार के दृष्टि-कोण से देखने वाले इस गवाह का बयान भी सुनने लायक है । वह लिखता है :—

"मो० ला (लास) के मुर्शिदाबाद से हटते ही सिराजुद्दौला के विरोधी पापड़ बेलने लगे। मीर जाफर और दुर्लभराम जगत्सेठ तथा अन्य विद्रोहियों से मिल गये और सब के सब सिराजुद्दौला को चित कर देने की तरकीब सोचने लगे। पर जहां वे ऐसी मत्रणा करते वहां सिराजुद्दौला के स्वभाव की अस्थिरता और क्रूरता से बेहद डरते भी थे।

"ठीक उसी समय बीबी घसीटी भी रंगमंच पर आ गई। सिराजुद्दौला उसे मोतीझील से निकाल कर और उसकी धन-सपत्ति छीन कर उसके कलेजे मे घाव कर चुका था। वह भी मीर जाफर की ओर हो गई और उसे मदद देने-दिलाने लगी। आखिर वह अलीवर्दी खां की बेटी और नवाजिश मुहम्मद खां की बेगम थी। मुर्शिदाबाद में ऐसे लोगो की कमी नही थी जो उनके कृपापात्र रह चुके थे—जो बीबी घसीटी के भी कृतज्ञ बने हुए थे और उसकी विपत्ति में उससे सहानुभूति रखते थे। ऐसे सब लोगो को वह यह कहलाने लगी कि मीर जाफर और दुर्लभराम का पक्ष ग्रहण कर आप मेरे प्रति अपने कर्तव्य का पालन कीजिए। उसके पास कुछ धन भी था। मोतीझील से बहिष्कृत होने से पहले उसने कुछ सोना दास-दासियों के द्वारा और कही हटवा दिया था। अब वह उस धन का उपयोग मीर जाफर की सफलता के लिए करने लगी। इस सहायता से मीर जाफर षड्यन्त्र का जाल फैलाने और अपना सैनिक बल बढ़ाने लगा। जो कोई भी आदमी सिराजुद्दौला की सेना से बरखास्त होकर नौकरी करने या अपनी तकदीर की आजमाइश करने की गरज से उसके पास पहुँचता था उसे वह भरती कर लेता था। धीरे-धीरे उसने गुप्त रूप से काफी सैनिक भरती कर लिये।

दूसरे सरदार भी उसके पक्ष मे हो गये और सब का यही ध्येय हो चला कि किसी प्रकार सिराजुद्दौला को गद्दी से हटाया जाय। पर यह काम अगरेजो की सहायता के बिना न हो सकता था। इसलिए विद्रोहियों की ओर से अगरेजो के पास सदेसे जाने लगे कि खुले मैदान आकर सिराजुद्दौला पर वार कीजिए। ऐसे लोगो मे प्रमुख जगत्सेठ थे। यह काम जिस खूबी से वह करा सकते थे उतने दूसरे नही। कलकत्ते के बडे व्यापारी और अपने सरोकारी अमीचन्द की मार्फत वह अगरेजो को बराबर उकसाते रहे। राजा दुर्लभराम और मीर जाफर ने भी अपने दूत कलकत्ते भेजे। मीर जाफर की ओर से जाने वाला उसका विश्वासी मित्र मिर्जा अमीर बेग था। जिस समय अंगरेज 'फोर्ट विलियम' छोड कर भागे जा रहे थे उस समय उसने कुछ औरतो को नावो पर सही-सलामत पहुचा कर बडे साहस और उदारता का परिचय दिया था। इस कारण अगरेज उसकी बडी इज्जत करने लगे थे। उसकी मार्फत मीर जाफर ने उन्हे कहलाया कि सरदार और अमीर-उमरा सिराजुद्दौला से नाको आकर और एक होकर उससे छुटकारा पाने का निश्चय कर चुके थे।"

जब बिल्ली का भाग्योदय होता है तब छींका टूट कर गिर पड़ता है और उसे माल-मलाई अनायास ही मिल जाती है। अगरेज भी ऐसे ही भाग्यवान् निकले। मीर जाफर के सम्बन्ध मे वाट्स अपने २६ अप्रैल के पत्र मे लिख ही चुका था। २८ अप्रैल को उसने फिर लिखा कि 'अगर मीर जाफर से सधि हो जाती है तो समझ लीजिए कि सब से शक्तिशाली सहायक हमे मिल गया। उसकी बराबरी करने वाला यहा कोई नही।' १ मई को कलकत्ते की सेलेक्ट कमिटी ने यह निर्णय किया कि 'हम सहायता दे या न दे,

मुर्शिदाबाद मे क्राति सफल हुए बिना नही रह सकती। हम तटस्थ हो कर तमाशा देखते रहे तो राजनीतिक दृष्टि से यह हमारी भयंकर भूल होगी।' गरज यह कि कंपनी ने मीर जाफर को सहायता देना स्वीकार कर लिया। दूसरे ही दिन क्लाइव ने वाट्स को लिखा कि 'कल सुबह हमारी सेना यहा से कूच करेगी। मीर जाफर से जो कुछ तै-तमाम करना है कर लो और कह दो कि मै ५,००० ऐसे जवानों के साथ चला आ रहा हूँ, जिन्होने आजतक पीठ नही दिखाई। उसी खत के साथ क्लाइव ने मीर जाफर के साथ होने वाली शर्तो का मसौदा भी भेजा। पर ४ मई के पत्र मे उसने सिराजुद्दौला को आश्वासन देते हुए लिखा कि, 'वहा लगाने-बुझाने वालों की कमी नही। अगर कोई घरानेदार आदमी यहां मेरे साथ होता तो मै आपको विश्वास दिला सकता कि अगरेज सत्य और न्याय के कैसे भक्त होते है।'

ज्यों ही मीर जाफर और अंगरेजों के बीच सधि की बातचीत शुरू हुई, अमीचन्द दोनो के मार्ग मे बाधक बन गये और अपने सहयोग की कीमत मांगने लगे। शुरू मे मीर जाफर और शायद जगत्सेठ के भी इच्छानुसार उनसे सारी बात छिपाने की कोशिश की गई, पर वैसे चुस्त-चालाक आदमी से कुछ भी छिपाया न जा सकता था। ६ मई को वाट्स लिखता है कि, 'मैने सारी बात अमीचन्द को बता दी है। मुझे डर है कि जब मीर जाफर यह सुनेगा तब वह झुझलाये बिना न रहेगा, कारण कि वह हिन्दुओ को उतना विश्वसनीय नही समझता। जो हो, मै अब जो कुछ करूगा अमीचन्द की सलाह लेकर ही करूंगा। जल्द ही मै मीर जाफर से मुलाकात कर सब कुछ तै कर लेने वाला हू।'

पर अमीचन्द सलाह देकर ही सन्तुष्ट होने वाले न थे। उन्होंने कहा कि पहले यह तै हो जाय कि मुझे क्या मिलेगा। वाट्स से उनकी खटपट हो गई और इस झगडे के कारण प्राय. एक महीने तक न तो सधिपत्र पर दस्तखत हो सके, न अगरेज कलकत्ते से "सत्य और न्याय" के पथ पर आगे बढ सके। अमीचन्द की माग थी कि क्राति हो जाने पर मीर जाफर को जो धन-सपत्ति हाथ लगे उसके एक हिस्से के वह भी हकदार समझे जाय। उनका अदाज था कि खजाने मे दो करोड* नकद थे—उसके अलावा जवाहरात। स्क्राफटन ने कलकत्ते से वाट्स को लिखा कि क्लाइव ने अमीचन्द को मिलनेवाली रकम पर पाच प्रतिशत देना मजूर कर लिया है। वाट्स ने यह वात अमीचन्द से छिपा ली और १४ मई को उन पर कुछ अभियोग लगा कर एक पत्र क्लाइव के पास भेजा। उसमे खास बात यह कही गई थी कि जब कपनी से सधि हो जाने पर सिराजुद्दौला ने उसे प्राय. तीन लाख रुपये हर्जाने के रूप मे देना स्वीकार किया था तव उसने रजीतराय और अमीचन्द के साथ यह भी तै किया था कि वह उतनी ही रकम कलकत्ते के व्यापारियो की क्षति-पूर्ति के लिए और दो लाख रुपये उन दोनो के लिए देगा। जव वाद को नवाव रजीतराय को एक लाख देने मे टालमटूल करने लगा तब उसने उस रकम की वात छेडी जो व्यापारियो को मिलने वाली थी। उधर अमीचन्द ने नवाव से कह दिया कि अगर आप इस फितूरी को यहा रहने देगे तो आपको वह सारी रकम देनी पडेगी। इस पर नवाव ने रजीतराय को दरबार से निकलवा दिया और उसे काफी

---

* वाट्स का अपना अदाज ४० करोड का था।

नुकसान भी पहुचाया। जब वाट्स को सारी बात 'विश्वसनीय सूत्र' से मालूम हुई तब उसने नवाब से उस रकम के बारे मे पूछताछ करना चाहा, पर अमीचन्द ने कहा कि बात हम तीनो के ही बीच तै हुई थी, कुछ भी पूछना ठीक न होगा, पर मै नवाब से वह रकम दिलाने की चेष्टा करूगा। यह दास्तान सुना कर वाट्स ने लिखा कि, "आपने जो शर्ते लिख भेजी थी वह अमीचन्द को मजूर नही हुई। वह अपने लिए पांच प्रतिशत तो नवाब के खजाने की रकम पर चाहता है। यह रकम दो करोड रुपये होगी। इसके अलावा यह चाहता है बाकी सपत्ति का चौथाई भाग। राजा दुर्लभराम को अपना पक्षपाती बनाने के लिए वह उससे वादा करा चुका है कि मीर जाफर से हम लोग जो कुछ ऐठ लेगे उसका एक चौथाई भाग आपका होगा।"

क्लाइव की और अमीचन्द की ठठेरे ठठेरे बदलाई थी। जब क्लाइव ने देखा कि बिना अमीचन्द का मुह सीये बात नही बनती तब उसने उनकी माग तो स्वीकार कर ली, पर मन ही मन उन्हे धोखा देने का निश्चय कर दो सधि-पत्र लिखवाये जिनमे एक असली था, दूसरा नकली। असली का कागज सफेद था, नकली का लाल। कपनी की ओर से क्लाइव, वाट्स, ड्रेक आदि ने दोनो पर ही दस्तखत किये। एक वाट्सन ने जाली सधिपत्र पर दस्तखत नही किये, पर क्लाइव ने उसके दस्तखत दूसरे से बनवा दिये। अमीचन्द का मुह मनमोदक से भर कर क्लाइव ने कपनी की और अपनी पाचों उगलिया घी मे कर ली। कलकत्ते से जो शर्ते मुर्शिदाबाद भेजी गई उनमे कुछ ये थी—

१—कपनी की क्षति-पूर्त्ति के लिए उसे एक करोड रुपये* मिलेगे।

---

* 'सिक्को' से मतलब था।

२—व्यापारियो की जो क्षति हुई थी उसकी पूर्त्ति के लिए अगरेज व्यापारियो को पचास लाख, हिंदू व्यापारियों को बीस लाख और अरमनी व्यापारियो को सात लाख रुपये मिलेगें।

३—मराठा खाई मे और उसके इर्द-गिर्द ६०० गज के भीतर जमीदारो की जितनी जमीन है वह कपनी को दिला दी जायगी।

४—मुर्शिदाबाद सरकार को हुगली से दक्खिन किसी तरह की किलेबन्दी करने का अधिकार न होगा।

मीर जाफर ने सादे कागज पर ही दस्तखत करके वाट्स को दे दिया था कि क्लाइव को जो शर्ते ठीक जचे लिख ले। क्लाइव ने और सब बाते तो लिखा दी, सिर्फ कपनी को मिलने वाली रकम की तादाद मीर जाफर की मर्जी पर ही छोड दी। वह स्वय पचास लाख से ही सतुष्ट हो जाता, पर मीर जाफर ही क्या जो पचास लाख और न दे देता! कपनी को और व्यापारियो को सधिपत्र द्वारा जो कुछ मिलना निश्चित हुआ उसके अलावा मीर जाफर ने क्लाइव और वाट्सन की फौज के लिए चालीस लाख ओर कौसिल के सदस्यो के लिए बारह लाख रुपये देना स्वीकार किया। १९ मई को क्लाइव ने प्रस्तावित सधि के सम्बन्ध मे एक पत्र वाट्स को भेजा। उसमे जाली सधिपत्र का जिक्र करते हुए उसने एक ओर यह लिखा कि अमीचन्द जैसा 'दुष्ट दुनिया के परदे पर न होगा' और दूसरी ओर वाट्स को आदेश दिया कि 'उसकी खूब खुशामद करना, हमारे धन्यवाद उसके पास पहुँचा देना और कह देना कि आपका नाम हिन्दुस्तान से भी बढ़कर इग्लिस्तान मे होने वाला है।'

सधि के मार्ग मे अमीचन्द की तरह कुछ हद तक दूसरा बाधक दुर्लभराम हुआ। इसका मीर जाफर से घनिष्ठ सम्बन्ध था और

सैनिक दृष्टि से मीर जाफर के बाद महत्व था तो उसी का। उसने यह कर आपत्ति की कि खजाने मे इतना रुपया ही नही तो मीर जाफर नवाब हो जाने के एक महीने के भीतर ही प्राय: ढाई करोड़ रुपये कहां से ला कर दे सकेगा? उसका प्रस्ताव था कि जो कुछ खजाने मे मिले उसका आधा अगरेज ले ले। वाट्स इससे सहमत था, कारण कि वह राजकोष मे चालीस करोड़ का अनुमान किये बैठा था। अन्त मे मीर जाफर और दुर्लभराम ने उसी बात को मजूर कर लिया, जो पहले तै हो चुकी थी। ५ जून की रात को वाट्स ओहारवाली डोली मे बैठ, मीर जाफर के घर गया और वही मीर जाफर ने कुरान और अपने बेटे के सिर की कसम खा कर, सधिपत्र पर दस्तखत कर दिये और उसकी शर्तो से अपने आपको जकड़बन्द कर लिया।

१३ जून को क्लाइव ने सिराजुद्दौला को एक पत्र भेजा। उसमें उस पर कुछ झूठे-मूठे दोषारोप किये गये थे, कुछ बे-सिर-पैर की बाते लिखी गई थी।

एक आरोप यह था—"आपकी मित्रता ऐसे लोगो से है जो हमारे शत्रु है। मुझे दक्खिन से पक्की खबर मिली है कि आप वहा मो० बुशी* से पत्र-व्यवहार करते रहे है।"

दूसरा यह—"आप मुझसे बार बार कह चुके है कि मो० ला और उसके साथियो को कर्म्मनाशा पार भाग जाने को कह दिया गया था पर वे तो आपके आज्ञानुसार भागलपुर मे ही बैठे हुए है और उन्हे आपसे १०,०००) माहवार भी मिल रहा है। इसका एक प्रमाण यह है कि जगत्सेठ की जो कोठी राजमहल मे है उसने हाल में ही उन्हे १०,०००) की एक हुडी का भुगतान दिया है।"

* दक्खिन हैदराबाद मे फ्रेच सेनापति।

संधिपत्र पर हस्ताक्षर करके मीर जाफर उसे वाट्स को दे रहा है। मीरन बीच में खड़ा है—(प्राचीन चित्र से)

तीसरा आरोप यह था —

"आपके और हमारे बीच संधि हुए चार महीने बीत चले। आपने आज तक उसकी शर्तो का पूरा पालन नही किया। वादे होते और टलते आये है। कलकत्ते मे हमारी जो रकम* आपको हाथ लगी थी उसका आप हमें पचमांश से अधिक लौटाना नही चाहते, फिर भी हमसे फारखती मागते है। उसके अलावा आपने हर्जाना देने को कहा था। पर जहां आपने सोने की मोहरों का वादा किया वहां जगत्सेठ से चादी के सिक्के दिलवाये। वह रकम भी हमे तब मिली जब हमारे जहाज यहा से रवाना हो चुके थे।"

अन्त मे यह धमकी थी —

"मै नुकसान कहा तक बरदाश्त कर सकता हू ? यहां सब की यही राय है कि मै कासिमबाजार जाऊ और वहा इस मामले की पचायत कराऊ। मै पच बदूगा जगत्सेठ, राजा मोहनलाल, मीर जाफर खा, राजा दुर्लभराम, मीर मदन को—और वहा के अन्य विशिष्ट व्यक्तियों को । बरसात का जोर बढता जा रहा है, आपका उत्तर मिलेगा भी तो देर से, यह सोच कर मै आपकी सेवा मे उपस्थित होने के लिए रवाना हो रहा हू।" उसी दिन क्लाइव रवाना हुआ, और उसी दिन वाट्स भी शिकार पर जाने का बहाना कर कासिम-बाजार से चपत हो गया। क्लाइव के रवाना होने से पहले ही मुर्शिदाबाद मे यह अफवाह उडने लगी थी कि बादल उमडते-घुमड़ते

* ड्रेक अपनी सफाई मे लिख चुका था कि "जहा तक मुझे याद है, उस समय कपनी के खजाने में सब मिलाकर ८०,०००) से अधिक न था।" हिल, भाग २, पृष्ठ १४१।

चले आ रहे है। अब सिराजुद्दौला को भी निश्चय हो गया कि रक्त-वृष्टि होने ही वाली थी।

उन दिनों कासिमबाजार मे डच कपनी का प्रधान वर्नेट था। उसने १५ जून को लिखा कि, "वाट्स, कालेट, साइक्स और उनका डाक्टर परसों यहा से भाग गये। दरबार मे इससे खलबली मच गई है। नवाब ने कल एक अतरग सभा की और यह आज्ञा दी कि पेशखेमा भेज दिया जाय। फौज भी इकट्ठी हो रही है। पर कुछ घुड़सवारों ने लड़ाई पर जाने से इन्कार कर दिया है। इससे जान पड़ता है कि कोई साजिश हो चुकी है और उसमे अंगरेज शामिल है।"

१६ जून को उसने लिखा कि, "नवाब अपनी फौज के साथ रवाना हो चुका है। हमे पक्की खबर मिली है कि फतहचंद के पोते, राजा दुर्लभराम, मीर जाफर, खुदा दाद खां "लत्ती" और अमीर बेग—अगरेजों से मिल कर नवाब के साथ विश्वासघात करना चाहते है।" वार्नेट को यह समाचार बडी देर से मिला था।

इससे पहले ही क्लाइव की सेना कटवा पहुच चुकी थी। वहीं वाट्स भी उसके साथ हो लिया। कटवा के किलेदार ने कहलाया कि मै आपका शत्रु नही, मित्र हू। और १९ जून को क्लाइव ने 'फोर्ट विलियम' की सेलेक्ट कमिटी को लिखा कि यहां के किले पर तो कब्जा हो गया, अब नदी पार कर पलासी पहुचना है। २३ जून को प्रात.काल वह पलासी पहुचा और उसके पहुचते ही लड़ाई शुरू हो गई। तीन-चार बजते-बजते लडाई का फैसला भी हो गया। सच पूछा जाय तो वह फैसला सिराजुद्दौला के लडाई पर चलने से पहले ही हो चुका था।

हरावल के साथ राजा दुर्लभराम वहां पहुच चुका था, पर

पहुचकर उसने काम यही किया था कि क्लाइव के साथ कुछ और सम-झौता कर लिया था—जो मोरचा बाधा भी था वह अगरेजो की हार नही, जीत की ही दृष्टि से। दूसरा सेनापति हो कर स्वय मीर जाफर आया था। इधर क्लाइव से कई पत्र उसके पास पहुच चुके थे और वह साबुत जग बहादुर* को बता भी चुका था कि वह कहां रहेगा और क्या करेगा। लड़ाई से एक दिन पहले क्लाइव को उसका जो पत्र मिला था उसमे लिखा था कि, "आप मैदान के पास पहुँचे कि मैं आपकी ओर आ गया। आप मुझे इतना सूचित कर देगे कि आपकी ओर से कव लडाई शुरू होगी।" पलासी पहुचने पर मीर जाफर ने अपने खेमे मैदान से कुछ दूर खडे कराये और लडाई शुरू होने पर उसमे कोई भाग नही लिया, "मानो वह तमाशा† देखने के लिए ही वहा गया हो।" फिर भी सिराजुद्दौला की ओर से मीर मदन और मोहनलाल ऐसी वीरता दिखाने लगे कि थोड़े समय के लिए क्लाइव कुछ चिन्ता मे पड़ गया। मीर जाफर का कही पता न था। नवाब के लशकर में कुछ फरासीसी और पुर्तगीज भी मौजूद थे और मीर मदन पीठ दिखाने के वजाय आगे बढता आ रहा था। पर क्लाइव का सौभाग्य कहिए या सिराजुद्दौला का दुर्भाग्य, तीन बजे के करीब मीर मदन के पास तोप का ऐसा गोला जा गिरा जिससे उसकी एक जाघ ही जाती रही।

मीर मदन के मरते ही सिराजुद्दौला इतना घबरा गया कि बहुत बुलाने पर जव मीर जाफर उसके पास आया तब उसने अपनी

---

* यह क्लाइव का खिताब था जो दक्षिण में उसे मुहम्मद अली से मिल चुका था।

† "मुताखरीन।"

पगड़ी उतार कर उसके सामने रख दी और अपने दोषों के लिए पश्चात्ताप प्रकट कर उससे क्षमा-भिक्षा मांगने लगा। मीर जाफर अंत:करण से क्षमा-प्रदान करने वाला न था। दुश्मन को दांव पर चढ़ा देख उसने इतना ही कहा कि "आज और लड़ने से लाभ के वदले अपनी हानि होगी। कल की लड़ाई का भार मैं अपने ऊपर लेता हूं और यह भी वादा करता हूं कि अगर अंगरेजो ने रात को छापा मारा तो उसका जवाब मैं दे दूंगा।" मोहनलाल उस समय भी वीरतापूर्वक लड़ रहा था। उसने सिराजुद्दौला को कहलाया कि लड़ाई मुलतवी मत कराइये. अपने लिए इसका नतीजा बहुत ही बुरा होगा। सदेह और भय के बीच सिराजुद्दौला दुविधा में पड़ गया, पर अन्त मे उसने मीर जाफर की ही सलाह मान ली और लड़ाई बंद कर देने की आज्ञा दे दी। सैनिकों ने इसका अर्थ यह लगाया कि अपनी हार हो चुकी और मैदान छोड़कर भाग पड़े। ऐसी भगदड़ मची कि कोई किसी के रोके न रुक सका और सिराजुद्दौला स्वयं सॉडनी पर सवार हो मुर्शिदाबाद भाग गया।

पलासी की लड़ाई को लड़ाई कहना उपहासात्मक अत्युक्ति है। मीर जाफर, दुर्लभराम और खुदादाद लुत्फ खा जैसे लोगों को सेनापतित्व प्रदान कर वहां भेजना या अपने साथ ले जाना सिराजुद्दौला का ही काम हो सकता था। उसकी सेना मे १५,००० घुड़सवार और ३५,००० पैदल थे। इनमे कई हजार सैनिक ऐसे थे जो मोहनलाल, मीर ,मदन ख्वाजा हादी अली खां आदि सरदारों के इशारे पर सिर से खेल जाने वाले थे। उसके साय चालीस-पचास तोपे थी और पुर्तगीजों के अलावा पचास-साठ फरासीसी तोपची थे। अगर क्लाइव की बात मान भी ली जाय कि तीन वजे तक नवाव के

५०० जवान खेत आ चुके थे तो भी यह स्वीकार नही हो सकता कि उसकी स्थिति निराशाजनक हो चली थी। उस दिन लड़ाई जीतने की आशा किसी ने त्याग दी थी तो क्लाइव ने। वह रात को छापा मारने का विचार करने लगा था। फिर भी एक मीर मदन के मरते ही सिराजुद्दौला इतना बदहवास हुआ कि जो परिस्थिति अनुकूल थी उसे प्रतिकूल बना कर अपनी हार करा ली। यह काम भी उसी का हो सकता था।

दूसरे ही दिन सुबह आठ बजे मुर्शिदाबाद पहुचकर सिराजुद्दौला ने मसूरगज महल मे बचे-खुचे सरदारो को बुलवाया और कहा कि मेरी जान बचाने वाले अब आप ही लोग रह गये है। पर कोई तरफदार या मददगार न निकला। उसके ससुर तक ने उसके रोने-धोने पर ध्यान न दिया। इस आशा से कि जो काम उसके आसू नही कर सके थे वह काम उसके रुपये कर सके, सिराजुद्दौला ने अब अपना खजाना खुलवा दिया और धन लुटाने लगा। पर इससे उसको कुछ सहानुभूति मिली भी तो गाढे के सगी न मिले। सब से निराश हो कर उसने रात को भगवानगोला मे नाव पर सवार हो, 'पटने की राह ली। साथ जाने वालो मे उसकी बेगम लुत्फुन्निसा और कुछ नौकर-चाकर थे। थोडा धन भी पास था। "मुताखरीन" मे लिखा है कि यहा भी उसने बडी गलती की। पहले उसका विचार खुश्की की राह राजमहल भाग जाने का हुआ था। अगर उसके अनुसार कार्य किया होता और जो सरदार मीर जाफर से मिले हुए न थे उन सब को कहला दिया होता तो कुछ घटो के भीतर ही कई हजार आदमी उसके साथ हो जाते और कम से कम तनहाई मे उसे गिरफ्तार होना न पडता।

सिराजुद्दौला ने पलासी जाने से पहले ही मो० ला को बुलावा भेज दिया था। भूल उसने यह की थी कि बुलावे के साथ ला को कोई हुंडी न भेज कर पटने के दीवान पर एक परवाना भेज दिया था जिससे ला को राहखर्च के लिए रुपये कुछ देर से मिले सके थे। ला धावा मार कर राजमहल पहुचा भी तो सिराजुद्दौला के गिरफ्तार हो जाने के कुछ घटे बाद*।

सिराजुद्दौला को मालदह के पास पहुचने पर मालूम हुआ कि नाव नजीरपुर से आगे नही जा सकती थी, इसलिए वही उतर पडा। घाट से दानाशाह पीरजादे के घर गया। "रियाजुस्सलातीन" मे लिखा है कि सिराजुद्दौला किसी समय दानाशाह को कुछ नुकसान पहुचा चुका था और बदला लेने के विचार से उसने इसके पहुंचने की खबर राजमहल के फौजदार के पास भेज दी। इसने अपने सिपाही भेजे और सिराजुद्दौला को सस्त्रीक गिरफ्तार करा लिया। लत्फुन्निसा का जर-जेवर मीर कासिम ने छीन लिया। दोनों हिरासत मे मुर्शिदाबाद भेज दिये गये और वहीं २ जुलाई को, मीर जाफर के बेटे मीरन के हुक्म से सिराजुद्दौला मार डाला गया†। कहना चाहिए कि वह अपनी भयकर भूलो का शिकार हो गया।

---

* मेजर कूट ने ला का पीछा किया, पर उसे पकड न सका। ला बक्सर होता हुआ कर्मनाशा पार भाग गया।

† मीर जाफर उस समय नशा खाकर सो रहा था। "रियाजुस्सलातीन" मे लिखा है कि सिराजुद्दौला को मार डालने की सलाह अँगरेजो ने तो दी ही थी, जगत्सेठ ने भी इस पर जोर दिया था।

(३)

मीर जाफर लडाई के दिन अगरेजो की ओर से खुले मैदान न लड सका था, इसलिए सिराजुद्दौला के भागते ही उसे क्लाइव से चार आखे करने का साहस न हो सका। दूसरे दिन जाकर उससे मिला। इससे पहले ही क्लाइव उसे लिख चुका था कि "जीत आपकी हुई है, मेरी नही। मेरी ओर से आपको बधाई है। जितना शीघ्र हो सके आप आ जाय तो अच्छा। कल ही हम लोग यहा से रवाना होगे। आशा करता हूँ कि आपको नवाब घोषित करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा।" फिर भी मीर जाफर डरते डरते उसके पास गया। क्लाइव के आलिगन करने पर ही उसके दिल की धडकन बन्द हुई, सूखा हुआ चेहरा फिर हरा हुआ। उसी दिन पलासी से चलकर वह मुर्शिदाबाद पहुच गया। सिराजुद्दौला उस समय अपने महल मे ही था, पर मीर जाफर से यह न बन पडा कि मसूरगज जाकर उसे गिरफ्तार करा ले। इसका कारण यह था कि उस समय क्लाइव साथ न था। कुछ इन्तजाम करने के लिए वह पीछे ही रह गया था।

पर क्लाइव से पहले ही वाट्स और वाल्श रुपया वसूल करने के लिए मुर्शिदाबाद पहुच गये थे और खजाने की तलाशी कराने लगे थे मीर जाफर, दुर्लभराम को कर्ता-धर्ता बना चुका था और दुर्लभराम को खजाने मे कुल एक करोड चालीस लाख रुपये मिले थे। वाट्स और वाल्श को विश्वास न हुआ कि सिराजुद्दौला उतना ही छोड गया था और दुर्लभराम सच बोल रहा था। २६ जून को उन दोनो ने क्लाइव को लिखा कि —

"आज सुबह हमने नवाब से मुलाकात की। पूरे दो घटे तो

दरबार की रसम खतम होने मे लगे । उसके बाद नवाब और दुर्लभराम हमे अलग ले गये । बजाय इसके कि दुर्लभराम हमें जगत्सेठ से रुपये दिला देता, वह बाते बना कर हमे यह विश्वास दिलाने की चेष्टा करने लगा कि खजाची से पूछ-ताछ कर चुका था, खजाने मे बस एक करोड़ चालीस लाख रुपये मौजूद थे और जगत्सेठ ढाई-तीन करोड दे नही सकते थे । वस्तुस्थिति न जानने के कारण, हम उसकी बातो का खडन करने मे असमर्थ थे। हमने यह प्रस्ताव किया कि हम मोहनलाल से बाते कर लें और फिर उसे साबुतजग* के पास ले जाय। पहले तो दुर्लभराम ने कुछ आना-कानी की, पर अन्त मे हमारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। हमने उससे पूछा कि आप और मानिकचन्द कर्नल के पडाव पर जाने वाले है या नही? उसने कहा कि जब तक यह मामला तै नही हो जाता, मै तो कही नही जा सकता ।

"थोड़े से शब्दो मे हम कहे तो कह सकते है कि दुर्लभराम की नीति इधर-उधर करने और धोखा देने की है। हमारा विश्वास है कि जब तक वह प्रधान मन्त्री रहेगा, एक हिन्दू की स्वभावज कुटिलता से हमारे मार्ग मे रोड़े ही अटकाता रहेगा। अच्छा होगा कि आप अमीचन्द से पूछे कि नवाब के धन के सम्बन्ध मे उसका अपना अनुमान क्या है । उसने मि० वाट्स से कहा था कि, 'मुझे मालूम है कि नवाब का धन महल मे कहा कहा छिपा पडा है।' इसमे तो सदेह की गुजाइश ही नही कि धन छिपाया हुआ है और वह भी कई जगह। अगर अमीचन्द वैसा स्वार्थी न होता तो इस मौके पर यहां बहुत ही उपयोगी हो सकता था।

* क्लाइव।

"आज जोरो की वर्षा हो रही है, इसलिए मोहनलाल को साथ लेकर हम दोनों रवाना नही हो सकते । कल सुबह रवाना होगे। मानिकचन्द और जगत्सेठ के भाई आने वाले है। उनसे बहुत सी बाते मालूम हो सकेगी। महाराज स्वरूपचन्द आ ही तो गये। इसलिए हम इस पत्र को यही समाप्त करते है।"

उस समय तक क्लाइव कासिमबाजार पहुच चुका था। उसने २८ जून को मुर्शिदाबाद जाकर मीर जाफर और जगत्सेठ से मिलने और कई विषयो के सबध मे निर्णय करने का विचार किया। पर २७ जून को ही जगत्सेठ ने उसे रजीतराय के द्वारा यह कहलाया कि "दुर्लभराम और कासिम हुसैन खा ने रात यह मत्रणा की कि जब आप नवाब से मिलने आवे तब आपको मार डाला जाय। अगर आप रवाना हो चुके हो तो बीमारी का बहाना कर लौट जाय। मै कल सुबह आकर मिलूगा। आप इस मंत्रणा के सम्बन्ध मे किसी से एक भी शब्द न कहे। नवाब ने रुपये-जवाहरात चुपचाप गोदागारी भिजवा दिये है। और कोई बात मालूम होगी तो मै आपको उसकी सूचना भेज दूगा।"

यह संदेश मिलने पर क्लाइव ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी और २८ जून के बजाय २९ को मुर्शिदाबाद गया। ३० जून को उसने लिखा :—

"कल प्रात.काल मैने नगर मे प्रवेश किया और नवाब के महल के पास ही मुरादबाग मे जाकर डेरा डाला। मेरे साथ २०० यूरोप के और ३०० इस देश के सिपाही थे। तीसरे पहर मीर जाफर का बेटा मुझे दरबार मे ले गया। मैने देखा कि मीर

जाफर संकोचवश अभी मसनद पर बैठे न थे । मैंने उन्हें बैठाया और नवाब नाजिम को सलाम किया। फिर दरबारी बधाइयां और नजर देने लगे । काम-काज की बाते करने का अवसर न था। मैने उन लोगो से इतना ही कहा कि 'सरकार से लड़ना अगरेजों का उसूल न होते हुए भी हमे सिराजुद्दौला से इसलिए लड़ना पडा कि वह अपनी बात पर कायम न रह कर संधि-भंग करने और फरासीसियो के द्वारा हमारी हस्ती मिटवाने की बंदिश बाधने लगा था। ईश्वर की इच्छा से वह पराजित हो चुका । अब उसकी जगह जो नवाब हुए है उनके गुणो को देख कर यह आशा होती है कि उनकी छत्रच्छाया मे सर्वत्र शान्ति बनी रहेगी और प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न होगा । हम लोग राज-काज मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना नही चाहते। जो कुछ होगा नवाब के ही इच्छानुसार। जब तक उन्हे हमारी आवश्यकता है, हम आज्ञापालन के लिए यहा रहेगे, आवश्यकता पूरी होते ही हम कलकत्ते लौट जायँगे और वाणिज्य-व्यपार करने लगेगे। आखिर हम व्यापारी है और एकमात्र व्यापार के उद्देश से यहा आये हुए है।"

इसके बाद क्लाइव लिखता है —

"कल ही मेरे मुरादबाग लौटने पर जगत्सेठ मिलने आये। देर तक उनसे बाते होती रही। बगाल, बिहार और उडीसा मे, धन और प्रभाव की दृष्टि से, उनका स्थान सब से ऊचा है। दिल्ली-दरबार मे भी उनकी बडी प्रतिष्ठा है। उनसे बाते कर मै इस नतीजे पर पहुचा कि इस मामले को निबटाने वाला उनसे योग्य व्यक्ति कोई हो नही सकता था। लेहाजा जब आज सुबह नवाब

मुझसे मिलने आये तब मैने उनसे कहा कि आप बराबर जगत्सेठ की सलाह से काम किया करे। उन्होने फौरन यह बात मान ली और कहा कि 'खजाने मे जो रुपया है वह मेरी आशा से इतना कम है कि आपका पावना अदा करना और सरकार के जरूरी खर्च के लिए भी कुछ रखना सभव नही, अगर जगत्सेठ हम दोनो के बीच के मामले का तस्फिया कर दे तो अच्छा हो।' मैने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। नवाब के मन्त्री काफी रुपये पर हाथ मार चुके है, इसमे तो मुझे सदेह न था, पर मेरे लिए ऐसे मामले की तहकीकात करना बहुत मुश्किल था। मैने कहा कि इससे अच्छा रास्ता और हो ही नही सकता।"

मीर जाफर और क्लाइव जगत्सेठ के घर गये। उनके साथ दुर्लभराम, मीरन, अमीचन्द, वाट्स और स्क्राफ्टन भी गये। जिस कमरे मे जगत्सेठ से बाते होने वाली थी उसमे अमीचन्द न जा सके। उन्हे कही बाहर ही बैठने को कहा गया। मीर जाफर और क्लाइव की बाते सुन कर जगत्सेठ ने जो फैसला किया उसके बारे मे क्लाइव ने लिखा कि —

"जगत्सेठ के निर्णय के अनुसार अंगरेजो का जो कुछ पावना है उसका आधा तो उन्हे इसी समय मिल जायगा और बाकी आधे को तीन साल मे चुकाने के लिए तीन ही किस्ते होगी। जो रकम हमे इस समय मिलेगी उसका दो-तिहाई तो नकद होगा और एक-तिहाई जवाहरात और माल-असबाब मे। खजाने की हालत देखते हुए और यह जानते हुए कि सैनिको का वेतन चुकाने के लिए नवाब के पास भी कुछ बचना आवश्यक ही है, मुझे तो लगता है कि जगत्सेठ ने जो फैसला किया वह मेरी अपनी आशा से भी परे था।

"पर दीवान दुर्लभराम को भी सन्तुष्ट करना था। आगे इससे बात बात मे काम पड़ने वाला है। मैंने उसे पांच फी सदी कमीशन* देना मजूर कर लिया और इसे गैर-मुनासिब न समझा। रह गई जगत्सेठ की अपनी बात। उन्होंने कहा कि फरासीसियों को हमारी कोठी ने जो कर्ज दिया था उसमे से हमारे सात लाख रुपये वसूल न हो सके ; अब हम उनके सर्वनाश मे सहयोग देने जा रहे हैं, इसलिए हमारी अपनी रकम डूब जाने का डर हैं। मैंने उनसे यह तै किया कि अगर कमिटी को कोई आपत्ति न हुई तो फरासीसियों का मुफस्सल मे जो कुछ माल-असबाब होगा आपको दे दिया जावेगा और अगर उससे भी कर्ज न पट सका और फरासीसियो से वसूल न हो सका तो बाकी रकम चुकाने की जिम्मेवारी कपनी पर रहेगी। इस पर उन्होंने अपनी ओर से यह आश्वासन दिया कि 'मुझसे जो मदद या सिफारिश हो सकेगी करने को बराबर तैयार रहूँगा। नवाब मीर जाफर के लिए दिल्ली से सनद मगवा दूगा; कपनी के पक्ष मे वहा जो कुछ भी कहना आवश्यक होगा कहला दूगा और अगर उसे कभी किसी फरमान की जरूरत पडी तो दिला दूगा। नवाब को जगत्सेठ ने यह सलाह दी कि अलीवर्दी खा के समय के अधिकारियों को आप फिर अपनी अपनी पुरानी जगह दे दे।"

जब जगत्सेठ अपना निर्णय सुना चुके और उसे सुन कर क्लाइव गद्गद् हो चुका—जब क्लाइव दुर्लभराम को कमीशन देने और जगत्सेठ का पावना चुकाने का वादा कर चुका—जब जगतसेठ

---

* जो रकम कपनी को और व्यापारियो को हर्जाने के रूप मे मिलने वाली थी उस पर।

क्लाइव को आश्वासन और मीर जाफर को सदुपदेश दे चुके तब क्लाइव का ध्यान अमीचन्द की ओर गया और उसने स्क्राफ्टन से यह कहला कर उनकी मोहनिद्रा दूर करा दी कि 'लाल सधि-पत्र नकली था और आपको एक भी पैसा मिलने वाला नही' । यह सुनते ही अमीचन्द बेहोश हो गये। अगर किसी नौकर ने उस समय उन्हे न सभाला होता तो जहा कलेजा दो टूक हो चुका था, वहां सिर भी फूटे बिना न रहता। पालकी पर वह अपने घर तो पहुंचा दिये गये, पर उस दिन के बाद जब तक जीवित रहे, विक्षिप्त-से बने रहे * । क्लाइव की प्रशसा के पुल बाधने वाले अगरेज इतिहास-कारो को भी स्वीकार करना पडा है कि उसने अमीचन्द के साथ जो कुछ किया उससे उसका नाम सदा के लिए कलकित हो गया।

२ जुलाई को क्लाइव ने मद्रास की सेलेक्ट कमिटी को एक पत्र लिखा जिसमे मीर जाफर से होने वाली सधि से ले कर सिरा-जुद्दौला के मारे जाने तक सारी घटनाओ का उल्लेख था और यह भी सूचना थी कि "अब तक नवाब के जासूस कटक होकर पत्र भेजने मे विघ्न-बाधा पहुचाते रहे है, पर अब यह कठिनाई हल हो जायगी। इस पत्र को आप तक पहुँचवाने का भार जगत्सेठ अपने ऊपर ले चुके है।"

---

* फिर भी ७ अगस्त १७५७ को क्लाइव मुर्शिदाबाद से लदन की सेलेक्ट कमिटी को लिखता है—"अमीचद ने वाट्स से हिलमिल कर अच्छा काम किया था, पर बाद मुझे इस बात का पता चला कि वह बडा ही स्वार्थी और कुचक्री था । इसलिए मैंने उसे तीर्थयात्रा कर आने की सलाह दी। अगर नियत्रण मे रखा जा सके तो वह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उसकी बिलकुल उपेक्षा करना ठीक नही" ।

१ जुलाई को ही नावो पर रुपयो का लदाव शुरू हो गया। २ जुलाई को क्लाइव ने फोर्ट विलियम की सेलेक्ट कमिटी को लिखा कि 'दो दिन मे यहा से ७५ नावे रवाना होने वाली है। प्रत्येक नाव पर एक लाख रुपये एक बडे सदूक मे होगे।' इस ७५ लाख* का ब्यौरा उसने यह भेजा था :—

कपनी को ३३⅓ लाख

फौजो को और कौसिल के सदस्यो को १६⅓ लाख

गोरे व्यापारियो को १६⅓ लाख

'काले' व्यापारियों को ९ लाख

जोड ७५ लाख

कलकत्ते जाने वाले रुपये ७५ सदूकों की जगह ७०० पेटियों मे भरे गये और इनके लिए ७५ की जगह १०० नावो का बेड़ा बनाया गया। ७ जुलाई तक ये रुपये कलकत्ते पहुच भी चुके थे। नदिया (नवद्वीप) तक पहुचाने के लिए इनके साथ मुर्शिदाबाद से सिपाही भेजे गये थे। आगे की मजिल कपनी की नौ-सेना की देख-रेख मे तै हुई। "नावो पर झडे फहरा रहे थे, विजय-दुदुभी

---

* मीर जाफर के साथ जो सधि और समझौता हुआ था उसके अनुसार अगरेजो को सब मिला कर २ करोड २९ लाख मिलने वाले थे। इसका आधा हुआ प्राय. १ करोड १४ लाख और जगत्सेठ के निर्णय के अनुसार इसका दो-तिहाई (नकद) हुआ प्राय ७५ लाख।

† पलासी के युद्ध में क्लाइव के साथ प्राय: १००० गोरे और २००० 'काले' सैनिक थे जिनमे प्राय २२ मारे गये थे और ५० घायल हुए थे। पर मीर जाफ़र से मिलने वाली रकम का एक हिस्सा उन सैनिको को भी मिला जो कलकत्ते में ही रह गये थे।

बज़ रही थी।" क्लाइव के मित्र और समसामयिक इतिहासकार ओर्मी ने लिखा है कि इससे पहले इतनी बडी रकम अगरेजो को कही हाथ न लगी थी।

समाचारपत्र न होते हुए भी, पलासी की लडाई का नतीजा २५ जून को ही कलकत्ते के अंगरेज नागरिको को मालूम हो चुका था, और यह भी मालूम हो चुका था कि सधिपत्र के अनुसार कपनी को, उसके अधिकारियो को, सैनिको को और व्यापारियों को नये नवाब से क्या मिलने वाला था। यह समाचार मिलते ही अंगरेज जाति का कलेजा बल्लियो उछलने लगा था, आनन्द के अतिरेक से लोग खुले आम नाचने-गाने लगे थे, बूढो मे भी बचपन-सा और परहेजगारो मे भी बदमस्ती-सी आ गई थी। जब लूट के धन के साथ नावे कलकत्ते पहुची और सुख-स्वप्न सत्य मे परिणत हो गया तब तो वहा लोगो के हर्ष का पारावार न रहा और वे आपे से और भी बाहर हो गये। जो रकम सोना-चादी और जवाहरात के रूप मे मिलने वाली थी, ३० अगस्त तक वह भी प्राय मिल गई और अगरेजो का हिसाब चुकता होने मे कुल ५८४,९०५ रुपये बाकी रह गये। ओर्मी लिखता है कि दुर्लभराम का कमीशन भी उसे मिल गया।

पर मीर जाफर सधिपत्र के अनुसार कपनी को जो कुछ देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध था, उसके अलावा भी उसे क्लाइव को और दूसरो को बहुत कुछ देना पडा। इस सम्बन्ध मे मतभेद है कि किसको कितना मिला। पर क्लाइव के अपने बयान के आधार पर ही हम यह कह सकते है कि पुरस्कार के रूप मे उसको १६ लाख, वाट्स को ८ लाख और मेजर किलपैट्रिक को ३ लाख

रुपये मिले। कौंसिल के सदस्य, सेनापति या सेना-नायक की हैसियत से उन्होंने जो जो कुछ पाया वह इसके अतिरिक्त था। कंपनी के प्रमुख अधिकारियों मे सब मिला कर किसको कितना मिला इसकी तफसील यह थी :—

नाम	रुपये
क्लाइव	२,०८०,०००
वाट्स	१,०४०,०००
किलपैट्रिक	५४०,०००
ड्रेक (क)	२८०,०००
मैनिंगहम (ख)	२४०,०००
बेचर	२४०,०००
वाल्श (ग)	५००,०००
स्क्राफ्टन	२००,०००
लुशिंग्टन (घ)	५०,०००
ग्रांट	१००,०००
रिचार्ड पर्क्स	१००,०००
विलियम फ्रैंकलैंड	१००,०००
विलियम मैकेट	१००,०००
पीटर ऐमियट	१००,०००
टाम्स बोडम	१००,०००
	५,७७०,०२० रुपये

(क) यह उस समय गवर्नर था।

(ख) अगरेजो के फोर्ट विलियम छोड कर भाग जाने पर, उनकी विपत्ति का समाचार इसी ने मद्रास पहुँचाया था। अब इसे ऊँचा पद भी मिला।

(ग) क्लाइव का सेक्रेटरी।

(घ) जाली सधिपत्र पर वाट्स के दस्तखत बनाने वाला।

वाट्सन नौ-सेनापति तो था ही, सेलेक्ट कमेटी के सदस्य की हैसियत से भी कुछ पाने का हकदार था, पर उसे अपने हिस्से के लिए और सदस्यों से लडना-झगडना पडा। मीर जाफर ने उसके लिए उपहार के रूप मे एक हाथी, दो घोडे, खिलअत और विविध रत्नों से जटित कलगी आदि भेज कर उसे विशेष रूप से सम्मानित किया, जिस पर वाट्सन* ने उसे धन्यवाद देते हुए लिखा कि आपने अपनी उदारता से मेरी जाति का जो उपकार किया है उसके लिए वह चिर-कृतज्ञ रहेगी। वाट्सन ने नकली सधिपत्र पर स्वय तो दस्तखत नही किये थे, पर सब कुछ जानते हुए भी उसने क्लाइब की जालसाजी पर कोई आपत्ति नही की थी।

कुछ समय बाद जब क्लाइव को मीर जाफर से पुरस्कार लेने के लिए पार्लमेन्ट की एक कमिटी के सामने कैफियत देनी पडी तब उसने अपनी सफाई मे यही कहा "कि उस समय मै चाहता तो नवाब से और दूसरों से कई लाख-करोड ले सकता था और कंपनी के संचालक मुझसे वह धन छीन भी न सकते थे। मै हैरान हूँ तो इस बात पर कि जहा मै इतना अधिक ले सकता था वहां मैने इतना कम क्यो लिया।"

दुर्लभराम ने जो धन बताया था उसके अलावा भी कुछ धन खजाने मे नही, तो और कही जरूर था। कुछ तो मीर जाफर और मीरन दबा कर बैठ गये थे, कुछ राजकोष विभाग के अधिकारी हडप चुके थे। इस सम्बन्ध मे "मुताखरीन" के अनुवादक ने जो बाते लिखी हैं वे बिलकुल निराधार नही जान पड़ती। यह फरासीसी होते हुए भी मुसलमान बन चुका था और फारसी-

* १६ अगस्त को वाट्सन की मृत्यु हो गई।

अंगरेजी का ज्ञाता होने के कारण एक ही साल बाद क्लाइव का दुभाषिया* हो गया था। सुनी सुनाई बातो के आधार पर वह लिखता है —

"जिस समय वाल्श खजाने में गया उस समय उसके साथ वाट्स, लुशिंगटन, दीवान रामचन्द और मुशी लवकिशन भी थे। खजाने मे १ करोड़ ७६ लाख रुपये चांदी के सिक्को में और ३२ लाख रुपये अशर्फियो मे थे। इनके अलावा दो पेटियो मे सोने की सिल्लिया थी, चार मे रत्नजटित आभूषण थे और दो में कुछ छुट्टे नगीने थे। पर यह खजाना बाहर वाला था। उसके अलावा एक खजाना अतपुर मे भी था, जिसमे कहा जाता था कि आठ करोड रुपये थे। यह रकम मीर जाफर, अमीर बेग खां, रामचन्द और लवकिशन (नवकृष्ण) ने आपस मे बाट ली थी। रामचन्द और लवकिशन को जो कुछ दिया गया वह उनका मुह सी देने के लिए। जनश्रुति यह थी कि क्लाइव को जो हिस्सा मिलता उस पर इन दोनो ने हाथ मार लिया। १७५८ मे रामचन्द को कुल साठ रुपये माहवार मिलते थे। पर दस बरस बाद वही नकद और हुण्डियो को मिला कर ७२ लाख रुपये छोड़ कर मरा। इसके अलावा कुछ सपत्ति भी थी। सोने के ८० और चादी के ३२० बड़े कलश थे। १८ लाख रुपये की जमीन थी और २० लाख रुपये के जवाहरात। सब मिला कर उसकी हैसियत सवा करोड रुपये की बताई गई थी। यह सच है कि रामचन्द बाद को वान्सीटार्ट का दीवान हुआ था, पर वान्सीटार्ट स्वय नौ-दस लाख रुपये से ज्यादा न कमा सका था। वारेन हेस्टिङ्गस वान्सीटार्ट का

* क्लाइव, हेस्टिग्स आदि का खुशामदी टट्टू भी।

सहकारी था, पर उसे भी इगलैण्ड मे गुजर-बसर करने के लिए दस हजार रुपये आगा वेद्रास (खोजा पिट्रूस) से उधार लेने पडे थे । यह कर्ज उसने पदोन्नति होने और मद्रास लौटने पर दस वरस वाद चुकाया। जहा वान्सीटार्ट और हेस्टिग्स सर्व-अधिकार-सपन्न होते हुए भी इतना कम कमा सके थे वहा रामचन्द के पास सवा करोड की धन-सपत्ति कहा से आ गई थी? वास्तव मे यह क्लाइव का हिस्सा था जिसे उसने अपनी जेव मे डाल लिया था। लवकिशन भी क्लाइव के समय मे रामचन्द की ही तरह साठ रुपये माहवार पर नौकरी करता था, पर अपनी माता के श्राद्ध पर उसने नौ लाख रुपये खर्च किये थे । मीर जाफर की वीवी मुन्नी वेगम के पास तो आज भी करोडो रुपये है। यह रकम भी उसे उसी अवसर पर मिली होगी।"

मुर्शिदावाद का खजाना खाली हो जाने के दो पहलू थे। जो धन मीर जाफर और मुन्नी वेगम या रामचन्द जैसे कारिन्दे दवा कर वैठ गये वह आखिर इसी देश मे रहने वाला था, पर जो धन क्लाइव, वाट्स या दूसरे अगरेज उठा कर कलकत्ते ले गये वह इस देश मे न रह कर सात समुद्र पार पहुचने वाला और वगाल को कगाल कर इगलैण्ड की सुख-समृद्धि वढाने वाला था। १७५७ से वह घटनाचक्र[६] चलने लगा जिसका नाम एक ओर तो "वगाल की लूट" है और दूसरी ओर इगलैण्ड की औद्योगिक क्राति को सहायता । पर वह औद्योगिक क्राति कुछ साल वाद होने वाली थी। वगाल मे जो क्राति अभी अभी हो चुकी थी उसका यह फल तो लोगो ने तत्काल ही देख लिया कि कम से कम डेढ करोड की धन-सपत्ति अगरेज मुर्शिदावाद से दिन दहाड़े

उठा कर ले गये और जो दरबार मे नाक रगड़ते रहते थे वे ही नवाव को नाच नचाने वाले बन गये।

कहने को क्लाइव ने दरबार मे कह दिया था कि अंगरेज तो व्यापारी है और व्यापार ही उनका एकमात्र उद्देश है, पर यथार्थ बात और ही थी।

मुगल राजसत्ता जरा-जीर्ण हो कर कब्र मे पांव लटकाये बैठी थी; प्रान्तीय शासक प्राय स्वतंत्र हो चुके थे। पर इस स्वतंत्रता के पीछे कोई ठोस एकता न थी। वैर-फूट बनी ही रहती—आपस में लड़ाई-झगड़े होते ही रहते । विदेशियो ने देखा कि अपना मतलव निकालने का यह अच्छा सयोग है और सहायक के रूप में किसी न किसी की ओर होकर स्थिति से पूरा लाभ उठाने लगे।

इस नये अध्याय का आरंभ दक्खिन मे हुआ जहा फरासीसी और अंगरेज प्रतिद्वद्वी थे । वहां डूप्ले के नेतृत्व मे विशेष सफलता फरासीसियों ने ही प्राप्त की, पर आड़कट मे और अन्यत्र अगरेजों ने दिखा दिया कि इस प्रतिद्वन्द्विता मे वे भी महत्वाकांक्षी थे और फरासीसियों के लिए मैदान साफ छोड देना उन्हे स्वीकार न हो सकता था।

बगाल जाने से पहले क्लाइव मद्रास प्रान्त के अखाड़े में लड़ाई के साथ कूटनीति के भी दाँव-पेच सीख चुका था। डूप्ले कितनी ही बातों का आविष्कारक कहा जा सकता था—जिनमें एक यह थी कि देशी सिपाहियों को विदेशी ढंग से शिक्षित और सुसज्जित कर उन्ही के उपयोग से इस देश को आसानी से गुलाम बनाया जा सकता था। उसकी नीति–रीति से चल कर उसके

देशवासियों ने दक्खिन मे कुछ समय के लिए अपना सिक्का जमा लिया। पर गुरु गुड़ और चेला चीनी—इस कहावत के अनुसार अंगरेज उनसे भी बाजी मार ले गये और एक दिन देशमात्र के भाग्य-विधाता बन बैठे। पलासी के युद्ध के बाद अगरेजो के लिये व्यापार से ही संतुष्ट रहना असभव था। क्लाइव ने जो कुछ कहा था वह उसके मन की बात से सर्वथा भिन्न था।

जब १७५० मे निजामुल्मुल्क का दूसरा बेटा नासिर जग मैदान मे मारा गया तब उसका माल-खजाना लूट कर फरासीसी पुद्दुचेरी ले गये। सोना-चादी और जवाहरात के अलावा उन्हें एक करोड नकद हाथ लगा। पुद्दुचेरी मे "रुपये उछलने लगे"। ड्यूप्ले को नासिर जग के भतीजे मुजफ्फर जंग ने कृष्णा नदी के दक्षिण के इलाके मे अपना नायब नियुक्त किया। फ्रेंच कपनी को उससे जो जागीर मिली उसकी आय प्राय. साढे तीन लाख रुपये थी। पर मुजफ्फर जग को इतना भी विश्वास न था कि वह सही सलामत हैदराबाद पहुच सकेगा। इसलिए उसने फ्रेंच सेनापति बुशी को साथ चलने को कहा और इसके लिए उसे चार लाख रुपये इनाम के तौर पर दिये, हालांकि वह रास्ते मे ही मार डाला गया। इसके बाद फरासीसियो ने नासिर जग के भाई सलाबत जग को गद्दी पर बिठाया और उससे प्राय:३१ लाख की आय के कई इलाके हासिल किये। सब मिला कर उनकी आय अब ४२ लाख के करीब हो चली। दक्षिण मे फरासीसी जो कुछ कर चुके थे वह पथ-प्रदर्शन-मात्र था। अगरेज उस पथ पर चलते हुए और भी दूर पहुचने वाले थे।

जैसे सलाबत जंग फरासीसियो के हाथ मे कठपुतली बन चुका

था, वैसे ही मीर जाफर को अंगरेजों के हाथ में बनना पडा। सलाबत जग ड्यूप्ले को "चचा गवर्नर बहादुर" कहा करता था। मीर जाफर क्लाइव को "नूरचश्म" और "बेटा" कहने लगा। पर आलोचक उसे "क्लाइव का गधा" कहा करते थे। उस पर यह व्यंग्यबाण पहले पहल उसी के मुंहफट मुसाहब मिर्जा शमशेरुद्दीन ने छोडा था। दौरे पर कही मीर जाफर और क्लाइव के पड़ाव आस ही पास थे। उस मुसाहब के नौकरो से क्लाइव के नौकरो की कहा सुनी हो गई, जिस पर क्लाइव ने मीर जाफर से उसकी शिकायत की। मीर जाफर ने उसे बुलवा कर कहा कि मिर्जा, तुम्हे मालूम भी है कि कर्नल क्लाइव कौन है और खुदा ने उन्हे कहा बैठा रखा है ? मिर्जा ने जवाब दिया कि "गरीब निवाज ! मै तो रोज सुबह उठ कर क्लाइव साहब के गधे को तीन बार सलाम करता हूँ, फिर मुझसे यह कब हो सकता है कि मै सवार की ही शान के खिलाफ कुछ कर बैठू ?"

गद्दी पा जाने पर भी मीर जाफर निश्चिन्त न हो सका। अगरेज उसे सुख-शान्तिपूर्वक राज्य करने देने वाले न थे। उनके लोभ और उनकी भेदनीति के कारण नित नयी समस्याए खड़ी होने लगी और मीर जाफर की अयोग्यता उसकी विवशता को अधिकाधिक बढाने लगी। जिन लोगो ने षड्यत्र मे एक होकर भाग लिया था उनकी एकता उसके सफल होते ही छू-मतर हो गई और किसी का किसी के प्रति सद्भाव न रहा।

मीर जाफर के अपने स्वभाव मे ही कुछ ऐसा परिवर्तन हुआ कि दरबार के दायरे के भीतर भी वह लोकप्रिय न रह सका। इसका विशेष कारण यह हुआ कि जो कभी उदार समझा जाता

था वह अब कृपण बन गया। जो सैनिक पुरस्कार पाने की आशा करते थे उन्हे वेतन मिलना भी कठिन हो गया। किसी मित्र के आक्षेप करने पर, मीर जाफर ने अपनी सफाई मे यही कहा "कि जो नदी किसी और की थी वह अब मेरी अपनी हो चली है। पहले जहा मैं खुले हाथो पानी उलीच दिया करता था वहां अब किसी दोस्त को भी कुछ देते मेरी छाती फटने लगती है।" पुराने अधिकारियो मे अब कोई भी मीर जाफर का विश्वासपात्र न रहा। पारस्परिक अविश्वास, आशका, सदेह—यही उत्तरोत्तर बढने लगे।

मीर जाफर को क्लाइव का हर बात मे हस्तक्षेप करना अखरता था, पर उसमे इतना बल नही था कि वह दबी जबान से भी इसका प्रतिवाद कर सकता। मीरन अपने पिता को निरन्तर कोसता और उभाड़ने की चेष्टा करता रहता, पर "क्लाइव के गधे" से कभी दुलत्ती तो क्या, रेकना भी न बन पडा।

जगत्सेठ का स्वार्थ कपनी के स्वार्थ से टकराये बिना कब रह सकता था? फिर महताबराय ने उसके बलविस्तार में सहयोग क्यो दिया? उत्तर मे दो बाते कही जा सकती है। मनुष्य जो कुछ करता है सदा स्वार्थरक्षा की ही दृष्टि से नही करता। जगत्सेठ के लिए आत्म-सम्मान भी कोई चीज थी और वह सिराजुद्दौला के रहते सुरक्षित नही रह सकता था। सिराजुद्दौला को हटाने के लिए कपनी से सहयोग लेना और उस सहायता का मूल्य चुकाना आवश्यक था। पर यह सब होते हुए भी जगत्सेठ के लिए भविष्य की बाते जान लेना असम्भव था। षड्यत्र मे भाग लेने वालो मे कौन जान सकता था कि पलासी के मैदान मे ब्रिटिश

राज्य की नीव पड़ने जा रही थी और इसके फलस्वरूप एक दिन जगत्सेठ का अपना भी सर्वग्रास होने जा रहा था।

कपनी ने पहले सिराजुद्दौला और फिर मीर जाफर पर दबाव डाल कर कलकत्ते मे अपनी टकसाल खोल ली । पर इससे महताबराय को अभी कुछ बरसों तक विशेष हानि होने वाली न थी, इसलिए यह उनके स्वार्थ पर कोई प्रबल आघात नही कहा जा सकता था। कंपनी को बंगाल–बिहार की दीवानी मिलने में भी देर थी । पर महताबराय का माथा ठनकाने वाली कार्रवाइयां कंपनी की ओर से १७५७ मे ही शुरू हो गईं । पहले जगत्सेठ सरकार को जो कुछ कर्ज देते उसे जमीदारो के नाम परवाने लिखा कर उनसे वसूल कर लेते। अब परवाने जारी होने लगे तो जगत्सेठ नही, ईस्ट इंडिया कंपनी के हक मे । क्लाइव ने इस बात पर जोर देना शुरू किया कि नवाब को जो कुछ देना है उसे कपनी को बर्दवान, नदिया और हुगली के जमीदारों से दिला दे । इसके लिए उसका प्रस्ताव था कि नवाब उनके नाम परवाने भेज दे और वे मुचलके लिख कर यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले। जगत्सेठ को इस पर आपत्ति हुई, विशेष कर इस कारण कि उन जमीदारो से उन्हे स्वयं बहुत कुछ पाना था। इस पर क्लाइव ने धमकी दी कि अगर आपको हमारा प्रस्ताव स्वीकार न हुआ तो अंगरेज आपके दोस्त न रह सकेगे । जगत्सेठ ने फिर चूं भी न की ।

राज्यक्रान्ति का एक फल यह भी हुआ कि अपने व्यापार के लिए कंपनी को पहले की तरह रुपया उधार लेने की कोई आवश्यकता न रही। फोर्ट विलियम की सेलेक्ट कमिटी ने अपने संचालकों को लिखा था.—

"कंपनी को यहा माल खरीदने मे जितना रुपया लगाना पडता है उससे जगत्सेठ के निर्णय के अनुसार ही रुपया मिले तो यह कही अधिक होगा। हम यह विज्ञप्ति निकालने जा रहे है कि कपनी के जिम्मे जिसका जो कुछ पावना हो वह १ अक्टूबर से पहले कागज लौटा कर ले ले ; अगर न लेगा तो हम उस तारीख के वाद सूद के देनदार न रहेगे । इससे यह लाभ होगा कि कपनी पर इस समय जो बहुत ही भारी बोझ है वह हट जायगा। हमे आशा है कि आपको इस समाचार से प्रसन्नता होगी। हम यह वता देना चाहते है कि जगत्सेठ के निर्णय के अनुसार कपनी को तीन साल तक हर साल १६३ लाख रुपये मिलते रहेगे। फिर जो माल आप वहा से भेजते जायगे उसकी बिक्री और हुडी-पुरजो से भी अतिरिक्त आय होती रहेगी । हमारा खयाल है कि तीन साल तक तो इस सूबे के माल का दाम चुकाने के लिए आपको चादी भेजने की जरूरत न पडेगी।"

जगत्सेठ ने अपने निर्णय-द्वारा कपनी को जो कुछ दिलाया वह प्रकारान्तर से स्वय उन्हे हानि पहुचाने वाला था।

गद्दी पर बैठने के प्राय पाच ही महीने वाद मीर जाफर ने पूर्निया मे विद्रोह का दमन करने के बहाने बिहार की यात्रा की; यह बहाना इसलिए था कि इस यात्रा का वास्तविक उद्देश पटने पहुच कर राजा रामनारायण को पदच्युत करना था।

पर दुर्लभराम की राजभक्ति के सबध मे भी उसे सदेह होने लगा था। उस पर एक अभियोग यह था कि वह सिराजुद्दौला के छोटे भाई मिर्जा मेहदी के पक्ष मे होकर उसे गद्दी दिलाने की फिक्र मे था । वास्तव मे यह नौजवान कैदखाने मे सिर से कफन

बाधे हुए सड रहा था। मीर जाफर के प्रस्थान करते ही मीरन ने, बाप के हुक्म से, दो तख्तों के बीच दबवा कर, इसे ससार से विदा करा दिया।

पूर्निया मे मोहनलाल को कैद कर हाजिर अली अपनी हुकूमत चलाने लगा था। इसका दीवान अचल या अच्छल सिह था। पर मीर जाफर ने अपनी ओर से पूर्निया का शासक खादिम हुसैन खां को नियुक्त किया और इसे हाजिर अली खा को भगाते देर न लगी। यह मीर जाफर को 'मामू' कहा करता था, यद्यपि यह उसकी बहन का सौतेला बेटा था और 'मामा-भांजा' के घनिष्ठ सम्बन्ध का आधार बहुत ही घृणित बताया जाता था। इससे मीरन की शत्रुता होने ही वाली थी।

पूर्निया से निश्चिन्त होकर मीर जाफर राजमहल से पटने की ओर बढा। क्लाइव भी उसके साथ था। राजा रामनारायण को बड़ी घबराहट हुई। उसकी ओर से जगत्सेठ का "दोस्त और गुमाश्ता" गोविन्दमल क्लाइव के पास जाने-आने लगा। उससे कहा कि जब तक आप अभय-वचन नही दे देते तब तक रामनारायण यहां आने का साहस नही कर सकते। क्लाइव से आश्वासन मिल जाने पर, गोविन्दमल मीर जाफर से मिला और उससे भी वह वचन ले लिया। फिर उसने मीर जाफर के मुशी से बातचीत की और उसे रामनारायण के अनुकूल कर लिया। मुशी ने मीर जाफर से रामनारायण को पत्र-द्वारा अभय-दान दे देने की स्वीकृति ले ली। वास्तव मे उस समय मीर जाफर अपनी दिनचर्य्या के अनुसार भग की तरग मे था और मुशी ने उसे पूरे खत का मजमून पढ कर सुनाया भी नही। गोविन्दमल खत लिखा कर क्लाइव के पास गया।

क्लाइव ने खत की नकल अपने पास रख ली और असल पर दस्तखत करके उसे मीर जाफर के पास भेज दिया। इसके द्वारा रामनारायण को यही वचन नही दिया गया था कि आप निश्चिन्त हो कर हम लोगो के पास आ सकते है, बल्कि यह भी कि "आप जिस पद पर है उस पर आजन्म बने रहेगे । आपकी न तो किसी प्रकार की अप्रतिष्ठा की जायगी, न आपसे राज-सम्बन्धी या और तरह की कोई कैफियत तलब की जायगी।" क्लाइव ने नवाब की ओर से भेजे हुए मसौदे पर दस्तखत करके यह सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली थी और रामनारायण को अगरेजी पडाव पर बुलाया था । गोविन्दमल मुशी से वह खत लेकर, बिना फिर नवाव से मुलाकात किये, सीधे रामनारायण के पास पहुचा और उसे खुशखबरी सुनाई। इसके बाद रामनारायण जाकर क्लाइव से मिला और गोविन्दमल के सलाह देने पर, उसके बाद मीर जाफर से। पर मीर जाफर के पास वह क्लाइव का एक अगरेज अफसर साथ लेकर ही गया। बात मीर जाफर को अच्छी नही लगी, पर वह रामनारायण का अब कर ही क्या सकता था ?

इधर मेदिनीपुर से राजाराम के विद्रोही हो जाने का समाचार मिला था, पर वहा भी शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो गई थी। दुर्लभराम की भी बाह क्लाइव ने गह ली थी । राजा रामनारायण से वह पहले ही पत्र-व्यवहार करने लगा था। जब मुर्शिदाबाद से उसके एजेन्ट स्क्राफ्टन ने नवम्बर मे मीर जाफर की बुराई करते हुए यह लिखा था कि हर ओर बगावत हो रही है, अफवाह है कि रामनारायण विद्रोही हो कर अवध के नवाब का पक्ष ग्रहण करने जा ही रहा है, तभी क्लाइव ने उसे जवाब दिया था कि "धीरज से काम लो,

घबराओ मत । मैं नवाब और रामनारायण दोनो को पत्र लिख चुका हूँ और मैं पूरी फौज ले कर रवाना होने ही वाला हूँ।" पटने पहुचने से पहले, क्लाइव मीर जाफर से पच्चीस लाख वसूल कर चुका था और उससे और दस लाख देने का वादा भी करा चुका था। १८ फरवरी १७५८ को क्लाइव ने लिखा कि "सारे उपद्रवों से नवाब को शान्ति मिल गई और वह सुरक्षित हो गया । हमारा यह बडा लाभ हुआ है कि राज्य मे जो सब से अधिक प्रभावशाली हैं वे हमारे मित्र और सहायक बन चुके है। राजाराम, दुर्लभराम और रामनारायण का हमने जिस तरह बारी बारी से साथ दिया है उससे लोगो का हम पर भरोसा हो चला है और सब हमारी मैत्री—हमारे सद्भाव के इच्छुक तथा प्रार्थी हो रहे है।"

इन बातो से एक नतीजा यह निकाला गया है कि जहां सिराजुद्दौला हिन्दुओ से द्वेष रखने वाला न था, वहा मीर जाफर का दृष्टिकोण साम्प्रदायिक था और वह हिन्दुओ पर विश्वास करने वाला न था। पर यहा यह ध्यान मे रखने की बात है कि हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच अगरेज आ गये थे और उनका हित इसी में था कि बगाल-बिहार मे साम्प्रदायिक एकता न रहने पावे। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि मीर जाफर के विरुद्ध लडने वाले कामगार खॉ, दिलेर खॉ, कादिर दाद खाँ, गुलाम हुसैन खाँ आदि मुसलमान थे और मीरन का अपना दीवान राजवल्लभ हिन्दू था।

जब मई सन् १७५८ मे क्लाइव मुर्शिदाबाद गया तब दुर्लभराम को भी अपने साथ लेता गया । इस पर मीरन को घोर आपत्ति हुई और उसने नगर का परित्याग कर विद्रोह भी कर दिया।

बाजार मे हडताल मनाई जाने लगी और सेठो ने भी काम-काज बन्द कर दिया। पर यह गडबडी दो ही एक दिन रही और अन्त मे मीरन को क्लाइव से माफी मागनी पडी। हां, यह तै हुआ कि दुर्लभराम को दीवान का पद फिर न दिया जाय।

महीनो (बरसों ?) से वेतन न चुकने के कारण सैनिक अधीर हो गये थे और अगर अगरेज न होते तो वे बगावत किये विना न रहते। इसके लिए दोषी दुर्लभराम ही बताया गया। इधर उसके और जगत्सेठ के भी बीच मनोमालिन्य हो चला। कारण यह कि नन्दकुमार अव हुगली से मुर्शिदाबाद पहुच गया था और स्वार्थपरता से दुर्लभराम के विरुद्ध प्रचार करने लगा था। नवाब से जाकर कहता कि अगर दुर्लभराम अपने कर्तव्य का पालन करता तो आपको अर्थाभाव के कारण सकटापन्न होना न पडता। जगत्सेठ से जा कर कहता कि दुर्लभराम अपनी जगह बना रहा तो यह विश्वास रखिए कि आप पर आच आये विना न रहेगी—नवाब चाहे जैसा होगा आपसे रुपया लेकर ही रहेगा। अगस्त मे एक ओर मीर जाफर जगत्सेठ को साथ लेकर कलकत्ते के लिए रवाना हुआ, दूसरी ओर सरकार के कहने या इशारे पर कुछ लोगो ने दुर्लभराम का घर घेर कर उस पर वार करना चाहा। अगर स्क्राफटन उसे कलकत्ते न भिजवा देता तो उसकी जान न बचती।

जगत्सेठ मीर जाफर के लिए दिल्ली से फरमान मगा देने का वादा कर चुके थे। पर कुछ महीनों तक वह फरमान न आ सका। दिल्ली मे मोलचाल होती रही। जनवरी १७५८ मे खबर मिली कि फ़रमान जारी हो चुका था और मीर जाफर, मीरन* आदि को

---

* मीरन का खिताब था नवाब नजीरुलमुल्क सदीक अली खा शहामत जग।

खिताब भी मिल चुके थे। जगत्सेठ ने क्लाइव को इसकी सूचना भेजते हुए लिखा कि आपको भी उमरा का दर्जा मिला है और उसके साथ बडा खिताब भी। पर क्लाइव को इतने से ही सतोष न हो सकता था। एक साल बाद उसने जगत्सेठ को लिखा —

"जब आपकी सिफारिश पर मुझे जब्दितुल मुल्क नजीरुद्दौला के खिताब के साथ ६,००० का मनसब मिला था तब मुझे आशा हुई थी कि नवाब से मुझे अपने दर्जे के लायक कोई जागीर भी मिलेगी। पर अबतक मुझे उनकी ओर से इस सम्बन्ध मे कोई सूचना नही मिली है। आप उनके घनिष्ठ मित्र है, इस लिए मै आपको कष्ट दे रहा हूँ कि आप उन्हे सनद की याद दिला कर मुझे कोई अच्छी जागीर दिला दे।"

इसका क्लाइव को सेठो से फरवरी १७५९ मे यह उत्तर मिला—

"आपके कृपापत्र मिले। हमे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपका स्वास्थ्य अच्छा है और हम इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देते है। आपके आज्ञानुसार हमने नवाब से जागीर का प्रस्ताव किया। उन्होने कहा कि बगाल मे तो जागीर देना सरकार ने बन्द कर दिया है, उड़ीसा मे इस लायक जमीन ही नही। पर आप चाहे तो आप को विहार मे जागीर मिल सकती है। आपका जैसा विचार हो सूचित करे।"

पर कुछ समय बाद जगत्सेठ की सिफारिश पर मीर जाफर ने बगाल मे ही जागीर देना मजूर कर लिया।

कंपनी को कलकत्ते के पास जिन गांवो की जमीदारी मिल चुकी थी उनका खिराज सरकार को देना पड़ता था। जगत्सेठ ने यह व्यवस्था कराई कि उस रकम का अधिकारी क्लाइव समझा जाय।

४ जून १७५९ को सेठों की ओर से क्लाइव को लिखा गया कि "हमारे कहने पर नवाव ने आपको इसी प्रान्त के भीतर जागीर देना स्वीकार कर लिया है। आप जव फिर यहा आयेगे तव आपको इसका पूरा व्योरा मिलेगा । आप अपने स्वास्थ्य का समाचार भेज कर हमे कृतार्थ करेगे।"

जब क्लाइव कुछ दिन वाद मुर्शिदावाद लौटा तब उसकी अगवानी के लिए मीर जाफर, जगत्सेठ और कुछ दरवारी शहर से दो मील आगे गये और जगत्सेठ ने क्लाइव को जागीर-सम्बन्धी खरीता समर्पित किया।

अपने जिस पत्रद्वारा जगत्सेठ ने क्लाइव को जागीर मिल जाने की सूचना दी थी उसी मे यह भी लिखा था कि हम सपरिवार तीर्थयात्रा करने वाहर जा रहे है और छ सप्ताह वाद मुर्शिदावाद लौटेगे। उनके प्रस्थान से पहले ही शाहजादा अली गौहर बिहार-बगाल पर आधिपत्य जमाने के उद्देश से कर्म्मनाशा नदी को पार कर चुका था। राजा रामनारायण पर यह आरोप पहले ही लग चुका था कि वह अवध के नवाव से मिल कर कोई षड्यन्त्र कर रहा था। अब यह कहा जाने लगा कि उस षड्यन्त्र मे जगत्सेठ भी शामिल थे और उन्होने शाहजादे की आर्थिक सहायता की थी। जब फरवरी १७५९ मे महतावराय और स्वरूपचन्द पारसनाथ तीर्थ[७] जाने लगे तब उन्हे छुट्टी के अलावा अपने साथ दो हजार सिपाही ले जाने की इजाजत मिल जाने पर भी, नवाव ने आज्ञा दी कि न तो वे खुद जायँ और न इन सिपाहियो को ही साथ ले जायँ। पर किसी ने इस आदेश पर ध्यान नही दिया। सिपाहियों को सेठो की ओर से यह आश्वासन मिल चुका था कि सरकार के

जिम्मे उनका जो कुछ वेतन बाकी था उसे वह दे देंगे और ऐसी हालत मे उन्होंने आदेश सुना भी तो उसे अनसुना कर दिया। तीर्थ-यात्रा कर जून तक जगत्सेठ मुर्शिदाबाद लौट आये और उनके लौटने पर ही नवाव से क्लाइव को वह जागीर मिली। इस बीच में शाहजादा विहार पर आक्रमण कर चुका था, जिसकी पृष्ठभूमि यह थी.—

१७४८ मे मुहम्मद शाह रंगीले के मरने पर उसका बेटा अहमद शाह दिल्ली के तख्त पर बैठा था। यह १७५५ मे तख्त से उतार दिया गया और अंधा कर दिया गया। उसके बाद जहांदार शाह का दूसरा बेटा अजीजुद्दीन, आलमगीर सानी के नाम से तख्त पर बैठा। इसकी १७५९ के अन्त मे हत्या हुई और कामबख्श का पोता शाहजहां तृतीय* सम्राट् घोषित किया गया। पर एक वर्ष के भीतर ही यह गद्दी से हटा दिया गया। १७६१ में पानीपत की तीसरी लड़ाई हुई और मराठो को परास्त कर काबुल लौटने से पहले अहमद शाह अबदाली, आलमगीर सानी के लडके अली गौहर को शाहआलम सानी† के नाम से सम्राट् मनोनीत कर गया।

प्रभुता के लिहाज से, दिल्ली अपने अतीत की छाया-मात्र रह गई थी। नर्मदा के दक्खिन मे ही नही, उत्तर मे भी प्रान्तीय शासक प्राय स्वतत्र हो चले थे। दिल्ली की जो कुछ चलती थी

* शाहजहां सानी (या द्वितीय) रफीउद्दौला की उपाधि थी।

† १७८८ मे एक अफगान ने इसे अंधा कर दिया। इसका बेटा अकबर सानी था जो १८०९ से १८३७ तक सम्राट् रहा, और पोता बहादुर शाह सानी जिसे सन् १८५७ के विद्रोह के बाद निर्वासित होना पडा।

वह उसी के इर्द-गिर्द के इलाके मे—जिसमे पूरा दोआवा भी शामिल नही था। राजपूत तो तटस्थ रहने लगे थे, पर पड़ोसी जाट दिल्ली की गलियो मे भी पहुच जाते और दरवार की दलबन्दी से जो लाभ उठा सकते उठा लेते। रुहेलखड मे रुहेले और दोआवा के दक्षिण भागमे वगश अफगान प्रभावशाली हो चले थे। रुहेलो की राजधानी मुरादावाद थी और वगश अफगानो की फर्रुखावाद। अवध का सूवेदार पहले सआदत खा था। १७३९ मे उसका भाजा और दामाद अवुल मसूर खा, सफदर जग के नाम से, उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह शीआ था, इसलिए भी इसकी सुन्नी अफगान पडोसियो से नही वनती थी। मराठो की सहायता से फर्रुखावाद को तहस-नहस कर सफदर जग ने वगश अफगानो का आधा राज्य उन्हे दे दिया। यमुना से उत्तर मराठो ने इससे पहले कोई इलाका हासिल नही किया था। सफदरजग ने इलाहावाद-प्रान्त को भी अवध मे मिला लिया। १७५४ मे उसकी मृत्यु होने पर उसका वेटा शुजाउद्दौला अवध का नवाव हुआ। शाहजादा अली गौहर (भावी शाहआलम सानी) और शुजाउद्दौला के नाम हमे आगे भी मिलने वाले है।

इस देश पर, पश्चिमोत्तर दिशा से कई आक्रमण इधर अहमद शाह अवदाली या दुर्रानी नामक अफगान-द्वारा हुए। पहला १७४८ मे, दूसरा १७४९ मे, तीसरा १७५१ के अन्त मे। तीसरे आक्रमण के फलस्वरूप दुर्रानी को पजाव और मुलतान मिल गये। चौथा आक्रमण १७५६ मे हुआ और १७५७ की जनवरी मे दुर्रानी ने दिल्ली पहुच कर शहर को लूटपाट से और भी खोखला कर दिया। इस यात्रा मे उसने मथुरा जाकर वहा वहुसख्यक "निरस्त्र हिन्दू

यात्रियों का कत्ल कराके इस्लाम के प्रति अपनी अनुरक्ति-भक्ति प्रदर्शित की *।" इसके बाद उसकी चढाई १७५९ में मराठों को दंड देने के उद्देश से हुई और उसी के अन्त में १४ जनवरी १७६१ को पानीपत के पास वह महासग्राम हुआ जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है ।

इन लडाइयो के अलावा दिल्ली-दरबार मे भी विभिन्न दलों के बीच दंगल होते ही रहते थे । बल्कि दलबन्दी पहले से भी जोरों पर थी । कभी ईरानी दल जीतता तो कभी तूरानी—पर जो जीतता वह सम्राट् की मुश्कें कुछ और कस देता । १७४८ मे निजामुल्मुल्क के चचेरे भाई कमरुद्दीन खा के मारे जाने पर, सफदर जंग वजीर हुआ। निजामुल्मुल्क का बडा बेटा गाजीउद्दीन खा (प्रथम) दिल्ली मे ही उच्च पद पर था। दूसरा बेटा नासिर जंग के नाम से हैदराबाद की गद्दी का मालिक बन गया । गाजी-उद्दीन १७५२ मे सलाबत जंग † से गद्दी छीन लेने के विचार से चला भी तो उसकी सौतेली मा ने उसे रास्ते मे ही जहर दे कर मार डाला । दिल्ली मे उसकी जगह उसके अठारह साल के बेटे को मिली। यह भी बाप की ही तरह गाजीउद्दीन कहाने लगा और सफदर जंग की सिफारिश पर इसे अमीरुल उमरा, इमादुल्मुल्क आदि खिताब भी मिले। पर यह आफत का परकाला निकला। पहले तो इसने बादशाह की ओर से सफदर जग की ही जड़ खोदना शुरू किया और बात यहा तक बढी कि सफदर जग ने १७५३ मे बगावत कर दी। छः महीने बाद शान्ति स्थापित हुई

* केम्ब्रिज हिस्टरी आव् इडिया। भाग ४, पृष्ठ ४३९।

† नासिर जग १७५० मे मारा जा चुका था।

भी तो वह दिल्ली मे न रह सका। अवध चला गया। अब कमरुद्दीन का बेटा अर्थात् गाजीउद्दीन का चचा इतिजामुद्दौला वजीर हुआ। इन दोनो की भी आपस मे न बन सकी। गाजीउद्दीन ने सफदर को भगा कर चचा को बरखास्त कराया और आप वजीर बन बैठा। फिर उसने अहमद शाह को तख्त से हटाया और उसकी ही नही, उसकी मा की भी आखे निकलवा ली। जब १७५७ मे अहमद शाह दुर्रानी दिल्ली आया तब नये सम्राट् आलमगीर सानी ने भी उससे रो रो कर कहा कि मेरी जान हर घडी खतरे मे है, लौटने से पहले मेरे बचाव का कोई इतजाम जरूर कर जाइए। मुहम्मद शाह की दो विधवा स्त्रियो ने भी गाजीउद्दीन के वर्ताव की शिकायत की और उनमे से एक ने तो यह प्रस्ताव भी किया कि मुझसे निकाह कर लीजिए और हम दोनो को साथ लेते चलिए। उसकी उम्र को देखते हुए दुर्रानी को यह प्रस्ताव आकर्षक न जचा, पर दयाद्रवित हो उसने उसे स्वीकार कर लिया। १७५९ मे दुर्रानी फिर आया। उससे पहले ही गाजीउद्दीन की आस्तीन पर अपने बादशाह और अपने चचा के खून के दाग पड चुके थे। नतीजा यह हुआ कि उसे दिल्ली से भाग कर सूरजमल जाट के किसी किले मे शरण लेनी पडी।

सफदर जग और गाजीउद्दीन के मन्त्रित्वकाल मे मराठों का दिल्ली मे भी दबदबा बढा और वे वहा की राजनीतिक स्थिति से लाभ उठा कर अपने साम्राज्य को विस्तृत करते ही गये। उनसे भूल हुई तो यह कि जहा विस्तार को बढाया वहा नीव की मजबूती की ओर ध्यान नही दिया। सफदर जग के सहायक हो कर मराठे १७५१ मे दोआबा पर ही नही, रुहेलखड पर भी

अधिकार कर चुके थे। गाजीउद्दीन सानी भी उनके दरबार में सहायतार्थी बना ही रहा। इन्दौर-राज्य के संस्थापक मल्हार राव होलकर की मदद से ही उसने अहमद शाह को तख्त से उतारा था। जब जरूरत पड़ती तब होलकर या शिंदे या दोनों से मदद ली जाती और उन्हे इस मदद की पूरी कीमत दी जाती। १७५१ मे प्राय सवा करोड रुपये लेकर काबुल लौटने से पहले, दुर्रानी लाहौर मे अपने बेटे तैमूर शाह को प्रतिनिधि-स्वरूप छोड़ गया। पर एक ओर वह पंजाब से हटा, दूसरी ओर गाजीउद्दीन ने मराठो को निमंत्रित कर उस प्रान्त को छीन लेने के लिए भेजा। मराठो का सेनापति था पेशवा बालाजी बाजीराव का भाई रघुनाथ राव (राघोबा)। इसने तैमूर शाह को मार भगाया और लाहौर पर अधिकार कर लिया। मराठो की शक्ति अपनी पराकाष्ठा को पहुच चुकी थी। यल्फिन्स्टन नामक इतिहासकार के शब्दों मे, उनके राज्य का विस्तार उत्तर मे तो सिंधु नदी और हिमालय तक और दक्षिण मे प्रायः कन्याकुमारी तक हो चुका था। जो प्रान्त या प्रदेश दूसरों के अधीन थे वे भी उन्हे कर देने लगे थे। और इस सारे साम्राज्य का शासन पूना से होता था, जहां सारी शक्ति एक व्यक्ति पेशवा के हाथ मे केन्द्रीभूत थी। पंजाब मे होने वाली सफलता पर पूना दरबार मे आनन्द का वारपार न रहा और लोगो ने यह मान लिया कि 'अटक की दीवारों पर भी भगवा झंडा फहराने लगा था'। वास्तव मे रघुनाथ राव ने जो कुछ किया वह शायद ही नीतिमान् का काम कहा जा सकता था। उससे पेशवा के कोष मे तो एक आना पैसा भी न आया। फिर जहां मराठों को न तो सिखों की सहानुभूति प्राप्त थी, न मुसल-

मानो की, उस प्रान्त को वे कितने दिन अपने अधिकार मे रख सकते थे ? उधर विना पूरे सगठन या आयोजन के ही अहमद शाह अबदाली को चुनौती दे कर उसने हिन्दुस्तान मे मराठा शक्ति के विनाश को अनिवार्य कर दिया*। पानीपत की इस तीसरी लडाई का नतीजा यह न होता और मराठो की सघशक्ति नष्ट न हो जाती तो अगरेजो को वगाल मे अपना राज्य स्थापित करने और उत्तरोत्तर उसकी सीमा वढाते जाने मे जो आश्चर्य-जनक सफलता हुई वह हर्गिज न हो पाती ।

गाजीउद्दीन ने १७५७ मे मराठो को आमत्रित कर और रघुनाथ राव तथा मल्हार राव होलकर को पृष्ठपोपक वना कर, आलमगीर सानी को किले मे नजरवन्द कर दिया । सम्राट् अपने पुत्र अली गौहर को दिल्ली से वाहर फौज ले आने के लिए भेज चुका था। पर अली गौहर से कुछ न वन पडा। रघुनाथ राव और मल्हार राव के पजाव चले जाने पर वह मराठा सरदार विट्ठल राव की सलाह से, दिल्ली लौटा भी तो उसे किले मे रहने का साहस न हो सका। पर जिस मकान मे डेरा डाला उसको भी गाजीउद्दीन ने एक दिन घेर लिया । विट्ठल राव की मदद से अली गौहर फर्रुखावाद भाग गया और वहा से सहारन-पुर पहुच कर नजीवुद्दौला† की शरण ली। उसने शरणार्थी को सलाह दी कि बगाल की हालत खराब है, अगरेज उसे निगल जाने की फिक्र मे है, बेहतर हो कि आप उधर जा कर एक पथ दो

---

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ४, पृष्ठ ४१६।

† इसका असली नाम नजीब खा था । यह अहमद शाह दुर्रानी का वडा खैरख्वाह और गाजीउद्दीन का दुश्मन था ।

काज कर ले। शाहजादा सहारनपुर से चल कर अवध पहुँचा तो शुजाउद्दौला ने भी यही सलाह दी। नजीबुद्दौला की तरह यह भी इसी नतीजे पर पहुच चुका था कि दिल्ली मे गाजीउद्दीन के रहते अली गौहर को पनाह देना अपने हक मे अच्छा नही हो सकता। फिर उसकी अपनी दृष्टि भी बिहार-बंगाल पर थी। उस समय इलाहाबाद मे मुहम्मद कुली खा उसका नायब था। यह भी अपने ही स्वार्थ की दृष्टि से इस विजय-यात्रा का समर्थन करने लगा। शुजाउद्दौला उसका असली अभिप्राय जानता था, पर उसे इस नायब को शाहजादे के साथ जाने देने मे कोई आपत्ति नही हुई। अली गौहर और मुहम्मद कुली १७५९ मे कर्म्मनाशा पार कर, पटने के पास पहुच गये।

बिहार और बंगाल के कुछ सरदार मुहम्मद कुली खां को सहायता का वचन दे चुके थे। रामनारायण ने अगरेजो की फैक्टरी के प्रधान मि० ऐमियट से सहायता मांगी तो कोई निश्चयात्मक उत्तर न मिला। असमंजस मे पड़ कर वह पहले तो दोनों आक्रमण-कारियों के पड़ाव पर गया और दरबारदारी की। फिर उसे ज्योंही मालूम हुआ कि क्लाइव और मीरन चले आ रहे थे, उसने रुख बदल दिया। इस पर लड़ाई शुरू हो गई और किले पर गोलाबारी होने लगी। इसी बीच मुहम्मद कुली खां को खबर मिली कि शुजाउद्दौला खां ने इलाहाबाद के किले पर अधिकार कर लिया था। वह अपनी निबेड़ने के लिए उस ओर चल पड़ा। फरासीसी सरदार मो० ला ने इस अवसर पर पहुंच कर शाहजादे से कहा कि पटने के किले पर फिर घेरा डाला जाय, पर अर्थाभाव के कारण यह करने का उसे साहस न हो सका। मुहम्मद कुली खां

बनारस पहुचा तो शुजाउद्दौला के हुक्म से गिरफ्तार कर लिया गया। शाहजादा अली गौहर मो० ला के साथ, मिर्जापुर होता हुआ रीवा चला गया। क्लाइव और मीरन पटने पहुचे तो उन्हे किसी का सामना न करना पडा, पर औरो को नही तो मीर जाफर को यही विश्वास हुआ कि क्लाइव ने ही आक्रमणकारियो को भगा दिया था। अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिए उसने उसे वह जागीर दे दी जिसका जगत्सेठ प्रस्ताव कर चुके थे। कहने की आवश्यकता नही कि इससे पहले ही जगत्सेठ-सम्बन्धी सदेह निराधार प्रमाणित हो चुका था।

क्लाइव के कलकत्ते लौट जाने पर, मीर जाफर सितम्बर १७५९ मे, दूसरी बार वहा गया। साथ जगत्सेठ भी थे। इन लोगो की वहा चार दिन मेहमानदारी हुई। सब मिला कर कपनी को ९६,९१६ रुपये खर्च पडे—७९,५४२ रुपये नवाब के लिए और १७,३७४ रुपये जगत्सेठ के लिए। दूसरी रकम की कुछ तफसील यह थी :—

				रु०	आ०	पा०
१—मकान की सजावट				५२८*	१२	६
(क) चार थान खासा	१५५	०	०			
(ख) ४५ थान कटनी †	१५७	०	०			
(ग) परदो के लिए रेशम, फीता, सूत	९६	१२	०			
(घ) गद्दो के लिए टाट	१६	१०	०			
(ड) ४० चटाइया	३७	०	०			

* मि० लिट्ल। आरकटी रुपये।

† कटनी एक प्रकार के सूती कपडे का नाम था।

				रु०	आ०	पा०
(च) दर्जियों की मजदूरी	६६	६	६			
२—भोजन चार दिन				१६००	०	०
३—उपहार				प्राय. ९५००	०	०
(क) ९ थान फूलदार मखमल	१५७०	८	०			
(ख) १ हीरा जड़ा हुआ अतर-दान	३२,२२	३	९			
(ग) ४ थान बनात	२८०	०	०			
४—नौकरों को बखशीश				५००	०	०
५—जगत्सेठ के साथ जाने वाले डालचन्द के लिए खर्च				९२२	३	०
(क) भोजन	१५०	०	०			
(ख) उपहार	७७२	३	०			
६—रतनचन्द के लिए खर्च				९३२	७	०
(क) भोजन	१५०	०	०			
(ख) उपहारादि	७८२	७	०			
७—ब्रजमोहन साह के लिए खर्च				३८४	१४	०
(क) भोजन	१००	०	०			
(ख) उपहार	२८४	१४	०			
८—हाथी के लिए बनात				३५	०	०
९—फल लाने वालों को बखशीश				२०	१०	०

अंगरेज-जाति के लिए कौड़ियों के मोल बंगाल-बिहार खरीद कर, उसके राज्यविस्तार का बीज बो और स्वय करोड़पति बन कर, २५ फरवरी १७६० को क्लाइव इंगलैण्ड के लिए रवाना हुआ। इससे पहले शाह आलम फिर पटने पर चढ़ाई कर चुका

था और अगरेजों की ओर से वहां मीरन के साथ कैलो सेनापति बना कर भेजा जा चुका था । क्लाइव की जगह वांसी-टार्ट गवर्नर नियुक्त हो चुका था, पर इसके आने मे कुछ महीनो की देर थी इसलिए हालवेल स्थानापन्न गवर्नर हुआ ।

इसी समय मराठो ने दक्षिण से हमला किया और कपनी को जमीदारो से रुपया वसूल करने मे कठिनाई होने लगी ।

उधर ढाके से कुछ रुपये की माग आई । इस पर हालवेल ने वहा वालो को लिखा कि मेरे पास रुपया नही, तुम जगत्‌सेठ से कर्ज लेकर काम चलाओ । मई मे उसने खुद जगत्‌सेठ से कर्ज मांगा, पर उसे जवाब मिला कि मीर जाफर को हमे इधर इतना उधार देना पडा है कि हम कपनी की माग पूरी नही कर सकते । बिगड कर हालवेल ने वारन हेस्टिंग्स को लिखा कि, "मैने जगत्‌सेठ से दस-पद्रह लाख रुपये मागे थे, पर उन्होने बहाना कर कुछ भी देने से इन्कार कर दिया है । मेरा खयाल था कि अपने आपको सुरक्षित रखने और कपनी से दोस्ती बनाये रखने के लिए वह खुशी खुशी यह कर्ज दे देगे । पर मेरा खयाल गलत निकला। मुझे इसमे सन्देह नही कि कंपनी को इसका बदला लेने का मौका शीघ्र ही मिलेगा।"

वारन हेस्टिंग्स ने जगत्‌सेठ की ओर से खेद प्रकट किया तो हालवेल ने उसे लिखा कि, "अगर जगत्‌सेठ कंपनी के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखना चाहते तो सब न सही, कुछ रुपये तो दे ही सकते थे । उनका कहना है कि नवाब की मांग पूरी करने के कारण वह कंपनी को कुछ उधार नही दे सकते । पर मुझे इसमें जरा भी सचाई नजर नही आती । अगर कपनी की मांग पूरी

कर देते तो नवाब को इसी आधार पर कुछ भी देने से इन्कार कर सकते थे । उस हालत मे अगर नवाब की ओर से उनके साथ दुर्व्यवहार भी होता तो हम उन्हे बचा लेते । खैर, वह समय आ सकता है जब उन्हे कंपनी से सहायता मांगनी पड़ेगी। उन्हे जान लेना चाहिए कि उस हालत मे हम उनकी रक्षा न कर, उन्हे शैतान के ही हाथ मे छोड़ देगे ।"

शाहजादे की दूसरी चढ़ाई पहली की अपेक्षा बड़े पैमाने पर थी और बिहार के कामगार खा, दिलेर खा आदि सरदार भी इस बार उसका पक्ष अपना चुके थे । इसी समय अली गौहर को अपने बाप आलमगीर सानी के मारे जाने की खबर मिली। उधर वजीर गाजीउद्दीन ने तो शाहजहां (तृतीय) को सम्राट् घोषित किया, इधर अली गौहर ने, "मुताखरीन" के लेखक के पिता हिदायत अली खा की सलाह से, अपने आपको*। अब यह शाह आलम सानी कहाने लगा । शुजाउद्दौला को इसने अपना वजीर और नजीबुद्दौला को अपना सेनापति नियुक्त किया । पर ये कोई काम न आ सके । फिर भी फतुए मे होने वाली लडाई मे शाह आलम की जीत हुई और रामनारायण घायल हुआ । अगरेजो की ओर से कप्तान काकरेन और बारवल लड़े भी तो उन्हे हार ही खानी पड़ी और पटने पर शाह आलम का कब्जा हो गया। कैलो और मीरन के पहुंच जाने पर लड़ाई और भी जोर शोर से होने लगी। शाह आलम की ओर से कादिर दाद खा ने मीरन के मामा मुहम्मद

*उसके नाम का खुतबा पढ़ा भी गया तो लोग उसे प्राय "शाहजादा" ही कहते रहे। "शाह आलम" वह १७६१ से कहाने लगा जब अहमद शाह अबदाली उसे सम्राट् घोषित कर गया ।

अमीन खा को मार डाला। खुद मीरन को घायल होकर मैदान से भाग जाना पडा। इसके बाद गोला लगने से कादिरदाद मारा गया और परिस्थिति शाह आलम के प्रतिकूल हो गई। कामगार खां उसे साथ लेकर बिहार शरीफ चला गया। वहा से धावा मार कर वह बर्दवान जा पहुंचा। मुर्शिदाबाद से मीर जाफर अगरेजो को साथ ले कर आगे बढा और बर्दवान के पास ही दोनों दलो का मुकाबला हुआ। इस मौके पर शाह आलम को दुर्लभराम से ही नही, पूर्निया वाले खादिम हुसैन खा से भी पैसे की मदद मिली। पर लडाई मे तोपो की बदौलत मीर जाफर की ही जीत हुई और कामगार खा को पटने की ओर लौट जाना पडा।

अलीवर्दी की बेगम, अपनी दोनो* बेटियो तथा अन्य स्त्रियों के साथ, मुर्शिदाबाद से ढाके भेज दी गई थी। अब मीर जाफर और मीरन ने उनका बचा-खुचा धन भी छीन लेने और उनमे से दो को मरवा डालने के उद्देश से, बाकिर खा को एक सौ सवारो के साथ ढाके भेजा। वहां के फौजदार जसारत खा को लिखा गया कि चाहे जैसे हो घसीटी बेगम और अमीना बेगम को गिरफ्तार कर फौरन बाकिर खा के साथ यहां भेज दो। जसारत को ऐसा कुकृत्य करने मे हिचकिचाहट हुई तो मीर जाफर ने कहलाया कि मीरन तो बिहार चला गया, अब उनके लिए मुर्शिदाबाद मे खतरा ही क्या रहा? छल से दोनो बहने नाव में बिठाई और पद्मा नदी के बीच मे लाकर डुबा दी गई। "रियाजुस्सलातीन" मे लिखा है कि, जब उन्हे मालूम हो गया कि उन्हे

---

*तीसरी बेटी शौकतजग की मा थी जो शायद पूनिया मे ही मर चुकी थी।

ढाके से ले आने का वास्तविक उद्देश क्या था, तब उन्होंने पहले तो नमाज पढ़ी, फिर बगल मे कुरान दबाकर पारस्परिक आलिंगन किया और पानी मे कूद पड़ी। "मुताखरीन" मे लिखा है कि अमीना बेगम ने कूदने से पहले ईश्वर से प्रार्थना की कि जिस मीरन के आदेश से हम दोनों बहनो की इस प्रकार हत्या की जा रही है उस पर गाज पड़े !

अलीवर्दी खा की बेगम कुछ समय बाद मुर्शिदाबाद पहुचाई गईं और मरने पर अपने पति के मकबरे मे ही दफनाई गईं। सिराजुद्दौला की बेगम लुत्फुन्निसा भी अपनी बेटी उम्मत जोहरा के साथ वही लाई गई और उसे अलीवर्दी खां और अपने पति के समाधिभवन की देख-रेख का काम सौपा गया, जिसके लिए उसे तीन-चार सौ रुपये की मासिक वृत्ति मिलने लगी।

शाह आलम के साथ पटने पहुच कर कामगार खां ने फिर किले पर घेरा डाला। मो० ला भी वहा पहुच चुका था। रामनारायण आत्म-समर्पण करने जा ही रहा था कि कप्तान नाक्स कुमक ले कर आ गया और कामगार खा की फौज के पैर उखाड़ दिये। शाह आलम मनेर की ओर चला गया।

मीरन को खादिम हुसैन खां फूटी आखो न भाता था और इधर उसने इसको पूर्निया से भगा देने का दृढ़ सकल्प कर लिया था। इसका जवाब देने के लिए खादिम हुसैन अपनी सेना के साथ गगा के दूसरी ओर हाजीपुर आ गया था। शाह आलम के पटने से हटते ही, मीरन ने कैलो की सेना के साथ नदी पार कर उसका पीछा किया। खादिम हुसैन बेतिया की ओर भाग चला। उसके सौभाग्य से रास्ते मे, रात को मीरन के खेमे पर बिजली

गिरी और वह मारा गया*। "मुताखरीन" का कहना है कि जिस दिन अमीना बेगम और घसीटी बेगम डुबाई गईं उसी रात को मीरन पर यह विद्युत्पात हुआ। खादिम हुसैन अवध की ओर भाग गया और मीरन के दल वाले पटने लौट गये। इनमे राजवल्लभ भी था जो पलासी के युद्ध के बाद मीरन का दीवान बन चुका था। इन लोगो ने शाह आलम को घेर लेना चाहा, पर कामगार खां के साथ वह गया-मानपुर की ओर भाग गया।

अपने ज्येष्ठ पुत्र मीरन के मरने का समाचार पाते ही मीर जाफर की कमर टूट गई। उधर सैनिको ने बाकी वेतन मांगना शुरू किया और न मिलने पर उन्होने बदअमली कर दी। कितने ही सरकारी अफसर पालकियो से उतार लिये गये और मारे-पीटे गये। १६ जुलाई को सैनिकों ने नवाब के महल को घेर लिया और दीवारो पर चढ़ कर नवाब को गालियां देने और धमकाने लगे। जो सामने आया उसी पर ईंट-पत्थर फेके गये। अगर

---

* पर बरसो बाद बर्क ने पार्लमेन्ट के सामने व्यग्यपूर्ण भाषा में कुछ और ही कहा था —

"वह कैसी विचित्र बिजली रही होगी कि ऊपर का खीमा ज्यो का त्यों खड़ा रहा, बिजली के गिरने की आवाज पास सोये हजारो सैनिको में से किसी को सुनाई न पडी और मीरन उसके प्रहार से मर गया।"

—श्री अक्षयकुमार मैत्रेय के बगला ग्रंथ "मीर कासिम" के हिन्दी अनुवाद "जब अगरेज आये" (अनु० श्री रामनाथ लाल सुमन) से।

आधुनिक इतिहासकार भी इस प्रसग में "सभवत." शब्द का व्यवहार करने लगे है। केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५, पृष्ठ १६६। मीरन जरूर मारा गया, चाहे जैसे मारा गया हो।

इम्तियाज खां 'खलीस' का बेटा* और मीर जाफर का दामाद मीर कासिम अली खां अपने पास से सैनिकों को ३ लाख रुपये न देता और बाकी वेतन चुका देने की जिम्मेदारी अपने ऊपर न ले लेता तो उनका विद्रोह और भी भयंकर रूप धारण कर लेता।

हालवेल मीरन के मरने के पहले से ही यह प्रस्ताव करने लगा था कि कंपनी मीर जाफर का मुख्तार न हो कर खुद मालिक बन जाय। उसका विश्वास था कि शाह आलम कंपनी को खुशी खुशी बंगाल-बिहार की सूबेदारी दे देगा। पर औरों को, विशेषतः सेनापति कैलो को यह प्रस्ताव युक्तिसंगत न जंचा। वारन हेस्टिंग्स ने भी इसका विरोध किया। वे मीर जाफर के पक्षपाती तो न थे, पर उनका दृष्टिकोण यह था कि अगर कंपनी बिना आड़ के ही सर्वेसर्वा बन बैठी तो सभव था कि इसका परिणाम बुरा हो। एक क्रान्ति को अभी तीन ही वरस हुए थे। इतने समय में ही दूसरी क्रान्ति का अर्थ होगा उस मीर जाफर के साथ भी विश्वासघात, जिसकी अंगरेज बांह पकड़ चुके थे और जिसे सुरक्षित रखने की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा कर चुके थे।

हालवेल ने देखा कि नकाब उलट देने की बात किसी के भी गले उतरने वाली नहीं, इसलिए अपने मूल प्रस्ताव में इतना संशोधन कर दिया कि मसनद पर किसी और को ही बिठाया और उसकी आड़ मे दूध बिलोया जाय। इससे पहले वह मीर कासिम अली खां का जी टटोल चुका था और उसमें महत्त्वाकांक्षा के साथ यथेष्ट अनुकूलता भी पा चुका था।

*-'मुताख्नरीन" के अनुसार, सैयद मुर्तजा का बेटा अर्थात् इम्तियाज खां का पोता।

सेनापति कैलो उस समय विहार मे था। हालवेल ने उसे कलकत्ते आ जाने को लिखा । कैलो को पूरी बातो की जानकारी न थी, इसलिए वह तर्क-वितर्क ही करता रहा। जब मीरन ससार मे न रहा और कैलो कलकत्ते पहुचा तब हालवेल ने उससे दिल खोल कर बाते की और उसे समझा दिया कि इस क्राति से क्या क्या लाभ होने वाला था ।

नया गवर्नर वासीटार्ट २७ जुलाई को कलकत्ते पहुंचा। यह मद्रास मे चौदह साल बिता चुका था और कूटनीति के साथ फारसी का भी अच्छा ज्ञाता समझा जाता था। इसमे कुछ भलमनसाहत भी थी । पर यह न तो दबंग था, न निर्लोभ, इसलिए न तो इसकी नीति स्वतत्र रह सकी न यह अपने वातावरण मे किसी प्रकार का सुधार कर सका और न बदनामी से बच सका।

कलकत्ते आने के कुछ समय के भीतर ही इसके और जगत्सेठ के बीच अच्छा सम्बन्ध हो गया । महताबराय इसे एक पत्र में लिखते है—

"२० मुहर्रम शनिवार को मैं ६ बजे शाम को भोजन कर पैदल लौट रहा था कि पैर फिसलने से गिर पिडा। कधे पर चोट आई और उसकी हड्डी छटक गई। दो घटे बाद मै बेहोश हो गया। एक चिकित्सक ने आकर दवा दी। ईश्वर की दया से २ सफर को हड्डी बैठ गई। मेरी हालत पहले से अच्छी है, लेकिन दाहिने हाथ से अभी काम नही हो सकता।

"आपका पत्र प्राप्त हुआ । आपने जो तेल, सीग का सत्त और दूसरी दवा भेजने की कृपा की वे भी प्राप्त हो गये । पर

आपने उनके व्यवहार की विधि नही बताई, इसलिए उनका प्रयोग नहीं कर सका हूँ। दवायें ज्यों की त्यों पड़ी हुई हैं। कृपया अपने कर्मचारियों के द्वारा यह सूचित करा दे कि इस औषधि का किस प्रकार सेवन करना चाहिए, और उसके साथ क्या पथ्य होना चाहिए। मेरा हाथ तो बेकाम हो गया था, आपके आशीर्वाद से वह ठीक हो चला है। दर्द की भी कोई दवा हो तो दर्याफ्त कर भिजवा देने की कृपा करें और यह भी लिखें कि उसका उपचार किस तरह किया जाय। अगर आप किसी सुयोग्य डाक्टर को भेज सके तो आपकी और भी मेहरबानी होगी। चंगा हो गया तो मैं आपका जन्म भर आभारी रहूँगा।

पुनश्च:—

"जान पड़ता है कि आपने इस सम्बन्ध मे डाक्टर हैनकाक को लिखा था। वह कल २ सफर को दवा दे गये है जिससे मुझे बड़ा फायदा पहुंचा है। ईश्वर आपको दीर्घायु और सम्पन्न करे*।"

मालूम नही, हालवेल ने जगत्सेठ के सम्बन्ध मे वासीटार्ट से क्या कहा, पर मीर जाफर की निन्दा करने मे उसने अपनी ओर से कोई कोताही नहीं होने दी।

दोषारोपण के रूप में उसके अत्याचारों का एक लम्बा चिट्ठा पेश किया। ढाके के हत्याकांड पर प्रकाश डालते हुए हालवेल ने अपनी कल्पनाशक्ति से तिल का ताड़ तो कर ही दिया था, कितने ही ऐसे अभियोग लगाये थे जिनमें तिल भर भी सचाई न थी। बंगाल में शासन-संबधी जितनी बुराइयां थी सब की जड़ में

* मि० लिट्ल द्वारा उद्धृत।

हालवेल ने मीर जाफर को ही बताया । इस पर एक अभियोग यह था कि यह पिछले साल डच लोगों की सहायता कर अगरेजों के साथ विश्वासघात कर चुका था—हालाकि कर्नल कैलो का कहना था कि बात कभी साबित न हो सकी थी और साबित हुई भी थी तो क्लाइव इसके लिए मीर जाफर को क्षमा-प्रदान कर चुका था । दूसरा अभियोग यह था कि मीर जाफर शाह आलम से पत्र-व्यवहार करने लगा था, यद्यपि वारन हेस्टिंग्स ने यह कह कर इसे झूठ साबित कर दिया कि जिस पत्र का हवाला दिया गया था वह जाली था । मीर जाफर पर ऐसे व्यक्तियो को मार डालने* का भी अभियोग था जो उसके अपने मरने के बाद भी जीवित थे ।

कौसिल के सब तो नही, पर थोडे से सदस्य उसकी बातों मे आकर, विशेषतः लोभ के वशीभूत हो कर, उसके प्रस्ताव का समर्थन करने को तैयार हो गये थे। ये थे कर्नल कैलो, विलियम समनर, विलियम मैक्ग्वार आदि । वासीटार्ट पर भी हालवेल का जादू चल गया और वह भी उसके प्रस्ताव से सहमत हो गया । उसके विरोधियो मे थे ऐमियट, एलिस, मेजर कारनक, वेरेल्स्ट आदि। पर गवर्नर और सेनापति के सहमत हो जाने के कारण उनके विरोध की उपेक्षा की गई और उनसे यह भी न बताया गया कि खिचड़ी कहां तक पक चुकी थी ।

२७ सितम्बर को कौसिल की एक मीटिग हुई जिसमे विरोधियों को उपस्थित होने का अवसर ही नही दिया गया।

---

* मि० लिट्ल।

मीर कासिम को कलकत्ते बुलाना आवश्यक था, पर मीर जाफर के लिए यह सदेहजनक न हो इसलिए उसे कहलाया गया कि सामरिक परिस्थिति* के सबध मे कुछ परामर्श करना है, अतएव आप उन्हे जाने की अनुमति प्रदान कर दे। उसने कोई आपत्ति नही की। खोजा पिट्रस (अरमनी) और दुर्लभराम के जरिये हालवेल ने मीर कासिम से लेनदेन की बात पक्की करा ली। फिर उसे गवर्नर से मिलाया। जब मीर कासिम को अंतिम निर्णय का निश्चय हो गया तब वह भी सब को यथायोग्य पुरस्कार देने को तैयार हो गया। "सदस्यो ने पहले तो पुरस्कार स्वीकार करने मे नाही-नूही की, किन्तु पीछे उत्तर के समय मीर कासिम की सम्मान-रक्षा के बहाने उसे ग्रहण करने को प्रस्तुत हो गये।"

इस पुरस्कार का ब्योरा यह था —

	रुपये
वांसीटार्ट	५१७,७०५
समनर्	२४८,५००
हालवेल	२७४,५६३
स्मिथ	१३६,२६६
मेजर यार्क	१३६,२६६

* "रियाजुस्सलातीन" में लिखा है कि मीर कासिम ने जगत्सेठ के सहयोग से अँगरेजो से मेल कर मीर जाफर को लिखवाया कि सैनिको का विद्रोह चिन्ताजनक हुआ है, आप सारा कार्य्यभार मीर कासिम अली खा को सौपकर कलकत्ते चले आवे। पर बात गलत है। मीर जाफर को और ही आशय का पत्र लिखा गया।

	रुपये
जनरल कैलो	२०३,३७९
मैक्ग्वार	१८३,०४७
मैक्ग्वार को ५००० मोहरे भी	७७,६५६
	१,७७७,३८२ रुपये

इसके अलवा कपनी को भी क्षतिपूर्ति-स्वरूप ६२,५०० पौड* अर्थात् ५३५,९७३ रुपये मिले।

२७ सितम्बर को सधिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये। इसके द्वारा अगरेजो ने मीर कासिम को नायब नाजिम और मीर जाफर के मरने पर नाजिम, बनाना स्वीकार किया। मीर कासिम ने उन्हे बर्दवान, मेदिनीपुर और चटगाव के जिले दे दिये। मीर जाफर ने अपने आपको अगरेजो से सैनिक सहायता लेने और उस सहायता का मूल्य चुकाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध कर लिया था। उसके लिए इस सहायता के बिना सुरक्षित रहना असभव हो गया था। इसका नतीजा यह हो रहा था कि अगरेजो की माग दिन दिन बढती ही जाती, मीर जाफर से वह माग पूरी न हो पाती और ऐसी परि-स्थिति मे अगरेज उसे हर तरह दबाते ही जाते। मीर कासिम ने यह सोच कर उन्हे ये तीन जिले दे दिये कि जो ऋण सरकार पर लद चुका था उसे अदा करने के लिए उसे सास लेने का अवसर चाहिए था और अगर वह इतना त्याग न करता तो उसे वह अवसर प्राप्त होना भी सभव न था।

इसके बाद वह मुर्शिदाबाद लौट गया। गवर्नर और सेनापति वहा १४ अक्टूबर को पहुचे। जब मीर जाफर को मालूम हुआ

* उस समय एक पौंड के प्राय ९ रुपये ("सिक्के नही") होते थे।

कि कलकत्ते में अंगरेजों ने मीर कासिम को और ही बहाने बुला कर, यह प्रपच रच डाला था तब "क्लाइव का गधा" भी इसका प्रतिवाद किये बिना न रह सका। जब उसे समझाते-बुझाते पांच दिन बीत गये और वह किसी प्रकार मीर कासिम को अधिकार सौंप देने की व्यवस्था से सम्मत न हो सका तब गवर्नर ने अपने सेनापति को मोतीझील पर अधिकार कर उसे गिरफ्तार कर लेने का हुक्म दिया।

"तीन वर्ष पूर्व पलासी समराभिनय के विचित्र रगमंच पर अपने जीवन के पहले अक में, बालक सिराजुद्दौला के सिंहासन की रक्षा के लिए, हम वृद्ध मीर जाफर को कुरान हाथ मे लिये तैयार देखते है, किन्तु पीछे दूसरे अंक मे वही मीर जाफर अगरेजों की सहायता से बालक सिराजुद्दौला का नाश करने को शत्रु सेना की कल्याण-कामना मे ध्यानमग्न दिखाई देता है। आज ठीक उसी प्रकार उसी मूल्य मे अपने को बिकते देख कर मीर जाफर की मानसिक अवस्था क्या हुई होगी, इसकी कल्पना अनेक इतिहासकारों ने की है, परन्तु उस समय भाग्य से इस आकस्मिक परिवर्तन को देख कर मीर जाफर के मुह से कोई बात न निकल सकी। वह मुकुट उतार कर धीरे धीरे सिंहद्वार पर विनीत भाव से आ खड़े हुए। इसी स्थान पर मीर जाफर के लिए कलकत्ता मे रह कर अगरेजों के आश्रय में जीवन बिताने की व्यवस्था भी स्थिर हुई*।"

वहां मीर जाफर को १५,००० रुपया मासिक वृत्ति मिलने लगी। उधर अंगरेजों के ही साये में मीर कासिम तख्तनशीन हुआ।

---

* "मीर कासिम" का हिन्दी अनुवाद।

(४)

मसनद पर बैठते ही मीर कासिम ने ऐसे गुणों का परिचय देना आरंभ किया जिनकी उससे किसी ने आशा नही की थी। थोड़े ही दिनों मे सब को अनुभव हो चला कि वह मीर जाफर की तरह तमोगुणी या भीरु नही था। उसकी अपनी ही नीति और कार्य-संपादन की अपनी ही रीति थी। अपने मार्ग पर चलते हुए वह विघ्न-बाधाओ से डरने वाला न था।

सैनिकों के बाकी वेतन से सम्बन्ध रखने वाली समस्या जटिल हो चली थी। उसने अली इब्राहीम खा से जाच कराई तो मालूम हुआ कि बख्शी का महकमा लाखों रुपये हड़प चुका था। उधर खजाना खाली था और सैनिको का कागारोल शान्त करने के लिए रुपया चाहिए था। अनिच्छुक* होते हुए भी मीर कासिम को इस अवसर पर महताबराय से कुछ कर्ज लेना पड़ा। उसने व्यवस्था यह की कि बकाये का एक तिहाई तो सैनिको को नकद दे दिया जाय, एक तिहाई उन्हे परवानों के जरिये मफस्सल से दिला दिया जाय और एक तिहाई आगे चुका देने का करार कर दिया जाय। इससे सैनिक सतुष्ट हो गये, विशेषकर इसलिए कि मीर कासिम की तत्परता से अब उन्हे अपना वेतन नियत समय पर ही मिलने लगा था।

खड्ग-हस्त होकर मीर कासिम अपव्यय के भी पीछे पडा और जो कटौती की जा सकती थी करने लगा। परपरागत कुरीतियो या कुसस्कारों के कारण होने वाला सारा फिजूलखर्च बंद कर दिया गया और ऐयाशी पर जो लाखो रुपये पानी की तरह बहाये जा रहे थे उनका और कामों मे उपयोग होने लगा।

* "मुताखरीन"।

गुलाम हुसैन का कहना है कि मीर कासिम ने पालतू जानवरों और चिड़ियों के लिए भी अपने यहां स्थान नही रहने दिया। अधिकाश को जमीदारो के हाथ बेच कर दाम खड़ा कर लिया। इससे एक लाभ यह हुआ कि बुलबुलो और बटेरो के साथ चिडियाखाने के रखवालों के भी पर कट गये और सब मिला कर एक खासी रकम की बचत होने लगी।

चुन्नीलाल और मुन्नीलाल उन अहलकारों मे थे जो न जाने कितना रुपया गबन कर चुके थे और जो मांगने पर डकार तक न लेते थे। ये सब के सब गिरफ्तार कर शिकजे मे कसे गये और सरकार ने उनकी सारी धन-सम्पत्ति खालसा करा ली।

शाह आलम अभी पटने के ही आस-पास मडरा रहा था। कामगार खां और मो० ला भी उसके साथ थे। इधर बगाल मे भी जहां-तहां विद्रोह होने लगा था। मेदिनीपुर मे तो अगरेजों ने आसानी से उसे दबा दिया पर वीरभूम मे असद्दुजमा खां की बगावत ने मीर कासिम और वांसीटार्ट दोनो के लिए सिरदर्द पैदा कर दिया। पर वहा भी अन्त मे मेजर यार्क के पराक्रम से विद्रोही पराजित हुए और मीर कासिम को शाह आलम के आक्रमण को रोकने का अवकाश मिल गया।

इससे पहले "मुताखरीन" का लेखक गुलाम हुसैन अगरेजो का संदेश लेकर पटने से बुधगाव (वीरभूम) पहुच चुका था और मीर कासिम को वहां की परिस्थिति बता चुका था।

वह परिस्थिति संक्षेप मे यह थी :—

राजा रामनारायण और गुलाम हुसैन की आपस मे नही बनती थी और गुलाम हुसैन अगरेजों से दोस्ती बना कर उसे गिराने के

लिए लगाने-बुझाने लगा था। जब कैलो के मद्रास चले जाने पर मेजर कारनक उसकी जगह आया तब उसके और दूसरे अंगरेजो को रामनारायण और राजवल्लभ की नीयत के बारे में शुबहा होने लगा। उन्होने गुलाम हुसैन से कहा कि मीर कासिम की ओर से कर्ताधर्ता "यही दोनों हिन्दू" बने रहे तो बेडा पार लगने न देगे। मीर कासिम को पटने बुला लाने के लिए गुलाम हुसैन मुर्शिदाबाद भेजा गया था, पर वहा नवाब से मुलाकात न होने पर उसे बुधगाव जाना पडा था।

जब रामनारायण को सारी बात मालूम हुई तब उसने जगत्सेठ की कोठी की मार्फत मीर कासिम के पास एक खत भेजा। इसमें लिखा था कि गुलाम हुसैन अगरेजो का और शाह आलम का भेदिया हो कर ही आपके पास जा रहा है, आप इससे सावधान रहगे। गुलाम हुसैन ने "मुताखरीन" मे लिखा है कि जगत्सेठ ने भी मीर कासिम को यही कहलाया, जिसका नतीजा यह हुआ कि वह नवाब से शाबाशी पाने के बजाय उसकी आंखो मे गिर गया और बडी कठिनता से ही पटने लौट सका। "रामनारायण मीर कासिम का भक्त न था और उसकी बुराई कर अगरेजो के कान भरता रहता था। दूसरी ओर वह अपने या जगत्सेठ के आदमियो के जरिये मीर कासिम को ऐसी बाते कहलाता रहता था जिनका परिणाम मेरे लिए भी बुरा ही हो।" स्वार्थों के घात-प्रतिघात से पैदा होने वाली पेचीदगियो पर उसने स्वय प्रकाश डाला है —"मेरा सगा भाई शाह आलम के दरबार में ऊचे पद पर था, मुरलीधर और रामनारायण कहने को तो मेरे मित्र बने हुए थे पर वास्तव मे मेरे शत्रु थे; मैं स्वय दोनों का

आभारी था और उनकी चालो का जवाब देने मे असमर्थ था; शाह आलम जहां था वहां सुख की नींद न सो सकता था; अगरेजों मे भी एकता नही थी; मैक्ग्वार, वांसीटार्ट और मीर कासिम का पक्षपाती था, मेजर कारनक और मि० हे वांसीटार्ट के विरोधी ऐमियट से मिले हुए थे और मीर कासिम के शत्रु राम-नारायण के पक्षपाती हो रहे थे; रामनारायण ऐसी दुरंगी चाल चलने को कोशिश करता था कि मेजर कारनक और मि० हे तो खुश बने रहे और मि० मैक्ग्वार भी नाराज न हों—ऐसी परिस्थिति किसे चक्कर मे डाले बिना रह सकती थी ? पर न तो मीर कासिम से ही उसका भाव छिपा रह सका, न मैक्ग्वार से ही । और इन दोनों की अवज्ञा करने के कारण ही उसे एक दिन अपने प्राण गंवाने पडे ।"

दक्षिण बिहार के प्रमुख जमीदार शाह आलम की विशेष रूप से आर्थिक तथा सैनिक सहायता कर चुके थे पर दरबार मे कामगार खां की प्रधानता के कारण कुछ समय से हिंदू उदासीन हो चले थे । टेकारी के सुन्दर सिह अपने ही एक मुसलमान सेवक के हाथो, कुछ समय पहले, धोखे से मारे जा चुके थे । और जमीदार प्रायः तटस्थ बने रहे । मीर कासिम के पटने पहुचने से पहले ही सोन नदी की एक शाखा के तट पर, १५ जनवरी १७६१ को शाह आलम की हार हुई और मेजर कारनक द्वारा मो० ला तथा अन्य फरासीसी गिरफ्तार कर लिये गये । ६ फरवरी को गया मे शाह आलम और अगरेज सेनापति का सम्मेलन हुआ । इससे पहले अगरेजों के दूत बन कर शिताब-राय शाह आलम से मिल आये थे । गया-सम्मेलन के बाद शाह

आलम अगरेजो के ही शिविर मे आ गया और अपनी अभ्यर्थना से इतना प्रसन्न हुआ कि पटने जाने का भी उनका निमत्रण स्वीकार कर लिया । २२ फरवरी को उसने पटना-नगर मे प्रवेश किया । वहा आतिथ्य-सत्कार तो नवाब की ओर से रामनारायण करने लगा और उसका सौहार्द अगरेजो के साथ वढने लगा।

शाह आलम साधन-हीन था, निर्बल था, धूल फांकता फिर रहा था, फिर भी उसे सम्राट् कहाने का गौरव प्राप्त था। और अंगरेज जानते थे कि ऐसे सम्राट् को भी मुट्ठी मे कर बडे बडे काम निकाले जा सकते थे । जब जनवरी मे पानीपत की लडाई हो चुकी और मराठो की पराजय से पहले ही गाजीउद्दीन कही भाग कर उसका मार्ग निष्कटक कर चुका, तब शाह आलम की मित्रता का मूल्य और भी वढ गया। सम्राट् की अपनी दृष्टि से अंगरेजो की मित्रता भी कम मूल्यवान् न थी। पारस्परिक संबध घनिष्ठ कर दोनो अपना अपना हित-साधन करने की फिक्र में ही थे कि अगरेजों के रग मे भग डालने के लिए मीर कासिम मार्च मे पटने जा पहुचा।

इधर गया-सम्मेलन के बाद अगरेज जो चाल चलते आ रहे थे उसका मीर कासिम की दृष्टि मे एक ही अर्थ हो सकता था—यह कि उनकी आन्तरिक इच्छा सम्राट् से बगाल-बिहार-उड़ीसा की सूबेदारी नही तो कम से कम दीवानी प्राप्त कर लेने की थी । मेजर कारनक के साथ उसका वाद-विवाद आरभ हुआ। राजनीतिक शतरज के खेल मे अगरेजों को मात करने के लिए मीर कासिम ने भी अपनी राजभक्ति प्रदर्शित की और शाह आलम से दरबार मे अपनी सूबेदारी को बरकरार करा लिया ।

अप्रेल मे कारनक की जगह कूट अंगरेज सेनापति हो कर आया तो मीर कासिम की उससे भी न बन सकी । जून मे जब शाह आलम दिल्ली के तख्त पर बैठने चला तब मीर कासिम को लगा कि वह खेल मे अगरेजों से हार खाने से, बाल बाल बच गया था ।

शाह आलम से पिंड छूटते ही, मीर कासिम ने शासन के क्षेत्र मे झाड़-बुहार शुरू कर दी । पहले तो उसने राजा रामनारायण से हिसाब तलब किया और उसके जिम्मे मोटी रकम निकलने पर उसे अपनी जगह से हटा दिया । रामनारायण की रक्षा का कूट को विशेष आदेश मिल चुका था, पर उससे वह रक्षा न हो सकी। १८ जून को कलकत्ते की कौसिल ने मीर कासिम को लिख दिया कि आप रामनारायण को मुअत्तल कर और जिसको चाहें अपना नायब नियुक्त कर सकते है । रामनारायण का सहायक शिताबराय भी पदच्युत किया गया और अगस्त मे राजवल्लभ नायब नियुक्त हुआ । सितम्बर मे वांसीटार्ट ने रामनारायण को मीर कासिम के हवाले भी करा दिया । नवाब के हुक्म से उसकी सारी संपत्ति जब्त कर ली गई और वह कैदखाने मे भेज दिया गया* । पर थोड़े ही दिन बाद राजवल्लभ को भी उस पद से हटना और कैद होना पड़ा । उसकी जगह राजा नौबतराय को मिली। मीर मेहदी खा तिरहुत का और मुहम्मद तकी खा वीरभूम का फौजदार नियुक्त हुआ। फिर नौबतराय की जगह मीर मेहदी खां को दे दी गई।

*"वासीटार्ट ने जो कुछ किया वह क्लाइव की नीति के विपरीत था। जहा क्लाइव का सिद्धात था कपनी को सशक्त करना वहा वासीटार्ट के कार्य-कलाप से नवाब सशक्त होता गया । क्लाइव का इस ओर विशेष ध्यान रहता था कि कपनी प्रमुख हिन्दू अधिकारियो की रक्षा करती रहे। पर वासीटार्ट ने जान-बूझ कर उस कर्त्तव्य की उपेक्षा की।" —केम्ब्रिज हिस्टरी।

इसके बाद ही मीर कासिम ने अगरेजो के देशान्तर्गत व्यापार का प्रश्न उठा कर उनसे झगडा मोल ले लिया। विदेशी कपनियो को आयात-निर्यात की ही वस्तुएँ खरीदने-बेचने का अधिकार प्राप्त था और उन्हे जो फरमान मिल चुके थे वे इसी आधार पर कि यह अधिकार उन सस्थाओ को प्राप्त था—उनके कर्मचारियों को नही। पर जैसा कि हम देख चुके है, अगरेज कर्मचारी कपनी के दस्तको की आड मे अपना अपना व्यापार भी किया करते थे और दस्तको के इस दुरुपयोग के कारण कपनी और सरकार के बीच कभी कभी झगडे भी हो जाते थे । पर कर्मचारियो का यह निजी व्यापार भी एक समय आयात-निर्यात की वस्तुओ तक ही सीमित था । जब कभी कोई कर्मचारी नमक जैसी चीज की खरीद-बिक्री कर बैठता तब सरकार इसको रोकने के लिए कार्रवाई किये बिना न रहती । पलासी के युद्ध के बाद परिस्थिति बदल गई। सरकार मे रोक-थाम करने की शक्ति ही नही रही और अगरेज मनमाने ढग से व्यापार करने लगे । क्लाइव के समय मे कुछ नियत्रण था भी तो उसके विदा होते ही वह भी जाता रहा और बगाल मे अगरेजो की धन-लोलुपता नग्न रूप से नाचने लगी।

नवाब की अपनी प्रजा को वैसा अधिकार न होने के कारण, हिन्दू या मुसलमान व्यापारी या तो किसी क्षेत्र मे प्रवेश ही नही कर सकते और जहा कर सकते वहां उन्हे पूरी चुङ्गी भरनी पडती। उधर नमक, सुपारी, तबाकू जैसी चीजो को भी अगरेजों ने हथिया लिया । ऐसे व्यापार से ही जिनकी जीविका चलती थी वे तो भूखो मरने लगे और सरकार की आय दिन दिन घटने लगी। मीर

जाफर से तो इसका प्रतिवाद असभव था, पर मीर कासिम चुपचाप न रह सका । १७६१ के अन्त मे ही कौसिल को खबर मिली कि नवाब की ओर से छेडछाड़ शुरू हो गई थी। इस छेड़छाड़ का कारण अगरेजो का अपना ही मदोन्माद था। इसकी शिकायत जगत्सेठ भी कर चुके थे। १० मार्च १७६२ को वांसीटार्ट ने उन्हे लिखा —

"आपका पत्र मिला। आपने लिखा है कि बाली गोकुलपुर गांव उस ताल्लुके मे है जिसे आपने हाल मे ही खरीदा है और उस गांव के लोग नाव-द्वारा पहुँचने वाले अगरेज व्यापारियों था उनके गुमाश्तो की जोर-जबरदस्ती से तग आकर बाहर भाग गये है। आपने इस ओर मेरा ध्यान आकर्षित कर अनुरोध किया है कि मै सख्त हिदायत कर दू कि अगरेजो का कोई गुमाश्ता किसी भी हालत मे रिआया को किसी तरह न सताये। मै अपने हित की तरह आपके भी हित की रक्षा करना चाहता हूँ। मै यह हर्गिज नही चाहता कि प्रजा के साथ ऐसा दुर्व्यवहार हो। मेरी इच्छा है कि अगर कोई दोषी हो तो आप उसका नाम-धाम मुझे लिख भेजे कि मै ऐसे अत्याचार को आगे न होने दू।"

मई १७६२ मे खुद नवाब ने कौसिल को लिखा कि अंगरेज व्यापारियो के गुमाश्तो की धाधली बरदाश्त करना सरकार के लिए असम्भव हो गया था।

अपनी नीति की सफलता की दृष्टि से मुर्शिदाबाद रहना अनुपयुक्त समझ कर मीर कासिम इधर राजधानी हटा कर मुगेर ले गया था। १७६२ के अन्त मे वांसीटार्ट उससे समझौता करने के लिए वहीं गया। मीर कासिम के साथ यह तै हुआ कि जहां पटने

तक जाने वाले नमक पर इस देश के व्यापारियों को ३० प्रतिशत कर या चुगी देनी पडती थी वहा अगरेजों को ९ प्रतिशत ही देनी पड़ेगी और अगर कोई झगडा खडा हुआ तो वारा-न्यारा करने का अधिकार नवाव के ही अफसरो को होगा। पर यह समझौता वासीटार्ट के देशवासियो को, विशेषकर उसके विरोधी दल को, स्वीकार न हुआ। उनकी ओर से उसकी नेकनीयती पर तरह तरह के हमले होने लगे। उस पर जो अभियोग लगाये गये उनमे एक यह भी था कि उसने अपने निजी व्यापार के लिए रिआयत ही नही करा ली थी वलिक मीर कासिम से सात लाख रुपये रिश्वत भी खा ली थी। इन वातो मे कुछ सचाई जरूर थी, पर विरोध का प्रधान कारण यह था कि अगरेज ९ प्रतिशत भी चुगी भरने को तैयार न थे। स्वार्थ साधने के साथ वासीटार्ट को वदनाम करने का उसके दुश्मनो को यह अच्छा मौका हाथ लगा। ऐसा आन्दोलन किया गया कि कौसिल ने उस समझौते को ठुकरा दिया। अव यह निश्चित हुआ कि अगरेज, सिर्फ नमक पर २॥ प्रतिशत देने के अलावा, और किसी प्रकार का कर या चुगी न देगे और अगर उनके किसी गुमाश्ते पर कोई अभियोग लगाया गया तो उसका विचार करने का अधिकार उन्ही को होगा, नवाव के अधिकारियो को नही। चोरी और सीनाजोरी इसको कहते है।

अगरेजों का यह रग-ढग देखकर मीर कासिम ने मार्च १७६३ मे दो साल के लिए व्यापारी-मात्र के हित मे चुगी ही उठा दी। इस पर एतराज करने की जरा भी गुजाइश न होते हुए भी कौसिल को यह मजूर न हुआ। अव उसकी ओर से कहा जाने लगा कि इस मामले मे भी अगरेज और हिन्दुस्तानी वरावर नही समझे जा

सकते अर्थात् नि:शुल्क व्यापार अगरेज ही कर सकते है, हिन्दुस्तानी नही। उसकी ओर से दो सदस्य, ऐमियट और हे—उसकी नयी मांग पेश करने के लिए नवाब के पास भेजे गये ।

"मुताखरीन" के अंगरेजी अनुवादक ने इस झगड़े के बारे में लिखा है :—

"मीर कासिम और कपनी के सम्बन्ध-विच्छेद के मूल कारण की ओर गुलाम हुसैन ने सकेतमात्र किया है। यह आश्चर्य की बात है । यथार्थ बात यह थी :—

"फरमान के द्वारा अगरेजो को जो अधिकार मिल चुके थे उनकी रक्षा करने के लिए मीर कासिम बराबर तैयार रहता आया था । पर जहा पलासी की लड़ाई से पहले अगरेज व्यापारियों की एक भी नाव नजर नही आती थी वहां अब बगाल की प्राय प्रत्येक नदी उनकी नावो से ढक-सी गई थी। अंगरेज अब तम्बाकू, नमक, सुपारी, अन्न आदि का भी व्यापार करने लगे थे । इससे हजारों हिन्दुस्तानियों की रोटी-दाल चलती थी । एक ओर उनकी जीविका जाती रही, दूसरी ओर सरकार की अपनी आय पर कुठाराघात हुआ। वांसीटार्ट, हेस्टिग्स जैसे जो अंगरेज नरम दल वाले कहे जा सकते थे वे भी इस बात को स्वीकार करते थे कि अंगरेजों के ऐसे व्यापार के नियत्रण का नवाब को पूरा अधिकार था। यह इन व्यापारियो का अपना काम था कि वे या तो सरकार से इसके लिए विशेष अधिकार प्राप्त कर लेते या चुगी देते जाते। कौसिल का यह काम हर्गिज न था कि वह नवाब से उनके अपने लाभ के लिए लडाई कर बैठती ।

"यह बात याद रखने की है कि जहा अगरेज एक बार १० प्रतिशत दे देने पर सारे झझटों से छुटकारा पा जाते थे वहा इस

देश के व्यापारियो को २५ प्रतिशत चुंगी दे देने पर भी कदम कदम पर रुकावट का सामना करना पडता था । उनकी नावे रोक ली जाती थी, फिर उन नावो की तलाशी होती थी, और उन्हे चुंगी के अलावा जगह जगह राहदारी भी देनी पडती थी। अगरेज व्यापारियों का माल एक ही जगह १० प्रतिशत दे देने पर इन सारी विघ्न-बाधाओ से मुक्त हो जाता था ।

"मीर कासिम की बुद्धि की प्रशसा करनी होगी कि उसने बगाल भर मे चुंगी, राहदारी आदि को बद कर सभी व्यापारियों के लिए एक-सी सुविधा कर दी । अगरेजो के लिए इससे अधिक न्यायपूर्ण बात और क्या हो सकती थी ? मीर कासिम ने कहा कि, "तुम लोग हुगली, ढाका, पटना ऐसी जगहो मे चुगी कम कराना चाहते हो । मै तुम्हारी बात मान लेता हूँ और तुम्हारी माग से भी अधिक रिआयत यह किये देता हूँ कि तुमसे कुछ भी न लूगा। बगालमात्र से मैंने चुगी उठा दी है, अब तुम्हारे और मेरे बीच लडाई-झगडे का कोई कारण ही नही रह गया।" नवाब के इस नये विधान का यही अर्थ था, पर उससे यह बात छिपी न थी कि चुगी-सम्बन्धी कोई भी भेद न रह जाने पर अगरेजो के लिए प्रतिद्वन्द्विता मे ठहरना कठिन हो जायगा। उनकी रहन-सहन का खर्च इतना ऊचा था कि बराबरी मे आ जाने पर वे कभी इस देश के व्यापारियो से सस्ता माल न बेच सकते थे । इसीलिए अगरेज अब यह कहने लगे कि नवाब को हमारा व्यापार तो नि शुल्क कर देना चाहिए और अपनी रिआया से बदस्तूर शुल्क या कर लेना ही चाहिए । अर्थात् किसी राजा को इतना भी अधिकार न रहे कि वह जो रिआयत विदेशियो के साथ कर दे वह अपनी

रिआया के साथ न कर सके । वांसीटार्ट और हेस्टिंग्स ने बार बार कहा कि अंगरेजों का यह प्रस्ताव करना अत्यन्त अनुचित था पर उनकी कलकत्ते मे कोई सुनने वाला न था। उन पर कटूक्तियों की बौछाड़ पड़ने लगी। विपक्षियों की ओर से कहा जाने लगा कि ऐसी बात नवाब के वकील के ही मुंह से निकलनी चाहिए थी, कौंसिल के किसी सदस्य के मुंह से नहीं। इससे उनका यह भाव सूचित होता था कि सत्य और न्याय को तिलांजलि दे कर मनमानी करने की उन्हें पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी थी ।

"लोभ से विवेक-रहित होकर ही उन्होंने वांसीटार्ट और हेस्टिंग्स पर गालियों की वैसी वर्षा की, उन्हें तरह तरह से बदनाम किया । यह प्रचार किया गया कि २२ लाख रुपये लेकर दोनों ने अपने आपको बेच दिया था। तब से आज तक न जाने कितने अंगरेज व्यापारी इससे चौगुना धन कमा चुके हैं। हेस्टिंग्स, वांसीटार्ट स्वयं भी बड़े व्यापारी थे, पर वे कभी करोड़पति न बन सके। हेस्टिंग्स गरीब ही रहा और वांसीटार्ट भी धनी न हो सका। वह एक लाख रुपये की पूंजी लेकर बंगाल में आया था और चार वर्ष मे उसे अढ़ाई लाख वेतन के ही रूप में मिले। फिर भी वह नौ या दस लाख से अधिक उपार्जन न कर सका।

"इन सब बातों का ज्ञान लोगों को तब हुआ जब वांसीटार्ट लौट कर इंगलैण्ड गया और वहां कंपनी के संचालकों को यह समझाया कि ऐमियट का दल जिसे अंगरेजों का व्यापार कहता आया था वह वास्तव में इन लोगों का अपना खास व्यापार था जिसका इतिहास चार या पांच साल से पुराना न था।

"अंगरेज व्यापारी या उनके गुमाश्ते उन दिनों यह करते कि

किसी शहर, गाव, या इलाके मे पहुच कर वहा निजी कारबार करने लगते और कोठी या दूकान पर अगरेजी झडा फहरा देते । फिर जो कुछ चाहते नवाब को देते, बाकी अपने पास रख लेते । उनके लिए न कोई सरकार थी न सरकार की हुकूमत। उच्छृङ्खल, निरकुश होकर वे प्रजा पर अत्याचार करते और उसका खून चूसते।

"ध्यान मे रखने की बात है कि जब अगरेज खुद इस देश के मालिक बन गये तब उन्होने अपने नौकरो के लिए वह स्वतत्रता न रहने दी जिसकी रक्षा के लिए वे मीर कासिम से लड चुके थे । पाप के पेड की जड पर उस समय कुठाराघात हुआ और सभी कर्मचारियो के लिए यह आदेश हो गया कि वे प्रत्यक्ष या परोक्ष तौर पर न तो कही अपना व्यापार कर सकेंगे न किसी गाव या इलाके का ठेका ही ले सकेंगे । यह तो नही कहा जा सकता कि बुराई बिलकुल मिट गई है पर इससे बहुत कुछ सुधार हुआ है, इसमे सदेह नही।"

कहने की आवश्यकता नही कि मीर कासिम आरभ से ही जानता था कि अगरेजो से उसकी लडाई अनिवार्य थी और उस लडाई के लिए वह जितनी तैयारी कर सकता था मुगेर जा कर करने लगा था। मुर्शिदाबाद मे कोई किला न था, पर मुगेर की बात और थी । गगा के दक्षिण तट पर स्थित इस प्राचीन नगर का दुर्ग मुसलमानो के आने से पहले भी मुद्गगिरि के नाम से प्रसिद्ध रह चुका था। समय समय पर उसकी मरम्मत होती रही। १५८० मे राजा टोडरमल का ध्यान भी उस ओर गया और सतरहवी सदी मे शाह शुजा का। मीर कासिम के लिए मुगेर में

नये किले की कोई आवश्यकता न थी। पुराना किला ही, मरम्मत हो जाने पर, उसकी इच्छा की पूर्ति करने लगा।

पर दुर्ग तो शरीरमात्र था; उसमे प्राण-प्रतिष्ठा के लिए ऐसी सेना चाहिए थी जो सु-संगठित हो, सु-सज्जित हो और अंगरेजों से लोहा बजने पर पीठ दिखाने वाली न हो। अपनी आर्थिक व्यवस्था से उसने इतना सुधार तो कर ही दिया था कि उपयुक्त समय पर वेतन मिलने से उसके सैनिक दिन रात खीजने-झीखने वाले न रह गये थे। पर उनका ऐसा संतोष ही काफी न था। और भी सुधार आवश्यक थे। 'लडते हो और हाथ मे हथियार भी नही' तो सैनिकों का संतोष ही क्या कर सके ? और हथियार होते हुए भी उन्हे चलाना और लड़ना न आवे तो वे किस काम के? मीर कासिम जानता था कि भेड़ियाधसान और भगदड़ से इस देश का सामरिक इतिहास कितना कलंकित हो चुका था और उनके परिणाम इसके लिए कैसे घातक सिद्ध हो चुके थे। इतिहास की वैसी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए, अनुशासन आवश्यक था और अनुशासन के लिए सैनिकों को लडाई के नये ही तौर-तरीके सिखाने की आवश्यकता थी। ऐसी शिक्षा देने वाले विदेशी ही हो सकते थे। मीर कासिम को मालूम था कि उस समय ऐसे शिक्षकों का नितान्त अभाव न था। पुर्तगीज, फरासीसी, अरमनी* इनमे सब साधारण व्यापारी ही नही थे। कुछ तो विदेशों से अस्त्र-शस्त्र लाकर अ-साधारण व्यापार करते, कुछ वैतनिक रूप से, पर छोटे पैमाने पर ही, जहा तहां सेनानायक भी बन जाते। मीर कासिम ने अरमनी सेनानायकों के तत्वावधान मे ही अपना उद्देश सिद्ध

* कलकत्ते की अरमनी या अरमीनियन स्ट्रीट इन्ही के नाम पर है।

करने का निश्चय कर, ग्रेगरी उपनाम गुरगिन खा को प्रधान बनाया और मार्कर को उसका सहायक । इनकी देख-रेख मे, प्रायः एक साल मे ही जो सगठन हो गया उसका कुछ परिचय इन अवतरणों से मिलता है —

"सकल्प-साधन मे मीर कासिम की एकाग्रता थी । वह अनन्यकर्मा हो कर सकल्प-साधन का आयोजन करने लगे । अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए कारखाना खुल गया । यूरोपीय शिक्षकों के निरीक्षण मे इस देश के लोगो ने शीघ्र ही तोप एव बन्दूक बनाने मे दक्षता प्राप्त की। उस समय तोपो मे पलीता लगाना पड़ता था, बदूको की नलियो को आग की गरमी सहने योग्य बनाने के लिए उत्कृष्ट लोहे की आवश्यकता हुआ करती थी। मीर कासिम के उत्साह ने ये सारी कठिनाइया दूर कर दी। राजमहल का चकमक और छोटा नागपुर का लोहा शीघ्र विख्यात हो उठा । बहुत दिनो बाद इन सब बन्दूकों की परीक्षा करके अगरेजो ने कहा था कि कम्पनी की बन्दूको की अपेक्षा ये बन्दूके सब तरह से अच्छी है*। उस समय तोपो का पीतल गला कर ढलाई करने की प्रथा चला कर मीर कासिम ने एक नई कीर्ति कमाई थी। अगरेजों को कितने ही स्वाधीन यूरोपियन व्यापारी उस समय बाहर से बन्दूके, तोप एवं गोले गोलिया मगा कर बेचा करते थे। मीर कासिम के अस्त्रागार मे खरीद खरीद कर ये सब चीजे भी भरी जाने लगी।"

"गुरगिन खा ने नवाब की सेना को तीन श्रेणियों मे विभक्त किया। एक मे अश्वारोही रक्खे गये, दूसरी मे गोलदाज एवं तीसरी में पैदल। फिर पैदल सेना के भी नजीब एव तिलगा नामक दो

---

* अगरेज लेखक ब्रूम द्वारा लिखित "बगाल आर्मी"।

भाग किये गये। तिलगी सेना ठीक कम्पनी की सेना की नाई सजाई गई। अश्वारोही सेना, मुगल सेनानायको के अधीन रक्खी गई, पैदल तथा गोलन्दाज श्रेणी का भार अर्मीनियन, जर्मन, पोर्च्युगीज एव फरासीसी अफसरों ने ग्रहण किया।

"गुरगिन खा के अधीन मार्कर नामक एक अर्मीनियन सेनानायक ने उस समय विशेष ख्याति पाई थी। मार्कर के अधीन तीनो श्रेणी की सेना थोडे ही समय मे सुशिक्षित हो गई। प्रत्येक श्रेणी की पल्टन से कुछ चुने हुए सैनिकों को एकत्र करके उन्होने एक विशेष दल संगठित किया। मार्कर ने यूरोप मे युद्ध विद्या की शिक्षा पाई थी एव हालैण्ड के युद्ध मे रह कर विशेष अभिज्ञता एवं अनुभव प्राप्त किया था।

"मीर कासिम के सेनानायको मे से सेनापति समरू का नाम इतिहास मे भली भाति विख्यात है। वह यूरोप मे कसाईखाने के एक कर्मचारी थे, वहा से स्विस सेनादल के साथ भारत मे प्रवेश करके फरासीसियो के अधीन, सेना का भार ग्रहण किया था। भारत के इतिहास मे वह अगरेजो के चिरशत्रु के रूप मे ही आते है। वह राक्षस के समान क्रूर थे। प्रभु की आज्ञा प्राप्त होने पर हित-अहित का विचार नही करते थे। उनका असल नाम था वाल्टर रेण्ड*।"

ऐसी तैयारी के अलावा, मीर कासिम ने एक काम यह किया था कि जिन लोगो के सम्बन्ध मे उसे सदेह या विश्वास था कि ऐसे अवसर पर वे दिल से उसका साथ न देंगे, उन्हे उसने गिरफ्तार करा लिया था। "रियाजुस्सलातीन" के अनुसार, ऐसे लोगो मे थे

* "मीर कासिम" का हिन्दी अनुवाद।

राय राया उम्मेद राय, उसका बेटा कालीप्रसाद, रामकिशोर, राजवल्लभ, जगत्सेठ महताबराय, महाराज स्वरूपचद, राजा रामनारायण, टेकारी के राजा सुन्दर सिह का बेटा फतह सिंह,* जगत्राय, भोजपुर का दीवान दुलाल राय, दिनाजपुर, नदिया, खडगपुर, वीरभूम और राजशाही के जमीदार इत्यादि।

जगत्सेठ की गिरफ्तारी के बारे मे "मुताखरीन" मे लिखा है कि

"मीर कासिम को मालूम हो चला था कि कलकत्ते मे हवा का रुख उसके खिलाफ था। उसे यह भी मालूम था कि जगत्सेठ महताबराय और महाराज स्वरूपचद का रुख किस ओर था। ऐसी हालत मे उसे यह निरापद न जचा कि ये दोनो भाई मुर्शिदाबाद मे ही बने रहे। उसे याद था कि सिराजुद्दौला की जगह मीर जाफर के और मीर जाफर की जगह खुद उसके नाजिम बनने मे इन्होने अपने धन और प्रभाव से कैसी सहायता पहुचाई थी। आदमियो की उसे अच्छी पहचान थी, इसलिए कलकत्ते के पास मुर्शिदाबाद मे इन दोनो व्यक्तियो का रहना उसे खतरनाक लगा। अगरेजो से उसका रगडा-झगडा दिन दिन बढता जा रहा था। सभव न था कि ऐसी स्थिति मे ये दोनो अगरेजो का पक्ष त्याग कर उसका पक्ष अपना ले।

---

* सभवत इसलिए कि दक्षिण बिहार के जमीदार शाह आलम के पक्षपाती समझे जाते थे।

राजा उदयनारायण का पतन होने पर, राजशाही की जमीदारी नाटौर के राजवश के हाथ मे आ गई थी। वही के रामकान्त की स्त्री इतिहास-प्रख्यात रानी भवानी थी। श्री पूर्णचद्र मजुमदार ने लिखा है कि मीर कासिम ने पहले तो रामकान्त की जमीदारी छीन ली, पर जगत्सेठ के सिफारिश करने पर लौटा दी। बगाल के राजा सीताराम को तो उसने फासी की सजा दे दी।

"उसने अपना कर्तव्य यही समझा कि उन्हें कम से कम नजरबन्द कर अपने ही पास रखा जाय। पर बुलाने पर वें मुगेर जाने के लिए कदम उठाने वाले न थे। मीर कासिम जानता था कि संदेश या आदेश मिलते ही वे कलकत्ते भाग जायगे। और वहां अंगरेजों को पैसें से, कूटनीति से और अपने प्रभाव से अमूल्य सहायता पहुचाने लगेंगे। इसलिए उसने वीरभूम के फौजदार मुहम्मद तकी खा को लिखा कि खत मिलते ही मुशिदाबाद जा-कर सेठो का घर घेर लेना और किसी को बाहर निकलने मत देना; उन्हे गिरफ्तार कर कही रखना और जब अरमनी सरदार मार्कर पहुंच जाय और तुम्हे एक खत दे दे तब उसे पढ़ कर और उसके बाद उससे रसीद लिखा कर सेठों को उसके हवाले कर देना। तकी खां नवाब का विश्वासी था और बड़ा साहसी था। मार्कर गुरगिन खा का चेला था। तिलगा पलटन इसके साथ कर दी गई और यह नाव से मुर्शिदाबाद भेजा गया। इसे आदेश मिला कि जब मुहम्मद तकी खां सेठों को तुम्हारे हवाले कर दे तब उन्हें यहां सही सलामत ले आना, पर इस बात का पूरा ध्यान रखना कि उनके साथ अनुचित या अपमानजनक व्यवहार न होने पावे।

"नवाब की आज्ञा मिलते ही तकी खां बगटुट मुर्शिदाबाद चल पडा और पहुंचते ही सेठों के घर को घिरवा लिया। पर उसने उन्हें कहला भेजा कि 'मै आपको शारीरिक, आर्थिक या और तरह की हानि पहुचाने नही आया हूँ। सम्मानपूर्वक आपको मुंगेर भेज देने की मुझे आज्ञा हुई है। वहां नवाब आप दोनों को अपने ही साथ रखना चाहते हैं। आप निश्चिन्त हो कर मेरे साथ हो

ले।' लाचार दोनो को घर से विदा होना पडा । तीन दिन वाद मार्कर भी अपने तिलगो के साथ पहुच गया । ये लोग दोनो भाइयो को मुगेर ले गये ।

"वहा नवाव ने पहले तो मिजाजपुरसी की, फिर उनके साथ हमदर्दी दिखा कर उन्हे तसल्ली दी और अपनी मजबूरी वता कर कहा कि आप लोग वेफिक्र हो कर यहा अपने लिए मकान वनवा ले, मुर्शिदाबाद की तरह अपनी कोठी खोल ले, दरवार मे आया-जाया करे और माली मामलो मे जैसे पहले सरकार को मदद पहुचाते थे वैसे ही आगे भी पहुचाते रहे । कहने के लिए उसने उनको आजाद कर दिया, पर वे वरावर नजरवन्द ही रहे। जव कही जाते तो जासूस यह देखते रहते कि कही दूर न निकल जायँ। उन्होने अपनी कोठी भी खोल ली और देशकाल को देखते हुए जिस प्रकार रह सकते थे रहने लगे"।

मुगेर जाते समय ऐमियट को कासिमवाजार मे ही समाचार मिला कि जगत्सेठ महतावराय और उनके भाई महाराज स्वरूपचंद गिरफ्तार कर लिये गये थे । समाचार मिलते ही उसने वासीटार्ट को इसकी सूचना भेज दी । २४ अप्रैल को वासीटार्ट ने मीर कासिम को लिखा —

"मुझे अभी मि० ऐमियट का एक खत मिला है जिसमे लिखा है कि २१ तारीख को मुहम्मद तकी खा अपने सैनिको के साथ वीरभूम से मुर्शिदाबाद जा धमका और उसी रात को जगत्सेठ के घर जा कर उनको और उनके भाई को गिरफ्तार कर लिया। फिर उन्हे हीरा-झील ले गया । इस समय दोनो वही हिरासत मे है।

"मुझे इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ है । आपके मसनद पर बैठने के बाद ही मैंने सेठो की उपस्थिति मे आपसे मिल कर कहा था कि आप उन दोनो प्रभावशाली व्यक्तियों से राज-काज मे सहायता लेते रहेंगे और उन्हे किसी प्रकार की हानि पहुचने न देगे । आपने भी यह स्वीकार कर लिया था । पिछली बार जब मुगेर मे आपसे मिला था तब मैंने फिर उनके सम्बन्ध मे आपसे बात की थी और आपने मुझे यह आश्वासन दिया था कि मै उन्हे किसी प्रकार की हानि न पहुंचाऊगा । ऐसे व्यक्तियों को घर से घसीट कर ले जाना अत्यन्त अनुचित काम था । उनके लिए तो यह अपमान-जनक था ही, आपकी अपनी प्रतिज्ञा के भी प्रतिकूल था। दूसरे किसी भी नाजिम के समय में उनकी ऐसी अप्रतिष्ठा नही हुई। जो कुछ हुआ है वह आपको ही नही, मुझको भी कलंकित करने वाला है ।"

वांसीटार्ट ने सेठो की रिहाई पर जोर दे कर लिखा था कि उनकी कारा-मुक्ति से ही हम दोनो अपयश से बच सकेंगे। मीर कासिम पर उसकी बातो का कोई असर न पड़ा। २ मई को उसने यह पत्रोत्तर दिया :—

"आज तक सेठों के सम्बन्ध मे न तो किसी ने मुझे कुछ लिखा था न कहा था।

"अब आपने उनके पक्ष मे ये बातें कही है तो मुझे अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनी पड़ती है ।

"यह बात जग-जाहिर है कि अभी हाल तक, प्रत्येक नाजिम के समय मे, ऐसे व्यापारी जहां अपना कारबार चलाते रहे है वहां सरकार का भी हाथ बंटाते रहे है । उदाहरण के लिए, मै अमीचंद

का नाम ले सकता हूँ। अगरेजो पर निर्भर करने वाले व्यापारियो का और इन सेठो का भी अपना हाल यह था कि वे नाजिम से मिलते-जुलते और सरकार को सहायता देते रहते थे।

"ईश्वर को धन्यवाद है कि आपको मेरे शब्द अभी तक याद है। यह ठीक है कि मैने स्वय कहा था कि 'ये दोनो भाई विशेष स्थान रखने वाले है। मेरे लिए इनके सहयोग से काम करना ही उचित होगा।' पर इन तीन बरसो मे वह सहयोग मुझे कभी प्राप्त न हो सका। मैने इन्हे बार बार लिखा कि अपना व्यवसाय चलाते रहो और निजामत को भी मदद पहुचाते रहो। पर इन्होने मेरी बातो पर कभी ध्यान नही दिया। अपना कारबार तो बन्द कर ही दिया, निजामत को भी जितनी उलझन मे डाल सकते थे डालते गये। मेरे साथ इनका ऐसा बर्ताव होने लगा मानो मै इनका दुश्मन था—इनके लिए अछूत के बराबर था। मदद देने की कौन कहे, इन्होने दरबार मे आना-जाना भी छोड दिया।

"मैने इन्हे यहा आने को मजबूर किया तो इसलिए नही कि ये अंगरेजो से मिल कर चाले चल रहे थे, बल्कि इसलिए कि मुझे इनसे कितनी ही बाते दर्याफ्त करने की जरूरत थी—कई सरकारी काम इनके बिना रुके पडे थे। यह तो शुरू से ही दोनो ओर मानी हुई बात थी कि अपना व्यवसाय चलाते हुए, इन्हे नाजिम और निजामत से भी सरोकार रखना पडेगा।

"आपने भौहे तान कर मुझे अपनी प्रतिज्ञाओ की याद दिलाई है। क्या प्रतिज्ञा या सधि-पत्र मेरे ही लिए है, आपके लिए नही? क्या आपकी दृष्टि मे वह बस बच्चो का खेल है जिसके घेरे से आप जब चाहे और जैसे चाहे बाहर निकल जा

सकते है? आपकी अपनी ओर से जो कुछ हो रहा है उसे मैं और क्या कह सकता हूँ? आपके कर्मचारी मेरे आमिलों को वलपूर्वक ले जाकर कैद कर दे तो मै तो यही कहूगा कि आपने सधि-पत्र को ठुकरा दिया। हां, आप सभवत यही कहेगे कि आपकी ओर से कुछ भी अनुचित नही हुआ। जब आपके कर्मचारी मदोन्मत्त हो कर अत्याचार करते फिरते है तब सधि-पत्र पर हरताल नही लगती, तब मुझे इसका प्रतिवाद करने का कोई अधिकार नही होता, तब किसी पर कलक नही लगता । पर जब मै अपनी ही प्रजा और अपने ही आश्रित व्यक्ति को अपने पास बुलवाता हूँ तब आपके कहने के अनुसार मै सधि-भग कर वैठता हूँ, मेरा शासन शासन कहाने योग्य नही रह जाता, मैं सव की, विशेषत. आपकी, दृष्टि मे बहुत ही नीचे गिर जाता हूँ। ईश्वर ही जानता है कि यह मेरे लिए कितनी अगम्य और आश्चर्यजनक बात है ।

"इन दोनो ने मेरे नाजिम होने के दिन शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की थी कि, 'आपकी जान के साथ हमारी जान रहेगी, आपकी भलाई मे ही हम अपनी भलाई समझेगे ।' यह बात सारी दुनिया जानती है। मैंने इन्हे यहां बुलवा लिया है तो इसीलिए कि ये बराबर मेरे साथ रहे और परपरा के अनुसार अपना ही नही, सरकार का भी काम-काज करे । आपने इनकी ओर से जो कुछ लिखा है वह सिफारिश है या और कुछ, मुझे मालूम नही । आपने मुझ पर सधि-भग का दोषारोपण किया है। यह तो आप ही जानते होगे कि जो सधि-पत्र आपके पास है, उसमे इनका उल्लेख है या नही। आपने लिखा है कि मै अपने आपको कमजोर साबित और वदनाम

कर दूगा । पर परमात्मा जानता है कि मैंने इन्हे किसी बुरे उद्देश से नही बुलवाया है । मैंने न्याय के विपरीत न तो कभी किसी को गिरफ्तार कराया, न किसी की जान ली। खोजा वजीद के साथ भी मैंने अन्याय नही किया । मै इतना ही चाहता हूँ कि सेठ-बन्धु यही रह कर काम-काज करे । अगर आप सच को झूठ या सफेद को स्याह बता कर, मेरा नाम उछालना चाहते है तो इसका मेरे पास कोई इलाज नही। हा, अगर इसाफ भी कोई चीज है तो मै कहूँगा कि इस विषय मे वाद-विवाद की गुजाइश ही नही।"

बकलम नवाब—

"हम दोनो के बीच जो सधि हुई थी उसका एक सिद्धात था कि न तो कपनी के कर्मचारियो की ओर से मै कोई सिफारिश करू न मेरे कर्मचारियो की ओर से आप । पर आप लोग उस बात को बिलकुल भूल गये है और शर्त के खिलाफ काम कर रहे है । अपना नाम जगाना और मनमानी करना, यही आपका उद्देश हो रहा है । मै लाचार हूँ।"

कलकत्ते मे ऐमियट गरम दल का नेता और मीर कासिम का परम द्रोही था । उसने जगत्सेठ की रिहाई की बात की तो नवाब पर इसका कोई अच्छा प्रभाव न पडा। दोनो के बीच और भी कोई समझौता न हो सका । इधर पटने के अगरेज प्रधान एलिस ने नवाव के कुछ आमिलो को गिरफ्तार कर कलकत्ते भिजवा दिया था तो इसके जवाब मे नवाब ने अगरेजो के कुछ गुमाश्तो को कैद करा लिया था । ऐमियट की मुगेर-यात्रा निष्फल रही और उसे अपने साथी हे को जामिन के तौर पर वही छोड कर लौटना पडा । लौटने से पहले वह एलिस को लिख गया कि लडाई के लिए

तैयार रहो और एलिस ने लड़ाई की घोषणा होने से पहले ही २४ जून को नवाब की सेना पर आक्रमण कर दिया ।

अगरेजों ने पहले से ही अपना कार्यक्रम निश्चित कर रखा था। विचार यह हुआ था कि २३ जून को ऐमियट के प्रस्थान करते ही, पटने पर अधिकार कर लिया जाय । सेनानायक किस स्थान पर एकत्र होगे और किस मार्ग से किसको कहां जाना होगा यह सब १८ जून तक निश्चित हो चुका था । कुछ सैनिक तो उससे भी पहले पटने भेजे जा चुके थे । पटने के किले मे अगरेजों की ओर से किसी को आक्रमण की आशका न थी। सामरिक दृष्टि से किला भी मजबूत नही कहा जा सकता था । एलिस ने २३ जून की रात को ही उस पर आक्रमण की तैयारी कर ली और २४ को अगरेज, तारो की छाह, फाटक तोड कर किले मे जा घुसे और वहां लूट-मार करने लगे । मीर मेहदी खा तो मुगेर भाग चला, पर लाल सिह और मुहम्मद अमीन के पराक्रम से किला फिर नवाब के अधिकार मे आ गया ।

इतने मे मुगेर से कुमक ले कर मार्कर पटने आ गया और उसने अंगरेजो की कोठी घेर ली। एलिस, फुलर्टन आदि अगरेज छपरे भाग गये । उनका विचार और भी दूर भाग जाने का था, पर वहीं वे रामनिधि नामक फौजदार और समरू द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये ।

७ वी जुलाई को गवर्नर को मीर कासिम का एक पत्र मिला जिसमे नवाब ने लिखा था—"मै एलिस साहब को हृदय से अपना परम शत्रु ही समझता आया हूँ। इस समय देखता हूँ कि वह बन्धु कह कर सम्बोधन किये जाने के सर्वथा योग्य है। यह बात उनके

विविध आचरणो से व्यक्त हो पडी है। उन्होने चोर की तरह रात के समय पटना के किले पर आक्रमण कर के बाजार को लूटा, प्रात काल से तीन पहर तक केवल लूट और नर-हत्या से प्रतिष्ठित महाजनो एव नागरिको को त्रस्त किया । मैने एक समय आपसे दो-तीन सौ बन्दूके मागी थी, किन्तु आप मेरे उस अनुरोध को पूरा नही कर सके थे, परन्तु हमारे साथ आन्तरिक मित्रता होने के कारण ही एलिस साहब ने इस हत्याकाड मे अपनी सेना की सारी तोप-बन्दूक एव युद्ध-सामग्री मुझे सौप दी और स्वय सेना के भार-वहन की उत्कट चिन्ता से छुट्टी ले ली। आपने अन्याय से निर्दयतापूर्वक निर्दोष नगरवासियो को नर-हत्या से त्रस्त करके कई लाख रुपयो की द्रव्य सामग्री लूट ली है। इस बात पर भली-भाति विचार करके दरिद्रो की क्षतिपूर्ति करना कम्पनी का कर्तव्य है । सिराजुद्दौला के समय कलकत्ता की लूट के बाद यही बात हुई थी। ईसा के नाम पर धर्म-शपथ कर के आप लोगो ने सामरिक व्यय का निर्वाह करने के लिए हमसे जमीदारी ली थी। आपकी सेना हमारे पास रह कर सदैव हमारी उन्नति की चेष्टा करेगी, इस बात की शर्त हुई थी । किन्तु, काम पडने पर, देखते है कि आप हमे नष्ट करने के लिए ही इतनी बडी सेना रक्खे हुए है। जब आपकी सेना हमारे साथ इस प्रकार का—सधि-विरुद्ध—व्यवहार कर रही है, तब मेरे लिखने का यही अभिप्राय है कि, आप मेरी जो जमीदारी भोग कर रहे है उसका तीन वर्ष का राज-कर आपको मेरे पास जमा करना चाहिए । गत कई वर्षो से कम्पनी के गुमाश्तो ने निजामत के अधिकार से जितने अत्याचार किये है, बलपूर्वक जितना धन लूटा है, देश के लोगो की जितनी क्षति की है, इस समय उसका प्रतीकार करना कम्पनी का कर्तव्य है । आप लोगो

को अब इतनी हानि उठानी पड़ेगी कि जैसे आप लोगो ने बर्दवान एवं अन्य स्थानो का अधिकार प्राप्त किया था, वैसे ही उन्हे लौटा देना पडेगा"*।

ऐमियट और उसके साथी मुर्शिदाबाद मे ही गिरफ्तार हो गये। इस पर उसने अपने सैनिको को गोली चलाने का हुक्म दे डाला। नवाब की ओर से खून का बदला खून से ही लिया गया और ऐमियट को प्राय सात अगरेजो के साथ मौत का शिकार होना पडा।

नवाब ने अपने सभी फौजदारो को लड़ाई शुरू हो जाने की सूचना दे दी।

ऐमियट और हे को मुगेर रवाना कर अगरेज तलवार खीचने के साथ, मीर कासिम के बजाय और किसी को मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बिठाने के लिए उधेड-बुन भी करने लगे थे। उनकी दृष्टि मे मीर जाफर से उपयुक्त व्यक्ति मिलना कठिन था—वही मीर जाफर जिसे तीन ही साल पहले नालायक बता कर वे उसी गद्दी से उतार चुके थे। १० जुलाई को उन्होंने उसके साथ दूसरी सधि कर नीबू को कुछ और निचोड लिया और बदले मे उसे निजामत दे दी। मीर जाफर ने स्वीकार कर लिया कि—

१—अंगरेजो को कही कोई शुल्क न देना पडेगा। सिर्फ नमक पर उन्हे ढाई प्रतिशत चुगी देनी पड़ेगी।

२—इस देश के व्यापारी यथारीति पूरा शुल्क दिया करेंगे।

३—इस सबध मे मीर कासिम के आदेश रद्द समझे जायगे।

---

* "मीर कासिम" का हिन्दी अनुवाद।

४—कपनी को इस लडाई से होने वाली हानि की पूर्ति के लिये तीस लाख रुपये दिये जायगे । दूसरे अगरेज व्यापारियो की भी क्षतिपूर्ति की जायगी । अगर इतना रुपया नकद न दिया जा सका तो उन्हे बदले मे जमीन दे दी जायगी।

५—नवाब को १२ हजार सवार और १२ हजार पैदल से अधिक सैनिक रखने का अधिकार न होगा । आवश्यकता पड़ने पर कपनी उन्हे सामरिक सहायता देगी और इसके लिए बर्दवान, मेदिनीपुर और चटगाव उसके अधीन बने रहेगे ।

६—सरकारी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आधा माल छोड कर, पूर्निया मे शोरा और सिलहट मे चूना खरीदने का एकाधिकार कपनी को होगा ।

७—कलकत्ते की टकसाल के रुपये मुर्शिदाबाद की टकसाल के रुपयो के बराबर ही माने जायगे और उन पर बट्टा काटना जुर्म समझा जायगा ।

इस सधि-पत्र पर कपनी की ओर से हस्ताक्षर करने वाले सात सदस्यो मे से तीन थे वासीटार्ट, कारनक और वारेन हेस्टिग्स ।

लडाई शुरू होते ही मीर कासिम ने मीर तकी खा को वीरभूम से मुर्शिदाबाद की ओर बढने के लिए लिखा । जाफर खा, आलम खा और हैबतुल्ला उसके सहायतार्थ भेजे गये । मुर्शिदाबाद के फौजदार सैयद मुहम्मद खा के सहयोग प्रदान न करने पर भी अतिम तीनो ने कासिमबाजार को घेर लिया और वहा के अगरेजो को कैद कर मुगेर भेज दिया । मुहम्मद तकी खा के बढ आने पर अगरेज सेनापति ऐडम्स से उसकी भागीरथी के तट पर कटवा के पास १९ जुलाई को भिडत हुई।

इस लड़ाई मे तकी खां ने बडी वीरता दिखाई, पर अपने सैनिको का पूरा सहयोग न प्राप्त होने के कारण उसे मैदान हारना और स्वय बुरी तरह से घायल होकर मरना पडा। मैलीसन ने "भारत के निर्णायक युद्ध" नामक (अंगरेजी) ग्रथ मे लिखा है—"उसके जो घुडसवार पिछले दिन लेफ्टिनन्ट लेन के विरुद्ध लड चुके थे आज तटस्थ-से बने रहे। अगर उन्होने फिर लडाई मे भाग लिया होता तो जीत मीर कासिम की होती, अगरेजों की नही। पर भारतवर्ष के इतिहास मे ऐसे देशद्रोह के उदाहरण भरे पड़े है। अंगरेजो को जो सफलता हुई है उसका प्रधान कारण यहां के राजाओं, नवाबो और सरदारो का पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष ही रहा है, यह निस्सकोच कहा जा सकता है।"

अब अंगरेज मुर्शिदाबाद की ओर बढे। मीर कासिम की सेना से नगर की रक्षा न हो सकी और शत्रुपक्ष ने फिर कासिमबाजार पर अधिकार कर लिया। दोनों ओर से मोरचाबदी उसी गिरिया के पास हुई जहा प्राय तेईस साल पहले अलीवर्दी खा सरफराज खां को पराजित कर चुका था। मीर जाफर की ओर से सेनानायक मीर नसीर, मीर बदरुद्दीन, शेरअली खा आदि थे। ऐडम्स के आक्रमण के समय मार्कर और समरू के पैर उखड गये या वे जानबूझ कर पीछे हट गये। अगर बदरुद्दीन, मीर नसीर आदि की तरह वे भी पराक्रम दिखाते तो मीर कासिम की जीत हुए बिना न रहती। मैलीसन ने लिखा है कि "नवाब के पक्ष को आवश्यकता थी तो मुहम्मद तकी खा जैसे रण-कला-कुशल सेनापति की। अगर वह कटवा मे न मारा जाता और गिरिया मे उपस्थित होता तो उस पक्ष का विजयी होना निश्चित था। पर वहां न तो वैसा सेनापति

था न स्वय मीर कासिम जो अपने लिए लडने वाली सेना का हौसला बढा कर, उससे अपनी विजय की आशा को फलीभूत कर सकता।" परिणाम यह हुआ कि विश्वासघात के कारण उसकी सेना को यहां भी १ अगस्त को पराजित होना पडा।

तीसरी लडाई इतिहास मे 'उधवानाला' के नाम से प्रसिद्ध है। यह राजमहल के पास ऐसे स्थान पर हुई जिसके एक ओर तो भागीरथी थी और दूसरी ओर उधवा या उदयनाला। नवाब ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर वहा मोरचाबदी कराई थी। उसके सैनिको की सख्या प्राय ४०,००० थी। मुर्शिदावाद से पटने जाने वाली सडक के किनारे एक पुराना किला था जिस पर उन्होने अधिकार भी कर लिया था। नयी चहारदीवारी वना कर, तोपें भी उपयुक्त स्थानो पर चढा दी गई थी।

पर प्रकृति ने भी उस दुर्ग को सुरक्षित वनाने मे वडी सहायता पहुचाई थी। एक ओर तो वहुत लम्वी चौडी झील थी और दूसरी ओर दुर्गम पर्वतमाला। अगरेजो की छावनी और किले के वीच वह झील या खाई वरसाती नदी की-सी रुकावट का काम कर रही थी।

यहा भी विश्वासघात ने मीर कासिम के कवच को अभेद्य नही रहने दिया। एक अगरेज सैनिक कपनी की नौकरी छोडकर, कुछ समय पहले मीर कासिम की सेना मे भरती हो चुका था। वह पथो और पगडडियो से पूरा अभिज्ञ भी था। जव उसे अपने देशद्रोह पर पश्चात्ताप होने लगा तब एक रात को चुपके चुपके अपनी छावनी से निकल कर सेनापति ऐडम्स के पास पहुचा और उसे वताया कि झील की गहराई सब जगह एक-सी न थी , कही कही उसे पार करना भी सभव था। मत्र मालूम होते ही ऐडम्स ने छापा मारा

और रात को ही दीवार लाघ कर किले के पास पहुच गया। सुबह होते ही ५ सितम्बर को उस पर कब्जा भी कर लिया । उस मौके पर भी अरमनी सेनानायको ने पीठ दिखा कर और अपने आदेशो से अपनी सेना को ही आपद्ग्रस्त कर, नमक का हक अदा किया !

इसके बाद हुई इन पराजयों की वह प्रतिक्रिया जिसमे मीर कासिम की क्रोधाग्नि से कितने ही अपराधी-निरपराधी भस्मीभूत हो गये ।

इस प्रकार नष्ट होने वालों मे अगरेज ही नही, भारतवासी भी थे।

युद्ध-सम्बन्धी समाचारों ने मीर कासिम को विक्षिप्त-सा कर दिया और उसे वातावरण विश्वासघात से भरा हुआ प्रतीत होने लगा । स्वय मरने से पहले उसने उन सभी कैदियो को मार डालने का निश्चय किया जिनके दोष प्रमाणित हो चुके थे या जिन्हे वह सन्देह की दृष्टि से देखता आ रहा था ।

मीर कासिम की विफलता के कारणों के विश्लेषण के लिए, इतिहासकार और मनोवैज्ञानिक का पूरा सहयोग चाहिए । उसने कभी मध्यममार्ग का अवलम्बन नही किया। किसी पर विश्वास किया तो यह भूल कर कि 'विश्वस्त नाति विश्वसेत्'। किसी पर अविश्वास किया तो इसे भी चरम सीमा को पहुचा दिया । बेतिया पर चढाई की तो गुरगिन खा की सलाह मान कर, नेपाल पर भी चढ़ाई किये बिना न रह सका । इस लड़ाई मे जीत होने पर भी वह हार के ही बराबर साबित हुई। एक जमीदार से शत्रुता हुई तो जमीदार-मात्र को शत्रु मान लिया और ऐसी तीक्ष्ण दडनीति से काम लिया कि उस समाज मे बगाल से बिहार तक कोई उसका

मित्र या शुभचिन्तक न रह गया। फिर जहां यथेष्ट विवेक न था और अपनी ही भुजाओं के भरोसे सब कुछ करना था, वहां साल दो साल के ही शस्त्र-संग्रह और नयी कवायद से पहाड़ कैसे टूट सकता था ? जो हो, जब आशा निराशा मे परिणत हुई तब मीर कासिम को अपने चारों ओर शत्रु ही शत्रु नजर आने लगे और वह सब के खून का प्यासा बन गया।

इन लोगों के रक्त से गंगा का जल ही नही, उसके पास की भूमि भी रंजित हो गई। इनमे मुख्य थे राजा रामनारायण, राजवल्लभ राय रायां उम्मेदराय, राजा फतह सिह, राजा बुनियाद सिह, शेख अब्दुल्ला, जगत्सेठ महतावराय, महाराज स्वरूपचंद और पटने के एलिस आदि अंगरेज कैदी।

इनमे कुछ की हत्या मुंगेर मे ही हुई और बाकी की पटने में या उसके आसपास।

रामनारायण को उसके गले से बालू भरा घड़ा बांध कर, गंगा मे डुबा दिया गया। कितने ही औरो की भी यही दशा हुई। जगत्सेठ की हत्या* के समय और स्थान के सम्बन्ध मे मतभेद है। "मुताखरीन" में लिखा है कि मीर कासिम के मुंगेर से प्रस्थान करने पर पटने के पास बाढ़ में उनकी हत्या हुई। पर उसके अनुवादक ने ही इसे स्वीकार नहीं किया था। वह लिख गया है :—

"जगत्सेठ महतावराय भी मुंगेर के किले के बुर्ज से गंगा मे ही डाल दिये गये थे। उस समय उनके नौकर चुन्नी ने बहुत अर्ज-मिन्नत की कि मुझे भी अपने मालिक के साथ बांध कर या कम

*पारिवारिक श्रुतिपरम्परा के अनुसार इसकी तिथि थी आसिन सुदी १०, संवत् १८२०।

से कम उनसे पहले नदी मे डाल दिया जाय। पर उसकी एक न सुनी गई और महताबराय के बहुत समझाने-बुझाने का भी कोई असर न हुआ। तब उसने खुद नदी मे कूद कर अपने प्राण त्याग दिये । यह बात मुझे उस समय की जनश्रुति से ही नही, चुन्नी के बाबूराम नामक एक सगे-संबधी से भी मालूम हुई थी । यह पहले जगत्सेठ के यहां काम करता था, अब दस साल से मेरा नौकर है ।

"हो सकता है कि गुलाम हुसैन ने दोनो भाइयों की हत्या के बारे मे जो कुछ लिखा है वह ठीक हो, पर इतना तो मैं अवश्य कहूँगा कि उस समय सर्वसाधारण मे जो बात प्रचलित थी उसके यह विपरीत है । मुगेर के किले मे एक बुर्ज कायम है जिसके पास से प्राय दस हजार नावे हर साल गुजरती है। उनके सवारों में एक भी शख्स ऐसा न होगा जो उस बुर्ज की ओर इशारा कर यह न कहे कि इसी के पास दोनों सेठ-बन्धु नदी मे डाल दिये गये थे। मुगेर मे एक भी ऐसी बूढ़ी औरत न होगी जो चुन्नी की स्वामि-भक्ति और त्याग की कथा न जानती हो और जो उन शब्दों को न दोहरा सके, जो उस ऐतिहासिक अवसर पर उसके मुख से अपने मालिकों के कातिलो के सामने निकले थे । यह भी याद रखना चाहिए कि जिस समय गुलाम हुसैन ने अपनी पुस्तक लिखी थी उस समय वह सेना के साथ था । वैसी परिस्थिति मे न तो वह इस घटना की बात चला सकता था और न इसके विषय में बहुत पूछताछ ही कर सकता था। और उसने जो कुछ लिखा उस पर फिर नजर नहीं डाली---उसमे कोई सशोधन नही किया।"

गुरिगन खा भी जिन्दा न बच सका। इसके अरमनी साथियो के

सम्बन्ध मे भी मीर कासिम के मन मे सदेह हो चला था। गुरगिन खा अगरेजो के शुभचिन्तक खोजा पिट्रस का भाई था और अगरेजो ने इससे भी मित्रता कर ली थी। इसका हत्यारा तो कोई मुसलमान सैनिक था, पर कहा गया है कि वह हत्या भी मीर कासिम के ही आदेश से हुई थी।

जो पटने का हत्याकाड कहा जाता है उसका सवध अगरेज कैदियो से था। मीर कासिम मुँगेर के किले की रक्षा का भार अरवअली खा नामक सरदार पर छोड आया था, पर जव अगरेज सेना वहा उधवानाला की विजय के वाद १ अक्टूवर को पहुँची तव अरवअली ने भी विरोध के वजाय विश्वासघात ही किया। यह सुनते ही मीर कासिम क्रोधान्ध हो गया और उन सभी कैदियो के कत्ल का हुक्म दे दिया।

इस हत्याकाड की जिम्मेदारी समरू को सौंपी गई और उसने ऐसी क्रूरता दिखाई कि लोगो को कहना पडा कि वह सेनानायक होकर भी कसाईखाने का काम न भूला था। ५ अक्टूवर को एक एक करके उसने एलिस, हे, लुशिगटन आदि का कत्ल करा डाला। जव नवाव की फौज के सिपाहियो ने 'हलालखोर' का काम वता कर इसे करने से इनकार कर दिया तव उसने उन्हे कठोर दड देकर वाकी काम पूरा करा लिया। एक डाक्टर फुलर्टन को छोड और कोई जीवित न रह सका। एलिस के नन्हे वच्चे को भी समरू ने दया का पात्र न समझा। २८ अक्टूवर को अगरेज मुगेर से पटने

* "रियाजुस्सलातीन" के लेखक ने, १७८६ में डाक मुशी का काम करते हुए भी लिखा था कि "गुरगिन खा उन सेनानायको तथा अन्य पदाधिकारियो मे था जो (अगरेजो के) षड्यत्र में सहयोगी थे।"

के पास पहुचे और आक्रमण की तैयारी करने लगे । ६ नवम्बर को किले पर उनका अधिकार हो गया, पर मीर कासिम इससे पहले ही अपने परिवार को रोहतासगढ भेज, पटने से प्रस्थान कर चुका था ।

वास्तव मे उसका उद्देश था अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला की शरण लेना । जब मेजर ऐडम्स ने उसका पीछा किया तब रोहतासगढ़ से भी धन-जन को अन्यत्र भेज कर मीर कासिम कर्म्मनाशा पार चला गया और ऐडम्स को ससराम लौट जाना पडा ।

मीर कासिम बनारस पहुचा तो राजा बलवन्त सिह ने उसकी आवभगत की । शुजाउद्दौला का आश्वासन उसे पहले ही मिल चुका था । यह कुरान पर अपने हाथ से लिखे हुए, सहायता के वचन के रूप मे था । मीर कासिम को कुछ लोगो ने कहा भी कि शुजाउद्दौला बात का धनी नही तो उसे विश्वास न हुआ और वह बनारस से इलाहाबाद चला गया । वहा शाहआलम और शुजाउद्दौला के लखनऊ से आने पर उसने दोनों से मुलाकात कर उनसे सहायता मागी । दरबार मे अब कूटनीतिक घात-प्रतिघात होने लगे । मीर कासिम विपन्न हो कर भी अभी धनवान् बना हुआ था । उसने दरबारियों को चटाना शुरू कर दिया । अगरेजों को और मीर जाफर को इसकी खबर मिली तो वे भी चुपचाप न बैठ सके । मुर्शिदाबाद से शाहआलम के पास दूत जाने-आने लगे । शाह आलम और शुजाउद्दौला एक पैर इस नाव पर तो एक पैर उस नाव पर रखना ही कुछ समय के लिए सबसे

अच्छी नीति समझते थे । शुजाउद्दौला का प्रधान मंत्री बेनी बहादुर मीरजाफर के पक्ष में था। मीर कासिम को आश्वासन मिल जाने पर भी वह अगर-मगर करने लगा। उसने ऐसा उपाय किया कि मीर कासिम को शाह आलम की ओर से कुछ समय के लिए और ही लडाई पर बुदेलखड की ओर जाना पडा। वहा से जीत कर लौटने पर ही शुजाउद्दौला के साथ उसकी सधि हुई जिसके द्वारा उसने सहायता के मूल्य के रूप मे, उसे ग्यारह लाख रुपये प्रतिमास देना स्वीकार कर लिया ।

उधर पटने मे मीर मेहदी खा मीर जाफर का पल्ला पकड चुका था और उसे घुडसवारो के सेनानायक का पद भी मिल चुका था। मेजर ऐडम्स के मर जाने पर कारनक फिर अगरेज सेनापति बन चुका था । जब अगरेजो ने देखा कि शुजाउद्दौला बिहार पर चढाई किये बिना न रहेगा, तब वे भी बक्सर के पास मोरचा-बदी कर रसद इकट्ठी करने लगे । पर इसमे सफलता न होने के कारण उन्हे अप्रैल १७६४ मे पटने की ओर हटना पड़ा।

अन्त मे शुजाउद्दौला की सेना ने बिहार पर चढाई कर पश्चिम के प्रदेश पर अधिकार कर लिया और कुछ समय के लिए अगरेजों की छावनी को भी घेर लिया। पर बरसात आ जाने पर उसे अपना मुकाम बक्सर मे ही करना पडा। अगरेज भी फिर वही जा पहुँचे । मेजर कारनक कमजोर समझा जाता था और उसकी ईमानदारी पर भी शुबहा होने लगा था । इसलिए उसकी जगह मेजर मुनरो सेनापति बना कर वहा भेजा गया । अगरेजो की सेना मे इधर असतोष बढ चला था और वह विद्रोह का रूप भी धारण कर चुका था । बरसात का समय मुनरो ने इस विद्रोह

का दमन करने में और सैनिकों के अभाव-अभियोग दूर करने में ही बिताया। पर जहां उसके दल मे व्यवस्था सुधरी वहां शुजाउद्दौला के अपने दल मे वैर-फूट की बेल बढ़ने लगी। समरू मीर कासिम से लड़-झगड़ कर उससे अलग हो गया और उसने शुजाउद्दौला से यहा तक कह डाला कि मीर कासिम उसकी जान का गाहक हो रहा था। इसका फल यह हुआ कि शुजाउद्दौला मीर कासिम का शत्रु हो गया और उसका धन छीन कर तथा उसे अपमानित कर अपने खेमे से बाहर निकलवा दिया। उसके ऐसे व्यवहार से भग्नहृदय होकर मीर कासिम ने फकीरी लिबास मे वही धरना दे डाला। कुछ समय बाद समझाने-बुझाने पर अपने खेमे में गया भी तो वहां काल के रूप मे समरू आ उपस्थित हुआ। उसने मीर कासिम का खेमा घेर कर लूट-मार शुरू कर दी, जिससे बेगमो को भी बेइज्जत होना और लुटना पड़ा। लंगड़े हाथी पर सवार होकर, एक स्वामिभक्त मुसलमान सेवक और बाल बच्चों के साथ, मीर कासिम ने बिहार से अतिम प्रस्थान किया।

अगर अंगरेजो के बक्सर पहुंचते ही उन पर शुजाउद्दौला की ओर से आक्रमण होता तो उन्हे हारना ही पड़ता। पर शुजा-उद्दौला की छावनी में डंके के बजाय सारंगी-तबले बजने लगे थे। मीर कासिम को धता बता कर शुजाउद्दौला अन्त में लड़ने चला भी तो २२ अक्टूबर के युद्ध में उसे बुरी तरह हारना और रुहेलखंड की ओर भाग जाना पड़ा। बेपेंदी के लोटे की तरह लुढ़कते रहने वाले शाह आलम ने फिर अगरेजो से दोस्ती कर ली। इस लड़ाई की ऐतिहासिक विशेषता इस बात में है कि

इससे बंगाल-बिहार में अंगरेजों का मार्ग निष्कटक हो गया और वे अब अजेय माने जाने लगे।

मीर कासिम[८] जान बचा कर कहीं अज्ञात-वास करने चला गया। पर उससे फिर कुछ बन न पडा। जून १७७७ में दिल्ली के पास एक कस्बे में किसी शख्स की लाश पड़ी हुई मिली थी। पास ही एक पुराना दुशाला भी मिला था। कहा गया है कि वह लाश मीर कासिम की ही थी और वह दुशाला ही उसका सर्वस्व रह गया था।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ १९३—१७२९ मे मुर्शिदाबाद के बाजार-भाव इस प्रकार थे—

बासफूल चावल	फी रुपया	१	मन	१०	सेर
मोटा (पूरबी) चावल	"	४	"	२५	"
मोटा (अन्य जाति का) चावल	"	७	"	२०	"
गेहूँ (बढ़िया)	"	३	"	०	"
जौ	"	८	"	०	"
तेल (बढिया)	"	०	"	२१	"
घी	"	०	"	१०॥	"

१७४० के बाद हर जगह दाम तेज हो चले थे। उड़ीसा मे तो कही कहीं चावल का भाव आठ आना सेर तक हो गया था । कलकत्ता और स्थानों को अपेक्षा सुरक्षित होते हुए भी, वहा १७४६ में चावल एक रुपये को ३० सेर ही बिकने लगा था। कपनी ने दामों को बाधने के लिए कुछ समय तक कट्रोल चलाया। मुनादी करा दी गई कि जो व्यापारी बढिया चावल फी रुपया ३४ सेर और घटिया चावल ५० सेर से कम देगा उसके साथ सख्त कार्रवाई की जायगी। पर दाम बाधे न जा सके । १७५२ में चावल का बाजार-भाव २२ सेर ही हो चला था । और बाजार-भाव इस प्रकार थे.—

गेहूँ	रु० ४–१०–०	को १ मन ६ सेर
आटा	" ८– ०–०	को १ मन
तेल	" ११– ०–०	को १ मन

पश्चिम बंगाल की स्थिति का वर्णन करता हुआ, "महाराष्ट्र पुराण"-रचयिता गंगाराम कहता है कि "बर्गी या मराठे जहा तक लूट-मार कर सकते थे करने से बाज नही आते थे । इसका फल यह हुआ कि खाद्य पदार्थों का घोर

अभाव हो गया । चावल, दाल, तेल, घी, आटा, चीनी, नमक, हर चीज का दाम रुपया सेर हो चला । लोगो को इतना कष्ट था कि हजारो भूखो मर गये ।

कारीगरो के जहा-तहा भाग जाने, मजदूरी बढ जाने और कपास के दाम मे तेजी आने के कारण कपडा भी बहुत महगा हो चला था । पूरब बगाल में मराठो के उपद्रव न होते हुए भी ढाके मे १७३८ और १७५२ के बीच दाम प्राय. ३० प्रतिशत ऊँचे हो गये थे और कई तरह के माल का तो मिलना भी अत्यन्त कठिन या असभव हो गया था—श्री कालीकिंकर दत्त लिखित "अलीवर्दी ऐड हिज टाइम्स" (अगरेजी) के आधार पर।

(२) पृष्ठ २०८—ईस्ट इडिया कपनी को बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी मिल जाने पर जानोजी ने उससे चौथ की रकम तलब की और कपनी की ओर से कटक की वापसी का प्रश्न उठाया गया । इस बात पर समझौता भी हो गया कि मराठे कटक छोड देंगे और अगरेज उन्हे हर साल बारह की जगह सोलह लाख दिया करेंगे । पर यह कार्य मे परिणत न हो सका। उस समय कपनी के कर्मचारियो ने इस बात की बडी छानबीन कराई थी कि कभी न कभी उडीसा या कम से कम कटक लौटा देने के लिए रघुजी या जानोजी सधि-बद्ध था या नही । उनका कहना था कि जब तीनो प्रान्तो की चौथ के रूप में मराठे बारह लाख रुपये पाते आ रहे थे तब उन्हे उडीसा प्रान्त को भी दबा कर बैठ जाने का क्या अधिकार था ? मराठो का कहना था कि अलीवर्दी खा उन्हे उडीसा प्रान्त तो दे ही चुका था, उसके अलावा उन्हे हर साल बारह लाख रुपये देना स्वीकार कर चुका था।

सन्धिपत्र मे इस रकम के बारे में अलीवर्दी खा की ओर से कहा गया था—

"अपनी तथा शहामतजग, सौलतजंग और सिराजुद्दौला की ओर से मैं इकरार करता हूँ कि सम्राट् अहमदशाह के राज्यकाल के चौथे वर्ष के जिलकाद महीने के ९ वे दिन अर्थात् १८ आसिन ११५७ बगला वर्ष से आरम्भ कर, मैं बगाल, बिहार और उडीसा की चौथ की मद मे रघुजी भोसले महाराज (छत्रपति रामराजा) को हर साल बारह लाख रुपये दिया करूँगा। इस रकम का

भुगतान रघुजी के इच्छानुसार या तो जगत्सेठ की या महाराज स्वरूपचन्द की मार्फत दो छमाही किस्तो मे बनारस में हुआ करेगा। शर्त यह होगी कि रघुजी या उनके वंशज या अन्य मराठे या रघुजी के मित्र नरेश, न तो इन प्रान्तो में आसन मार कर बैठेंगे, न प्रवेश करेगे, न यहा के जमीदारो को किसी तरह सतायेगे। अगर किसी से मेरी लड़ाई हो गई तो वह खुद आकर या अपने किसी आत्मीय को भेज कर मेरी सहायता करेगे। जितने सैनिक मैं साथ लाने को कहूँगा उतने ही लावेगे। प्रत्येक सैनिक को दाल-रोटी के लिए मैं १) प्रति दिन के हिसाब से दूगा। उनकी सेना को इसी से सन्तुष्ट होना पड़ेगा और मुझसे अपने घर जाने की आज्ञा मिलते ही वह बिना मेरी प्रजा को कोई कष्ट पहुचाये यहा से चल देगी।"

(३) पृष्ठ २११—अलीवर्दी खा (उपनाम महाबत जग) की मृत्यु, ८० वर्ष की अवस्था मे, शोथ-रोग से हुई।

वह बड़ा संयमी था। न शराब पीता था न तमाकू। नाच-रंग मे भी उसकी कोई दिलचस्पी न थी। हा, शिकार खेलने का शौक उसे जरूर था।

"मुताखरीन" मे दी हुई उसकी दिनचर्या के अनुसार —

वह प्राय. ४ बजे उठ जाता। शौचादि से निवृत्त होने, नमाज पढ़ने और कुछ मित्रो के साथ कहवा पीने मे तीन घटे लग जाते।

७ बजे वह दरबार करने बैठता। वहा पूरे दो घटे बिताता।

९ से १० बजे तक वह दूसरे कमरे में जाकर काव्य, उपाख्यानादि सुनता।

१० से १२ बजे तक का समय नहाने-धोने और खाने-पीने के लिए नियत था।

१२ बजे वह आराम करने चला जाता और १ बजे उठ कर वजू करता, नमाज पढता और कुरान का पाठ कर एक प्याला बर्फ या शोरे से ठढा किया हुआ पानी पीता। चौबीस घटो मे उसके लिए यही काफी होता।

इसके बाद मौलवी-मुल्ला आते और इस विद्वत्परिषद् का ३ बजे विसर्जन होता।

३ से ५ तक एक अन्तरग सभा होती, जिसमे जगत्सेठ तथा अन्य विशिष्ट पदाधिकारी ही सम्मिलित हो सकते ।

५ से ७ तक का समय हसी-मजाक के लिए था । कुछ लोग ऐसे थे जिनकी जबान कमाल पैदा कर देती । उनकी पारस्परिक नोक-झोक देखने-सुनने और याद रखने की चीज होती ।

अब बत्ती जलाने का समय हुआ—नौकर-चाकर बाहर चले गये—बेगमे आ पहुँची और उनमे वार्तालाप होने लगा ।

नियमानुसार अलीवर्दी खा कुछ ताजा या सूखा फल खाकर ही ब्यालू करता । खाते-खिलाते, हँसते-हँसाते उसके सोने का समय हो आता । स्त्रिया अन्त पुर चली जाती । शेखचिल्ली की-सी कोई कहानी सुनता हुआ वह नींद लेने लगता । रात को हर दो-तीन घटे बाद नींद टूट जाती, पर वह नियत समय पर उठे बिना न रहता ।

(४) पृष्ठ २१३—कम्पनी को दीवानी मिल जाने पर बगाल और बिहार की ही आय प्राय २ करोड ६८ लाख बताई गई थी । और वह भी रुपयो मे नही, "सिक्को" मे । इसका ब्योरा यह था —

(१) बगाल

१—बर्दवान, मिदिनीपुर आदि जिलो को छोडकर बाकी हिस्से का माल

प्राय १ करोड ४६ लाख

२—कम्पनी को मिले हुए बर्दवान, मेदिनीपुर, चटगाव, कलकत्ते और चौबीस परगने का माल प्राय ५५ लाख

माल का जोड प्राय २ करोड १ लाख

३—चुगी, जुर्माना इत्यादि से होने वाली आय

प्राय ६ लाख

कुल जोड प्राय २ करोड ७ लाख

(२) बिहार

१७६६ में माल	प्राय ७५ लाख
पटने मे डच कपनी से मिलने वाला नजराना	प्राय १५ हजार
जोड	प्राय. ७५ लाख १५ हजार
मिनहा	प्राय १४ लाख
अर्थात्	
जागीरदारो को छूट	प्राय ९ लाख
नवाब को नजराना	प्राय १ लाख
शिताबराय का वेतन	प्राय १ लाख
उसे जरूरी खर्च के लिए मिलने वाला भत्ता	प्राय ३ लाख

इस प्रकार बगाल-बिहार से होने वाली आय प्राय २ करोड़ ६८ लाख थी।

(५) पृष्ठ २४५—हालवेल ने लिखा है कि मरने से पहले अलीवर्दी खां ने एक दिन सिराजुद्दौला को बुलवाया और उसे यह अन्तिम उपदेश दिया —

"मैने तुझे यथासभव सुरक्षित कर दिया। समय मिलता तो तेरी एक और समस्या हल कर जाता। पर मेरी बाजी खतम होने पर है, तुझे वह समस्या अब खुद हल करनी होगी। तिलगाना मे अगरेज और फरासीसी जो कुछ कर चुके है, उसका ध्यान रखना। उधर के नवाबो के आपस के झगडों से लाभ उठाकर उन्होंने सारे प्रान्त की बदरबाट कर ली है। उनसे सावधान रहना। यहा सब से बलिष्ठ अगरेज है। तूने उनका माथा कुचल दिया तो और विदेशी तेरा कुछ भी बिगाड़ न सकेगे। उन्हे किलेबन्दी करने या सैनिक रखने तो हर्गिज मत देना। अगर तूने मेरी सलाह न मानी तो तेरा राज्य रहने का नही।"

हालवेल किस्सा-कहानी लिखने में सिद्धहस्त था। उस समय भी (१७५६) दूसरे अगरेजो ने उसकी बात को मनगढत बताया था। पर बुद्धि गवाही नही देती कि बात बिलकुल निराधार रही होगी। अगरेज इतिहासकार डाडवेल के

कथनानुसार "यह सभव न था कि दक्षिण मे दो मुसल्मान नवाब मार दिये जाय, तीसरा विधर्मियो के हाथ की कठपुतली बनकर रहे और एक मुसलमान नाजिम के दरबार मे इन बातो की चर्चा या इन पर टीका-टिप्पणी भी न हो। अलीवर्दी खा ने यह जरूर कहा होगा, चाहे जब कहा हो, चाहे जिन शब्दो में कहा हो। इस बात का तो ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है कि जब निजामुल्मुल्क के बेटे नासिर जग के मारे जाने का समाचार मुर्शिदाबाद पहुँचा था तब उसके द्वारा दडित होने से फरासीसी बाल बाल बचे थे।"

(६) पृष्ठ ३०१—पडित जवाहरलाल नेहरू अपनी "हिन्दुस्तान की कहानी" (श्री रामचद्र टडन-कृत हिन्दी अनुवाद) में लिखते है—

"एक खास ध्यान देने की बात यह है कि हिन्दुस्तान के वे हिस्से जो अँगरेजों के कब्जे मे सब से ज्यादा अर्से मे रहे है आज सब से ज्यादा गरीब है। असल मे एक ऐसा नक्शा तैयार किया जा सकता है जिससे ब्रिटिश राज्य-काल के साथ और क्रमश- निर्धनता की वृद्धि का घनिष्ठ सबध प्रकट हो। कुछ बडे शहरो से या कुछ नए औद्योगिक प्रदेशो से इस जाच में कोई बुनियादी फर्क नही आता। जो बात ध्यान देने की है वह यह है कि कुल मिलाकर आम जनता की हालत क्या है, और इस बात मे कोई शक नहीं है कि हिन्दुस्तान के सब से ज्यादा गरीब हिस्से बगाल, बिहार, उडीसा और मद्रास प्रेसीडेंसी के हिस्से है। रहन-सहन का सब से अच्छा मापदड पजाब में है। अँगरेजो के आने से पहले बगाल निश्चित रूप से एक धनी और समृद्धिशाली प्रात था। इन विषमताओ के कई कारण हो सकते है। लेकिन यह बात समझ पाना मुश्किल है कि बगाल, जो इतना धनी और समृद्धिशाली था, ब्रिटिश शासन के १८७ वर्षो मे, अँगरेजो द्वारा उसकी दशा सुधारने और वहा की जनता को खुदमुख्तारी की कला सिखाने की जबर्दस्त कोशिशो के बावजूद, आज गरीब, भूखे और मरते हुए लोगो का भयानक समूह है।

"हिन्दुस्तान मे ब्रिटिश शासन का पहला पूरा तजुर्बा बगाल को हुआ। उस राज्य की शुरुआत खुल्लमखुल्ला लूट-मार से हुई, और उससे ज्यादा से ज्यादा जमीन का लगान सिर्फ जिदा किसान से ही नही, बल्कि उसके मरने पर

भी वसूल किया जाता था। हिन्दुस्तान के अँगरेज इतिहासकार एडवर्ड टामसन और जी० टी० गैरट* हमको बताते है कि, अँगरेजो के दिमाग में दौलत के लिये इतना जबर्दस्त लालच भरा हुआ था कि कोर्टेज और पिजारो के युग के स्पेनवासियो के समय से लेकर आज तक उसकी मिसाल नही मिल सकती। खास तौर से बगाल मे तो उस वक्त तक शाति नही हो सकती थी जब तक कि वह चूसते चूसते खोखला न रह जाय। इसके बाद कितने ही वर्षों तक अँगरेजी व्यवहार की भयकर आर्थिक अनैतिकता के लिए क्लाइव खास तौर से जिम्मेदार था—वही क्लाइव, वही साम्राज्य-निर्माता, जिसकी मूर्ति लदन मे इडिया आफिस के सामने खड़ी है। यह तो खुली हुई लूट थी। पैगौडा वृक्ष को बार बार हिलाया गया। यहा तक कि वह वक्त आया कि बंगाल को अत्यन्त भयंकर अकालों ने बरबाद कर दिया। बाद मे इस ढर्रे को तिजारत बताया गया, लेकिन उससे क्या असर होता है। इस तिजारत को सरकार का नाम दिया गया, और तिजारत क्या थी खुली लूट थी। इस ढग की मिसाल इतिहास मे नही है। और यहा यह बात ध्यान में रखने की है कि यह चीज अलग अलग नामो में और अलग अलग शक्लो मे कुछ वर्षों तक ही नही बल्कि कई पीढियो तक चलती रही। खुली और सीधी लूटमार की जगह कानूनी हुलिया में, शोषण ने ले ली, और हालाकि उसकी वजह से खुलापन कम हो गया लेकिन हालत बदतर हो गई। हिन्दुस्तान में शुरू की पीढियो मे ब्रिटिश राज्य मे जो हिंसा, धन-लोलुपता, पक्षपात और अनैतिकता थी, उसका अंदाज भी लगाना मुश्किल है। एक बात ध्यान देने की है कि एक हिन्दुस्तानी लफ्ज, जो अँगरेजी भाषा में शामिल हो गया है 'लूट' है। एडवर्ड टामसन ने कहा है और यह बात सिर्फ बगाल के हवाले में ही नही कही गई है, "ब्रिटिश हिन्दुस्तान के शुरू के इतिहास का ध्यान आता है, जो कि शायद दुनिया भर में, राजनीतिक छल की सबसे बड़ी मिसाल है।"

---

* एडवर्ड टामसन और जी टी. गैरेट "राइज् एड फुलफिलमेंट आव ब्रिटिश रूल इन इडिया" (लंदन, १९३५)

"इस वात का नतीजा, यहा तक कि शुरू के वरसो मे ही इसका नतीजा यह हुआ कि १७७० का अकाल पडा जिसने वगाल और विहार की करीव एक तिहाई आवादी को खत्म कर दिया । लेकिन यह सव प्रगति के हक मे हुआ था और वगाल इस वात पर घमड कर सकता है कि इगलैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति को जन्म देने मे उसने वहुत मदद की। अमेरिकन लेखक ब्रुक ऐडम्स हमको वताता है कि यह किस तरह हुआ। 'हिन्दुस्तानी-दौलत के इगलैण्ड आने से और राष्ट्र की पूजी में वहुत वडी वढवार हो जाने से, सिर्फ उनकी ताकत का भडार ही नही वढा, वल्कि उससे उसकी गति मे लचीलेपन के साथ वहुत तेजी भी आई। प्लासी के वाद वहुत जल्दी ही वगाल की लूट लन्दन में पहुँचने लगी और तुरन्त ही उसका असर हुआ मालूम देता है, क्योकि सव प्रामाणिक लेखक इस वात से सहमत है कि औद्योगिक क्राति सन् १७७० से शुरू हुई। प्लासी की लडाई १७५७ में हुई और उसके वाद जिस तेजी से तव्दीली हुई, उसकी वरावरी की शायद कही भी मिसाल नही है । सन् १७६० मे फ्लाइग शटिल का आविष्कार हुआ। सन १७६४ में हार्ग्रीव्स ने स्पिनिंग जैनी का आविष्कार किया, सन् १७७६ में क्राम्पटन ने कातने की अपनी मशीन निकाली, सन १७८५ में कार्टराइट ने शक्ति सचालित करघा पेटेन्ट कराया और १७६८ में वाट ने अपना भाप एञ्जिन वना कर पूरा किया।—हालाकि इन मशीनो से उस समय के गतिशील आन्दोलनो को निकासी का रास्ता मिला, लेकिन वह गति और तीव्रता उनकी वजह से नही थी । आविष्कार खुद तो गतिहीन होते है वे पर्याप्त शक्ति के उस भडार के इकट्ठे होने की प्रतीक्षा करते है जो उन्हें चालू करे । उस भडार की शक्ति हमेशा ही रुपये के रूप में होगी—तिजोरी में इकट्ठा रुपया नही, वल्कि फेर में पडा हुआ रुपया। हिन्दुस्तान के खजाने के आने और उसके वाद जो रुपये की लेन-देन फैली उसके पहले इस काम के लिए काफी शक्ति नही थी ।

"शायद जव से दुनिया शुरू हुई है किसी भी पूजी से कभी भी इतना मुनाफा नही हुआ जितना कि हिन्दुस्तान की लूट से, क्योकि, करीव करीव पचास वरस तक ग्रेट ब्रिटेन का कोई भी मुकावला करने वाला नही था ।"

(७) पृष्ठ ३१३—श्री पूर्णचन्द नाहर ने १९२३ में "जगत्सेठों की वंशावली" शीर्षक लेख के साथ एक पुराने फरमान का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था। उससे जान पड़ता है कि बादशाह अहमद शाह ने १७५२ मे जगत्सेठ महताबराय के आवेदन पर, उन्हे पारसनाथ की पहाडी दे दी थी। फरमान में इसका कारण बताया गया था कि यह श्वेताम्बरी जैनियों का तीर्थस्थान था, महताबराय स्वय श्वेताम्बरी थे और सम्राट् से ऐसे दयादान के पूरे अधिकारी थे। इस पहाड़ी के अलावा उन्हे मधुवन नामक स्थान में एक कोठी भी दे दी गई थी जिसका वर्णन इस प्रकार किया गया था.—

जमीन लाखिराज—रकबा ३०१ बीघे।

चौहद्दी.—

पश्चिम—जयपुरिया उपनाम जयनगर का नाला।

पूर्व—पुराना नाला।

उत्तर—श्वेताम्बरी जैनियों का बनवाया हुआ जलभरी-कुड।

दक्षिण—पारसनाथ की पहाड़ी।

फरमान की पीठ पर अहमद शाह के वजीर खां करीमुद्दीन (कमरुद्दीन) खां बहादुर के दस्तखत थे।

जान पडता है कि मूल फरमान कलकत्ता हाई कोर्ट के किसी मुकदमे में सबूत के तौर पर पेश हुआ था और इसका अगरेजी अनुवाद १९ मार्च १८६८ को हुआ था।

इडिया हिस्टोरिकल रेकार्ड्स कमीशन के पाचवे अधिवेशन मे नाहरजी ने यह अनुवाद प्रदर्शित किया था।

(८) पृष्ठ ३७१—अपने जीवन के अन्तिम दिनों मे मीर कासिम कहा रहता था, क्या करता था ऐसी बातो पर कुछ प्रकाश पोलियर नामक एक स्विस-फ्रेंच इजीनियर के विवरण से पड़ता है। इसका अंगरेजी अनुवाद डाक्टर प्रतुलचन्द्र गुप्त "शाह आलम ऐंड हिज कोर्ट" के नाम से सपादित तथा प्रकाशित कर चुके हैं।

पोलियर ईस्ट इडिया कपनी का कर्मचारी था। उनकी स्वीकृति से वह कुछ बरसो तक शुजाउद्दौला का नौकर रहा। कुछ समय उसने शाह आलम सानी की सेवा मे भी बिताया।

वह लिख गया है कि

"मीर कासिम बक्सर छोडने के बाद मारा मारा फिरा, अन्त में दिल्ली के पास पलवल मे जा बसा। वहा टूटी-फूटी दो दीवारो के बीच एक पुराने खेमे मे रहता था। शायद नजफ खा उसे सहायता के रूप मे कुछ नियमित रूप से दिया करता था। उसके पास कुछ धन जरूर था, पर अपनी रहन-सहन से वह इसे जाहिर नही होने देता था

"वह अपना खाना आप ही तैयार कर लेता था। नजूम में विश्वास रखने के कारण, उसे जो समय पत्र-व्यवहार से बचता था उसका उपयोग यह देखने में करता था कि उसके ग्रह कब अच्छे होने वाले थे।"

पोलियर ने सुना था कि वह ६ जून १७७७ को मरा था और उसका दुशाला बेच कर ही उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया की गई थी।

मीर कासिम के मरने पर उसके बाल-बच्चे और भी पतले पड गये। जो कुछ उनके पास बच गया था उसे पडोसियो ने लूट लिया। औरतों का तो पता न चला कि उन्हें कौन उडा ले गया, पर उसके दोनो छोटे बच्चो को नजफ खा ने पनाह दी। अपनी छावनी में उसने उनके लिए एक छोलदारी और एक पालकी का इन्तजाम करा दिया था। पोलियर ने उन्हें वहा एक दिन अपनी आखो देखा भी था।

खुशालचंद

सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखैः !

वही चन्द्र, अब थोड़ी ही बची हुई किरणो के साथ, आकाश से गिरता आ रहा है !

... ...

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ;
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्याम्
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ।

... ...

उधर वनस्पतियो का स्वामी
अस्त-शिखर पर जाता है,
इधर अरुण के संग सूर्य लो
उदय-शिखर पर आता है।

एक साथ ही दो तेजस्वी
चढते—गिरते जाते है,
समयचक्र की गतिविधि मानो
जग को स्पष्ट बताते है।

—शाकुन्तल (पद्यानुवादक श्री अनिरुद्ध)

(१) ̄-ॠ

महताबराय और स्वरूपचन्द के मारे जाने पर, पहले के ज्येष्ठ पुत्र खुशालचन्द को जगत्सेठ की और दूसरे के ज्येष्ठ पुत्र उद्वतचद को महाराज की पदवी प्राप्त हुई। खुशालचन्द के सगे भाई थे गुलाबचन्द, सुमेरचन्द और सुखालचन्द; उद्वतचन्द के अभयचन्द और मेहरचन्द। परपरानुसार, ये सब के सब सेठ कहाने लगे।

और भाई तो कैद होकर मुगेर जाने से बच गये थे, पर गुलाबचन्द और मेहरचन्द को जाना पडा था। मीर कासिम ने इनकी जान तो नही ली पर दोनों भाई शाह आलम के पजे मे फस गये और इनके बाप-चचा इनकी रिहाई के लिए मीर जाफर से सिफारिश कराने लगे। शुजाउद्दौला ने बहैसियत वजीर उसे लिखा कि "सेठों के लड़को की रिहाई के सम्बन्ध मे आपने जो अनुरोध किया है उसे मैंने बादशाह सलामत तक पहुँचा दिया है। राजा बेनी बहादुर शीघ्र ही दरबार मे उपस्थित होकर उन्हे इसकी याद दिलायेगे और सारी बाते तै-तमाम होते ही आपको इसकी सूचना भेज देगे।" वास्तव मे शाह आलम को सोने की चिडिया हाथ लग गई थी और वैसे सम्राट् से यह आशा करना व्यर्थ था कि वह उदारतापूर्वक ही पिंजरा खोल देने की इजाजत देगा। दोनों की रिहाई हुई तो खुशालचन्द के कीमत चुका देने अर्थात् बादशाह का मुह मोतियो से भर देने पर। तब तक गुलाबचन्द और मेहरचन्द जहा-तहां शाह आलम की छावनी मे दस-बारह महीने नजरबन्द रह चुके थे।

१६ अक्टूबर १७६४ को जगत्सेठ खुशालचन्द और सेठ

उद्वंतचन्द का एक खत कलकत्ते पहुचा जिसमे उन्होंने गवर्नर को लिखा था:—

"कुछ दिन पहले हम आपको दो और पत्र भेज चुके है। दूसरा पत्र हमने अपनी भेंट के साथ भेजा था और आपको यह सूचित किया था कि हमारे भाई सेठ गुलाबचन्द और बाबू मेहरचन्द यहां पहुंच गये है। आपको दोनों पत्र मिल गये होगे। हमारा दुर्भाग्य है कि आपका कोई उत्तर नही मिला है। बहुत कष्ट झेलने के बाद हमारे भाइयों की रिहाई हो गई और दोनो सकुशल घर पहुंच गये। हम सब ने आपको धन्यवाद दिया और यह मनाया कि आप फूलें-फले और दीर्घायु हों। जो कुछ हम भेज चुके है उसे स्वीकार कर आप हमे कृतार्थ करेंगे।"

मीर जाफर को सूबेदारी मिलते ही क्लाइव उसे इंगलैण्ड से बधाइयां भेज चुका था। उसने लिखा था:—

"मेरी हार्दिक इच्छा थी कि आप ही सिंहासन को सुशोभित करें और जब वह पूरी हो गई तब मैंने पहला काम यह किया कि ईश्वर को धन्यवाद दिया और बाढ दाग कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। बगाल फिर आपकी छत्रच्छाया मे आ गया है, प्रजा को मीर कासिम जैसे अत्याचारी से छुटकारा मिल गया है और सर्वत्र शान्ति हो चली है।"

वह शान्ति प्रजा के नीरव क्रन्दन का ही दूसरा नाम थी। मीर जाफर के फिर नवाब होते ही कंपनी का पाया और भी मजबूत हो गया था और अगरेज मनमानी रीति से नि शुल्क व्यापार तथा अत्याचार करने लगे थे।

सितम्बर १७६४ में ही मीर जाफर को "बार बार निमत्रण आने पर" कलकत्ते जाना पडा। वहा कौंसिल ने आतिथ्य-सत्कार[1] पर ३४९८ रुपये ही खर्च कर उससे लाखो रुपये देने का वादा करा लिया।

मीर जाफर कपनी को क्षतिपूर्ति के रूप में ३० लाख रुपये देना स्वीकार कर चुका था। उसने अगरेज व्यापारियो की भी क्षति-पूर्ति करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी।

सैनिक व्यय के लिए कंपनी को वर्दवान, मेदिनीपुर और चटगांव मीर कासिम से मिल चुके थे। इन चकलो या जिलो से होने वाली आय प्राय ५० लाख रुपये थी। पर कपनी की ओर से कहा गया कि वह शुजाउद्दौला के आक्रमण जैसी असाधारण परिस्थिति में पर्याप्त नही हो सकती थी—इस अतिरिक्त व्यय के लिए मीर जाफर को स्वीकार करना पडा कि "जब तक वजीर (शुजाउद्दौला) से लड़ाई बनी रहेगी तब तक मैं ३१ जुलाई १७६४ से आरंभ कर कंपनी को ५ लाख रुपये प्रति मास देता रहूँगा।" मीर जाफर के मर जाने पर उसके उत्तराधिकारी को भी यही प्रतिज्ञा करनी पड़ी।

इस अतिरिक्त आय के अलावा कंपनी को, कंपनी के अधि-कारियों को और अगरेज व्यापारियों* को क्षतिपूर्ति या पुरस्कार के रूप मे मीर जाफर से मिलने वाली सारी रकम प्राय. १ करोड़ २७ लाख रुपये थी।

---

* जहा एक ही अगरेज अधिकारी और व्यापारी दोनो होता था, वहा अधिकारी की हैसियत से वह इनाम-इकराम या नजराना तो पाता ही, व्यापारी की हैसियत से वह अपना नुकसान भी पूरा करा लेता था।

मीर जाफर ने नन्दकुमार को अपना दीवान बनाया—उसी नन्दकुमार को जो चन्दननगर पर चढ़ाई के समय अगरेजों के काम आ चुका था। पलासी के युद्ध के बाद वह क्लाइव का मुंशी और दीवान[२] हुआ था और क्लाइव की कृपा से उसकी पदोन्नति भी हुई थी। जिस समय वारेन हेस्टिंग्स मुर्शिदाबाद में कंपनी का प्रधान नियुक्त हुआ था, उस समय नन्दकुमार उन जिलों का तहसीलदार था जहां के जमीदारों से माल वसूल करने का अधिकार मीर जाफर द्वारा कम्पनी को मिल चुका था। तभी से हेस्टिंग्स और नन्दकुमार के बीच वह अनबन शुरू हुई थी जिसके कारण नन्दकुमार को एक दिन फांसी चढना पड़ा। हेस्टिंग्स और वान्सीटार्ट एक ही दल के थे, इस लिए गवर्नर के सद्भाव का भी नन्दकुमार को सहारा न रह सका। उधर मीर कासिम के नाजिम हो जाने पर तो वह न घर का रहा, न घाट का। पर दुर्दिन में भी वह मीर जाफर का शुभचिन्तक बना रहा। १७६३ की क्रान्ति के बाद उसके अपने दिन भी फिरे बिना न रह सके। मीर जाफर के जोर लगाने पर कौंसिल ने उसकी बात मान ली और नन्दकुमार उसका दीवान हो गया। शाह आलम से उसे महाराज का खिताब भी मिल गया।

मीर जाफर २४ जुलाई १७६३ को दूसरी बार मसनद पर बैठा था। ५ फरवरी १७६५ को उसकी मृत्यु हुई। वान्सीटार्ट तब तक विदा हो चुका था और कौंसिल के प्रेसिडेण्ट का काम स्पेंसर नामक एक अधिकारी बम्बई से कलकत्ते जा कर करने लगा था।

(२)

मीरन के एक ६ साल का बेटा था और बहुतों की दृष्टि में

नाबालिग होते हुए भी वही मीर जाफर का उत्तराधिकारी हो सकता था। पर मरते समय शायद मीर जाफर यह इच्छा प्रकट कर गया था कि मीरन का सौतेला भाई नज्मुद्दौला ही उसका उत्तराधिकारी हो, और उसके मरते ही यह मसनद पर जा बैठा। पर मसनद पर जा बैठना एक बात थी और कौंसिल की स्वीकृति प्राप्त कर लेना और बात। वह स्वीकृति भी उसे मिल गई। उससे सधि करने के लिए एक प्रतिनिधि-मडल मुर्शिदाबाद भेजा गया और नज्मुद्दौला के सामने उसने जो मसौदा रख दिया उस पर अनिच्छुक होते हुए भी उसे दस्तखत कर देने पडे।

इस प्रतिनिधि-मडल के सदस्य थे मि० जान्स्टन, मि० सीनियर, मि० मिड्ल्टन और मि० लेस्टर। इन लोगो ने २५ फरवरी को ही कौंसिल को लिखा कि, "नवाब ने मसौदे को चार बार पढा—पुराने सधि-पत्र से इसका मिलान किया—फिर सोच-समझकर उन्होने अपनी स्वीकृति दे दी।" पर नवाब ने सेलेक्ट कमिटी को इस सम्बन्ध मे और ही कुछ लिखकर यथार्थ बात उसे बता दी।

उसके पत्र का साराश यह था—"मेरा विश्वास था कि मि० जान्स्टन, मि० सीनियर आदि मुझसे सहानुभूति दिखायेंगे, मुझे सान्त्वना देंगे। लेकिन वे तो मिलते ही और ही बाते करने लगे—मातमपुर्सी के बजाय और ही प्रसग छेड बैठे। कहा कि ढाके से मुहम्मद रजा खा को बुलवाइए और जब तक वह आ न जायं दीवानखाने मे न बैठिए। मैंने उन्हे यह आपत्ति-जनक बताया और पिता जी का लिखित आदेश भी दिखाया। पर उन्होने यही कहा कि उसका अब कोई मूल्य न रहा, अब तो आपको हमारी बात माननी होगी। फिर उन्होने मेरे सामने एक कागज निकाल कर

रख दिया और बोले कि इस पर दस्तखत कीजिए। मजमून पढने के लिए मैने नन्दकुमार को बुलवाया तो मि० जान्स्टन और मि० लेस्टर के तलवों से आग लग गई। मेरे मुंशी ने पिछले सधि-पत्र से मिला लेने की सलाह दी तो मि० जान्स्टन ने उसे दरबार से ही निकलवा दिया। मैने फौरन कागज पर दस्तखत कर दिये और वे उसे ले कर चले गये।

"इसके बाद मुहम्मद रजा खां आ गये और नायब* बन बैठे। आते ही उन्होंने यह काम किया कि मुझसे पूछे बिना ही नकद और सामान मिलाकर २० लाख से ऊपर की मालियत लुटा दी—जिसे जो मन मे आया दे डाला। अब मि० जान्स्टन उनके संरक्षक बन गये है, मि० लेस्टर उनके वकील और राजा दुर्लभराम उनके साझेदार। हर मुशी से उन्होंने मुचलका ले लिया है और मेरी मोहर को अपने ही पास रखने लगे है। अपनी मरजी से लोगों को नौकरी, खिताब, खिलअत या हाथी-घोड़े दे डालते है—जवाहरात लुटा देने के लिए भी मेरी इजाजत लेना जरूरी नही समझते।"

जनवरी मे ही कपनी के संचालको का यह आदेश आ गया था कि कोई भी अधिकारी किसी भी नवाब या राजा से, बिना उनकी इजाजत के चार हजार रुपये से अधिक पुरस्कार या नजराना हर्गिज न ले। पर कौसिल ने उनके पत्र को रद्दी की टोकरी मे डालकर

---

* मुहम्मद रजा खां की नियुक्ति की बात संभवत. पहले से ही चल रही थी और मीर जाफर ने इसका इस कारण विरोध किया था कि रजा खा ईमानदार न था—ढाके में वह प्राय. बीस लाख रुपये हजम कर चुका था और मांगने पर कुछ भी देने को तैयार न था। हा, अँगरेजो से उसकी गहरी छनने लगी थी।

नज्मुद्दौला से—या नायब सूबा मुहम्मद रजा खां से—लाखों रुपये ले लिये थे। मीरन के बेटे को गद्दी न देने का प्रधान कारण यह हुआ था कि उस हालत मे नाबालिग नाजिम की ओर से सारा प्रबन्ध कपनी को स्वयं करना पडता, जिसका अर्थ यह होता कि कौसिल किसी से इस प्रकार अपनी मुट्ठी गरम न करा सकती।

मई मे क्लाइव कलकत्ते पहुचा। कपनी के हित की दृष्टि से वह मीर जाफर के नाबालिग पोते का ही पक्षपाती था, पर नज्मुद्दौला गद्दी पर बैठ चुका था, कौसिल ने उसे नाजिम स्वीकार कर लिया था, उस स्वीकृति की कीमत मेबरो ने चुकवा ली थी—इन सब बातो को देखते हुए उसे तखता उलट देना युक्तिसगत न जचा। फिर नज्मुद्दौला से नुकसान ही क्या था? कपनी के लिए बालिग बेटा भी नाबालिग पोते के ही समान था और आखिर जिन अगरेजों ने बहती गगा मे हाथ धो लिये थे उन्होने उसके पदानुसरण को छोड और क्या किया था?

हा, क्लाइव ने इतना जरूर किया कि कलकत्ते पहुचते ही उसने सचालको के नये आदेश के पालन की सब से स्वीकृति करा ली और किसको कितना मिला था—कैसे मिला था—इन बातों की जाच भी शुरू कर दी।

भडाफोड होने पर मालूम हुआ कि जवाहरात के अलावा कौसिल के मेम्बरो को इतना नकद मिल चुका था.—

	रुपया
मि० स्पेंसर	२१०,०००
मि० प्लेडेल	१०५,०००

मि० सीनियर	१८०,०००
मि० मिड्ल्टन	१२८,६००
मि० लेस्टर	१२८,६००
मि० बर्डेट	१०५,०००
मि० ग्रे	१०५,०००
मि० जे० जान्स्टन	२५०,०००
मि० जी „	५२,५००
	१,२६४,७०० रुपये

क्लाइव के पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि मि० जे० जान्स्टन के दबाव डालने पर ही यह रकम रिश्वत के तौर पर विभिन्न सदस्यों को दी गई थी। यह भी मालूम हुआ कि नकद रुपये का एक अंश जगत्सेठ से जबरन वसूल किया गया था।

५ जून को क्लाइव ने खुशालचन्द को कमिटी के सदस्यों के सामने बुलवा कर उनका बयान लिया। उन्होंने कहा कि :—

"जब मि० जान्स्टन और कौंसिल के दूसरे सदस्य मुर्शिदाबाद पहुंचे, तब उन्होने हुगली के आमिल मोतीराम से कहलाया कि 'हम लोग नवाब की ओर से नयी व्यवस्था करने आये हैं; अगर आपने हम लोगों का मुह मीठा कर दिया तो हम आपके लाभ का भी ध्यान रखेगें, वर्ना आपको हानि ही हानि उठानी पडेगी। आप पहले लार्ड क्लाइव और दूसरे सदस्यों की ऐसी भेंट कर चुके है। अगर आपने हमे भी संतुष्ट कर दिया तो हम आपके हितचिन्तक बने रहेगे और आपकी अभीष्टसिद्धि होती रहेगी। पर हमे निराश होना पडा तो आपको हमसे किसी प्रकार की सहायता न मिल

सकेगी।' इस पर मैने कहा कि लार्ड क्लाइव ने तो हमसे न कभी कुछ मागा न हमने उन्हे कुछ भी दिया। उन्होने कहलाया कि 'आपको बात मालूम न होगी पर आपके वाप और चचा ने दिया था। अगर आप कारबार करना चाहते है तो हमे खुशी खुशी पाच लाख रुपये दे दीजिए।' लाचार मैने सवा लाख रुपया देना स्वीकार कर लिया— पचास हजार तो नकद और बाकी मुफस्सल मे अपना पावना वसूल हो जाने पर। उन्हे यह बात मजूर हुई और मैने मोतीराम और अपने मुत्सद्दियो की मार्फत ५० हजार रुपया भेज दिया। मि० जान्स्टन और उनके साथियो के कलकत्ते लौटने से पहले मेरा पावना वसूल न हो सका। इसी बीच लार्ड क्लाइव यहा आ गये और मै यहा उनसे मिलने आया तो मुझसे पूछताछ की गई। मुझे जो कुछ मालूम था, मैने बता दिया। अपने इस बयान मे एक भी लफ्ज झूठ नही कहा है।"

जब लार्ड क्लाइव ने खुशालचन्द से कहा कि 'मै आशा करता हू कि आपने कोई भी वात घटा-बढा कर नही कही होगी' तो उन्होने बेधडक यह जवाब दिया कि 'इस कागज की कीमत एक करोड रुपये से कम नही हो सकती।'

७ और ८ जून को मोतीराम का इजहार हुआ। वह इस प्रकार था :—

प्रश्न—तुमने जगत्सेठ के पास जाकर उनसे रुपया मागा?

उत्तर—हा, मैने मागा।

प्रश्न—तुम्हे उनके पास किसने भेजा?

उत्तर—मुहम्मद रजा खां ने मुझे इस्माइल अली खां के साथ जगत्सेठ के पास भेजा।

प्रश्न—तुम्हे मुहम्मद रजा खां के पास किसने भेजा?

उत्तर—मि० जान्स्टन ने।

प्रश्न—मि० जान्स्टन ने तुमसे मुहम्मद रजा खां को क्या कहलाया?

उत्तर—उन्होंने कहा कि रजा खां से जाकर कहो कि हम सेठों से इतना रुपया चाहते है।

प्रश्न—यह सदेसा मि० जान्स्टन ने ही भेजा या और किसी सदस्य ने भी ?

उत्तर—मुझे तो जो कुछ कहा मि० जान्स्टन ने ही।

प्रश्न—मि० जान्स्टन ने यह सदेसा अपनी ही ओर से भेजा या औरों की ओर से भी ?

उत्तर—उन्होने अपनी ओर से और मि० सीनियर, मि० लेस्टर, मि० मिड्ल्टन की ओर से भेजा।

प्रश्न—हां, तो मुहम्मद रजा खां से क्या बातें हुई ?

उत्तर—मैंने उन्हे तीन लाख माग कर देने को कहा।

प्रश्न—तुम मुहम्मद रजा खां के पास कब गये थे ?

उत्तर—मुझे पहला दिन याद नही, हॉ, बात तै होने मे बीस दिन लगे थे।

प्रश्न—एक दिन इधर या उधर तो बता ही सकते हो?

उत्तर—मै कह नही सकता, पर वात २१ रमजान के करीव की है।

प्रश्न—मुहम्मद रजा खा ने क्या जवाव दिया ?

उत्तर—उन्होने कहा कि मैं जो कुछ कर सकता हूँ करूंगा, पर सेठो से रुपया लेना मुनासिव न होगा। इससे मेरी वदनामी हुए विना न रहेगी।

प्रश्न—जगत्सेठ का वयान सही है या नही ?

उत्तर—है।

प्रश्न—सेठो से रुपया न मिलने पर उनका कारवार वन्द हो जाने के वारे मे तुमने कुछ कहा था ?

उत्तर—हा, मैंने यह जरूर कहा था कि अगर सेठो ने कौसिल के मेम्वरो की माग पूरी कर दी तो वे उनके मददगार वने रहेगे। अगर उन्होंने रुपया न दिया तो कौसिल का रुख वदले विना न रहेगा।

प्रश्न—तुम्हारा कहना है कि इस्माइल अली खा तुम्हारे साथ सेठो के पास भेजा गया था। वहा क्या वाते हुई ?

उत्तर—जव इस्माइल अली खा ने ३ लाख रुपया मागा तो जगत्सेठ ने कहा कि अगर १० से १५ हजार तक की अगूठी या और कोई ऐसी ही चीज माँगते तो मै उनकी माग पूरी कर देता। इस्माइल अली ने कहा कि यह तो हर्गिज मंजूर नही हो सकता। इस पर जगत्सेठ ५० हजार देने को राजी हो गये, पर इस्माइल अली खा को वह भी मजूर न हुआ। अन्त मे जगत्सेठ ने कहा कि मै खुद मुहम्मद रजा खा से मिल कर वाते कर लूगा।

प्रश्न—दोनों की बातचीत के समय वहां और कौन था?

उत्तर—मैं था, पर मैंने उसमे कोई भाग नही लिया।

प्रश्न—तुम्हें मालूम है कि उनके बीच क्या तै हुआ?

उत्तर—हां, मैंने सुना कि जगत्सेठ पहले ७५,००० रुपये देने को तैयार हुए। फिर वह लाख पर पहुचे और अन्त मे सवा लाख पर। मुझे यह बात मुहम्मद रजा खां से मालूम हुई।

जगत्सेठ वही उपस्थित थे । उनसे पूछा गया कि आपके और मोतीराम के बीच जो बाते हुई उनकी सूचना आपने किसी को दी? उन्होने उत्तर दिया कि हां, मैंने सब कुछ अपने भाई को, अपने मुशी भृगुलाल को और अपने वकील चिस्कीमल को जा सुनाया।

प्रश्न—(मोतीराम से) तुमने सेठों से जो कुछ मांगा वह अपनी ओर से या कौसिल के मेम्बरों की ओर से?

उत्तर—मैंने जो कुछ मांगा मेम्बरों की ही ओर से, खास कर उनकी ओर से जो मुझे भेज चुके थे।

प्रश्न—क्या यह सच है कि जगत्सेठ के यहा से रुपया आते ही मुहम्मद रजा खा ने उसे मि० जान्स्टन के पास मोतीझील भेज दिया और जब मि० जान्स्टन ने सारी बात सुनी तब उन्होंने अपनी नाराजगी जाहिर की?

उत्तर—यह सच है कि मुहम्मद रजा खां ने रुपया मोतीझील भेज दिया और मि० जान्स्टन ने यह कह कर नाराजगी जाहिर की कि 'यह रकम इस प्रकार क्यो भेजी गई? यह या तो मोतीराम की मार्फत भेज दी जाती या चुपचाप मुझे दे दी जाती।'

प्रश्न—जगत्सेठ का बयान है कि तुम उनके पास तीन बार

गये—पहली बार जब वह अकेले थे, दूसरी बार जब इस्माइल अली खा मौजूद था और तीसरी बार जब वह अपने भाई के साथ थे। यह सच है ?

उत्तर—हा, मै उनके पास तीन बार गया ।

प्रश्न—कभी उस रुपये के बारे मे भी वात हुई ?

उत्तर—हुई। जब मै पहली बार गया था, तव उन्होने ७५ हजार देना स्वीकार किया था, पर मुझसे कहा था कि कौसिल के मेम्बरो को समझा देना कि हमारी आर्थिक अवस्था ऐसी है कि इससे अधिक हम दे ही नही सकते । मैने वादा किया कि मेम्बरो को बात समझा दूगा ।

प्रश्न—मुहम्मद रजा खा से तुमने कहा कि अगर सेठ माग पूरी कर देगे तो उनका व्यवसाय सुरक्षित रहेगा, नही तो उनकी ओर कौसिल का रुख अच्छा न रहेगा। यह बात तुमने अपने मन से कही या किसी के कहने पर ?

उत्तर—मि० जान्स्टन के कहने पर।

प्रश्न—तुमने यहा जो बयान किया है वह सच्चा तो है ?

उत्तर—बिलकुल सच्चा । शुरू मे मै घबराया हुआ था, इसलिए मुमकिन है कि कही कोई गलती हो गई हो ।

१८ जून को मोतीराम को पूरी कौसिल के सामने उपस्थित होना पडा। सेलेक्ट कमिटी के सामने वह जो इजहार कर चुका था वह उसे पढ कर सुना दिया गया। उसने निम्नलिखित सशोधनो के साथ उसे स्वीकार कर लिया—

पहले प्रश्न के उत्तर मे उसने कहा कि वह मुहम्मद रजा खा

के हुक्म से इस्माइल अली खां के साथ जगत्सेठ के यहां गया था, पर रुपया मांगने के लिए नही।

प्रश्न किया गया—रुपया न मिलने पर, सेठों का कारबार न चल सकेगा—यह तुमने मुहम्मद रजा खां से कहा या नही ?

इसका उसने वही उत्तर दिया जो सेलेक्ट कमिटी के सामने दे चुका था। इतना उसने जरूर कहा कि सेलेक्ट कमिटी ने उसके अपने शब्दों को न लिख कर उनका भावार्थ-मात्र लिख लिया था।

एक दूसरे प्रश्न के उत्तर मे उसने मुकर कर कहा.—

"जब हम दोनों जगत्सेठ के पास गये थे तब उन्होंने अगूठी या वैसी और कोई चीज देने की बात नही कही थी—सिर्फ इतना कहा था कि अगर बीस-पच्चीस हजार रुपये की बात होती तो मै उसे पूरा कर देता। जब इस्माइल अली खां ने इसे अस्वीकार कर दिया तब उन्होंने कहा कि मै मुहम्मद रजा खां से खुद मिल कर बाते कर लूंगा। जब वह रजा खां से मिले तब उन्होंने पचास हजार देना स्वीकार किया।"

"मुहम्मद रजा खां से तुमने जो कहा कि अगर सेठों ने मांग पूरी कर दी तो उनके कारबार को कभी नुकसान न पहुंचेगा, नही तो कौसिल का रुख फिरे बिना न रहेगा—यह बात तुमने अपनी ओर से कही या किसी के कहने पर"?

इसका उत्तर उसने वही दिया जो कमिटी के सामने दे चुका था।

यही उसकी जिरह समाप्त हुई।

इसके बाद लेस्टर ने कहा कि गवाह से यह पूछा जाय कि "जब मि० जान्स्टन ने तुमसे कहा कि सेठो से हमे नजर मिलनी चाहिए

तव क्या उन्होने यह भी कहा कि तुम जाकर मुहम्मद रजा खां से कहो कि वह इस वात को सेठों तक पहुंचा दे?"

इस सवाल के जवाव मे मोतीराम ने कहा कि हां, मि० जान्स्टन ने मुझसे जो कुछ कहा वह मुहम्मद रजा खां के सामने दोहराने के लिए ही।

इस पर लेस्टर ने अपनी सफाई मे शपथ ग्रहण कर यह वयान किया कि "मोतीराम सेठों के पास जो सदेसा ले गया उसके विपय मे मै कुछ भी नही जानत।।"

इस मामले की पूरी जाच कर लेने पर सेलेक्ट कमिटी इस निर्णय पर पहुची कि :—

१—सेठो को डरा-धमका कर उनसे सवा लाख रुपया ले लिया गया था।

२—नवाव और मुहम्मद रजा खां से सरकार की कमजोरी और नायव के डरपोकपन से फायदा उठा कर उनसे नकद और जिंस मिला कर, १,७००,००० रुपये से भी अधिक ऐंठ लिया गया था।

कई साल वाद पार्लमेंट-द्वारा इस सम्वन्ध मे फिर जांच होने पर कुछ लोगों ने यह वयान किया कि नायव और मुहम्मद रजा खां ने जो कुछ दिया था वह अपनी इच्छा से और विना किसी तरह के वाहरी दवाव के ही। पर जगत्सेठ से मिलने वाली रकम के वारे मे किसी से यह कहते न वन पडा। जेनरल कारनक ने वहां अपने वयान मे कहा कि "सेठो की आदत किसी को भेट या नजर देने की न थी। उसे एक भी ऐसा अवसर याद न था जव कि उन्होने इस रूप मे किसी को कुछ दिया हो। जिस समय लेस्टर आदि को उन्हें

यह नजराना देना पड़ा था उस समय वह मुर्शिदाबाद में ही था। जगत्सेठ ने उससे पूछा था कि लेस्टर ने रकम लौटा दी है, मुझे इस हालत मे क्या करना चाहिए? कारनक ने उन्हे सलाह दी थी कि अगर आपने वह रकम अपनी खुशी से ही दी हो तो अब उसे वापिस नही लेना चाहिए, पर अगर बात और हो तो ले लेना चाहिए। जगत्सेठ ने लौटाई हुई रकम को रख लिया। फिर उन्होंने कारनक से कहा कि मालूम नही और मेम्बर क्या करने वाले है। इसमें तनिक भी सदेह नही कि जगत्सेठ से जो कुछ लिया गया था, आंखें तरेर कर ही*।"

पर दोषी अंगरेज थे—सो भी पदाधिकारी—इसलिए सेलेक्ट कमिटी ने यह कह कर सारी बातों पर चौका लगा दिया कि मोतीराम ने जो धमकी दी थी उससे मि० सीनियर, मि० मिड्लटन और मि० लेस्टर का तो कोई सरोकार ही नही था और मि० जान्स्टन ने नजराना लिया और उसका बटवारा किया भी तो वह यह मान लेने को तैयार थी कि मोतीराम ने मुहम्मद रजा खा या सेठों तक जिस भ्रूभग के साथ सदेसा पहुचाया उसकी जान्स्टन को जानकारी न थी।

यों न्यायालय मे विचार का अभिनय समाप्त हुआ और अन्याय प्रमाणित हो जाने पर भी किसी अंगरेज का बाल बांका न हुआ।

क्लाइव का मत था कि बंगाल मे कंपनी को सेना और धन-संबधी सारा अधिकार अपने हाथ मे कर लेना चाहिए, नही तो

---

* मि० लिट्ल।

कासिम जैसा साप उसे कभी न कभी फिर डसे विना न रहेगा। नाजिम के दोनो जहरीले दातों को तोड देने के विचार से वह २५ जून को ही मुर्शिदावाद गया और अनायास ही अमीष्टसिद्धि कर नज्मुद्दौला को और भी निर्जीव कर दिया। उसकी स्वीकृति से अब यह तै हुआ कि :—

(१) शत्रुओ से वगाल-विहार को सुरक्षित रखना कंपनी का काम होगा और इसके लिए आवश्यक सेना भी वही रख सकेगी*।

(२) माल उगाहने और उसके सम्वन्ध मे सारी व्यवस्था करने का अधिकार कपनी को ही होगा।

(३) नवाव को कपनी हर साल प्राय. ५३ लाख† दिया करेगी। बाकी आय या व्यय से उसे कोई सरोकार न होगा।

(४) इस ५३ लाख रुपये से नवाव को अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी जिसमे दरवार और निजामत (न्याय विभाग) का सारा खर्च शामिल समझा जायगा।

(५) नवाब के जिम्मे कपनी का जो कुछ पावना था उसकी या कर के रूप मे उसे वादशाह को जो कुछ देना होगा उसकी अदायगी की उस पर कोई जिम्मेदारी न रहेगी।

---

* जो सवि कौंसिल कर चुकी थी उसकी भी एक शर्त यह थी कि मै (नज्मुद्दौला) कपनी की सेना को अपनी ही सेना समझता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि माल की वसूली और सरकार के या अपने ठाटवाट की दृष्टि से जितने सैनिक आवश्यक होगे मै उतने ही रखूंगा।

† ५,३८६,१३१॥-) जिसमे १,७७८,८५४-) तो नवाव के अपने खर्च के लिए था वाकी ३,६०७,२७७॥) निजामत और दरवार के खर्च के लिए। इस सरकारी खर्च पर भी नवाव का कोई अधिकार न रहा।

सारा प्रबन्ध खुद करने के लिए कम्पनी अभी तैयार न थी, इसलिए क्लाइव ने व्यवस्था यह की कि —

(१) सैयद मुहम्मद रजा खा बहादुर नायब, महाराज दुर्लभराम दीवान और जगत्सेठ प्रबंधकारिणी समिति के सदस्य होगे।

(२) फौजदार, आमिल तथा अन्य अधिकारी इसी समिति के अनुशासन में रहेंगे और इसके अलावा भी सारा राजकाज इसी के कहे अनुसार होगा। जो कुछ यह कर देगी वह नवाब को मंजूर होगा।

(३) अगर कहीं प्रजा के साथ अन्याय या अत्याचार होगा और समिति इसे न रोक सकेगी तो गवर्नर को इसकी सूचना शीघ्रातिशीघ्र भेज दी जायगी।

(४) आवश्यक व्यय करने के बाद जो कुछ बचत रहेगी उसे खजाने में जमा कर देना होगा। उसके दरवाजे मे तीन तरह के तीन ताले लगेगे और प्रत्येक सदस्य अपने पास एक चाबी रखेगा।

(५) अगर तीनों में कोई भी बाकी दो की राय के खिलाफ कुछ भी करेगा तो उन दोनों को गवर्नर के पास इसकी सूचना भेज देनी होगी।

(६) वसूली के लिए जितने पैदल या घुडसवार समिति की दृष्टि में आवश्यक होंगे उतने ही रखे जा सकेंगे और समिति का इस ओर बराबर ध्यान रहेगा कि कहीं भी फजूलखर्ची न हो।

(७) कोई भी सदस्य बिना दूसरों को जताये दरबार में अकेला न जा सकेगा। सब का कर्तव्य होगा कि मिल जुल कर काम करें और एक दूसरे को हानि न पहुंचावे।

(८) समिति इस बात का भी ध्यान रखेगी कि दरबार में ऐसे लोग न रहने पावे जो लगाने-बुझाने वाले या धोखेबाज हों या जिनसे किसी प्रकार के भी अनिष्ट की आशका हो।

(९) कम्पनी और नवाब के बीच मैत्री बराबर बनी रहे--राजकाज के बारे मे कोई शिकायत न हो--कम्पनी को रुपये-पैसे की कोई जोखिम न उठानी पडे--इन बातो की देखरेख के लिए राजधानी मे उसकी ओर से एक रेजिडेट रहेगा। वह हर महीने यह हिसाब समझ लेगा कि कितनी आय हुई और कितना व्यय हुआ। पद-प्रतिष्ठा के अनुसार उसका जो वेतन नियत होगा वह उसे निजामत से मिला करेगा।

इस समिति के सदस्यो मे कोई महत्वाकाक्षी था तो दुर्लभराम। मुहम्मद रजा खा की भीरुता और जगत्सेठ की उदासीनता ने कंपनी को उनसे तो निश्शक कर दिया था, पर उसने अपने रेजिडेट मि० साइक्स को शुरू मे ही दुर्लभराम से सावधान रहने और उसे अपनी निर्दिष्ट सीमा के बाहर पाव न पसारने देने का विशेष आदेश दे दिया था।

इन तीनो के बीच अधिकारो का विभाजन न होने पर भी, नियम या परिपाटी यह पड गई कि रजा खा तो माल की वसूली का काम देखने लगा और दुर्लभराम हिसाब-किताब रखने का। खुशालचद खजाची बन गये और तीनो ताले प्राय. उन्ही के हाथो खुलने या बन्द होने लगे। फिर भी राजकाज उनके लिए एक तरह का जजाल था जिससे उनकी आन्तरिक इच्छा दूर ही रहने की प्रकट होने लगी। बात यह थी कि न तो वह स्वयं

फतहचंद थे, न अब शुजाउद्दौला खां या अलीवर्दी खां का जमाना ही रह गया था।

नज्मुद्दौला से क्लाइव ने जो जो अधिकार चाहा ले लिया और उसे नाम को ही नवाब नाजिम रहने दिया। अब उसका ध्यान इस ओर गया कि इस व्यवस्था को सम्राट् से भी स्वीकृत करा लिया जाय और उसकी सनद हासिल कर ली जाय।

बक्सर मे मैदान मार लेने पर अगरेजो ने शुजाउद्दौला का दूर तक पीछा किया और उसे अवध छोड़ कर भी भाग जाने को विवश कर दिया था। शाह आलम अब इलाहाबाद मे उन्ही के आश्रयी के रूप मे रहने लगा था और उनके मागने पर उन्हे काशी-नरेश बलवन्त सिह से कर वसूल करने का अधिकार दे चुका था। शर्त यह हुई थी कि बनारस-गाजीपुर का इलाका छोडकर शुजाउद्दौला का बाकी राज्य अगरेज उसे दिला देगे और उसके रक्षक बने रहेगे। क्लाइव को यह समझौता कुछ आपत्तिजनक जचा—कारण कि अवध मे ऐसी उथल-पुथल कराने की दृष्टि से कंपनी की शक्ति पर्य्याप्त नही कही जा सकती थी और इस बात का निश्चय नही था कि आगे होने वाली सभी लड़ाइया पलासी की ही लड़ाई के समान होगी। इसलिए उसने शाह आलम और शुजाउद्दौला से ऐसी सधि कर ली जिसमे कपनी का लाभ तो अधिक से अधिक था और जोखिम नही के बराबर थी।

१२ अगस्त १७६५ को शाह आलम ने फरमान द्वारा यह स्वीकार कर लिया कि—

(१) नज्मुद्दौला नवाब नाजिम तो रहेगा पर बगाल, बिहार और उड़ीसा का दीवान न समझा जायगा।

(२) दीवानी का स्वत्व कपनी को प्राप्त होगा।

(३) कपनी उन प्रान्तो की ओर से शाह आलम को प्रतिवर्ष २६ लाख* रुपये देने या भेजने के लिए वाध्य रहेगी—पर इतना राजस्व और निजामत-सवधी व्यय काट कर जो कुछ वचत होगी उसकी हकदार वही समझी जायगी।

दूसरी सधि शुजाउद्दौला के साथ १६ अगस्त को हुई। इसके अनुसार—

(१) कोडा के अलावा इलाहावाद के कुछ हिस्से पर शाह आलम का खास कव्जा वना रहा।

(२) वलवन्त सिंह की स्थिति मे किसी प्रकार का अन्तर न पड़ा और वह शुजाउद्दौला के ही अधीन वने रहे।

कपनी को वगाल-विहार-उडीसा की दीवानी मिल जाने पर क्लाइव ने अपने मालिको को लिखा —

"इससे आपकी प्रभुता और प्रभाव मे स्थायित्व आगया है—भविष्य मे कोई नवाव नाजिम चाहे भी तो, सैनिक और आर्थिक शक्ति के अभाव के कारण, वल या छल से आपका राज्य नही छीन सकता। प्रभुत्व के विभाजन से यहा काम चलना असभव है—सर्वेसर्वा हो कर या तो कपनी रहे या नवाव। आप स्वय विचार ले कि आप के हित की दृष्टि से दोनो मे कौन सी वात वाछनीय है।

---

* "सम्राट् के पास पहुचा देने के लिए कपनी अपनी पटने की कोठी से राजा शितावराय या सम्राट्-द्वारा मनोनीत अन्य व्यक्ति को प्रतिमास २१६,६६६॥≈)॥। दिला दिया करेगी और इसमे से किसी प्रकार का वट्टा या हुडावन न काटा जायगा।"

"आप एक सम्पन्न राज्य के अधीश्वर बन गये हैं। बस यह समझ लेना चाहिए कि इसके दीवान ही नहीं, मालिक भी अब आप ही है।

"मीर जाफर, मीर कासिम, आरकट का नवाब मुहम्मद अली भी—मन ही मन या प्रकट रूप से अंगरेजों के द्वेपी रह चुके है। वर्तमान नवाब (नज्मुद्दौला) की चल सके तो संभव है कि वह भी उन्हीं का पदानुसरण करने लगे।

"हिन्दुस्तान के नवाब या राजा हमारे प्रति अनुरक्ति-भक्ति दिखा सकते हैं तो भयभीत रहने के कारण ही। आपका कर्त्तव्य है कि सेना और कोष—इन दो साधनों को अपने हाथ से कभी निकलने न दे।"

दीवानी मिल जाने पर क्लाइव ने जगत्सेठ को कंपनी का सराफ तो नियुक्त कर दिया, पर वह सराफी पद-प्रतिष्ठा की दृष्टि से मूल्यवान् होते हुए भी, लाभ की दृष्टि से उनके लिए विशेष उपयोगी या महत्वपूर्ण वस्तु न थी।

इस नियुक्ति से पहले ही उनका घराना अघटित घटनाओं के षट्चक्र का अहेर बन कर क्षत-विक्षत हो चुका था और आरोही से अवरोही बन चुका था।

जून मे ही खुशालचन्द और उनके भाई क्लाइव को लिख चुके थे—

"हम अपनी विपन्नता का वर्णन किन शब्दों मे करे! क्रूरात्मा मीर कासिम ने हमारे पिता और पितृव्य के साथ जो दुर्व्यवहार किया—जिस नृशसता से उन्हे मार डाला वह कल्पनातीत है।

जो धन-संपत्ति उनके साथ थी वह सब की सब उसने लूट ली। फिर हमारे भाई सेठ गुलाबचन्द और बाबू मेहरचन्द को उसने शाह आलम के मुत्सद्दियो के हवाले कर दिया। अरसे तक दोनों कैदी बने रहे और उन्हे तरह तरह की यंत्रणाये भोगनी पड़ी। अन्त मे अपनी रिहाई की ऊची से ऊची कीमत चुका देने पर वे घर आ सके; पर इसके लिये उन्हे कर्ज लेना पडा और अपने जवाहरात को बंधक रखना पडा। वह कर्ज हम अभी तक नही चुका पाये है। कुछ रुपया तो हमने जेवर-जवाहरात बेचकर या चादी के बर्तनों के सिक्के ढाल कर अदा कर दिया है, पर बाकी कर्ज चुकाने में हमें बड़ी ही कठिनाई हो रही है।"

मौखिक सहानुभूति दिखाने या अधिक से अधिक उपकार उपर्युक्त नियुक्ति के रूप मे करने के सिवाय क्लाइव उन्हे सकट से उबारने के लिए कुछ न कर सका। हां, कुछ समय बाद उसने उन्हे "लोभी" बता कर भला-बुरा अवश्य कहा और उन्हें इस बात की सूचना दे दी कि समय के परिवर्तन के कारण जहा अंगरेज बीती हुई बहुत सी बातो को बिसार चुके थे वहा उन्हे भी अतीत के आकाश से वर्तमान के धरातल पर उतर आना और अगरेजो से प्रत्युपकार की आशा त्याग देना ही उचित था। २४ नवम्बर १७६५ को वह खुशालचन्द को लिखता है—

"आप तो इस बात से अनभिज्ञ नही कि मै आप के पिता का और आप के परिवार-मात्र का कैसा शुभचिन्तक और सहायक रह चुका हूँ। और आप जानते ही है कि आरभ से आज तक आप के प्रति मेरा कैसा सद्भाव रहा है। ऐसी अवस्था मे मेरे लिए यह चिन्ताजनक हो रहा है कि अपनी साख बनाये रखने और समाज

के प्रति कर्तव्य का पालन करने के लिए आपको जिस मार्ग पर चलना चाहिए उसकी ओर आपका विशेष ध्यान नही है ।

"यह निश्चित हुआ था कि सरकारी रुपया खजाने में ही रहा करेगा जिसके लिए तीन विभिन्न ताले होगे । पर मै देखता हूँ कि सारा रुपया आप के अपने घर पर ही रहने लगा है। फिर मुझे मालूम हुआ है कि जमीदारो से जो जमा मिल सकती है उससे कम पर ही आप गावो के ठीके दे देने के पक्ष में अपनी सम्मति देने लगे है । मैने यह भी सुना है कि जिन जमीदारों के जिम्मे आपकी कोठी का पुराना पावना है उन पर आप अदायगी के लिए दबाव डालने लगे है—हालाकि पाच महीनो से उन्होने सरकारी माल अदा नही किया है । मुझे आपका यह काम कतई पसन्द नही और मैं आपको यह करने न दूगा।

"आपका घराना इस समय भी काफी धनी है । पर आपका लोभ बढता जा रहा है। मुझे डर है कि अपनी इस प्रवृत्ति को आपने न रोका तो आपको हानि उठानी पडेगी और आपकी निस्पृहता तथा लोक-हितैषिता के सम्बन्ध मे मेरी जो धारणा थी वह समूल नष्ट हो जायगी।"

अप्रैल १७६६ मे क्लाइव के मुर्शिदाबाद जाने पर खुशालचन्द ने उससे मुलाकात कर कहा कि सरकार के जिम्मे हमारी काफी बड़ी रकम गिरती है, कृपया हमारा हिसाब चुकता करा दे। क्लाइव ने कारनक, साइक्स आदि से सलाह कर कहा कि "आपकी कोठी ने जो कर्ज दिया था उसमे से ३० लाख तो मीर जाफर ने अपने कुछ सरदारो को देने के लिये लिया था जिसकी देनदारी सरकार को मजूर नही हो सकती । पर २१ लाख उसने

अपने और कपनी के सैनिको का वेतन चुकाने के लिए लिया था। उसके हम देनदार है। आपको उसका आधा तो दस साल में नवाब से और आधा कपनी से मिल जायगा।"

क्लाइव ने जो व्यवस्था की उसे स्वीकार करते हुए कंपनी के संचालको ने कुछ समय बाद यह लिखा कि "जगत्‌सेठ-परिवार हमारे ही कारण बहुत विपन्न हो चुका है । इसलिए हमसे सहायता पाने और अपनी हित-रक्षा कराने का वह विशेष अधिकारी है।"

८ मई १७६६ को नज्मुद्दौला की "अचानक" अकाल-मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका छोटा भाई सैफुद्दौला नवाब बनाया गया।

(३)

यह मशहूर है कि "कमजोर की हाडी जो जबंदस्त ने देखी, दिल ने कहा—बे पूछे हुए खोल के खा ले।" बगाल मे पके हुए भात को, कपनी के बडे अधिकारियो ने भी लपक कर हप करना शुरू कर दिया । काई छुडाने का बीडा उठा कर जो क्लाइव इस बार कलकत्ते आया था और जिसने अनुशासन की बागडोर कडी कर वातावरण मे 'सुधार' आरभ कर दिया था—उसके अपने मुह से भी लार टपके बिना न रह सकी और जहा मीर जाफर ने उसे कलकत्ते और चौबीस परगने का जागीरदार पहले ही बना दिया था वहा नज्मुद्दौला को और भी पगु बना देने पर, वह अब अन्य अगरेज कर्म्मचारियो के साझे मे, नमक, सुपारी और तबाकू की खरीद-बिक्री का इजारेदार भी बन बैठा।

इन तीनों वस्तुओं मे प्रधानता नमक की थी और उसने कंपनी के सचालकों को यह समझाने की चेष्टा की थी कि नमक के व्यापार का अधिकार सरकार ने बराबर अपने लिए सुरक्षित रखा था—अब कपनी ही सरकार बन गई थी, इसलिए वह यह अधिकार या इजारा जिसको चाहती दे सकती थी—उसके हित की दृष्टि से सब से अच्छी नीति यही हो सकती थी कि वह शुल्क ले कर यह व्यापार अपने ही कर्म्मचारियो को करने दे जो राजा और प्रजा दोनों के ही शुभचिन्तक कहे जा सकते थे और जो कभी अपने एकाधिकार का दुरुपयोग करने वाले न थे। यो क्लाइव और उसके साझेदारों की व्यापार-समिति ने इस धधे को हथिया लिया और सुधार के नाम पर सस्ते से सस्ते दाम मे माल खरीदने और ऊचे से ऊंचे दाम मे उसे बेचने लगी।

इसके हिस्सेदार तीन श्रेणियों मे विभक्त थे जिनकी संख्या प्राय: ६० थी और जिनमे गवर्नर, सेनापति, कौसिल के सदस्य, फौजी अफसर, सर्जन, पादरी, क्लर्क—सभी शामिल थे। सब से बड़ा हिस्सेदार स्वय क्लाइव था जो निजी व्यापार से तोबा कर चुकने पर भी प्राय. दो लाख रुपये की पूजी लगा कर औरो का पृष्ठपोषक और नेता बन चुका था।

सरकार को अर्थात् कंपनी को नमक पर ३५, सुपारी पर १० और तंबाकू पर २५ प्रतिशत शुल्क मिलने का नियम हुआ, पर कुछ ही समय बाद इसमे वृद्धि कर दी गई और कपनी को नमक पर ३५ के बजाय ५० प्रतिशत मिलने लगा। पर जो रक्षक कहे जा सकते थे उन्ही के भक्षक बन जाने के कारण कर-वृद्धि होते हुए भी उनके लाभ मे विशेष कमी नहीं हुई। प्राय: २४ लाख रुपये की

पूंजी से कारवार शुरू किया गया था। उस पर पहले साल ही प्रायः २२ लाख का मुनाफा हुआ। दूसरे साल प्राय १८ लाख का। वास्तव में यह व्यापार नही, वैध रूप से होने वाला अत्याचार था। उत्पादन करने वालो को यह अधिकार न होता कि ऊचा दाम मिलने पर भी वे अपना माल दूसरो के हाथ वेच सके। अगर किसी गाव से पूरी तादाद मे माल न मिल सकता तो इसके लिए उसका जमीदार दोषी ठहराया जाता और उससे इजारेदार जुर्माना वसूल कर लेता। नमक के लिए यह जुर्माना ५) मन था जवकि नमक का अपना दाम २) मन था। और विभिन्न स्थानो मे इस माल की विक्री करने के लिए भी अगरेज एजेट या गुमाश्ते मुकर्रर हो गये और इन लोगो ने इजारेदार के लाभ की दृष्टि से जो कुछ जरूरी समझा करना शुरू कर दिया।

पर कपनी के प्रधान अधिकारियो को इतने से ही सतोप न हो सका और वे अपने एकाधिकार के क्षेत्र को और भी विस्तृत करने लगे। कौंसिल के मेंवरो ने २५ लाख की पूजी लगा कर सूरत और ववई से आने वाली रुई के व्यापार को भी हथिया लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि वगाल मे जिस रुई का वाजार-भाव पहले १६) से १८) मन था वह अव २८) से ३०) मन हो चला। आधुनिक सयुक्त प्रान्त की ओर से आने वाली रुई सस्ती पडती थी। उस पर विहार मे आते ही ३० प्रतिशत के हिसाव से चुगी वसूल की जाने लगी। समसामयिक अगरेज व्यापारी वोल्ट्ज ने ऐसे ही एकाधिकार के और भी उदाहरण दिये है। राजनीतिक क्षेत्र मे सर्वेसर्वा वन जाने पर कपनी और उसके कर्म्मचारियो के लिए आर्थिक क्षेत्र मे चाम के दाम चला देना

कठिन काम न था । जब बाजार मे रुई की मांग नही होती तब बबई और सूरत का माल मुहम्मद रजा खां के पास भेज दिया जाता--- इस आदेश के साथ कि जैसे हो इसको जमीदारो के गले मढ दो और कीमत वसूल कर भेज दो । यह जोर-जुल्म यहां तक बढा कि कारीगर कपनी के कारखानो मे काम करने की अपेक्षा भूखों मरना ही अच्छा समझने लगे । बोल्ट्ज ने लिखा है---"ऐसी मिसालें मौजूद है कि रेशम के कारीगर अपने अंगूठे काट कर घर बैठ गये है और कपनी की गुलामी से अपने आपको बचा लिया है।"

नमक, सुपारी और तंबाकू का व्यापार हथिया लेने वालों ने अपने आपको यह लिख कर प्रतिज्ञाबद्ध कर लिया था कि अगर कपनी के संचालक कभी ऐसा आदेश दे भी तो हम लोग एक हो कर उसका विरोध करेंगे और इस व्यापार से विरत न होगे। जहा क्लाइव को अपनी जेब भरने की आशा होती थी वहां उसे सारा आदर्शवाद भूल जाता था और जो एक ओर अनुशासन की हिमायत करता वही दूसरी ओर स्वार्थ की वेदी पर उसका बलिदान कर बैठता था ।

कंपनी के कर्मचारी अगर नमक के इजारेदार बन बैठे थे तो संचालकों की स्वीकृति से नही---बल्कि कहना चाहिए कि उनकी अनिच्छा या अस्वीकृति के बावजूद भी। फिर भी यह इजारा तीन साल से अधिक न चल सका। अन्त मे सरकार स्वयं इजारेदार बन गई । पर अपने कर्म्मचारियो को सतुष्ट करने के लिए उसने उन्हें दीवानी से होने वाली अपनी आय पर २॥ प्रतिशत कमीशन के रूप मे देना स्वीकार कर लिया ।

क्लाइव इससे पहले ही अपने लिए यह व्यवस्था करा चुका

था कि कम से कम गवर्नर को व्यापार करने का कोई अधिकार न होगा, पर दीवानी की आय पर उसे कपनी से १=) प्रतिशत कमीशन मिला करेगा। इसके फलस्वरूप जहा उसे नमक, सुपारी और तबाकू के इजारे से पहले साल प्राय. १९०,०००) मुनाफे के रूप मे मिला था वहां अब २७०,०००) से भी अधिक कमीशन के रूप मे मिलने लगा।

सभव न था कि कपनी क्लाइव को सदा के लिए कलकत्ते या चौबीस परगने का जागीरदार रहने देती, इसलिए मालिक और नौकर के बीच उस जागीर का विषय यहा तक विवादास्पद[3] बन गया कि क्लाइव को अदालत की शरण लेनी पडी। अन्त में दोनो के बीच यह समझौता हुआ कि १७६४ से दस * साल तक तो क्लाइव या उसके वारिस माल पाने के हकदार समझे जायगे, पर उसके बाद वह सारी जमीन लाखिराज हो कर ही कपनी के कब्जे मे रहेगी । क्लाइव को इस जागीर से हर साल प्राय. पौने तीन लाख की आय होने लगी।

'फोर्ट विलियम' के गवर्नर का वेतन किसी समय कुल ३०० पौड सालाना था । पर इधर उस वेतन मे इतनी वृद्धि हुई थी कि क्लाइव को उस रूप मे ६००० पौड मिलने लगे थे । इसके अलावा कमीशन था और दूसरी सहूलियते थी। धीरे धीरे कर्म्मचारियो से निजी व्यापार करने का अधिकार छीन लिया गया, उन्हे आय पर कमीशन मिलना भी बद हो गया––पर उनकी क्षतिपूर्ति के लिए उनके वेतन बढा दिये गये ।

---

* क्लाइव के इँगलैंड लौटने पर उसके और कपनी के बीच दूसरा समझौता हुआ जिससे उसकी जागीर की मीआद और दस साल बढा दी गई।

क्लाइव ने इस बार बंगाल आकर जो "सुधार" किये इनमें एक यह था कि सेना-विभाग मे अंगरेजों को जो "भत्ता" मिलता आया था उसे घटा देने का निश्चय कर अफसरो की बगावत का सामना किया और बडी ही कठोरता से उनके साथ पेश आ कर कंपनी का बोझ बराबर के लिए हलका कर दिया । इस प्रथा का जन्म दक्षिण में उस समय हुआ था, जब उधर के नवाब फरासीसियों और अंगरेजों से सहायता लेने और पुरस्कार के रूप में उनके अफसरों को मुहमागा भत्ता देने लगे थे। वही से यह प्रथा बंगाल मे आ गई थी। क्लाइव ने कहा कि "पहले बात और थी, अब और है। आज जो कुछ देना पड़ता है कंपनी को, किसी मीर जाफर या नज्मुद्दौला को नही*। अब आगे के लिए मै यह नियम किये देता हूँ कि जब तक पलटन छावनी में रहेगी तब तक अफसरों को आधा ही भत्ता मिलेगा। अगर बगाल या बिहार में उसे कहीं लड़ाई पर जाना होगा तो उन्हें पूरा भत्ता मिलेगा और अवध में जाने पर ही दूना भत्ता।" पर इससे असंतुष्ट हो कर जहां तहां अफसरो ने विद्रोह कर दिया और यह क्लाइव का ही काम हो सकता था कि उसने जान को जोखिम मे डाल कर उसका ऐसे साहस और तत्परता से दमन किया कि आग तो फैल न सकी और सेना-विभाग ने समझ लिया कि पटने या मुगेर मे इस बार विद्रोहियों को जहां पद-प्रतिष्ठा ही गवानी पड़ी थी वहा भविष्य में वे प्राण गवाये बिना न रह सकते थे।

प्रायः बीस महीनों मे ही बगाल मे अंगरेजी राज्य की नीव

---

* "यह घर घोड़ो ! आपणा, वह थी बीकानेर;
घास घनेरो घालस्यू, दाणो दू ना सेर"!

को काफी मजबूत कर, फरवरी १७६७ में क्लाइव इंगलैण्ड के लिए रवाना हुआ। जाने से पहले उसे पाच लाख रुपये की एक रकम मुर्शिदाबाद मे मिल चुकी थी, जिसके विषय मे यह कहा गया था कि इसे मीर जाफर मरते समय उसके लिए छोड गया था। इसे क्लाइव अपनी जाति के अधिकारियो के सहायतार्थ दान दे गया।

क्लाइव की जगह वेरेल्स्ट गवर्नर हुआ और १७६९ में इसकी जगह कार्टियर। इनके समय मे कोई खास बात तो नही हुई पर गो-दोहन का काम पूर्ववत् जारी रहा।

मीर जाफर के दूसरी बार मसनद पर बैठने के बाद कुछ ही बरसो मे बगाल और बिहार का खून इस खूबी से चूसा गया कि उसका रग लाल से सफेद हो चला और शरीर कायम रहते हुए भी उसकी सजीवता प्राय जाती रही। १७६९ मे कपनी के अपने रेजिडेट को ही मुर्शिदाबाद से लिखना पडा कि—

"किसी अंगरेज को यह जान कर दुःख हुए बिना नही रह सकता कि कंपनी को दीवानी मिलने से पहले लोगों की जो हालत थी उससे आज कही खराब है। बात बुरी तो है, पर मैं यह कहे बिना नही रह सकता कि सच्ची है। . . . नवाबो की तानाशाही के जमाने मे भी यह प्रदेश सुखी और समृद्धिशाली था। पर आज शासन की बागडोर अगरेज जाति के हाथ मे होते हुए भी, इसकी बरबादी दिन-दिन बढती ही जा रही है।"

कपनी के सचालको को यह स्वीकार नही हो सकता था। वे यही कहते रहे कि माल की वसूली से कंपनी को जितनी आमदनी होनी चाहिए थी उतनी नही हो रही थी और जो

रुपया उसके खजाने मे आना चाहिए था वह संभवत: नायव दीवानों* की तिजोरियो मे जा रहा था।

असलियत यह थी कि वसूली बड़ी ही सख्ती से होने लगी थी और कंपनी की आय उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। राजस्व-संबंधी विषयो के ज्ञान और अनुभव के अभाव के कारण, अंगरेज अधिकारियों को बहुत कुछ उन नायब दीवानों और उनके अहलकारो पर जरूर निर्भर करना पडता था, पर उन्हे और उनकी मार्फत जमींदारो को डरा-धमका कर जमा और वसूली को बढा देना उनके लिए कुछ कठिन काम नही हो सकता था ।

पर जमीदार जो कुछ देते उसका बोझ किसानो पर ही जा पड़ता और माल के साथ मालगुजारी बढे बिना नही रहती। इस अध्याय की समाप्ति तब हुई जब बरसो बाद कार्नवालिस ने दवामी बन्दोबस्त कर अमर्यादित को मर्यादित और अव्यवस्थित को व्यवस्थित कर दिया । प्रासगिक समय मे तो यह हाल था कि माल-विभाग मे कपनी को अधिक से अधिक लाभ पहुंचा देना ही सुयोग्य अधिकारी का काम समझा जाता, चाहे वह यह खैरखाही किसी का गला घोट कर करता, चाहे किसी अन्य ऐसे ही प्रकार से।

व्यापार-सम्बधी जो स्वतत्रता या स्वच्छंदता पहले थी उसका भी तिरोभाव हो गया था । कपनी और उसके कर्म्मचारियो के एकाधिकार ने उस क्षेत्र मे औरों के लिए कम गुजाइश रहने दी थी और वह सदानीरा नदी, अपने उद्गम से विच्छिन्न या वियुक्त

* वगाल में मुहम्मद रजा खा और बिहार में शितावराय। कुछ समय तक बिहार में शितावराय के साथ रामनारायण का भाई धीरजनारायण भी इसी पद पर था।

हो कर दिन प्रति दिन सूखने लगी थी । बोल्ट्ज ने १७७३ मे लिखा था कि "जहा पहले काश्मीरी, मुलतानी, पाठान, शेख, संन्यासी*, पगिये, भूटिये और दूसरे व्यापारी दूर दूर से, बडे बडे काफिलो मे, बगाल पहुचते थे वहा अब कोई आने का नाम नही लेता ! माल खरीदने के लिए ये अपने साथ इतना सोना या चांदी लाते थे जितना यहा यूरोप, ईरान और अरब से भी न आता था । उन व्यापारियो को अब यहा आने का साहस या उत्साह नही होता और उस बडे व्यापार-द्वारा होने वाले लाभ से बगाल सदा के लिए वचित हो गया है ।"

बगाल के व्यापार का स्रोत अब विदेश की ही दिशा मे जोरो से बहने लगा था । कलकत्ते मे होने वाले निर्यात का मूल्य जहा १७६१-६२ मे प्राय ३२ लाख रुपया था वहा १७६७-६८ मे प्राय ६० लाख था और १७७०-७१ मे ८० लाख से ऊपर पहुच गया था । और यह व्यापार एक-तरफा था, अर्थात् जहा पहले निर्यात का दाम चुकाने के लिए चादी का आयात हुआ करता वहा अब बाहर से चादी का आना प्राय बद हो गया। परिस्थिति यह थी कि राजस्व से जो आय होती उसी से माल खरीद कर कपनी इगलैण्ड ले जाती और अब उसे भुगतान के लिए वहा से चादी लाकर जगत्सेठ की कोठी मे दरबारदारी नही करनी पड़ती । कपनी का कारबार चीन मे भी था और वहा भी पहले माल की खरीदारी के लिए इगलैण्ड से चादी भेजी जाती थी। पर अब बगाल-

* "सन्यासी" व्यापारी कहे जा सकते थे या नही यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता । उस समय जत्थो मे चलने वाले नागा—"सन्यासी" प्राय मराठो के ही समान उपद्रवी समझे जाते थे । "पगियो" से मतलब पगड़ी वाले व्यापारियो से था—कलकत्ते की "पगियापट्टी" ।

विहार की चांदी के निर्य्यात से चीन मे भी दाम चुकाने की समस्या हल की जाने लगी। इसका नतीजा यह हुआ कि दोनों प्रान्तों में मुद्रा-संबधी सकट उपस्थित हो गया और प्रजा को उस दारुण दुर्भिक्ष के कारण होने वाला दु.ख भी भोगना पडा।

(४)

१० मार्च १७७० को सैफुद्दौला भी संसार से "अचानक" चल बसा। अब उसके छोटे भाई मुबारकुद्दौला को पगड़ी बंधी।

नज्मुद्दौला और सैफुद्दौला की मृत्यु के कारण प्राकृतिक थे या नही, इस सम्बन्ध मे कुछ लोगों ने उस समय भी संदेह प्रकट किया था। पर कारण चाहे जो भी रहे हो, यह तो जानी हुई बात थी कि किशोरावस्था मे ही दोनो विषयासक्त हो गये थे और इससे उनके स्वास्थ्य मे घुन लग गया था। गद्दी पर बैठते समय एक की उम्र अठारह साल की थी और दूसरे की पंद्रह साल की। क्लाइव ने नज्मुद्दौला को "वेश्या-पुत्र, अशिक्षित, अयोग्य, दुर्बल और नीच" बताया था, यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि कंपनी की दृष्टि से यह अवांछनीय था या इन नवाबो के चरित-सुधार की ओर उसके अधिकारियो ने कभी कुछ भी ध्यान दिया। ५३ लाख की आय के लोभ से अपना राज्य कपनी के हाथ बेच कर नज्मुद्दौला ने तनिक भी दु:ख या खेद प्रकट नही किया था। बल्कि आनन्द-विभोर हो कर क्लाइव से यही कहा था कि खुदा का शुक्र है कि मै अब जितनी कसबियां चाहूंगा रख सकूगा। मुबारकुद्दौला मसनद पर बैठते समय तेरह साल का था। कुछ ही समय बाद कंपनी के आलोचक बोल्ट्ज ने लिखा—

"इस बच्चे के लिए भी हरम की व्यवस्था करा दी गई है। संभव है कि इसकी भी अकाल-मृत्यु* हो जाय। चाहे जब और जैसे इसकी मृत्यु हो, फीलखाने से एक हाथी को लाकर मसनद पर बिठा देना ही विशेष उपयुक्त होगा। हाथी भारी भरकम जानवर होकर भी हुक्मबरदार होता है, बहुत दिनों तक जीता है और तड़क-भड़क की दृष्टि से उसकी उपयोगिता को देखते हुए उस पर खर्च भी कम ही बैठता है।"

इन नवाबो को मिलने वाली वृत्ति उत्तरोत्तर कम होती गई। नज्मुद्दौला को ५३ लाख की जगह कुछ ही महीने बाद ४१ लाख मिलने लगा था। सैफुद्दौला को ३२ लाख ही मिलने लगा और जब उसकी जगह मुबारकुद्दौला बैठाया गया तब पहले तो इसे ३२ लाख देना स्वीकार किया गया, पर एक वर्ष के ही भीतर यह रकम घटाकर १६ लाख कर दी गई।

इसी प्रकार जहा मुहम्मद रजा खां का वार्षिक वेतन ९ लाख नियत हुआ था वहां १७७१ से उसे ५ लाख ही मिलने लगा। दुर्लभराम से सतर्क रहते हुए भी, उसके वेतन मे कटौती नही की गई और १७६९ या १७७० मे उसके मरने तक उसे दो लाख वार्षिक ही मिलता रहा। जगत्सेठ के वेतन या वृत्ति पर कोई प्रकाश नही पडता, पर जिस समय कंपनी के संचालको ने रजा खा का वेतन घटा देने का आदेश भेजा था उस समय यह भी लिखा था कि

"जगत्सेठ को जो कुछ देना पड़ता है वह खजाने पर बोझ के बराबर हो रहा है। आजतक उन्होने न तो हमारी कोई ऐसी सेवा

* वास्तव में इसकी मृत्यु १७९३ में हुई।

या सहायता की है और न हमें कोई ऐसा लाभ ही पहुचाया है।"
१७७० में "खालसा" या खजाना मुर्शिदाबाद से उठकर कलकत्ते चला गया और उसके बाद उन्हे पारिश्रमिक देने का प्रश्न ही नहीं रहा। बिहार मे नायब शिताबराय को १ लाख वार्षिक मिलता था, और उसके अलावा ३ लाख भत्ते के रूप मे भी।

खुशालचद और क्लाइव के बीच जो समझौता हुआ था उसके अनुसार कंपनी और नवाब मिलकर उन्हे २१ लाख रुपये पुराने हिसाब में देने वाले थे । कपनी के लेखे से जान पडता है कि दस किस्तो में उन्हे नवाब से हर साल १०५,०००) और कपनी से भी उतना ही मिलना निश्चित हुआ था । १९ पूस, बगला फसली साल ११८७ (सन् १७७०) तक उन्हें कपनी से ५४६,३७५।।।) मिल चुका था और उसके जिम्मे ५०३,६२४।) बाकी रह गया था । नवाब से उन्हें मिल चुका था ५१५,०००) और उसके जिम्मे बाकी रह गया था ५३५,०००)। पर कंपनी के ही कागजात मे खुशालचद के एक आवेदन-पत्र का सारांश मिलता है जो ७ जून, १७७३ को कलकत्ते भेजा गया था और जिसमे उन्होंने लिखा था कि जहा उन्हे पिछले साल २१०,०००) मिलना चाहिए था वहा १५०,०००) ही मिला था और मागने पर कपनी के कर्म्मचारी उन्हें सतोषजनक उत्तर न दे सके थे । इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए उन्होंने कपनी को क्लाइव के कौल-करार की याद दिलाई थी और इस कर्ज का भी कुछ इतिहास बताया था।

इसका सबध पलासी के युद्ध के बाद की घटनाओ से था। क्रान्ति की पूर्ण सफलता के लिए क्लाइव ने महताबराय से कहा था कि आप मीर जाफर को नवाब नाजिम स्वीकार कराके बादशाह

से सनद मगा दीजिए । इस पर खर्च का सवाल उठा था और क्लाइव ने उन्हें यह वचन दे दियाथा कि अगर आपको नवाव से रुपया न मिल सका तो उसका देनदार मै हूँगा । जगत्सेठ ने दिल्ली से सनद मगा दी थी और उस सिलसिले मे उन्हे जो कुछ खर्च करना पडा था उसका हिसाब चुकता करने से पहले ही मीर जाफर गद्दी से हटाया जा चुका था । सनद मगा देने के हिसाव में उनकी कोठी का १५ लाख और दूसरी मदो में ६ लाख अर्थात् कुल २१ लाख मीर जाफर या कपनी के जिम्मे वाकी रह गया था । मीर कासिम के समय मे तो उन्हे निराश हो जाना पडा था, पर वाद मीर जाफर या नज्मुद्दौला को गद्दी मिली भी थी तो वे पुराना कर्ज अदा न कर सके थे । अन्त में जव क्लाइव दूसरी वार गवर्नर होकर आया तव उन्होंने अपना हिसाव पेश किया । उसी समय यह निर्णय हुआ कि २१ लाख का आधा तो कपनी दे देगी और आधा नवाव । सभवत खुशालचद का आवेदन यह था कि नवाव के हिस्से की रकम भी अव उन्हे कपनी से ही मिलनी चाहिए थी ।

कार्टियर के बाद वारेन हेस्टिग्स १७७२ में वगाल का गवर्नर हुआ । इसका जन्म १७३२ मे हुआ था और १७५० में यह कपनी का नौकर होकर कलकत्ते आया था । यह सन्मार्ग पर चलने वाला कर्म्मचारी समझा जाता था, पर उसी मार्ग पर चलते हुए १७६४ तक ही ३०,००० पौड थोक कर चुका था । वर्क ने तो पार्लमेंट मे इस पर इतिहास-प्रख्यात दोपारोपण करते हुए वरसो वाद यह कहा कि उस समय के सभी कर्म्मचारी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे और हेस्टिग्स दूसरो से किसी भी प्रकार भिन्न न था ।

शाह आलम १७६४ से इलाहाबाद में ही रहने लगा था। वहां यमुना उसे दिल्ली की याद दिलाती रहती—"हुक्म खुदावन्दे आलम, अज़ दिल्ली ता पालम" यह तान तोडकर उसका जी कुढाती रहती—पर उसमें न इतना बल था, न इतना साहस कि अपनी मा या नजीबुद्दौला के सदेसे पर संदेसा भेजने पर भी वह पश्चिम की ओर प्रस्थान कर सकता। अंगरेज आखिरी मंजिल तक उसका साथ देने के लिए सविबद्ध थे पर उनकी आन्तरिक इच्छा यही थी कि वह मजिल दिल्ली जितनी दूर न हो। उनसे मिलने वाली रकम को मिलाकर शाह आलम को प्रायः ७५ लाख रुपये की आय थी, पर एक तो यह उसके लिए यों ही काफी न था, फिर जब ढिलाई या लापरवाही के कारण मुर्शिदाबाद से समय पर रुपया न पहुचता तब उसकी कठिनाई* और भी बढ जाती और वह चीखने-चिल्लाने लगता।

गवर्नर वेरेल्स्ट के कहने पर शाह आलम के सुभीते के लिए, जगत्सेठ ने १७६७ मे अपनी कोठी की एक शाखा इलाहाबाद में खोल दी थी।

उसी साल शाह आलम इस बात की भी शिकायत कर चुका था कि एक और मामले में कंपनी या उसके कर्म्मचारियों ने अपना हक अदा नही किया था। मुर्शिदाबाद से हर साल कुछ हाथी

---

* ऐसे अवसर पर उसे कुछ महाजनो से कर्ज लेकर अपनी समस्या हल करनी पड़ती थी। ऐसे महाजनो में लाला कश्मीरीमल और लाला बैजनाथ थे। संभवतः दोनों ही बनारस के कोठीवाल थे। कुछ बरस बाद लाला कश्मीरी मल और बनारस के ही गोपालदास की कोठियो के बीच लेन-देन के सिलसिले में एक अप्रिय प्रसंग उपस्थित होने वाला था।

बादशाह के पास भेजे जाते थे। मुहम्मद रजा खा ने उस साल २६ हाथी भेजे भी तो उनका मूल्य ६८,०००) शाह आलम को मिलने वाली रकम मे से काट लिया। इस पर शाह आलम वहुत विगडा। यह परपरा के विपरीत वात थी। हाथी नजराने के तौर पर ही भेजे जाते थे और खजाने मे ऐसी कटौती कभी नही की गई थी। फिर जो २६ हाथी भेजे गये थे उनमे ६ तो इलाहावाद पहुचने के दस दिन के भीतर ही काल-कवलित हो चुके थे और वाकी अधे, लगड़े, वीमार या पैदार निकले थे—अर्थात उनमे एक भी "भारत-सम्राट् का वाहन वनने योग्य न था।" सम्राट् ने लिखवाया कि उन्हे उन हाथियो को लौटा देना मजूर था, पर अपने राजस्व मे उनके कारण एक भी रुपया कम होने देना* नही। अन्त मे कपनी की ओर से रजा खा को यह आदेश दिया गया कि हाथी और परिधान उपहार के ही रूप मे भेजे जाय और आगे कभी ऐसी कटौती कर सम्राट् का अपमान न किया जाय।

उधर पानीपत मे परास्त हो जाने के वाद भी मराठे शक्तिशाली वने हुए थे। वालाजी वाजीराव के १७६१ मे ही परलोक सिधारने पर उसका अल्पवयस्क पुत्र माधवराव पेशवा हुआ था। यह वडा होनहार था और पारिवारिक कलह होते हुए भी मराठों का दवदवा फिर वढाने की पूरी चेष्टा करने लगा था। होलकर और शिंदे के साथ फौज भेजकर उसने १७६९ मे राजपूतो, जाटो और रुहेलो से चौथ वसूल कराई और इससे मराठो का हौसला यहा तक वढा कि वे इलाहावाद भी जा पहुचे और १७७१ मे शाह आलम को वहा से उड़ाकर दिल्ली ले गये।

* श्री नन्दलाल चटर्जी लिखित "वेरेल्स्ट्स रूल इन इंडिया"।

शाह आलम से दीवानी मिल जाने पर कंपनी को हर साल २६ लाख रुपये देते जाना अखरने लगा था । हेस्टिंग्स के मतानुसार क्लाइव ने ऐसी उदारता दिखाकर भूल की थी । इसलिए जब शाह आलम अपनी मर्जी से मराठों का पल्ला पकड़कर दिल्ली चला गया तब उसे वह रकम बचा लेने का अच्छा मौका हाथ लगा और उसने यह कहकर उसे भेजना बंद कर दिया कि १७६९-७० के अकाल ने बगाल का हाल इतना बुरा कर दिया था कि कंपनी के लिए कुछ भी भेजना असंभव हो गया था । शाह आलम की ओर से तकाजे पर तकाजा होने लगा, जिसके जवाब मे हेस्टिंग्स ने उसे यह स्पष्ट करा दिया कि बगाल अब दिल्ली से पूर्णत. स्वतन्त्र हो चुका था और कर के रूप मे अब वहा एक भी रुपया भेजने वाला न था ।

इधर कंपनी की करतूतो की ओर ब्रिटिश राजनीतिज्ञो का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा था । बगाल मे जो राज्य स्थापित हो चुका था और जिसका विस्तार असभव न था उसके कारण कई प्रश्न उठ खड़े हुए थे । इनमे सब से महत्वपूर्ण यह था कि वह राज्य इंगलैण्ड का था या उसकी प्रजा कहाने वाले मुट्ठी भर लोगों का ? पार्लमेंट ने इसका उत्तर यह दिया कि वह राज्य इंगलैण्ड का था—कंपनी को वहां की पार्लमेंट या सरकार से स्वतंत्र होकर सात समुद्र पार भी हुकूमत करने का कोई अधिकार नही हो सकता था ।

कंपनी या उसके कर्म्मचारियों ने इधर जो कुछ किया था उससे वह इंगलैण्ड मे बहुत बदनाम हो चुकी थी । एक बड़े नेता की टिप्पणी यह थी कि "हिन्दुस्तान मे अन्याय के और अनैतिकता के

कारण होने वाली दुर्गन्ध पृथ्वी से आकाश तक फैलने पर है।" पर पार्लमेंट के लिए वह अन्याय या अनैतिकता उतनी चिन्ताजनक नही थी जितनी कपनी की निरकुशता और राजनीतिक क्षेत्र मे भी उसकी वल-वृद्धि। हिन्दुस्तान से लौटने वाले अगरेज पैसे के जोर से पार्लमेंट मे भी घुसने लगे थे और जो उस क्षेत्र को अपनी वपौती समझते आये थे उन्हे "वंगाल की लूट" का यह सब से खतरनाक पहलू दीखने लगा था।

कहा जा सकता है कि कपनी को यथासंभव नियन्त्रित करने के आन्दोलन की जड़ मे आदर्शवाद ही नही था, वहुत कुछ ईर्ष्या-द्वेष भी था—दलवदी के रूप मे होने वाली स्पर्द्धा या सघर्ष भी था।

जो हो, इस आन्दोलन का फल यह हुआ कि १७६७ मे पार्लमेंट-द्वारा हस्तक्षेप आरभ हो गया और नये विधान के अनुसार कपनी के अपने नियमो मे कुछ हेर-फेर किये गये। साथ ही, एक निश्चित अवधि के लिए, सरकार को प्रतिवर्ष ४ लाख पौड देना उसका कर्त्तव्य कर दिया गया। गरज यह कि उस "लूट" मे अव सरकार भी हिस्सेदार वन वैठी और प्रवल विरोध होने पर भी पार्लमेंट ने यह सिद्धात स्वीकार कर लिया कि वगाल मे या अन्यत्र कपनी अनियन्त्रित शासन नही कर सकती थी।

पार्लमेंट को हस्तक्षेप का दूसरा मौका १७७२ मे मिला। मार्च में शेयरहोल्डरो को १२॥ प्रतिशत मुनाफा मिल जाने के कुछ ही महीने वाद कपनी ने सरकार से दस लाख पौड कर्ज मांगा। इसका विरोध तो हुआ ही, कपनी और उसके कर्म्मचारियो ने इधर प्रायः पद्रह[४] सालो मे जो कुछ किया था उसकी भी जाच की गई। इसका नतीजा मालूम होने पर सर्वसाधारण की यह धारणा पुष्ट

हो गई कि "बंगाल मे जो अत्याचार या लूट हो चुकी थी उसकी कहानी सुनकर किसी का भी दिल दहले बिना नहीं रह सकता था।" मार्च १७७३ में कंपनी की ओर से फिर कर्ज के लिए दर्खास्त की गई—इस बार १५ लाख पौंड मांगा गया। पार्लमेंट ने उसे १४ लाख पौड देना तो स्वीकार कर लिया, पर ऐसी शर्तो पर जिनसे कंपनी और भी जकड़बंद और ब्रिटिश पार्लमेंट या सरकार के लिए नियंत्रण का मार्ग और भी सुगम हो गया।

यह नया विधान "रेग्यूलेटिङ्ग ऐक्ट" था। कंपनी के अपने संघटन के साथ इसने इस देश मे भी शासन के ढांचे को बहुत कुछ बदल दिया। अब गवर्नर की जगह गवर्नर-जनरल और उसके सहायकों के रूप मे चार कौसिल-सदस्यों की नियुक्ति की व्यवस्था हुई और जहां तक संधि या विग्रह का सम्बन्ध था, बंबई और मद्रास भी बंगाल के ही अधीन कर दिये गये। गवर्नर-जनरल की कौसिल के बहुमत का निर्णय ही सरकारी निर्णय समझा जा सकता था। किसी प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष मे वोट बराबर होने पर गवर्नर-जनरल सभाध्यक्ष की हैसियत से एक वोट और दे सकता और जो निर्णय चाहता करा सकता था। उसका अपना वेतन २४,००० पौंड नियत हुआ और उसकी कौसिल के प्रत्येक सदस्य का १०,००० पौंड। विधान-द्वारा ब्रिटिश सरकार को बंगाल मे एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने का भी अधिकार दिया गया और प्रधान न्यायाधीश का वेतन ८,००० पौंड नियत हुआ।

गवर्नर-जनरल के पद पर वारेन हेस्टिंग्स की ही नियुक्ति हुई और उस न्यायाधीश के पद पर उसके मित्र सर एलिजा इम्पे की।

दीवानी मिल जाने पर भी कंपनी ने प्रबन्ध का भार नायब

दीवानों के ही कंधो पर छोड़ दिया था और कानूनगो-आमिल आदि ही प्रधान अधिकारी रहते आये थे । इनके काम पर निगरानी रखने के लिए कुछ अंगरेज वेरेल्स्ट के समय मे ही "सुपरवाइजर" नियुक्त हो चुके थे, पर कानूनगो किसी को पूरी बाते बताने के लिए तैयार न था और बिना उसके सहयोग के किसी को यह मालूम न हो सकता था कि जमींदार ने किसानो से कितना वसूल किया और सैंकड़े कितना सरकार को दिया । कानूनगो के असहयोग का प्रधान कारण यह था कि अगर वह इन बातो की जानकारी औरो को हो जाने देता तो माल-महकमे की किल्ली पुश्त दर पुश्त उसके घराने के हाथ मे न रह सकती । पर यह उसकी खामखयाली थी कि जो काम टोडरमल कर चुका था उसे अठारहवीं सदी में अंगरेज और भी खूबी से न कर सकेंगे या यह कि मीर कासिम पर भी विजय प्राप्त कर लेने वाले उससे पार न पा सकेंगे।

११ मई १७७२ को यह ऐलान किया गया कि अब नवाब मुहम्मद रजा खां नायब दीवान न रहेंगे और स्वयं कंपनी दीवान के रूप मे सर्वसाधारण के सामने उपस्थित होगी।

तभी से हर जिले में एक कलक्टर की नियुक्ति की व्यवस्था हुई और माल की तहसील के अलावा वह और कामों के लिए भी जिम्मेदार बना दिया गया । हर जिले में, दीवानी अदालत और फौजदारी अदालत कायम हुईं और दीवानी अदालत का प्रधान भी कलक्टर ही कर दिया गया ।

माल-विभाग में ऊपर से देख-भाल का काम एक खास कमिटी को सौंपा गया । हिसाब-किताब की जांच "रायरायां" नामक पदाधिकारी द्वारा होने लगी। सर्वप्रथम, इस पद पर (महा) राजा

दुर्लभराम के पुत्र राजा राजबल्लभ*की नियुक्ति हुई। उसका मासिक वेतन ५,०००) था।

बंगाल और बिहार मे नायब दीवान का पद उठ जाने पर मुहम्मद रजा खां और शिताबराय पर अमानत में खयानत का आरोप किया गया और गिरफ्तार कर दोनों कलकत्ते पहुंचाये गये। वहां महीनों मामला विचाराधीन रहा। अन्त मे दोनों निर्दोष प्रमाणित हुए—विशेषत. शिताबराय। हेस्टिंग्स ने स्वीकार किया कि उन पर जो अभियोग लगाया गया था वह निराधार था। बिहार लौटने पर वह "रायरायां" कर दिये गये, पर मर्माहत होने के कारण उसके कुछ ही दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र महाराज कल्याण सिंह उनके उत्तराधिकारी† हुए और उन्हे ऊंचा पद भी प्राप्त हुआ। मुहम्मद रजा खां प्रमाणाभाव के कारण दोषी तो न ठहराया जा सका, पर ढाके की तरह मुर्शिदाबाद में भी वह कई लाख पेट मे डाल चुका था—उसके सबध मे अधिकारियो का यह संदेह बना ही रहा। कंपनी की खैरखाही वह इतनी कर चुका था कि यह सदेह होते हुए भी सचालक उसकी पुर्ननियुक्ति कराये बिना न रह सके। बालिग होने पर मुबारकुद्दौला ने उसे बरखास्त कर भी दिया तो वह ‡फिर उसका दीवान बन बैठा।

हेस्टिंग्स के समय मे माल-विभाग और न्याय-विभाग का सघटन ही नये ढग से नही हुआ, कुछ और "सुधार" भी किये गये—

---

* १७५७ की क्रान्ति के समय का राजबल्लभ १७६३ में ही मीर कासिम के हाथों मारा जा चुका था।

† शिताबराय की जागीर दक्षिण बिहार और चंपारन में थी।

‡ रजा खा की मृत्यु १७९१ में हुई।

(१) अगरेज कर्म्मचारी निजी व्यापार 'करने के लिए स्वतत्र न रहे ।

(२) नमक, तंबाकू और सुपारी को छोडकर, और सभी चीजो पर २॥ प्रतिशत चुगी भरने का नियम हो गया, और किसी अगरेज व्यापारी का माल भी अब इससे वरी न रहा।

(३) दस्तको के दुरुपयोग की गुजाइश मिटा दी गई।

(४) कलकत्ता, हुगली, मुर्शिदाबाद, ढाका और पटना—इन पांच स्थानो मे ही चुगी लेने-देने की व्यवस्था रही ; बाकी चौकियां उठा दी गई ।

फिर भी यह नही कहा जा सकता कि अगरेजो की द्वैध-शासन-प्रणाली*की समाप्ति या और "सुधारो" से भ्रष्टाचार वद हो गया और शासन-क्षेत्र की कलक-कालिमा धुल गई। जिसकी औरो को मनाही थी वही काम खुद हेस्टिग्स कर रहा था । हर कलक्टर के लिए यह लाजिमी कर दिया गया था कि वह अपने एजट या "बनियन" को गावो का ठीका या वदोवस्त लेने न दे। उन दिनों प्राय हर अगरेज का एक "बनियन" होता जो उसके लिए "पीर बावर्ची, भिश्ती, खर" का काम करता और जिसपर उसे अपनी छोटी से छोटी और बडी से बडी आर्थिक समस्या के हल के लिए निर्भर करना पड़ता । हेस्टिग्स के अपने "बनियन" कासिम-बाजार के कृष्णकान्त नदी ("कतू बाबू") थे जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है । उसकी जानकारी और रजामदी से "कतू बाबू"

* जिसमें दीवान होते हुए भी कपनी दीवानी प्रधानत हिन्दू-मुसलमान अधिकारियो से ही कराती थी ।

तेरह लाख से भी अधिक की आय के गांवों के ठीकेदार बन चुके थे और इसके अलावा अपने बारह-तेरह साल के बेटे लोकनाथ नंदी के नाम से भी बहुत से गावो के ठीके ले चुके थे। हेस्टिंग्स ने अपनी सफाई मे जो कुछ कहा था वह उसके पक्षपातियो को भी संतोषप्रद नही जान पड़ता*। उसकी कौंसिल के सदस्य और उसके हिमायती रिचार्ड बारवेल ने इतना धन कमाया कि एक १७७५ मे ही वह ४० हजार पौड इंगलैंड भेज सका। इससे पहले वह १७६९ में अपनी बहन को लिख चुका था कि "ढाके में 'सुपरवाइजर' का पद प्राप्त करने के लिए मै ५००० पौड खर्च करने को तैयार हूँ"। वारवेल के एक दूसरे खत से जान पड़ता है कि कपनी के कर्म्मचारियों के लिए व्यापार का निषेध हो जाने पर भी वह हिंदुस्तानी व्यापारियों के नाम से नमक का कारबार करने लगा था।

बगाल में जहा १७७६ मे कर्म्मचारियों के वेतन मे २५१,५३३ पौड खर्च पड़ा था वहां १७८४ मे ९२७,९४५ पड़ने लगा था। इसका कारण प्रधानतः यह था कि कई कर्म्मचारी—विशेषतः हेस्टिंग्स के पक्षपाती—ऊची से ऊंची तनखाह पाने लगे थे। नमक के लिए जो बोर्ड बना था उसके प्रधान को १८,४८० पौंड प्रतिवर्ष मिलता आ रहा था और बाकी पांच मेबरों में प्रत्येक को ६२५७ पौंड से १३,१८३ पौंड तक। माल-विभाग में पांच पदाधिकारियों को ४७,३०० पौंड मिलता था, और शुल्क विभाग मे

---

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५। अगर हेस्टिंग्स की कौंसिल में बहुमत उसके विरुद्ध न होता तो उसके काले कारनामों पर संभवतः कुछ भी प्रकाश न पड़ सकता।

तीन पदाधिकारियो को २३,००० पौड। हेस्टिंग्स ने अपनी सफाई में कहा था कि नमक से संबंध रखने वाले बोर्ड के मेबरों को मुनाफे पर १० प्रतिशत दे देने पर भी कंपनी को ५४०,००० पौड की बचत होने लगी थी। पर जैसा कि एक आधुनिक लेखक ने कहा है—"प्रश्न तो यह है कि जीवन के लिए नमक जैसी आवश्यक वस्तु से जो इतनी बड़ी आय हो रही थी उसका रिआया पर क्या बोझ पड़ रहा* था ?"

यह कर्म्म का फल माना जाय या और कुछ, ऐतिहासिक तथ्य है कि सिराजुद्दौला का विध्वस करने-कराने वालों का अपना जीवन भी प्राय दुखान्त ही रहा। उनमें मीरन तो प्राय सब से पहले मारा जा चुका था; जगत्सेठ महताबराय, महाराज स्वरूपचंद, राजा राजवल्लभ आदि मीर कासिम के क्रोधानल मे पड़ कर छार हो चुके थे; स्वय मीर कासिम सिराजुद्दौला की बेगम को लूटने के पाप का प्रायश्चित्त करते हुए मर चुका था। मीर जाफर और दुर्लभराम भी सुख-शान्ति न पा सके थे। स्क्राफ्टन† दूसरी बार बगाल आते समय कही समुद्र में डूब चुका था और सूत्रधार क्लाइव के जीवन-नाटक की समाप्ति भी अश्रुपात और आत्मघात से हो चुकी थी।

पर क्लाइव के हाथों "गुलाब के फूल" सूघने वाला गुरुघंटाल नन्दकुमार बचा हुआ था और एक ओर भंवर तो दूसरी ओर चट्टान के बीच अपनी नाव को पार लगाने की चेष्टा करता ही जा रहा था। मुहम्मद रजा खा सूबा नायब न रहते हुए भी नवाब

---

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५, पृष्ठ २१३।

† इसके साथ डूबने वाले यात्रियो में हेनरी वान्सीटार्ट भी था।

नाजिम का सबसे प्रधान अधिकारी बना हुआ था। वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर और फिर गवर्नर-जनरल बन चुका था। फिर भी नन्दकुमार का यह दृढ़ आत्मविश्वास था कि वह अन्त में ऐसे शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करके ही रहेगा। इसी विश्वास के बल पर वह नये दौर दौरे में भी अपनी पुरानी चाल से ही चलता आ रहा था।

दूर बैठे हुए भी कम्पनी के संचालक यह अच्छी तरह जानते थे कि यहां किस काम के लिए किसका उपयोग करना चाहिए। जब मुहम्मद रजा खां पर दोषारोपण की बात उठी थी तब उन्हें लगा था कि उसके विरुद्ध प्रमाण जुटाने के काम में नन्दकुमार विशेष सहायक हो सकता था और उससे उस अवसर पर वैसी सहायता ली भी गई थी। हेस्टिंग्स को बात अच्छी लगने वाली न थी, पर वह इसका विरोध न कर सका था। उसके गवर्नर-जनरल हो जाने पर जब कौंसिल मे उसका अपना विरोध शुरू हुआ और विरोधियों से नन्दकुमार को प्रोत्साहन मिला तब निर्भय होकर इसने खुले आम हेस्टिंग्स को भी ललकार दिया और उसकी पगड़ी उछाल दी।

कौंसिल में ११ मार्च, १७७५ को उपस्थित होकर इसने गवर्नर-जनरल पर कई इल्जाम लगाये जिनमे एक यह था कि नाबालिग मुबारकुद्दौला की सौतेली मां मुन्नी बेगम* से प्रायः साढ़े तीन लाख रिश्वत खाकर ही उसने उसे नवाब की अभिभाविका का

* यह नज्मुद्दौला और सफुद्दौला की मां थी। मुबारकुद्दौला की अपनी मां का नाम बब्बू बेगम था। मुन्नी बेगम को १७७५ में ही पद-त्याग करने पर १२,०००) मासिक वृत्ति मिलने लगी। वह १८१३ में ९० साल की होकर मरी।

पद दे दिया था। उस सवन्ध मे कौसिल के किसी निर्णय पर पहुंचने से पहले ही हेस्टिंग्स आपे से वाहर होकर उठ पडा और यह कह-कर चला गया कि उसकी अनुपस्थिति मे कौंसिल की कोई मीटिंग ही नही हो सकती थी। उसके पक्षपाती वारवेल ने तो उसका पदानुसरण किया, पर सभा स्थगित नही हुई। वाकी तीनो मेंवरो ने प्रस्ताव-द्वारा गवर्नर-जनरल को भ्रष्टाचारी वताया और मुन्नी वेगम से मिली हुई रकम को खजाने मे जमा करा देने का उसे आदेश दिया। पर इसके वाद ही ऐसा घटनाचक्र चला कि नन्द-कुमार का अभियोग अभियोग ही रह गया और उसे स्वय अभियुक्त वनकर वास्तविक न्याय के लिए तीनो लोक के न्यायाधीश के पास जाना पड़ा।

वात यह हुई कि २३ अप्रैल को हेस्टिंग्स, वारवेल और हेनरी वान्सीटार्ट के भाई जार्ज वान्सीटार्ट ने मिलकर नन्दकुमार और अन्य दो व्यक्तियो* पर यह इल्जाम लगाया कि उन्होने साजिश कर कमालुद्दीन को यह कहने के लिये मजवूर करना चाहा था कि हेस्टिंग्स और वारवेल दूसरो से भी घूस ले चुके थे। जहा तक हेस्टिंग्स का सम्वन्ध था, तीनो ही अभियुक्त निर्दोप प्रमाणित हुए। पर नन्दकुमार और फाक इस वात के दोपी ठहराये गये कि वे दोनो वारवेल पर दोपारोपण कराने की साजिश कर चुके थे। फाक पर जुर्माना हुआ, पर नन्दकुमार को ऐसा दण्ड नही दिया गया, कारण कि एक दूसरे मामले में उसे पहले ही प्राण-दण्ड मिल चुका था।

उस पर मुर्शिदावाद के एक व्यापारी की ओर से मोहन प्रसाद

---

* इनमें एक अँगरेज था जो कम्पनी का कर्म्मचारी न था।

नामक व्यक्ति जालसाजी का कोई मुकदमा दायर कर चुका था। ६ मई को मजिस्ट्रेटो ने उसको सुप्रीम कोर्ट के पास भेज दिया। वहां ८ से १६ जून तक नन्दकुमार का विचार हुआ और उसे दोषी ठहराकर कोर्ट ने उसे फांसी की सजा दे दी। ५ अगस्त को वह फांसी चढा भी दिया गया।

वास्तव में यह एक प्रकार का हत्याकाण्ड था जिसमें प्रेरक वारेन हेस्टिंग्स था, कार्य्य-सम्पादक सुप्रीम कोर्ट और हत्या कानून की आड़ मे की गई। चीफ जस्टिस सर एलिजा इम्पे हेस्टिंग्स का सहपाठी रह चुका था और उसका घनिष्ठ मित्र था। कलकत्ते में वह गवर्नर-जनरल से जिसे जो पद या काम चाहता दिला सकता था। अपने एक रिश्तेदार को साथ लाया था और उसे पुलों और सड़कों के ठीके दिला दिये थे। इस लिए अगरेजों की मण्डली मे भी उसका नाम "पुलबन्दी" पड़ गया था।

याद रखने की खास बात यह है कि जुर्म साबित हो जाने पर भी इस देश में जालसाजी के लिए प्राणदड देने का कोई नियम या विधान नही था। सुप्रीम कोर्ट के जजों ने अभियुक्त नदकुमार का विचार इँग्लिश पद्धति से किया और इंगलैड के कानून के अनुसार उसे दंड दिया। पर इगलैड में* १७२९ से ऐसा कानून था भी और कलकत्ते में वह अंगरेजो के लिए लागू भी बताया जा सकता था तो इस मामले का उससे क्या सरोकार हो सकता था? नन्दकुमार न तो कलकत्ते का निवासी था न उसने सुप्रीम कोर्ट की स्थापना के बाद वह जुर्म किया था। उसके फांसी चढ जाने

*जालसाजी के लिए स्काटलैंड या उत्तरी अमेरिका में भी प्राण-दंड देने का विधान नहीं था।

के बाद, यहां जाब्ता फौजदारी चला भी तो इंगलैंड के १७२६ के कानून के आधार पर।

इससे भी यही साबित होता है कि वहां का १७२९ का कानून यहां लागू नहीं समझा जा सकता था। इस विषय पर बडे बड़े लेखक बहुत कुछ लिख चुके हैं। स्थानाभाव के कारण यहां उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना का सारांश भी नही दिया जा सकता। मोटी बात यह है कि नन्दकुमार के साथ न्याय नही किया गया; उससे हेस्टिंग्स से दुश्मनी की कीमत वसूल की गई।

मोहन प्रसाद को उकसाने वाला स्वय गवर्नर-जनरल था। जजों ने यहां तक पक्षपात किया कि फर्य्यादी के वकील बनकर नंदकुमार के गवाहो को झकझोर डाला। बात जमीन पर की थी तो कानून आसमान का उठा लाये। सर जेम्स स्टिफेन ने भी अपनी पुस्तक* में यह मत प्रकट किया है कि "अगर इस मामले मे मुद्दई की ओर के ही सबूत पर मुझे निर्भर करना पडता तो मै नन्द-कुमार को दोषी न ठहरा सकता।" पर इन बातों की उन्हे क्या परवा हो सकती थी जिनका एकमात्र उद्देश था नन्दकुमार को कच्चा खा जाना? सकल्पसिद्धि के लिए उन्हे दस दिन से अधिक इस मामले का विचार भी नही करना पडा। अभियुक्त को फांसी से हल्की सजा देना उन्होने कानून और सुप्रीम कोर्ट की शान के खिलाफ समझा। वास्तव मे वह हेस्टिंग्स या अन्य गवर्नर-जनरल की भी शान के खिलाफ होता। अगरेज जाति या कपनी का आतंक जमाने के लिए नन्दकुमार जैसे बाधक या विरोधी को सदा के लिए नष्ट कर देना ही उन्होंने अपना कर्तव्य समझा।

---

* "नन्दकुमार ऐंड इम्पे"।

नन्दकुमार के बैरिस्टर ने उसे क्षमा-प्रदान कराने की बड़ी चेष्टाये की भी तो सफल न हो सका । मुबारकुद्दौला ने एक आवेदन-पत्र भेजकर बताया कि किसी भी दृष्टि से नन्दकुमार ऐसे दंड के योग्य न था, पर चीफ जस्टिस से उसे डांट-फटकारकर औरों को भी भयभीत कर दिया । सबसे आश्चर्यजनक बात यह हुई कि कौंसिल मे हेस्टिग्स के विरोधियों ने भी नन्दकुमार की ओर से सुप्रीम कोर्ट को आवेदनपत्र भेजने या भिजवाने मे कोई दिलचस्पी नही ली। उनमे फ्रान्सिस हेस्टिंग्स का कट्टर दुश्मन था और अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए नन्दकुमार का उपयोग भी कर चुका था। पर वह भी गाढ़े दिन उसके काम न आया । एक लेखक का अनुमान है कि उसका दृष्टिकोण यह था कि हेस्टिग्स को कलंकित करने और उसे नीचा गिराने मे, नन्दकुमार जीवित रहकर मेरी जितनी सहायता कर सकता है उससे कही अधिक फासी चढ़ जाने पर कर सकेगा!

नन्दकुमार बड़ा प्रपची था, इसमे संदेह नही। पर अगरेजों की सहायता का उसे एक दिन उनसे यह पुरस्कार मिलेगा, यह संसार के लिए कल्पनातीत था । उसके शुभचिन्तकों में हिंदू और मुसलमान दोनों ही थे, पर हिदुओं को विशेष दु.ख पहुंचाने वाली बात यह थी कि वह कुलीन ब्राह्मण था और दीवान भी रह चुका था।

बरसों बाद भी जब बर्क के प्रयत्न से गड़े मुर्दे उखाड़े गये तब हेस्टिग्स ने अपनी सफाई मे नन्दकुमार को भला-बुरा तो बहुत कहा, पर स्पष्ट शब्दों मे उसके अभियोग को निराधार न बता सका । मुन्नी बेगम उसे डेढ़ लाख रुपया देना स्वीकार कर चुकी थी । उसके संबंध मे हेस्टिग्स का यही कहना था कि यह रकम

उसे मुर्शिदाबाद मे खिलाने-पिलाने पर खर्च करने के लिए दी गई थी। कई अगरेज इतिहासकारों ने भी इसके लिए उसकी निन्दा की है। अगर यह मान भी लिया जाय कि उसने डेढ लाख से एक रुपया अधिक नही लिया तो भी अपने अधिकार का यह भयकर दुरुपयोग ही कहा जा सकता है कि "गवर्नर की हैसियत से जिसे सब मिलाकर २०००० और ३०००० पौड के बीच मिल रहा था उसने मुर्शिदाबाद जाने पर आतिथ्य का खर्च भी नवाब से ले लिया और वह भी २२५ पौड प्रति दिन के हिसाब से*।"

जहां हीरालाल साह से लेकर महताबराय तक उन्नति ही उन्नति होती गई थी वहां खुशालचद के समय से अवनति आरंभ हुई और अठारहवी शताब्दी का अन्त होते होते इस वश की आभा का अवसान हो गया।

इसके कारण बताये गये है महताबराय और स्वरूपचंद के मारे जाने से सेठ-वश को लगने वाला धक्का और खुशालचद की अपनी फजूलखर्ची।

इसमे संदेह नही कि वह धक्का जबर्दस्त था और उसने इमारत के कुछ हिस्से को गिरा दिया तो बाकी को डांवाडोल कर दिया।

खुशालचद अपव्ययी थे, यह भी निराधार नही जान पडता। उनके परिवार का माहवारी खर्च प्राय. एक लाख रुपया था। "मुताखरीन" का अनुवादक लिख गया है कि १७८० मे भी सेठ-परिवार मे सब मिलाकर प्राय. चार हजार व्यक्तियो का

---

* केम्ब्रिज हिस्टरी, भाग ५।

भरण-पोषण होता था जिसमे १२०० स्त्रियां थी। कहा गया है कि जब क्लाइव चलने लगा था तब उसने खुशालचंद को तीन लाख रुपये की वार्षिक वृत्ति दे जाने की इच्छा प्रकट की थी, पर इन्होंने उसे स्वीकार नही किया था।

पर उस अवनति और अवसान का प्रधान कारण कुछ और था। अंगरेजों की अमलदारी हो जाने पर जब सारी व्यवस्था ही बदल चुकी थी और राजनीति के साथ अर्थनीति का भी सूत्र-सचालन लंदन या कलकत्ते से होने लगा था तब यह आशा तो दुराशामात्र ही हो सकती थी कि जगत्सेठ-परिवार पहले की ही तरह समृद्धिशाली और प्रभावशाली बना रहेगा।

जब दीवानी मिल जाने पर कंपनी खुद इंतजामकार हो गई थी और मुर्शिदाबाद से खालसा-दफ्तर भी कलकत्ते चला गया था तब सरकार से उनका पुराना सबध तो विच्छिन्न हो गया था और जो जल पहले मुर्शिदाबाद जाकर एकत्र हुआ करता था वह अब शासन-प्रणाली के बदल जाने से और ही जगह जाने और वहा के पेड़-पौधों को सिक्त करने लगा था।

शासन के साथ वाणिज्य-व्यापार की भी प्रणाली बदलने लगी थी और जहां कलकत्ते की उन्नति हो रही थी वहां प्रान्त के अन्तर्गत पुराने नगर दिन दिन अवनत होते जा रहे थे।

१७७० के दुर्भिक्ष और महामारी के कारण बगाल की आधी या एक तिहाई* आबादी नष्ट हो गई, फिर भी अंगरेजों

* हेस्टिग्स का अनुमान एक तिहाई का था पर और अगरेज प्रत्यक्षदर्शियों ने ही आधे की हानि बताई थी। टामसन और गैरेट का अनुमान है कि उस समय

ने अपना रास्ता नहीं छोडा। उनकी राजनीति लुटेरों की ही बनी रही और वे अपनी लूट के क्षेत्र का विस्तार करते ही गये। जल के अभाव से इस देश के पेड-पौधे तो सूखने लगे और इंगलैंड मे हरियाली वढने लगी। मराठे अगर एक बार लाख-करोड लूटकर ले भी गये थे तो वह एक आकस्मिक घटना थी जो अनिष्टकर होते हुए भी जगत्सेठ के लिए विशेष चिन्ताजनक नही कही जा सकती थी। पर अगरेजो के आधिपत्य और उनके द्वारा निरन्तर होती रहने वाली लूट की बात और थी। १७५७ के वाद घटने वाली शृह्वलावद्ध घटनाओ ने सारी स्थिति मे आमूल परिवर्तन कर दिया और प्रान्त मे खुशहाली न रहने पर खुशालचद के घराने के लिए भी खुशहाल वने रहना असभव हो गया।

मुर्शिदावाद की पुरानी टकसाल १७७७ तक वद नही हुई थी। पर कपनी की ओर से वहा के सिक्को के वारे मे शिकायत होने लगी थी और उसे वद करा देने के लिए कपनी मुवारकुद्दौला पर दवाव डालने लगी थी। कुछ ही समय बाद वह टकसाल बंद कर दी गई और मुद्राप्रसार पर भी कपनी का एकाधिपत्य हो गया।

उसी साल खुशालचद को गवर्नर-जनरल से इस वात की शिकायत करनी पडी कि उसके आदेशानुसार उनकी कोठी ने कर्नल गोडार्ड को तीन लाख रुपये की हुडी दे दी थी। उसकी रकम

जन-सख्या प्राय डेढ करोड थी, और मरने वालो की सख्या कम से कम तीस लाख। उनका यह भी कहना है कि जव इतने लोग "वेवफादारी से मरकर" सरकार के लिए एक विकट समस्या खडी कर गये तव मुहम्मद रजा खा ने राजस्व मे दस प्रतिशत वृद्धि कर, सारी कमी को जिन्दा रह जाने वालो से पूरा करा लिया--"राइज ऍड फुलफिलमेंट आव ब्रिटिश रूल इन इडिया"।

कलकत्ते में मिलने वाली थी, पर वहां वालों ने यह कहकर भुगतान करने से इन्कार कर दिया था कि उस समय उनके पास कुल एक लाख रुपया मौजूद था और उन्हे तीन लाख कर्म्मचारियों का वेतन चुकाने के लिए ही चाहिए था ।

१७८० मे खुशालचंद ने राजा चेतसिह को इस बात से आगाह किया कि बनारस कें अनूपदास और ब्रजनिर्वाणदास के जिम्मे उनका कुछ रुपया पावना था और उसकी वसूली मे उन्हें कठिनाई हो रही थी । इस पर चेतसिह ने उन दोनो कर्जदारों को कहलाया कि सेठों का पावना शीघ्र से शीघ्र चुका दो ।

खुशालचद अन्त समय तक कोठवाली का काम करते रहें, पर किसी बडे पैमाने पर नहो। बनारस के गोपालदास* की कोठी उनके जीवनकाल मे ही आगे बढने लगी थी और शीघ्र ही उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक प्रसिद्धि पाने वाली थी । मुर्शिदाबाद से राजश्री विदा हो चुकी थी और उसके साथ ही जगत्सेठ को अपने घर से लक्ष्मी के प्रस्थान की सूचना मिल चुकी थी ।

पर चचला लक्ष्मी के रुठ जाने पर भी खुशालचंद अन्त तक मुक्तहस्त बने रहे । पारसनाथ तीर्थ में जैन-मदिरों के जीर्णोद्धार और निर्माण के लिए उन्होने जो कुछ दान दिया वह उनकी धर्म्म-निष्ठा के साथ उनकी उदारता का परिचायक था ।

---

* विशेष प्रसिद्ध मनोहरदास के पिता और आसाम के वर्तमान गवर्नर श्री श्रीप्रकाश जी के पूर्वज। इनकी कोठिया कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, पटना, गया, गाजीपुर, मिर्जापुर, इलाहाबाद, लखनऊ, बरेली, जयपुर, नागपुर, सूरत, बंबई, मछलीबदर, मद्रास, टाडा, फूलपुर, आगरा, दिल्ली, पूना, अहमदाबाद और बडौदा में बताई गई है—"कैलेंडर आव पर्शियन कारेसपान्डेन्स", भाग ७ ।

१७८३ में उन्होंने हेस्टिंग्स के पास एक आवेदन-पत्र भेजकर कंपनी के कोषाध्यक्ष के पद की याचना की। उस समय हेस्टिंग्स दौरे पर था, पर उसने उन्हे सहानुभूति-पूर्ण उत्तर देकर अपने परिवार का पुराना पद प्राप्त हो जाने की आशा दिलाई। कलकत्ते लौटने पर उसे मालूम हुआ कि खुशालचद बीच मे ही कलेवर बदल चुके थे। उस समय उनकी अवस्था प्राय चालीस वर्ष की थी।

इससे प्राय चार वर्ष पूर्व उनके एकमात्र पुत्र गोकुलचद का देहान्त हो चुका था और वह अपने भतीजे हरखचद को गोद ले चुके थे। यही उनके उत्तराधिकारी हुए।

इस अवसर पर वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब मुबारकुद्दौला को लिखा कि हरखचन्द के लिए कपनी की ओर से खिलअत के साथ झालरदार पालकी, रत्न-जटित पगडी, सरपेच, मोतियो के हार और कुडल वहा भेज दिये गये है ; आप अपनी ओर से उन्हे जगत्सेठ-उपाधि से अंकित एक मोहर प्रदान कर सम्मानित कर देगे और उनके या उनके परिवार के साथ परपरागत व्यवहार में कभी किसी तरह की त्रुटि न होने देगे।

टिप्पणी

(१) पृष्ठ ३८५—अलीवर्दी खां के समय से दामों में इधर कितनी तेजी आ गई थी इसका पता १७६४ में मीर जाफर की जियाफत पर खर्च होने वाली रकम से चलता है। कौंसिल की ओर से इस अवसर पर जो सीधा उसके पास भेजा गया था उसका कुछ ब्योरा यह था.—

		रु०	आ०
४०	मन चावल	७५	०
८	मन दाल	२०	०
५	मन घी	७७	०
६	मन तेल	५१	०
३॥	मन नमक	४	६
५	मन चीनी	३६	०
६	मन मिठाई	६०	०
१	मन मुरब्बा	१६	०
१	मन बादाम और किशमिश ..	३१	४
८	मन तक्र	३१	०
५०	खस्सी	५०	०

(२) पृष्ठ ३८६—बंगाल में पहले दो प्रकार के प्रधान दीवान हुआ करते थे—दीवाने कुल या दीवान सूबा और दीवान खालसा। मुर्शिदकुली के समय से दीवानी और निजामत दोनो पर एक ही व्यक्ति का अधिकार हो चला, इसलिए दीवाने सूबा का कोई अर्थ नही रह गया। फिर भी वह पद बना रहा। उसपर जिसकी नियुक्ति होती वह प्रधान मंत्री समझा जाता। यह पद नवाब या नाजिम के किसी आत्मीय को ही मिल सकता था। मंत्रित्व तो वह नाममात्र को ही करता, पर वेतन में उसे बड़ी जागीर अवश्य मिल जाती। जो नायब दीवान होता उसी पर कार्यभार

रहता। सरफराज़ खा, नवाजिश मुहम्मदखा, मीरन—दीवान सूबा रह चुके थे और हाजी अहमद, राजा जानकीराम, राजा दुर्लभराम, महाराज नन्दकुमार—नायव दीवान।

राजस्व-विभाग का प्रधान अधिकारी दीवान खालसा कहा जाता था। इस पद पर प्राय किमी हिन्दू की ही नियुक्ति होती थी जिसे रायराया का खिताव भी मिलता था। आलमचद (नायव दीवान होने मे पहले), चैनराय, कीर्ति (कीरत) चन्द, उम्मेदराय आदि दीवान खालसा हुए थे।

शाह आलम से ईस्ट इडिया कपनी को दीवानी मिल जाने पर जो कुछ प्रधानता रही नायव दीवान की। नवाव की निजी धन-सम्पत्ति की देखरेख का काम करनेवाला दीवानेतन कहा जाता था। निजामत से नवाव का सरोकार न रह जाने पर भी वह तो नाजिम कहाता रहा और उसका खास दीवान दोवाने निजामत। इसे मदारुलमिहाम भी कहते थे। मुहम्मद रजा खा, राजा गुरुदास (नन्दकुमार का वेटा), राजा महानन्द (गुरुदास का वेटा) आदि १७६५ के वाद दीवान निजामत हुए थे। नज्मुद्दौला के समय में और उसके वाद भी मुहम्मद रजा खा नायव दीवान के पद पर था।

(२) पृष्ठ ४११—जगत्सेठ महतावराय क्लाइव को मीर जाफर से जो जागीर दिला चुके थे वह कपनी के सचालको और उसके वीच खास झगडे का कारण वन चुकी थी। १७६० में विलायत लौटने पर क्लाइव को अपने स्वत्व की रक्षा के लिए जमीन आसमान एक करना पडा था। उसने सचालको को डराया-धमकाया, उन्हें अपने अनुकूल वना लेने के लिए कुछ भी उठा न रखा—फिर भी सफल न हो सका। उनका कहना था कि कपनी के कर्मचारी को ऐसा पुरस्कार ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता था। क्लाइव का कहना था कि न तो आपकी ओर से कोई निषेध था, न मेरी ओर से कोई प्रतिज्ञा थी—फिर नवाव ने अपनी मर्जी से जो कुछ दिया उसे मैं क्यो ग्रहण न करता? जागीर कपनी से कुछ गावो की मालगुजारी पाने के अधिकार के रूप में थी। जहा पहले कंपनी खुद नवाव या सरकार

को मालगुजारी दिया करती वहा अब क्लाइव को देने के लिए वाध्य हो गई थी । एक प्रकार स्वामी तो सेवक और सेवक स्वामी बन गया था । अगर पुराना सिलसिला न बदलता तो कंपनी का जो पावना नवाब के जिम्मे निकलता उसमे यह मालगुजारी मिनहा हो जाती और उसको कुछ देना न पड़ता । पर क्लाइव के जगीरदार या हकदार हो जाने पर कंपनी के लिए माल न अदा करने का कोई कारण नही हो सकता था ।

क्लाइव ने यह कहना और कहलाना शुरू किया कि "कृतघ्नता और नीचता की हद हो गई । जिसने पलासी के मैदान मे कंपनी के सिर पर ताज रख दिया उसी के साथ ऐसा वर्ताव ! जिसकी वदौलत कंपनी अपन दामन मोतियों से भरने लगी है उस उपकारी को चौवीस परगने का माल देने से भी उसके सचालक इनकार कर रहे है !!" पर संचालक-समिति के कठोर-हृदय पदाधिकारियो पर इस प्रचार का कुछ भी प्रभाव न पड़ सका और वे विरोधी वने ही रहे।

क्लाइव इंगलैण्ड पहुंचते ही पार्लमेंट का मेम्वर वन चुका था। लार्ड की उपाधि भी पा चुका था। उस समय का राजनीतिक वातावरण और ही था जिसमें वोटो की खरीद-विक्री हुआ करती और एक 'सीट' की कीमत प्रायः २००० पौंड समझी जाती । जो अंगरेज हिन्दुस्तान में मालामाल हो कर इंगलैण्ड लौटते वे वहा "नवाव" कहे जाते । इनके सम्वन्ध में किसी ने यह व्यंग्योक्ति की थी कि अगर किसी "नवाव" से कोई भीख भी मांगता है तो उसे उत्तर मिलता है कि "दोस्त, लाचारी है। इस समय तो देने लायक लाल-जवाहर मेरे पास मौजूद नही।" क्लाइव के लिए "नवाव" वन जाना और भी आसान था । पर पार्लमेंट और शाही दरवार में उसके मददगार होते हुए भी वह कंपनी की संचालक-समिति पर विजय न पा सका। वहां समिति का उपाध्यक्ष सुलीवान उसका शत्रु वना ही रहा और उसके कारण बहुमत उसके अनुकूल न हो सका।

उस समय कंपनी की सारी पूंजी ३,२००,००० पौंड थी। हिस्सेदारो का अपना "कोर्ट" था और संचालको या डाइरेक्टरो का अपना। इन संचालको

की संख्या २४ थी । सच.लक होने के लिए कम से कम २००० पौंड का हिस्सेदार होना आवश्यक था । यह चुनाव हर साल होता और इसमें वही भाग ले सकते जो कम से कम ५०० पौंड के हिस्सदार होते । नियम था कि हिस्से चाहे जितने भी हो, प्रत्येक हिस्सेदार एक ही वोट दे सकेगा । क्लाइव ने सुलीवान को पछाडने के लिए सचालको के चुनाव में भाग लेने का निश्चय कर उसी मार्ग का अवलम्बन किया जिस पर चलकर प्रभावशाली व्यक्ति इस नियम की उपेक्षा करते आये थे । उसने बाजार में विभिन्न नामो से १ लाख पौंड के शेयर खरीद कर अपने पक्ष में २०० वोट निश्चित कर लिये। फिर भी १७६३ के निर्वाचन में उसे मुह की खानी पडी और न तो वह स्वय संचालक-समिति का सदस्य बन सका न वह अपने प्रधान शत्रु सुलीवान को ही हटा सका । सचालको ने कलकत्ते यह आदेश भेजा कि जागीर की माल-गुजारी क्लाइव के प्रतिनिधि को न दी जाय । क्लाइव ने अदालत में कपनी पर दावा दायर कर दिया । कानूनी लडाई शुरू हो गई। कपनी की ओर से उत्तर दिया गया कि जागीर देने का बगाल के नवाब को कोई अधिकार न था—यह अधिकार तो दिल्लीश्वर को ही हो सकता था और संभव था कि एक दिन कपनी को सारे रुपये के लिए जिम्मेवार होना पडे। क्लाइव का प्रत्युत्तर था कि अगर मीर जाफर को कुछ भी देने का अधिकार न था तो कंपनी की अपनी हकीअत के बारे में क्या कहा जा सकता था—उसे मीर जाफर से जो कुछ मिल चुका था उस पर उसका अपना क्या अधिकार हो सकता था ?

मामला विचाराधीन ही था कि इस देश में मीर कासिम से कपनी की लडाई छिड गई और फरवरी १७६४ म यह खबर इगलैण्ड पहुची कि कई अंगरेज मारे जा चुके थे—बगाल में स्वय कपनो विपन्न हो रही थी। इसका शेयर-बाजार पर असर पडना और उससे शेयरहोल्डरो में घबराहट फैलना स्वाभाविक था। चारो ओर से यह माग आने लगी कि परिस्थिति को काबू में ले आने और कपनी को खतरे से बचाने के लिए पलासी-विजेता क्लाइव फिर बगाल भेजा जाय । वास्तव में क्लाइव भाग्यशाली था । जो यह कहने लगे थे कि अव्वल तो उसने बगाल या बिहार में कोई

ऐसी बहादुरी दिखाई ही नही थी और अगर बहादुर कहा भी जा सकता था तो उसके साथ भ्रष्टाचारी, नीच और कृतघ्न भी था, उन आलोचकों को मौन हो जाना पड़ा और उसके विरोधियो की ही निन्दा होने लगी । क्लाइव ने इस अवसर से खूब ही लाभ उठाया और जब उसे फिर कलकत्ते जाने को कहा गया तब अपनी शर्तो को मंजूर कराके ही वह जहाज पर सवार हुआ। मार्च-अप्रैल में होने वाले संचालक-निर्वाचन में उसने अपने शत्रु सुलीवान को पछाड़ दिया ; नये गवर्नर की हैसियत से अपने लिए विशेष अधिकार प्राप्त कर लिये ; और उसकी दृष्टि से सब से बड़ी बात यह हुई कि सचालको ने दस साल के लिए उसकी जागीर पर उसका या उसके प्रतिनिधि का अधिकार रहने दिया—यद्यपि आगे के लिए यह नियम कर दिया गया कि बिना उनकी इजाजत के कंपनी का कोई भी कर्म्मचारी ४,०००) से अधिक किसी भी पुरस्कार के रूप में न ले सकेगा।

बंगाल पहुँचकर जब क्लाइव ने शाह आलम से कंपनी के लिए दीवानी हासिल कर ली तब उसे अपने देश में सुयश के साथ धन कमान का भी अच्छा अवसर मिल गया। कारण कि यह समाचार वहा पहुँचने से पहले ही उसन अपने एजंट की मार्फत कंपनी के शेयर 'पोते' करा लिये थे ।

१७६७ में बंगाल से घर लौटने पर क्लाइव ने ऐसा प्रपंच रचा कि उसकी जागीर की मीआद और दस साल बढ़ा दी गई।

पर कुछ ही समय बाद उसके विरोधियो का जोर फिर बढा और पार्लमेंट ने उसके कारनामो की खास तौर से जाच कराई। वहा तो बहुमत ने उसे अपराधी नही ठहराया पर लोकमत उसके पक्ष में न हो सका। बल्कि उसे लगा कि जिन लोगो से उसे शाबाशी मिलनी चाहिए थी वे भी मन ही मन उसे धिक्कारने लगे थे । इंगलैण्ड के बादशाह (जार्ज तृतीय) ने भी अपने एक खत में यहां तक लिख दिया था कि क्लाइव की "लूट" का समर्थन करना देश के हित की उपेक्षा ही कही जा सकती थी । इन बातों का नतीजा यह हुआ कि क्लाइव के अंतिम दिन सुख-शान्ति से न बीत सके। व्यावहारिक माप-

दंड से जीवन मे पूर्णत सफल होते हुए भी उमने २२ नवम्बर १७७४ को अपने गले पर आप ही छुरा चला कर आत्मघात कर लिया।

(४) पृष्ठ ४२३—पार्लमेंट-द्वारा जाच होने पर यह साबित हुआ था कि १७५७ और १७६६ के बीच, कपनी और उसके कर्म्मचारी, विभिन्न अवसरो पर मीर जाफर, मीर कासिम, नज्मुद्दौला, शुजाउद्दौला आदि मे अपने कहे अनुसार प्राय ६७ लाख पौंड पा चुके थे। यह रकम दो भागो में विभक्त थी—पुरस्कार और क्षतिपूर्ति। 'पुरस्कार'-सम्बन्धी विवरण पाने वालो के अपने बयान के ही आधार पर यह था—

		पौंड
(क) पुरस्कार		
(१) मीर जाफर को पहली बार गद्दी दिलाते समय		२,०१६,७०५
	पौंड	
क्लाइव (नकद)	२३४,०००	
" (जागीर से होने वाली आय*)	७९२,५००	
	१,०२६,५००	
गवर्नर ड्रेक	३१,५००	
मेजर किलपैट्रिक, वाट्स, स्क्राफ्टन, लुशिंगटन आदि अधिकारी	३८४,२०५	
स्थल-सेना और जल-सेना	५७७,५००†	
	२,०१६,७०५	

*यह आय ३०,००० पौंड वार्षिक थी। यहा २६ साल ५ महीने की अर्थात् दिसम्बर १७५७ से मई १७८४ तक की आय शामिल कर ली गई है।

†इसमें से क्लाइव का हिस्सा २२,५०० पौंड हुआ था। वह उसके नाम पड़ने वाले २३४,००० पौंड में शामिल है।

(२) मीर कासिम को गद्दी दिलाते समय			२००,२६९
(३) मीर जाफर को दूसरी बार गद्दी दिलाते समय			४३७,४९९
		पौंड	
	स्थल-सेना	२९१,६६६	
	जल-सेना	१४५,८३३	
		४३७,४९९	
(४) १७६४ मे मेजर मुनरो और उसकी सेना			६२,६६६
		पौड	
	मेजर मुनरो* (बलवन्त सिंह से)	१०,०००	
	" (शुजाउद्दौला से)	३,०००	
	मेजर मुनरो के अफसर ,,	३,०००	
	" के सैनिक (बनारस के व्यापारियो से)	४६,६६६	
		६२,६६६	
(५) नज्मुद्दौला को गद्दी दिलाते समय, स्पेंसर, जान्स्टन, मिडल्टन आदि			१३९,३५७
(६) १७६५ मे सेनापति कारनक			३२,६६६
		पौड	
	" (बलवन्त सिंह से)	९३३३	
	" (शाह आलम से)	२३,३३३	
		३२,६६६	
(७) १८६६ में क्लाइव (मीर जाफर की बेगम से)			५८,३३३
जोड़			२,९५०,४९५

*मुनरो कारनक की तरह क्लाइव का कृपापात्र न था, इसलिए उसे जो इनाम देने का शाह आलम और मीर जाफर वादा कर चुके थे वह उसे न मिल

		पौंड
(ख) क्षतिपूर्ति		
(१) मीर जाफर को पहली बार गद्दी दिलाते समय		२ १५०,०००
	पौंड	
कपनी	१,२००,०००	
अगरेज व्यापारी	६००,०००	
हिंदुस्तानी ,,	२५०,०००	
अरमनी ,,	१००,०००	
	२,१५०,०००	
(२) मीर कासिम को गद्दी दिलाते समय		६२,५००
(३) मीर जाफर को दूसरी बार ,, ,,		६७५ ०००
	पौंड	
कंपनी	३७५ ०००	
व्यापारी	६००,०००	
	६७५,०००	
(४) शुजाउद्दौला को १७६५ मे गद्दी दिला देने पर		५८३,३३३
		३,७७०,८३३
(क) और (ख) का जोड़		६,७२१,३२८ पौंड*

(५) पृष्ठ ४२९—कुछ लेखक भूल से यह लिख गये है कि लुत्फुन्निसा ने अपने पति के कारागार में ही प्राण त्याग दिये थे । उदाहरणार्थ, कविवर नवीनचन्द्र सेन के "पलाशिर युद्ध" में ऐसी ही बात मिलती है—

सका । अन्त में उसके लडने-झगडने पर कपनी ने उसे बक्सर की लडाई जीतने के पुरस्कार के रूप में दो लाख रुपये दिये।

*बोल्ट्ज के दिये हुए (सशोधित) विवरण के आधार पर । इसके ६ करोड़ से अधिक रुपये हुए।

"रुधिर-स्रोत, शोक के कारण, श्रान्त, भ्रान्त-सी हो गई,
बैठ न सकी लेटकर दुखिया, शीघ्र सदा को सो गई।"

—'मधुप' कृत हिन्दी अनुवाद।

वास्तव मे लुत्फुन्निसा १७८७ में भी जीती-जागती थी। उस साल उसने गवर्नर-जनरल के पास एक आवेदन-पत्र भेजकर उसका ध्यान अपनी दीन-हीन अवस्था की ओर आकर्षित किया था और अपनी मासिक वृत्ति में बढती की प्रार्थना की थी। उससे जान पडता है कि नवाब नाजिम हो जाने पर मीर जाफर ने उसकी वृत्ति ६००) मासिक नियत की थी, पर १७८७ में उसे अपनी पोतियो के हिस्सेदार हो जाने के कारण १००) ही मिल रहा था। इनमें दो उस समय भी कुवारी थी—कैलेन्डर आव पर्शियन कारेसपान्डेन्स, भाग ७।

परिशिष्ठ

(१)

खुशालचन्द के बाद

हरखचंद को जगत्सेठ की पदवी गवर्नर-जनरल की सिफारिश पर मुबारकुद्दौला से मिली। अब इसके लिए भी शाह आलम की स्वीकृति की कोई आवश्यकता नही रह गई थी।

इस देश में नाम की महिमा सदा से ही बडी रहती आई है। 'जगत्सेठ' पदवी उस समय हरखचद के परिवार के लिए अत्यन्त मूल्यवान् वस्तु रहा होगी।

यथार्थ बात यह थी कि उनके लिए नगर-सेठ की पदवी भी अतिशयोक्ति ही होती।

वारेन हेस्टिग्स पाप का घडा सिर पर लेकर फरवरी १७८५ में इगलैड के लिए रवाना हुआ। पार्लमेंट में बर्क, फाक्स आदि ने उस पर कितने ही अभियोग लगाये और उस मामले की सुनवाई हाउस आव लार्ड्स में समय समय पर सात साल तक होती रही। अन्त में हेस्टिग्स को कोई दड तो न मिला, पर वह बरबादी से न बच सका।

हेस्टिग्स के प्रस्थान से पहले ही मुर्शिदाबाद के सराफ वहा फिर टकसाल खुलवाने का निष्फल प्रयत्न कर चुके थे। उसके पास जो आवेदन-पत्र भेजा गया था उस पर हस्ताक्षर करने वालो में जगत्सेठ हरखचद के पिता सुमेरचंद, शभुचरण दत्त, गोकुलचद, गोपालदास,* सन्यासीदास आदि महाजनो के हस्ताक्षर

---

*बनारस वाली कोठी के मालिक।

थे। जगत्सेठ की ओर से १७८९ में फिर ऐसी ही चेष्टा की गई। पत्र में कंपनी का ध्यान मुद्रा के अभाव के कारण उपस्थित होने वाले संकट की ओर आकर्षित किया गया और "व्यापारी, सराफ, किसान" सब की भलाई के लिए मुर्शिदाबाद में टकसाल खोलने की अनुमति मांगी गई। पर वह अनुमति नहीं मिली।

"मुताखरीन" के अँगरेजी अनुवादक ने पूर्वापर की तुलना करते हुए लिखा था कि "फतहचंद के समय में जगत्सेठ के लिए, दो करोड़ (वह भी केवल आरकाटी रुपयों में) लुट जाने पर भी, सरकार को पचास लाख से एक करोड़ तक की दर्शनी हुंडी देते जाना साधारण बात थी। आज कल के जगत्सेठ १७८७ में १४०,०००) की हुंडी का भी भुगतान कर सके हैं तो कई किस्तों में ही।" अपने धन का अधिकांश या तो खुशालचंद स्वयं लुटा चुके थे या उनके मरने पर वह जहां तहां डूब चुका था। उनके परिवार में किंवदन्ती* यह चली आई है कि जो निधि गड़ी हुई थी उसका वह सहसा मर जाने के कारण किसी को पता न बता सके थे। अपने चचा गुलाबचंद से वरासत में कुछ धन पाकर ही हरखचंद अपने नाम की थोड़ी लाज रख सके थे।

कहा गया है कि हरखचंद निस्संतान थे; एक वैरागी के उपदेश से उन्होंने विष्णु की आराधना की और वैष्णव† हो गये। उन्होंने ही वह विष्णु-मंदिर बनवाया जिसका उल्लेख ऊपर (पृष्ठ ६०) हो चुका है। पर यह होते हुए भी, इनका परिवार जैनी ही बना रहा। इनके दो पुत्र हुए जिनमें एक का नाम इंद्रचंद रखा गया और दूसरे का विष्णुचंद। हरखचंद के बाद इंद्रचंद जगत्सेठ हुए, और संवत् १८७९ में इनके २७ वर्ष की ही अवस्था में मर जाने पर, इनके पुत्र गोविन्दचंद।

गोविन्दचंद को कंपनी ने "जगत्सेठ" स्वीकार नहीं किया, जिसका कारण संभवत: यह था कि आर्थिक स्थिति और भी खराब हो जाने के कारण वह

---

* मि० लिट्ल।

† "मुर्शिदाबाद गैजेटियर।"

अपने घर के पुराने जेवर वेच वेच कर ही अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने लगे थे । पर १८४३ में कपनी ने उन्हें १२००) की मासिक वृत्ति देना स्वीकार कर लिया ।

गोविन्दचद की १८६४ में मृत्यु हुई । उनके भी कोई पुत्र न था पर वह १८४५ में गोपालचद को गोद ले चुके थे । इन्हें सन् १८५२ में वहादुर शाह सानी से महाराज की पदवी मिली। गोपालचद और विष्णुचद के पुत्र कृष्ण (किशन) चद के आवेदन करने पर भी सरकार ने मासिक वृत्ति को १२००) की जगह ८००) कर दिया और वह भी इस शर्त के साथ यह रुपया कृष्णचद को ही मिला करेगा और यह वृत्ति परिवार-मात्र के भरण-पोषण के लिए समझी जायगी। इस पर महाराज गोपालचद ने आपत्ति की तो भारत-सचिव ने निर्णय किया कि ८००) में से ३००) के हकदार वह होंगे । यह गोपालचद को स्वीकार न हो सका। इनकी मृत्यु हो जाने पर जगत्सेठ की स्त्री गुलाव (गोलाप) चद को १८७८ में गोद ले चुकी थी। जगत्सेठानी को सेठ कृष्ण (किशन) चद के मर जाने के वाद ३००) मासिक वृत्ति मिलने लगी, पर १८६१ में उनके मर जाने पर वह विलकुल वद कर दी गई।

गुलावचद के ही समय में १ ली मार्च १६०२ को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड कर्जन मुर्शिदावाद गया । इतिहास-प्रेमी होने के कारण उसने महिमापुर के खडहरात जा देखे और वहा उसे सेठ-परिवार को मुगल वादशाहो से मिले हुए फरमानो और जेवरो के अलावा, पद्रहवी शताब्दी के वाद के कुछ दुष्प्राप्य सिक्के देखने का भी अवसर मिला। जिस फरमान के द्वारा फर्रुखसियर ने फतहचद को "सेठ" की उपाधि दी थी उसे गुलावचद ने कलकत्ते की "विक्टोरिया मेमोरियल" नामक सस्था को समर्पित कर दिया ।

महिमापुर में प्राचीन सेठ-भवन का भागीरथी के प्रकोप से वचा हुआ भाग १८६६ के भूकप में ध्वस्त हो चुका था । इसलिए गुलावचद ने वहा से थोडी ही दूर पर अपने परिवार के लिए एक नया मकान वनवा लिया था। उनकी १६१२ में मृत्यु हुई और उनके उत्तराधिकारी उनके पुत्र—फतहचद और उदयचद हुए । सरकार ने इस घराने की पुरानी पदवी को वरसो वाद फिर

स्वीकार कर लिया । इसलिए बड़े भाई फतहचंद उस क्षेत्र में भी "जगतसेठ" ही कहाने लगे ।

(२)

जगत्सेठ-वश

इडियन हिस्टारिकल रेकर्ड्स कमीशन का पाचवा अधिवेशन १९२३ में कलकत्ते मे हुआ था । उसके लिए प्रसिद्ध जैन विद्वान् और पुरातत्त्व-प्रेमी स्वर्गीय बाबू पूर्ण चन्द नाहर ने एक लेख अगरेजी मे मुर्शिदाबाद के जगत्सेठो की वशावली के सम्बन्ध मे लिखा था । उसका साराश यह है :—

"अप्रकाशित जैन लेखो और हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज के दौरे मे मुझे मुर्शिदाबाद के जगत्सेठो की वशावली का एक लिपिबद्ध वृत्तान्त मिला । १९२१ मे जब मेरी मि० लिट्ल से मुलाकात हुई, उन्होने मुझसे अपनी सगृहीत सामग्री के आधार पर जगत्सेठो का एक वशवृक्ष तैयार करने का अनुरोध किया। मि० लिट्ल उस समय इस परिवार का सच्चा और सविस्तर इतिहास लिखने की तैयारी कर रहे थे, और कुछ ही दिन पहके, इडिया आफिस के कागजात की छान-बीन कर, इगलैण्ड से लौटे थे। मैने उनके अनुरोध का सहर्ष पालन किया और अपनी जानकारी के अनुसार जगत्सेठो का एक वशवृक्ष तैयार किया। मि० लिट्ल को वह और प्रचलित वशवृक्षो की अपेक्षा अधिक पूर्ण और प्रामाणिक जॅचा, और वह अपने ग्रन्थ मे, जैसा कि उन्होने मुझे लिख भेजा, उसका सन्निवेश कर देने के इच्छुक थे। पर इसी बीच उनकी असामयिक मृत्यु हो गई और उनका विचार विचार ही रह गया। यही कारण है कि मुझे अपने अनुसन्धान का फल आज स्वतत्र रूप से प्रकाशित करना पडा।

"जगत्सेठो की जाति जैन और कुल ओसवाल है । यहा उस कुल का इतिहास देने के लिए स्थान नही है। उस पर एक खासी बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है, क्योंकि वास्तव मे वह मारवाड के कुछ क्षत्रिय कुलो का वैदिक धर्म परित्याग कर जैन धर्म मे दीक्षित होने का इतिहास है । यहा इतना ही कहना

स्पष्ट होगा कि इस कुल के लोगो ने पहले पहल, जोधपुर राज्य के ओसिया नामक स्थान मे जैन धर्म की दीक्षा ली थी, और इसी कारण वे ओसवाल कहलाये । जगत्सेठो का गोत्र गेल्हडा है। कहा जाता है कि सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे आचार्य जिन हससूरि ने गिरिधर सिह नामक एक गुहलोट-वशी राजपूत को जैन धर्म मे दीक्षित किया। गिरिधर के पुत्र का नाम गेलाजी था, और उमी के समय से इस वश का गोत्र गेल्हडा कहाने लगा । इस कुल के लोग जैन सम्प्रदाय के पार्श्वनाथ गच्छ के अनुयायी होते है । जगत्सेठो की वशावली मे हमे सबसे पहले सिहराज का नाम मिलता है । फिर अक्षयराज का, फिर करमचन्द का । करमचन्द के ही पुत्र हीरानन्द थे जो नागौर छोड कर पटने मे आ बसे । उनके सात पुत्र और एक कन्या थी। उनके पाचवे पुत्र सेठ मानिकचन्द की बडी स्त्री मानिक देवी की प्रेरणा से किसी कवि ने 'भूपाल चतुर्विशतिक" नामक काव्य की रचना की थी । उसकी एक सचित्र हस्तलिखित प्रति इस समय भी रह गई है और उसी के प्रशस्तिश्लोक मे हीरानन्द से लेकर उनके पौत्रो तक की सच्ची वशावली मिलती है । उस प्रति मे किसी सन्-सम्वत् का उल्लेख नही है, पर उसमे जो नाम दिये गये है वे वय क्रम के अनुसार है। यह बात उस हिन्दी पुस्तिका के सम्बन्ध मे नही कही जा सकती जो उस घराने के पास चली आती है और जिसका अनुवाद मि० लिट्ल ने अपने लेख के अन्त मे दिया है। जगत्सेठो की वशावली-विषयक कुछ बाते एक दूसरे हस्तलिखित ग्रन्थ मे भी मिलती है। सम्वत् १७७७ (सन् १७२० ई०), फाल्गुन कृष्ण २, शुक्रवार को इसकी रचना पूरी हुई थी, और यह ग्रन्थ भी उक्त मानिक देवी की ही प्रेरणा का फल था। मेरे लेख का आधार एक और ग्रन्थ है जिसे जगत्सेठ इन्द्रचन्द के किसी सम्बन्धी ने लिखा था, और जिसमे जगत्सेठो के परिवार का सक्षिप्त विवरण सकलित है। ग्रन्थ नागरी लिपि मे है और इसमे विक्रम-सम्वत् के साथ हिजरी साल भी दिया हुआ है। मुझे यह ग्रन्थ अपने स्वर्गवासी पिता राय सितावचन्द नाहर बहादुर के करकमलो से प्राप्त हुआ था। पर मैने उसे तो जगत्सेठ घराने को भेट कर दिया और अपने पास उसकी नकल रख ली।

"हन्टर ने अपने "स्टैटिस्टिकल एकौन्ट आव् बगाल" (भाग ९, पृष्ठ २६४) मे शुगोलचन्द और होशियालचन्द का नामोल्लेख किया है। पर यह ठीक नही है। पारसनाथ पहाडी की मूर्तियो या पादुकाओ पर खुशालचन्द विरानी का नाम खुदा हुआ मिलता है । यह मानिक देवी के सगोत्री थे । हन्टर ने १८१६ के एक ऐसे लेख का जिक्र किया है जिसमे रूपचन्द जगत्सेठ का नाम आता है। पर मुझे आज तक वह लेख कही देखने को न मिला। सच तो यह है कि पारसनाथ की किसी भी पादुका या विंव पर ऐसा कोई प्राकृत या सस्कृत लेख अकित नही जिसमे किसी भी जगत्सेठ का नामोल्लेख हो । हा, महिमापुर में जगत्सेठो की ठाकुरवाड़ी मे मुझे चादी की एक ऐसी मूर्ति अवश्य मिली थी जिसके पीठ पर सेठ मानिकचन्द के साथ उनकी धर्मपत्नी मानिक देवी का नाम अकित था। यह लेख सवत् १७७६ (सन् १७१९ ई०) का है; और मैं इसे अपने "जैन लेख-सग्रह" मे प्रकाशित कर चुका हूँ। वहा इसका नम्बर ७६ वा है । सवत् १८३० (सन् १७७४ ई०) के दो लेख और है, जिनके नम्बर क्रमश ५९ और ६० हैं । मुर्शिदाबाद जिले मे जियागज से करीव एक मील उत्तर, कीरतवाग मन्दिर मे, काले पत्थर की दो भव्य और विशाल मूर्तियां हैं; और इन लेखो के मूल उन्ही के पीठों पर अकित है। दोनो ही लेखो में गेलहड़ा गोत्र के जगत्सेठ फतहचन्द, उनके पुत्र सेठ आनन्दचन्द और उनकी पुत्री अजबो वाई का नामोल्लेख मिलता है। उनसे यह भी ज्ञात होता हैं कि अजवो वाई का विवाह कमलनयन के पुत्र उदयचन्द से हुआ था, जिनका गोत्र गांधी था। कीरतवाग मन्दिर मे ही दो लेख और मिले, जिनके नम्बर ६१ और ६२ है। इनमे केवल कमलनयन, उदयचन्द और अजवो वाई का नामोल्लेख है। इसी साल का एक और महत्वपूर्ण लेख है, जिसने मेरे ग्रन्थ मे २६० वा नम्बर पाया है। इसका मूल राजगृह के एक मन्दिर मे पादुका पर अकित है । उसमे इस परिवार के गोत्र के साथ जगत्सेठ फतहचन्द, उनके पुत्र आनन्दचन्द, उनके पौत्र महतावराय और उनकी स्त्री शृगार देवी के नाम पाये जाते है। सम्वत् १८११ (सन् १७५४ ई०) का एक और लेख है (न० ८६) जिसमे काशी के स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद सितारएहिन्द के पूर्वज

नभाचन्द, अमरचन्द और मुहकम सिंह की नामावली मिलती है। सभाचन्द आगरे के राय उदयचन्द के पुत्र थे और प्रथम जगत्सेठ फतहचन्द के सगे भाई।"

उपर्युक्त लेख

न० ७६

स० १७७६ वैशाख शुक्ल ५ तिथी। ओसवाल वशीय श्रेष्ठ श्री माणिकचद जी स्वधर्म पत्नी माणिक देवी प्रतिष्ठित श्रीमत् चतुर्विशति जिन बिंब चिर जयतात्। श्रेयोस्तु। भद्र भवतु।

न० ५९

प्रथम पक्ति—श्री स० १८३० माघ शुक्ल ५ चन्द्रे श्री पार्श्वचन्द्र गच्छे श्री हर्षचदजी नित्यचन्द्रजीत्कानामुपदेशेन

द्वितीय पक्ति—ओसवशे गाधी गोत्रे साहजी श्री कमल नयन जी तत्पुत्र सा० उदयचन्द्रजी तत्धर्मपत्नी तथा ओस व० गहलडा गोत्रे जगत्सेठजी श्री फतेचन्द्र जी तत्पुत्र सेठ आ

तृतीय पक्ति—णन्द चन्द्र जी तत्पुत्री बाइ अजबोजी श्री मत्पार्श्वनाथ बिंब कारापित। प्रतिष्ठित च वि० सूरिभि श्री भानुचन्द्रेणेति आचद्रार्कच्चिर नन्दतात् भद्र भूयाच्च श्रिय।

न० ६०

प्रथम पक्ति—श्री स० १८३० माघ शुक्ल ५ चन्द्रे श्री पार्श्वचद्र गच्छे श्री हर्षचद्र जी नित्यचन्द्रजीत्कानामुपदेशेन

द्वितीय पक्ति—ओस व० गाधी गोत्रे सा० श्री कमलनयन तत्पुत्र सा० उदयचन्द्र जी तत्धर्मपत्नी तथा ओस वशे गहलडा गोत्रे

तृतीय पक्ति—जगत्सेठ श्री फतेचन्द्र जी तत्पुत्र सेठ आनन्दचन्द्रजी तत्पुत्री बाइ अजबोजी श्री वासुपूज्य बिंब कारापित प्र० सूरि श्री भानुचन्द्रणेति भूयाच्छिव सदा।

न० ६१

प्रथम पक्ति—स० १८३० वर्षे माघ शुक्ल ५ चन्द्रवासरे ओस वशे गाधी गोत्रे सा० श्री कमल नयनजी तत्पुत्र सा०

द्वितीय पक्ति—उदयचन्द जी तद्भ.र्या बाइ अजबोजीकेन श्री प्रथम आर्य दिन्न गणधर पादुका कारापित।

न० ६२

प्रथम पक्ति—स० १८३० वर्षे माघ शुक्ल ५ सोमे गाधी गोत्रे सा० श्री कमल नयन जी तत्पुत्र सा०

द्वितीय पक्ति—श्री उदयचन्द्र जी तत्धर्मपत्नी बाइ अजबोजीकेन श्री वासुपूज्य प्रथम सुभूम गणधर

तृतीय पक्ति—पादुका कारापित।

न० २६०

प्रथम पक्ति—श्री सम्वत् १८३० माघ शुक्ल ५ चन्द्रे ओस वशे गहलडा गोत्रे जगत्सेठजी श्री फतेचदजी तत्पुत्र सेठ आणद चन्दजी तत्पुत्र जगत्सेठ

द्वितीय पक्ति—जी श्री महताब राय जी तद्धर्मपत्नी जगत्सेठ णी जी श्री श्रृंगार देवी श्री मदेकादश गणधर पादुका कारापित। स्थ.० राजगृह नगरोपरि वैभार गिरौ।

न० ८६

ओ भगवते नम । सम्वत् अठारह सै ग्यारह (१८११) कृष्ण द्वादसी भृगु वैशाख। ओसवाल कुल गोत्र गोखरू श्री मज्जैन धर्म की साख । सभाचन्द के अमरचन्द सुत जिन सुत मुहकम सिंह सुनाम। तिनके धाम रायमन्दिर यह भ.गीरथी तीर विश्राम।

(३)

राजा शिवप्रसाद सितारएहिंद का वंश-परिचय

"भाषा कल्पसूत्र" नाम की पुस्तक १८८७ मे लखनऊ के मुशी नवलकिशोर प्रेस से छप कर प्रकाशित हुई थी। उसकी भूमिका मे राजा शिवप्रसाद सितारए हिन्द ने "कुछ बयान अपने ख़नदान का और कारण इस ग्रन्थ के छपने का" दिया है। राजा शिवप्रसाद का वश वही है जिसमे पहले जगत्सेठ का जन्म हुआ था। उक्त भूमिका यहा ज्यो की त्यो उद्धृत की जाती है—

"पुराने क़ागजो से मालूम होता है कि जयपुर की अमलदारी मे रणथभौर के बीच जो एक बडा मशहूर किला है (वहा ?) सवत् १०४५ के दर्मियान परमार वशी शाखेश्वरी श्रेष्ठि धाधल हुआ। उसके कोई लडका न था। जैन धर्म पालक पूज्य श्री जयप्रभुसूरि गुरु के प्रतिबोध से अछुप्ता देवी की आराधना की। देवी ने स्वप्न मे वर दिया। देवी के हस्तपुट मे पत्रपुष्प और गोखरू था, इसी से जब लडका हुआ उसका नाम गोखरू रक्खा और उसी से गोखरू गोत्र चला। सम्वत् १०९१ मे देहरा बनाया, जयप्रभुसूरि ने प्रतिष्ठा कराई, श्री शत्रुञ्जय का सघ निकाला। उसका लडका धर्मण, उसका कर्मण, उसका पुहपा, उसका भग्गा, उसका अवका, उसका तोला, उसका मेहका, उसका हीरा, उसका मेघा, उसका भाणा। जब सम्वत् १३३५ मे सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने रणथभौर का किला तोड, भाणा अपने लडके नायक समेत बादशाह के साथ चपानेर चला आया। नायक का बेटा खीमा, उसका जयवन्त, उसका वीरा, उसका गोरा सवत् १४८५ मे अहमदाबाद में आ बसा। उसका बेटा अभयड, उसका वासा, उसका वस्ता, उसका बहला, उसका शिवसी, उसका कर्मसी, उसका राका, उसका श्रीवन्त, उसका पदमसी। सम्वत् १६८४ मे पदमसी साह खभात मे आ बसा। वहा उसने श्री कल्याणशागर सूरि से श्री पार्श्वनाथ स्वामी का स्फटिकमय बिम्ब प्रतिष्ठित कराया, पाच सोने के कल्पसूत्र और चार मोती के पूठे भेंट किये, श्री शत्रुजय का सघ निकाला, पुस्तक-भडार भरा।

"उसके दो बेटे थे, श्रीपति और अमरदत्त। अमरदत्त ने शाहजहां बादशाह को एक ऐसा हीरा नजर किया कि बादशाह ने प्रसन्न होकर राइ की पदवी बख्शी और दिल्ली ले गया। उसके दो लडके हुए, राइ उदयचन्द और केसरी सिह। राइ उदयचन्द के चार लडके—राइ जगत्मित्रसेन, सभाचन्द, फतहचन्द और राय सिह। फतहचन्द ने कहत्साली मे गल्ला सस्ता करने के कारण मुहम्मदशाह से जगत्सेठ की पदवी पाई, लेकिन अपने बहू-बेटे समेत मुर्शिदाबाद मे, अपने मामू सेठ माणिकचन्द, नागौर वाले हीरानन्द साह के बेटे की गोद जा बैठे। हीरानन्द साह की बेटी धनबाई राइ उदयचन्द को व्याही थी। राइ सभाचन्द के राइ अमरचन्द, और राइ अमरचन्द के राइ मुहकम सिह और राजा डालचन्द।

"नादिरशाही मे घर के दो आदमी कतल होने के कारण राइ मुहकम सिह और राजा डालचन्द दिल्ली छोडकर मुर्शिदाबाद आ बसे। निदान शाहजहा से ले कर मुहम्मदशाह तक, बल्कि नाम को शाह आलम और नव्वाब वजीर आसफुद्दौला तक, बादशाही जवाहिरख ने की मुकीमी तो ख नदानी उहदा रहा, लेकिन और भी बहुत से काम भाई, बेटे, भतीजो के सुपुर्द थे। कोई मसबदार था, कोई सूबो की साइर का इजारदार था। कोठिया जा बजा जारी थीं; खजाने हाथ मे थे, चैन से गुजरती थी; धन दौलत रखने की मानो जगह बाकी न रही थी।

"इस अर्से में बगाल के सूबेदार नव्वाब नाजिम कासिम अली खा ने जुल्म पर कमर बाधी। रअय्यत तग आई। जनाने मे हरदम खौफ लगा रहता था कि नव्वाब बेइज्जत कर डाले। नाचार अगरेजो से जा मिले। रुपये की मदद दी, नव्वाब पर चढा लाये। नव्वाब को खबर हो गई। राइ मुहकम सिह का परलोक हो चुका था। राजा डालचन्द और जगत्सेठ फतहचन्द के पोते जगत्सेठ महताब राय को पकड मगाया और कैद किया। घर मे सलाह हुई कि राजा डालचन्द अपने बाप के अकेले है और जगत्सेठ फतहचन्द की औलाद बहुत। पस, पहरेवालो को मिलाकर राजा डालचन्द के बदले जगत्सेठ महताब राय के चचेरे भाई सरूपचन्द तो कैदखाने मे चले आये। (क्या समय

था !) और राजा डालचन्द वहा से भाग कर बनारस मे नव्वाब वजीर सूबेदार अवध की हिमायत मे आ बसे । कासिम अली खां इतना ही जानता था कि दो भाई जगत्सेठ कैद है । जब भागा तो दोनो को साथ ले लिया, मुगेर पहुंच कर तीरो से मार डाला । चुन्नी नाम एक खिदमतगार साथ था। जुदा होने को बहुत समझाया, न माना । जब नव्वाब तीर मारता था, सामने आ खडा हो जाता था—मानो दोनो भाइयो की ढाल बनता था । जब चुन्नी मर कर गिर लिया है तब दोनो भाइयो के तीर लगा है (कैसे नौकर थे !)। हमारी दादी कहती थी कि उस काल जनाने मे सब लोग बारूत बिछा कर बैठते थे कि जो नव्वाब के आदमी बेइज्जत करने आवे, आग लगा कर उड जावे । परन्तु भगवान की कृपा से जल्द ही शहर मे अगरेजो की डौडी पिटी। लोगो के जी मे जी आया, सूखा धान फिर लहलहाया ।

'यह राजा डालचन्द हमारे घराने के मानो भूषण हो गये । अजब पुरुष थे । तत्वज्ञान और योगाभ्यास के प्रभाव से कहते है कि उनके पाव के नीचे चीटी नही मरती थी । खेचरी सिद्ध हुई थी, जिव्हा भृकुटी के मध्य तक पहुँचती थी । आसनादिक और धोती नेती वज्रोली की क्या बात है, सब सिद्ध थी और खेचरी ही मुद्रा कर के देहत्याग किया । सस्कृत, पारसी, अरबी, बगला, वृजभाषा अच्छी तरह जानते थे, ज्योतिष और वैद्यक मे भी निपुण थे। बहुतेरे ग्रन्थ नये रचे, बहुतेरे तर्जुमा अर्थात् भाषान्तर हुए । हाथी घोडे की सवारी, लकडी, बाक, पटा, तीरदाजी, गाना-बजाना, तैरना सब मे पूरे थे । घडीसाज की क्रिया, बढई की, सुनार की, लुहार की, जडिये की, पटुए की, बंगडी की, दर्जी की, जर्दोज की, मुलम्मेसाज की, मुसव्विर की सारी क्रिया अपने हाथ से कर सकते थे । और फिर वैसे ही उदार और सूर भी थे । जिस समय राजा चेत सिंह और वारन हेस्टिग्ज का बखेडा हुआ, नव्वाब इब्राहीम अली खा ने कहला भेजा कि हम वारन हेस्टिग्ज की रिफ़ाकत के बाइस नाहक मारे जाते है। उसी दम जनानी डोली भेज कर चुपचाप बुलवा लिया और अपने मकान मे छुपा रक्खा। ऐसे समय मे कौन किसके साथ दोस्ती निभाता है और साहस करके अपनी जान खतरे मे डालता है ?

"उनके बेटे राजा उत्तमचन्द* ने जिन्होंने लखनऊ वाले राजा बछराज की बेटी ब्याही थी, पुत्रहीन होने के कारण अपनी बहिन बीवी रत्नकुअर के बेटे बाबू गोपीचन्द को गोद लिया। और उन्ही के बेटे राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने अपने दोनो पुत्र कुवर सच्चित्प्रसाद और कुवर आनन्दप्रसाद की बहुए और अपनी बहिन बीबी गोविन्द कुवर की खातिर, जो जैन धर्म की निरन्तर अवलम्बी है, इस ग्रन्थ को कि जब से राजा डालचन्द ने भाषा में बनवाया† एक ही प्रति घर मे रहा था, उद्धार करके अर्थात् छपवा के अमर किया। जो पढे सुने, दया करके असीस दे कि धर्म मे रति रहे, परलोक सुधरं और कुबुद्धि कभी पास न फटकने पावे। शुभ भूयात्।"

(४)
मानिकचंद के भाई

इस पुस्तक का विषय मानिकचन्द और उनके वशजो का ही वृत्तन्त है। पर हम देख चुके है कि हीरानन्द साह के छ और पुत्र थे, जिनमे (सभवत) चार

---

*बाबू श्याम सुन्दर दास ने राजा शिव प्रसाद सितारएहिंद को बाबू गोपीचद का पुत्र और राजा डालचंद का पौत्र बताया है (पृष्ठ १८२-८३)। यह भूल जान पडती है। राजा बच्छराज के संबन्ध में द्रष्टव्य पृष्ठ ४६७।

† यह सवत् १८३८ की बात है। भाषान्तरकार कोई रामचन्द नामक कवि थे। कल्पसूत्र का मूल प्राकृत वाणी मे था, और राजा डालचन्द के कहने से ही कवि रामचन्द ने उसका "भाशा" में अनुवाद किया। अपने आश्रयदाता के सम्बन्ध मे उन्होंने लिखा है :—

"......जिन जन कुल परसस, गोत्र गोखरू जैनमत ओस-वस-अवतस। सभाचन्द नररायकै अमरचन्द वरराय, तिनके सुन कुलचन्द नृप डालचन्द सुखदाय। सुघराई के सुघर अरु सौहृद सुहृद् सुवान, सुभ सौभाग्य सुभाग्य अरु सुठ सौजन्य सुजान। गुनगाहक गुनवान पै निर्गुन ग्यान निधान, समी दमी नियमी यमी हमी तमी भ्रमभान।"

मानिकचन्द से बडे थे । आपस मे बँटवारा हो जाने पर व कहा गये और क्या करने लगे ? इतिहास में इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर नही मिलता। हा, यह किंवदन्ती चली आती है कि उनकी भी उत्तर भारत के विभिन्न स्थानो मे—बगाल के बाहर—कोठिया थी और उनका कार-बार भी काफी बढा-चढा था।

मि० लिट्ल ने अपने जगत्सेठ-सबधी लेख में उनके अस्तित्व पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा की है । जान पडता है कि एक विशेष अवसर पर कपनी के कर्मचारियो को मानिकचन्द के भाई-भतीजे से कुछ काम पड गया। भतीजे से काम पडा इस बात का ऐतिहासिक आधार है, पर भाई से काम पड़ा यह मि० लिट्ल का अनुमान-मात्र है।

जो हो, मि० लिट्ल की बात सुनने लायक है —

"१७१५ मे जब जान सरमन कलकत्ते से रवाना होने लगा तब कौंसिल ने उसे दिल्ली के दो महाजनो के नाम चिट्ठिया दे कर कहा कि रुपये की जरूरत हो तो इनसे कर्ज ले लेना। एक चिट्ठी लालबिहारी सेठ के नाम थी, दूसरी जुगलकिशोर सेठ के नाम । पर इनसे कुछ काम न चला। २० जुलाई १७१५ को सरमन लिखता है—"रुपया कही न मिला। लालबिहारी तो देने से साफ इनकार करता है या देगा भी तो बडे कडे सूद पर। जुगलकिशोर इस समय आगरे मे है। उसे इस विषय मे पत्र लिख भेजा है, पर सफलता की आशा कम है । कौंसिल दूसरे महाजनो के नाम चिट्ठिया भेज कर यह समस्या हल कर सकती है।" कलकत्ते से पत्रद्वारा दूसरी व्यवस्था की गई। सरमन ने कपनी के "प्रेसिडेन्ट और कौंसिल" पर हुडी कर "गुलालचन्द साह" की कोठी से रुपया लिया । ६ अक्टूबर को वह कौंसिल को लिखता है कि गुलालचन्द साह का गुमाश्ता कह रहा था कि कौंसिल ने हुडी सकार तो ली, पर उसका भुगतान अभी तक नही किया है। सरमन को ९ अप्रैल १७१७ को फिर रुपये की जरूरत पडी । इस बार उसने २५,०००) की हुडी कर काम चलाया। उस हुडी के मजमून से जान पडता है कि इस बार जान सरमन ने रुपया "किशोरी किशनचन्द" के गुमाश्ते से लिया ।

"५ जुलाई को सरमन दो हुडिया करता है एक १२,००० J की, दूसरी १३,००० J की। रुपये देने वाले थे दिल्ली के "किशोरी किशनचन्द" के गुमाश्ते। पर इसके बाद की एक चिट्ठी मे, सरमन इन हुडियो का जिक्र करता हुआ लिखता है कि "यह रकम गुलालचन्द साह की कोठी से ली गई है।" क्या सरमन से यहा कोई भूल हो गई है ? या क्या एक ही कोठी दो नामो से चलती थी और "गुलालचन्द साह" तथा "किशोरी किशनचन्द" मे कुछ भी फर्क न था ? बात चाहे हो, हम इतना जानते है कि ये हुडिया किसी न किसी प्रकार गुलालचन्द साह के हाथ मे आई और उनके द्वारा मानिकचन्द की कोठी को बेच दी गई। गुलालचन्द साह ने खुद पटने मे सरमन से शिकायत की कि 'सुनने मे आया है कि कपनी ने हुडियो के रुपये देने मे सैकडे २ J बट्टा काट लिया है।' उन्होने सरमन से कहा कि 'मानिकचन्द की कलकत्ते की कोठी से पक्की खबर मगा दो कि हुडियो का पूरा पूरा भुगतान हुआ या नही।'

"सरमन अपने एक पत्र मे कौंसिल को सूचित करता है कि हमने मित्तरसेन को दिल्ली मे कपनी का गुमाश्ता मुकर्रर किया है। वह यह भी लिखता है कि "मित्तरसेन का छ महीने का वेतन हम गुलालचन्द साह की कोठी मे जमा करा आये है, और उसके नाम की सारी चिट्ठिया गुलालचन्द साह की कोठी के पते पर जानी चाहिए"। पर दूतदल की डायरी मे यह प्रस्ताव मिलता है कि "मित्तरसेन को प्रति मास १०० J देने के लिए मि० जान सरमन मुरलीधर के पास ६०० J जमा करा दे।" अर्थात् रुपया तो "किशोरी किशनचन्द" की कोठी मे जमा कराना निश्चित हुआ, पर कौसिल को लिखा गया कि "गुलालचन्द साह" की गद्दी मे जमा कराया गया है।

"आगरे मे दूतदल ने खुद "किशोरी किशनचन्द" से रुपये लिये, कोडा जहानाबाद मे उनके गुमाश्तो से। पर एक चिट्ठी जो कलकत्ते भेजनी थी और एक लँगडा ऊँट जिसे बेच देना था "गुलालचन्द साह" के गुमाश्तो को सौपे गये। इलाहाबाद में सरमन ने "किशोरी किशनचन्द" से फिर रुपये लिये। बनारस मे उसे कर्ज लेने की जरूरत न पडी।

"इस विवरण से पता चलता है कि उस समय उत्तर भारत मे एक बडी कोठी थी, जिसका कार-वार पटने से आगरे तक फैला हुआ था। पटना सभवत कार्य्य-केन्द्र था और वहा का काम-काज गुलालचन्द साह देखते थे। आगरे मे प्रधान शाखा थी और वह किशोरी किशनचन्द की देख-रेख में थी। इन स्थानो के वीच मे भी इस घराने की कितनी ही शाखा-प्रशाखाये थी।

"क्या इस घराने का मुर्शिदावाद के सेठ घराने से कोई सम्बन्ध था ?

"इस प्रश्न का उत्तर देते समय एक कठिनाई उपस्थित होती है। हीरानन्द साह के किसी भी पुत्र का नाम गुलालचन्द साह न था। पर बहुत सभव है नाम वास्तव मे गुलावचन्द साह था, सिर्फ किसी कातिव की गल्ती से 'व' की जगह 'ल' लिखा गया, और परवर्ती इतिहासकार आख मूद कर वही गलती दोहराते गये। हम देख चुके है कि दिल्ली के जिन महाजनो के नाम कौसिल ने शुरू में चिट्ठिया दी थी उनमे से किसी ने सरमन को रुपया न दिया। जान पडता है, ऐसी अवस्था मे कौसिल ने मानिकचन्द से सहायता मागी और मानिकचन्द ने अपने भाई की कोठी का नाम वता दिया।

"मित्तरसेन कौन था? अवश्य ही यह शब्द मित्रसेन का अपभ्रंश है। इतिहास से ज्ञात होता है कि राय मित्रसेन मानिकचन्द के दत्तकपुत्र फतहचन्द का वडा भाई था, और वह १७३९ के कत्ले आम में मारा गया था।

"यह तो मानी हुई वात है कि मानिकचन्द के और भाई भी उत्तर भारत के जहा-तहा व्यवसाय करते थे। यहा केवल यही सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि कपनी के दूतदल को जिस कोठी से लेन-देन का काम पडा था वह मानिकचन्द के भाई गुलावचन्द की ही कोठी थी।"

मि० लिट्ल का विचार है कि सरमन की डायरी मे जहा 'गुलालचन्द साह' आया है वहाँ वास्तव मे 'गुलावचन्द साह' होना चाहिए था और इसी से वह अनुमान करते है कि यह नाम मानिकचन्द के भाई का ही था। यहा यह कह देना आवश्यक है कि 'गुलावचन्द' नाम मि० लिट्ल की दी हुई वशावली मे मिलता है। वावू पूर्णचन्द नाहर ने जो वशावली दी है उसमे मानिकचन्द के

भाई का नाम 'गुलालचन्द' मिलता है । इससे मि० लिट्ल के अनुमान की पुष्टि ही होती है। हा, 'मित्तरसेन' को जो उन्होने फतहचन्द का बड़ा भाई (मित्रसेन) मान लिया है यह आपत्तिजनक जान पडता है । क्या उस घराने की अवस्था इतनी दीन-हीन हो गई थी कि मित्रसेन को सौ रुपये पर अगरेजों का गुमाश्ता होना स्वीकार करना पड़ा था ?

१७३५ के लगभग हम मानिकचन्द के भतीजे लालजी को मुर्शिदाबाद में पाते हैं । लालजी के पिता का नाम सदानन्द था, और उनके मुर्शिदाबाद आने का कारण ईस्ट इडिया कपनी से लेन-देन-सँबधी झगडा था। हम देख चुके है कि जान सरमन की अध्यक्षता मे जो दूतदल दिल्ली भेजा गया था उसके साथ ख्वाजा सरहाद नामक अरमनी व्यापारी भी था। सरहाद को उस यात्रा में कुछ रुपये की जरूरत पडी और उसने कपनी से अपना सम्बन्ध बता कर सदानन्द से कर्ज ले लिया। यह रुपया उसने कभी अदा नही किया । इसका कारण यह था कि कपनी से उसे जो रकम मिलनी चाहिए थी वह उसे मिली न थी। १७३४ के करीब वह दुनिया से चल बसा। सदानन्द को मालूम था कि उसका पावना कपनी के जिम्मे था और उसने दिल्ली दरबार मे दर्खास्त की कि हमे अगरेजो से रुपया दिला दिया जाय। वहा से नवाब को हुक्म हुआ कि अगरेजो से सरहाद का पावना अदा करा दो। कुछ समय बाद लालजी स्वयं मुर्शिदाबाद गये और अपने रुपये का कपनी से तकाजा कराने लगे ।

फतहचन्द ने स्वभावत अपने भतीजे का पक्ष लिया और चेष्टा करने लगे कि उनका रुपया वसूल हो जाय। हाजी अहमद भी हर तरह उनकी मदद करने को तैयार था । अगरेजो ने लिखा कि हाजी "फतहचन्द को खुश करने के लिए" लालजी को रुपया दिलाना चाहता है । पहले उन्हे रुपया देने की बात मजूर नही हुई। उनका कहना था कि ख्वाजा सरहाद के जिम्मे कपनी का ही बहुत कुछ पावना रह गया था, वे लालजी का कर्ज कैसे और कहा से चुकाते ? पर अगरेजो को यह बात स्वीकार करनी पडी कि सरहाद उनसे इनाम पाने का हकदार था, और वह रुपया उसे मिला न था। अन्त मे कौसिल ने कासिमबाजार के प्रधान को लिखा कि "जिन शर्तो पर मुनासिब समझो

फतहचन्द से यह मामला तै कर लो। हा, यह ध्यान रहे कि जो रुपया दिया जाय उसके विषय में लोग यह न समझ लें कि यह लालजी के पावने में दिया गया, वल्कि सव यही समझें कि अगरेजो ने यह रकम सिर्फ फतहचन्द को खुश करने के लिए दी है।" कासिमवाजार के कर्मचारियो ने अपने वकील को फतहचन्द के पास भेजकर उनके मन की थाह लेनी चाही। उसे आदेश या कि "अपनी ओर से पहले कुछ मत कहना। सिर्फ लालजी के मामले का जिक्र छेडकर यह अन्दाज लेना कि फतहचन्द कितने से सन्तुष्ट होगे। हा, उनसे इतना कह देना कि कपनी लालजी की माग को जायज नही मानती; वह कुछ देकर झगडा निवटाने को तैयार है तो सिर्फ आपको खुश करने के लिए। वकील फतहचन्द से दो वार मिला। दूसरी वार फतहचन्द के साथ लालजी भी मौजूद थे। "लालजी ने कहा कि मिलनी तो हमें पूरी रकम चाहिए, पर मामला तै करने के लिए हम दो-तीन हजार कम ले लेने को भी तैयार है।" इस पर फतहचन्द वोले कि अगरेज ऐसी छोटी रकम के लिए इतने दिनो तक अपनी वात पर न अडे रहते और उन्होने लालजी को समझा-वुझा कर कहा कि अपनी माग और कम करो। लालजी ने मुश्किल से १५ हजार रुपया लेना मजूर किया और अपना अन्तिम प्रस्ताव कर वहा से उठ कर चल दिया। फतहचन्द ने हमारे वकील से कहा कि तुम दो-तीन रोज ठहरो, तव तुम्हारा काम होगा। इससे आशा होती है कि मामला १५ हजार से कम में ही तै हो जायगा।" यही हुआ। कुछ ही दिन वाद फतहचन्द ने अगरेजो के वकील को वुलवाकर कहा कि लालजी १० हजार पर उतर आये है, अव तुम मामला तै कर लेने में देर न करो। कासिमवाजार वालो ने कौंसिल को लिखा—"और कुछ कम होने की कोई आशा न देख हमने अपने वकील को आज्ञा दी कि फतहचन्द की वात मजूर कर लो। हमें कुल करीव १२ हजार रुपये देने पड़े—१० हजार लालजी साह को और २ हजार उसके कुछ मित्रो को, जिनकी कुछ भेंट करना हमारे लिए वहुत जरूरी था। अगर वे हमारी मदद न करते तो मामला इतने पर ही तै न होता।"

पृष्ठ १७१ पर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि जिस समय सरमन को पटने मे अपनी यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी थी उस समय फतहचन्द के साथ लालजी वही उपस्थित थे और दोनो ने उन्हे कुछ और सिपाही साथ लेकर ही आगे बढने की सलाह दी थी।

(६)

हालवेल

जान नेफानिया हालवेल अठारहवी शताब्दी के मध्यभाग मे ईस्ट इडिया कपनी का एक साधारण कर्मचारी था। सिराजुद्दौला के राज्यकाल में, और उसके बाद, चलने वाले घटनाचक्र ने उसे कही से कही पहुँचा दिया और क्लाइव के प्रस्थान करने पर वह कुछ दिनो के लिए कलकत्ते का गवर्नर भी हो गया। उसमे लिखने-पढने की योग्यता देश-काल के लिहाज से अच्छी थी, पर उसका नैतिक स्तर उस समय भी बहुत नीचा समझा जाता था।

जब सिराजुद्दौला ने फोर्ट विलियम पर घेरा डाला तब अधिकाश अगरेज तो जान बचाने के लिए जलमार्ग से निकल भागे, पर जो थोडे से लोग न भाग सके उनमें यह हालवेल भी एक था। उसके साथियो में भी अधिकाश तो मारे गये पर हालवेल किसी प्रकार बच गया। कुछ समय बाद उसने "काल-कोठरी" की कहानी गढ कर कपनी के सचालको के सामने रखी और अपने लिए सहानुभूति, सद्भाव और पुरस्कार के अतिरिक्त, प्रसिद्धि भी प्राप्त कर ली। पलासी का युद्ध समाप्त हो चुका था, राज्यक्राति के फलस्वरूप बगाल के असली शासक अगरेज हो चुके थे। उनकी दृष्टि से इस प्रकार का प्रचार अत्यन्त आवश्यक था कि क्लाइव ने सिराजुद्दौला के साथ जो कुछ किया था वह प्रतिशोध-मात्र था—अगर इसकी पैशाचिकता "कालकोठरी" में अपनी चरमसीमा को न पहुँच गई होती तो अगरेजो ने मीर जाफर से मिलकर जो कुछ किया वह सभवत उन्हे न करना पडता। पर ढोल की पोल खुल चुकी है—मि० लिट्ल, डा० भोलानाथ चद्र, श्री अक्षय कुमार मित्र, सईद अमीन अहमद आदि की गवेषणा के फलस्वरूप यह प्रमाणित हो चुका है कि कालकोठरी की कहानी निराधार थी और जिन १२३ व्यक्तियो के विषय मे हालवेल ने लिखा कि वे २० जून, १७५६ को उसमे दम घुट जाने से मर मिटे थे वे या तो उस समय किले मे थे ही नही या थे भी तो नवाब से होने वाली लडाई मे मारे गये थे। सारी कहानी झूठी साबित हो चुकी है—लार्ड कर्जन के

बनवाये हुए स्मारक का भी मूलोच्छेद हो चुआ है—पर कुछ 'इतिहास'-ग्रथ उस बात को दोहराते ही जा रहे है!

प्रोत्साहन मिलने पर हालवेल ने इससे भी व्यापक क्षेत्र में प्रवेश किया और प्रामाणिकता को ताक पर रख, भारतवर्ष के प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास के सम्बन्ध मे भी, कितनी ही ऐसी निराधार बाते लिख डाली जिनका उद्भावक या तो वह स्वय आप था या उसका कोई खानसामा या बावर्ची। ऐसे सफेद झूठो के प्रचार की दृष्टि से वह समय उसके अनुकूल था। वह जानता था कि इस देश में या अन्यत्र अंगरेजी पढे-लिखे लोगो में, ऐसी बातों की जानकारी नही के बराबर थी—विद्वत्समाज मे भी खोटे सिक्के की पहचान असंभव थी।

सरफराज खां और फतहचन्द के सम्बन्ध-विच्छेद का कारण बताते हुए कुछ अंगरेज इतिहासकारो ने हालवेल की बात को ही दोहराया है। हालवेल की इस बात की पुष्टि किसी समसामयिक फारसी इतिहास-ग्रथ से नही होती। "मुताखरीन" और "रियाजुस्सलातीन" ने सरफराज खां के चरित्र के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह यथास्थान उद्धृत हो चुका है। इनके अलावा एक और लेखक यूसुफ अली खां का भी मत उद्धृत कर देने लायक है। वह लिखता है:—"सरफराज खां का चरित्र अत्यन्त विशुद्ध और अनुकरणीय था। जीवन के वसन्तकाल में उसे राज्याधिकार मिला था और सुख-समृद्धि से वह दिनरात घिरा रहता था। पर सत्य के अनुरोध से मुझे यह कहना पड़ता है कि ऐसे वातावरण में भी सरफराज खा इन्द्रियलोलुप न निकला। शासन तो उसने थोड़े ही काल तक किया पर मै प्रायः बराबर उसके साथ था, और मै कह सकता हूँ कि मैने कभी किसी बुरे कार्य की ओर उसकी प्रवृत्ति न देखी। हा, यह सच है कि न तो वह राजनीति जानता था, न संसार को प्रसन्न रखने की विद्या ही। नतीजा यह हुआ कि दुश्मनों की चालबाजी उसे चाट गई।"

यहा यह बात ध्यान में रखने की है कि जिन मुसलमान लेखकों ने सरफराज खां को सदाचारी बताया है—और उनमे कुछ उसके विपक्षी भी

थे—उन्होने ही डके की चोट कहा है कि शुजाउद्दौला परले सिरे का कामुक था। कोई कारण नही जान पडता कि पिता के चरित-सबधी दोष पर प्रकाश डालने वाले, पुत्र के वैसे ही दोष पर एकमत होकर परदा डाल देते और जो स्याह होता उसे सफेद बता जाते। हालवेल ने लिखा है कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह कानाफूसी के आधार पर। पर वह कानाफूसी और किसी तक न पहुँच सकी, यह स्वय एक रहस्य जान पडता है।

सच्ची बात यह है कि हालवेल झूठा ही नही, झूठो का सिरताज था। अपने लिखे हुए इतिहास मे जहा कही उसने मौलिकता का दावा किया है वहां समझ लेना चाहिए कि या तो उसकी कपोल-कल्पना मे सत्य का लेश भी न होगा या होगा भी तो मन भर पानी मे छटाक-भर दूध के ही बराबर।

हालवेल की विश्वसनीयता के सम्बन्ध मे मि० लिट्ल ने यह मत प्रकट किया है—

"इतिहासकारो की श्रेणी में हालवेल जैसा मिथ्यावादी और ढोगी आजतक शायद नही बैठा। जान जेफ.निया हालवेल को अगरेजो ने उच्च श्रेणी का लेखक और शूरवीर माना है। १७५६ मे जब सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढाई की तब हालवेल वही था। उसी ने "काल कोठरी" का वृत्तान्त पहले पहल प्रकाशित किया था और सिराजुद्दौला के नाम पर वह कलक लगाया था जो उसे मिटाने की इतनी चेष्टा होने पर भी, ज्यो का त्यो बना हुआ है। १७६० में क्लाइव के विलायत लौटने पर हालवेल कलकत्ते का गवर्नर हुआ। गवर्नर की कुर्सी पर बैठते ही हालवेल ने मीर जाफर के विरुद्ध षड्यन्त्र* रचना शुरू कर दिया और अन्त मे उसे मुर्शिदाबाद की मसनद से हटाके ही छोडा। कौंसिल इस कार्रवाई के सर्वथा विरुद्ध थी, पर हालवेल ने इस विषय में

---

* १७६६ मे क्लाइव और उसकी कौसिल ने सचालको को यह सूचित करना अपना कर्त्तव्य समझा कि हालवेल ने मीर जाफर पर जिन हत्याओ का अभियोग लगाया था वे असत्यमूलक थी। हालवेल के कथनानुसार जितने व्यक्ति मारे जा चुके थे उनमे दो को छोडकर बाकी सभी उस साल तक जीवित थे।

उसकी सम्मति ही नही लेने दी। क्लाइव ने उसकी घोर निन्दा की है। जब वह चलने लगा था तब उसे ऐसे "स्वार्थी और अर्थ-लोलुप" व्यक्ति को अपना कर्त्तव्य-भार सौंपते हुए बडा भय हुआ था। उसने लिखा था—"इस व्यक्ति के बुद्धि है, पर मुझे डर है कि इसके हृदय नही है। पर गवर्नर के पद के लिए योग्यता और सचाई दोनो ही एक-से आवश्यक है, और यही कारण है कि मैं इस व्यक्ति को इस पद के अयोग्य समझता हूँ।" जिस समय सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढ़ाई कर अगरेजों के किले पर घेरा डाल दिया था उस समय जान जेफ.निया हालवेल भी वही मौजूद था और मर मिटने से बाल बाल बच गया था। इसके लिए वह बडा साहसी और कर्त्तव्यपरायण माना गया है। पर उसके समकालीन व्यक्ति अच्छी तरह जानते थे कि बात क्या थी। जल-सेनापति ऐडमिरल वाट्सन के सर्जन ने अपनी भारत-यात्रा के वृत्तान्त में लिखा है कि कपनी के कर्मचारी-मडल का विश्वास और ही था। उनका कहना था कि हालवेल ने कलकत्ता न छोड़ा, तो इसका एकमात्र कारण यह था कि वह भागने में असमर्थ था। और तो क्या, क्लाइव ने भी इसी विश्वास की पुष्टि की है। अपने एक पत्र में वह लिखता है—"मुझे पक्की खबर मिली है कि हालवेल की इसमें कुछ भी बहादुरी न थी। अगर उसे सिर्फ एक किश्ती मिल जाती तो वह भी औरो की तरह भागे बिना न रहता।"

"यहा तक जो कुछ लिखा गया उससे स्पष्ट हो गया कि हालवेल की जिस वीरता की प्रशसा के पुल बाधे गये है उसकी असलियत क्या थी। पर हँसी उन लोगो की बुद्धि पर उतनी नही आती जिन्होने उसे वीर माना है, जितनी उन लोगो की बुद्धि पर जो उसे इतिहासकार मानते है। हालवेल अगर झूठा था तो धृष्ट भी कम न था। उसने दावा किया है कि "भारतवर्ष का इतिहास लिखने के लिए, मैंने घोर परिश्रम किया। इस देश की प्राचीन और अर्वाचीन अवस्था के विषय में आजतक जो कुछ लिखा जा चुका है मै सब से परिचित हूँ। हिन्दुओं के सम्बन्ध में आरियन से ले कर अब्बे द गुओ के समय तक जिस ग्रन्थकार ने जो कुछ कहा है, मै सब जानता हूं। ब्राह्मणों के वेदशास्त्रो में भी मेरी गति है।" पर हालवेल के पहले जो ग्रथ निर्मित हुए थे, जो ऐतिहासिक प्रयत्न

हुए थे वे सत्य के जिज्ञासु के लिए अत्यन्त भ्रामक, असन्तोषजनक और दोषयुक्त थे, अतएव इस सत्यशोधक को अज्ञान-तिमिर के हृदय पर तेज का वह तीर छोडना पडा। इस अध्यवसाय और अध्ययन के फलस्वरूप जिन तत्त्वो का उद्घाटन हुआ, और लोक-हितकामना से प्रेरित हो कर जिन्हें हालवेल ने लेखबद्ध किया, उनकी बानगी पाठको की भेट की जाती है।

"अपने इतिहास के लिए सामग्री इकट्ठी करने में हालवेल के तीस बरस लग गये। इस अन्वेषण के फलस्वरूप उसे हिन्दुओ के वेद की दो शुद्ध और अमूल्य प्रतिया हाथ लग गई। बडे परिश्रम से हालवेल को यह ग्रथ-रत्न मिला था, और अठारह महीने उसने उसका अनुवाद करने में विताये। इसी बीच में १७५६ की दुर्घटना हुई और उस शास्त्र की दोनो प्रतिया और उसके अनुवाद की पाडुलिपि लूट-मार में न जाने कहा खो गई। पर कुछ समय बाद, उसे खोया हुआ धन फिर हाथ लग गया और इसके फलस्वरूप वह ससार को हिन्दुओ के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ 'चतुर्वेद'* का परिचय-प्रदान करने मे समर्थ हुआ। हालवेल के समय में इस ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापन का प्रचार बहुत कम था, यहा तक कि सस्कृत लिपि में उसे पढने-पढाने वाले घर सारे हिन्दुस्तान में दो ही चार थे। हालवेल ने मूल-ग्रन्थ के दो भागो का अनुवाद अपने इतिहास में दिया है। चतुर्वेद की विषय-व्याख्या भी की है। पर अनुवाद में यत्र-तत्र मूल-ग्रन्थ की शुद्ध प्रति के कुछ शब्द रखने पडे, इसलिए फुटनोटो में उनका अर्थ समझा दिया गया है। कही कही आपने कृपा कर पाठको को यह भी बता दिया है कि आपके अनुवाद का मूल शब्द या मूल वाक्य क्या था। मूल ग्रन्थ के ये ही शब्द या वाक्य हालवेल की कलई खोलते है। क्योकि अनुवाद या फुटनोटो में सस्कृत के जो शब्द आये है उनमे "लोग" और "देवता लोग", "महासर्ग" (महास्वर्ग) और "अधेरा", "सूरजी" और "चन्दर" है। कही "दुनिया" और "मन्नू लोग" (मानव लोक) है तो कही "गोइजल बाडी" (गोशाला) और "जोग" (युग) है। सस्कृत के नाम से कही "झोल" पानी के अर्थ में विचर रहा है तो कही "हजार पर हजार" डकार ले रहा है। हालवेल ने जिस वाक्य से अपने अनुवाद

* हालवेल के शब्दो में "Chartah Bhade of Bramah."

का श्री गणेश किया है वह है God is one, पर जिस सस्कृत मूल वाक्य का यह अनुवाद है वह है "एक हमेशा"। चौथे वेद का नाम "ब्रह्म का इन्साफ वेद" है, यद्यपि वहुत चेष्टा करने पर भी हालवेल को उसके दर्शन न हो सके। अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नही। पाठक इतने से ही सतोष करे।

"यदि कहा जाय कि वैदिक साहित्य और सभ्यता पर उस समय तक अगरेजो के लिए अन्धकार का ऐसा मोटा पर्दा पड़ा हुआ था कि हाल्वेल से ऐसी भूले होना क्षम्य था, तो इसका क्या उत्तर है कि उसने मुगल शासनकाल के सम्वन्ध मे भी ऐसी ही बे-सिर-पैर की बातें लिख मारी है। १७१९ मे शाहजादा निकोसियर ने दिल्ली के सिंहासन पर बैठने की निष्फल चेष्टा की थी। यह औरगजेव का पौत्र अर्थात् शाहजादा अकवर का पुत्र था। पर हालवेल उसे उस इतिहास-प्रसिद्ध भारत-सम्राट् अकवर का पुत्र वताता है, जिसकी मृत्यु सौ वरस से भी अधिक पहले हो चुकी थी। कहा गया है कि यदि औरगजेव के मरणकाल से मुहम्मदशाह के समय तक के इतिहास के लिए हाल्वेल का ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाय तो एल्फिन्स्टन ने उस समय का जो इतिहास लिखा है उसके सशोधन की आवश्यकता है। और यदि "मुताखरीन" इतिहास कहा जा सकता है तो १७१७ और १७५० के बीच के बंगाल के वृत्तान्त के लिए हाल्वेल का ग्रन्थ उपन्यास है। हाल्वेल की मिथ्यावादिता के कितने उदाहरण दियें जाय? उसकी सारी पुस्तक उनसे भरी पड़ी है। जान सरमन की अध्यक्षता मे जो दूतदल फर्रुखसियर के पास भेजा गया था उसका उल्लेख हो चुका है। हालवेल ने ऐसी प्रसिद्ध और उसके लिए आधुनिक घटना के संबध में भी, जो कुछ लिखा है उसका अधिकाश कल्पना-जल्पना-मात्र है। वह कहता है—"जान सरमन फरमान ले कर दिल्ली से लौटा आ रहा था। जव वह मुर्शिदावाद के पास पहुँचा, तव कुछ समय के लिए वही डेरा डाल दिया और जफर खा को इसकी सूचना दी। सरमन को वादशाह से उमरा का खिताव मिला था। अर्थात् उसका दर्जा वगाल के सूवेदार से कुछ ऊँचा था। स्वभावत: वह इस विचार में था कि पहले नवाव यहा आकर मुझसे मिल ले, तव मै उसके घर पर जाकर उससे मिलू। पर नवाव को यह

मंजूर न हुआ । उसने यह तो स्वीकार किया कि सरमन का खिताब उसके खिताब से ऊचा था, पर उसका कहना था कि मै बगाल का नवाब और सल्तनत का तीसरा बडा सूबेदार हूँ, इसलिए पहले सरमन को आकर मुझसे मिलना चाहिए , नही तो मेरी इज्जत मे बट्टा लग जायगा । तीन रोज तक दोनो ओर से दूत आते-जाते रहे, पर किसी ने पहले जाना मजूर नही किया । अन्त में सरमन ने कलकत्ते की राह ली । शान में आकर महज छोटी सी बात के लिए सरमन ने नवाब को खफा कर दिया । यह न सोचा कि फर्रुखसियर के फरमान के अनुसार कार्य होना नवाब की सदिच्छा पर ही निर्भर था।" यह कहानी शुरू से आखिर तक हालवेल के मन की उपज है। सरमन की पूरी डायरी प्रकाशित हो चुकी है। उसकी दिल्ली-यात्रा से सबध रखने वाले और कागज भी प्रकाशित हो चुके है । पर उनमे इस घटना का उल्लेख तक नही है। बल्कि सरमन की डायरी से पता चलता है कि वह मुर्शिदाबाद हो कर कलकत्ते लौटा ही नही । क्या हालवेल का ग्रन्थ ऐतिहासिक उपन्यास कहाने के भी योग्य है" ?

(७)

"महाराष्ट्र-पुराण"

कई वर्ष हुए, मैमनसिंह जिले मे "महाराष्ट्र-पुराण" नामक पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति मिली थी । इसके रचयिता कोई गगाराम कवि थे, जो इसमें वर्णित घटनाओ के समसामयिक थे। पुस्तक की ऐतिहासिकता की विद्वानो ने बडी प्रशसा की है । जगत्सेठ की कोठी लुटने के विषय मे इसमें जो कुछ लिखा है वह "मुताखरीन" के बयान से मिलता-जुलता है। पुस्तक "बगीय साहित्य-परिषत्-पत्रिका" में प्रकाशित हो चुकी है । नीचे मीर हबीब द्वारा लूट-पाट के सम्बन्ध की पक्तिया उद्धृत की जाती है .—

"तबे बरगि पार* हइल हाजिगजेर हाटे,
शीघ्रगति आइसा जगत्सेठर बाड़ी लुटे।
आडकाट टाका यत घरे छिल,
घोड़ार खुरचि भइरा सब टाका निल।
तबे सभो दुइ-तिन टाका छडाइया,
शीघ्रगति गेला बरगी गगा पार हइया।
तबे फकीर-फाकीरा, गिरस्त जन छिल,
सेई सब टाका तारा लुटिते लागिल।
तबे काटयाते नवाब साहिब सुनिल,
जगत्सेठर बाडी बरगि लुइटा गेल।
एतेक कथा यदि हरकरा कहिल,
काटया हइते नवाब शीघ्र चलिल।
राता राती तबे नवाब आइला मोनकरा,
भोर हइते तबे पहुछिला डेरा।
तबे हाजि साहेब के नवाब अनेक बुलिल
"एतेक लस्कर रइते बाडी लुइटा गेल"।

---

* जगत्सेठ की कोठिया भागीरथी के दोनों ओर थी, पर पश्चिम तट की अपेक्षा पूर्व तट विशेष सुरक्षित होने के कारण वह अपना कोष उसी ओर की पुरानी कोठी में रखते आये थे। मराठों के मार्ग में भागीरथी गगा या पद्मा के समान बाधक बनने वाली न थी। फिर गंगाराम ने 'लूट' का धन दो करोड़ न बता कर इतना ही लिखा है कि जगत्सेठ के घर में जितने आडकाटी रुपये थे उन्हें मराठे घोडों की खुरजियो में भरकर ले गये।

सहायक ग्रंथ

प्रस्तुत पुस्तक लिखने में निम्नलिखित ग्रथों से विशेष सहायता ली गई है :—

(१) "मुताखरीन"—लेखक सैयद गुलाम हुसैन खा। अंगरेजी अनुवादक रेमों (उपनाम हाजी मुस्तफा)

(२) "रियाजुस्सलातीन"—लेखक गुलाम हुसैन सलीम। अंगरेजी अनुवादक मौलवी अब्दुस्सलाम।

(३) "हिस्टरी आव औरंगजेब"—लेखक सर यदुनाथ सरकार।

(४) "लेटर मुगल्स" (दो भाग)—लेखक विलियम अर्विन।

(५) "अर्ली ऐनल्स आव दि इग्लिश इन बंगाल" (तीन भाग)—लेखक और सम्पादक सी० आर० विल्सन।

(६) "बगाल पास्ट ऐंड प्रेजेन्ट" (ऐतिहासिक पत्रिका) १९२०-२१। मुर्शिदाबाद में नवाब बहादुर के स्कूल के हेडमास्टर जे० एच० लिट्ल के जगत्सेठ-सम्बन्धी लेख।

(७) "बंगाल इन १७५६-५७" (तीन भाग)—संपादक एस० सी० हिल।

(८) "ड्यूप्ले ऐंड क्लाइव"—लेखक एच० एच० डाडवेल।

(९) "कन्सीडरेसन आन इंडिया ऐफेयर्स", (दो भाग)—लेखक विलियम बोल्ट्स (१७७२-७५)।

(१०) "केम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया", भाग ५।

(११) "कैलेंडर आव पर्शियन कारेसपान्डेन्स", भाग ७।

अनुक्रमणिका